संस्कृत प्रवेशिका

डा. सुदर्शन लाल जैन

तारा बुक एजेन्सी
वाराणसी

संस्कृत-प्रवेशिका

(व्याकरण, अनुवाद और निबन्ध)

(हाईस्कूल से एम.ए. तक के छात्रों के लिए उपयोगी
प्राचीन और नवीन पद्धतियों का समन्वय
विभिन्न विश्वविद्यालयों में पाठ्यग्रन्थ के
रूप में स्वीकृत)

डॉ. सुदर्शन लाल जैन
एम.ए., पी-एच.डी., आचार्य
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

तारा बुक एजेन्सी
वाराणसी

प्रकाशक—
तारा बुक एजेन्सी
रथयात्रा-गुरुबाग रोड
कमच्छा, वाराणसी

❐

संशोधित और परिवर्द्धित पंचम संस्करण, २००३

❐

© प्रकाशक

❐

मूल्य : ५०.००

❐

मुद्रक—
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
रथयात्रा-गुरुबाग रोड, वाराणसी
फोन : (0542) 2420291

प्राक्कथन

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष् वेद के इन छः अङ्गों में व्याकरण सबसे प्रधान है।[1] व्याकरण को 'शब्दानुशासन' भी कहा जाता है क्योंकि इसमें शब्द की मीमांसा की जाती है (व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम्)। शब्दार्थ का यथार्थबोध व्याकरण के विना संभव नहीं है। अतः कहा है —'हे पुत्र ! यद्यपि तुम बहुत नहीं पढ़ते हो फिर भी व्याकरण पढ़ो जिससे 'स्वजन' (अपना) का 'श्वजन'- (कुत्ता) 'सकल' (सम्पूर्ण) का 'शकल (टुकड़ा) और 'सकृत्' (एक बार) का 'शकृत्' (मल) न हो जाए।'[2]

संस्कृत भाषा के व्याकरण जैसा गहन, सूत्रात्मक और तर्क-संगत व्याकरण संसार की किसी अन्य भाषा का उपलब्ध नहीं है। संस्कृत व्याकरण का प्रारम्भिक रूप प्रातिशाख्यों में मिलता है। पश्चात् यास्क (ई० पू० ८००)-कृत 'निरुक्त' मे 'शब्दनिरुक्ति' का विवेचन मिलता है। यास्क ने सर्वप्रथम शब्दों की नाम (संज्ञा, सर्वनाम) आख्यात (धातु और क्रिया), उपसर्ग और निपात (च वा आदि) इन चार भागों विभक्त किया है। पाणिनि से पूर्व आपिशलि, काशकृत्स्न, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र आदि कई वैयाकरण हुए थे। पाणिनिप्रस्थान में संस्कृत-व्याकरण को मूर्त रूप देने वाले निम्न तीन महान् वैयाकरण प्रसिद्ध हैं। जिन्हें 'मुनित्रय' के नाम से जाना जाता है—

पाणिनि (सूत्रकार—ई० पू० ३०० से २४०० ई० पू० के मध्य) सूत्रात्मक शैली में लिखित इनकी अष्टाध्यायी में लगभग ४००० सूत्र हैं जिन्हें आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं। प्रथम में व्याकरण-सम्बन्धी संज्ञायें तथा परिभाषायें हैं। द्वितीय में समास तथा कारक हैं। तृतीय में कृत् और तिङ् प्रत्यय हैं। चतुर्थ और पञ्चम में शब्दों से होने वाले प्रत्यय (सुप्, स्त्री, तद्धित और समासान्त) हैं। षष्ठ, सप्तम और अष्टम में सन्धि, आदेश और स्वर-प्रक्रिया से सम्बन्धित नियम हैं। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह अनुपम ग्रन्थ है।

कात्यायन (वार्तिककार—३०० ई० पू० के करीब) —इनका दूसरा नाम

---

१. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ पाणिनीय-शिक्षा, ४१-४२।

२. यद्यपि बहु नाधीषे पठ पुत्र तथापि व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलः शकलः सकृच्छकृत्॥

'वररुचि' है। इन्होंने अष्टाध्यायी पर लगभग ५००० वार्तिकों की रचना की है।

पतञ्जलि (भाष्यकार—२०० ई० पू० के करीब)—इन्होंने सरल एवं प्रवाहमयी शैली में अष्टाध्यायी पर 'महाभाष्य' लिखा है जो सभी प्रकार की शङ्काओं के निवारण करने के लिए आदर्शभूत है।

इनके बाद विविध टीकाओं और पद्धतियों की परम्परा चली। उस परम्परा में अष्टाध्यायी पर जयादित्य और वामन (८७० ई०)-कृत 'काशिका', महाभाष्य पर कैय्यटकृत प्रदीप और प्रदीप पर नागेशकृत 'उद्योत' प्रसिद्ध हैं। भर्तृहरिकृत (७०० ई०) 'वाक्यपदीय' बहुत विश्रुत है। प्रक्रियाक्रम में भट्टोजिदीक्षित (१६३० ई०) ने प्रौढ़ मनोरमा टीका के साथ—'सिद्धान्तकौमुदी' की रचना की। पश्चात् वरदाचार्य ने सिद्धान्तकौमुदी को संक्षिप्त कर लघुसिद्धान्तकौमुदी और मध्यसिद्धान्तकौमुदी की रचना की। इनके अलावा पूज्यपाद देवनन्दिकृत (छठी शता०) जैनेन्द्रव्याकरण, शाकटायनकृत (८ वीं शता०) शब्दानुशासन, हेमचन्द्रकृत (१२ वीं शता०) शब्दानुशासन, वोपदेवकृत मुग्धबोध, अनुभूति-स्वरूपाचार्यकृत सारस्वत-व्याकरण आदि प्राचीन पद्धति से लिखे गए व्याकरण-ग्रन्थ हैं।

आधुनिक पद्धति से लिखे गए विभिन्न व्याकरण ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं परन्तु जिस उद्देश्य की पूर्ति हेतु इस पुस्तक को लिखा गया है उस उद्देश्य की पूर्ति अब तक प्रकाशित पुस्तकों से नहीं होती। इसके लिखने का उद्देश्य है—'सामान्य जिज्ञासुओं और विशेष जिज्ञासुओं दोनों के लिए एक साथ उपयोगी होना।' इसलिए प्रायः प्रत्येक पेज को दो या तीन भागों में विभक्त किया गया है। ऊपर का भाग सामान्य-जिज्ञासुओं के लिए है और शेष दो भाग विशेष, जिज्ञासुओं के लिए। सर्वत्र सरलता और प्रामाणिकता का ध्यान रखा गया है। वाक्य रचना में सन्धि और समास का प्रयोग अल्प किया गया है। अंग्रेजी-शब्दों और चार्टों से विषय स्पष्ट किया गया है। सुबोधार्थ व्याकरण, अनुवाद और निबन्ध को पृथक् पृथक् लिखा गया है।

श्रद्धेय गुरुवर्य प्रो० डॉ० वीरेन्द्रकुमार वर्मा तथा सभी शुभाशंसकों (अगले पृष्ठ पर मुद्रित) का अत्यधिक आभारी हूँ जिन्होंने अपने बहुमूल्य क्षण मुझे प्रदान-कर अनुगृहीत किया। बहुमूल्य सुझावों के लिए श्री ब्रह्मानन्द चतुर्वेदी तथा डा० श्री नारायण मिश्र का भी विशेष आभारी हूँ। मुद्रकद्वय भी धन्यवादार्ह हैं।

—सुदर्शनलाल जैन

शुभाशंसा

संस्कृत-प्रवेशिका पाश्चात्य व्याकरण पद्धति से लिखी गयी उपयोगी पुस्तक है। संस्कृत वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास और वर्ण-विन्यास को सुगम ढंग से समझाने का प्रयत्न किया गया है। मुझे विश्वास है कि यह संस्कृत-अध्येताओं के बड़े काम की पुस्तक होगी।

कुलपति, काशी विद्यापीठ, वाराणसी — डॉ० विद्या निवास मिश्र

विद्वान् ग्रंथकार ने अध्यापक के रूप में विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संस्कृत-व्याकरण के दुरूह तत्त्वों का सुबोध प्रतिपादन किया है। संस्कृत-प्रवेशिका का यह चतुर्थ संस्करण इसकी व्यापक उपयोगिता को सप्रमाण करता है।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग — डॉ० विश्वनाथ भट्टाचार्य
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ० सुदर्शनजैनमहोदयविरचिता संस्कृत-प्रवेशिका तावदद्यावधिप्रकाशितेषु व्याकरणानुवादनिबन्धग्रन्थेषु प्रवरा कृतिर्विभाति या खलु शैक्षाणां कोविदानां च नूनमुपकारिका सेत्स्यतीति वाढं प्रत्येति।

निदेशक, अनुसन्धान संस्थान — डॉ० भगीरथप्रसादत्रिपाठी 'वागीशशास्त्री'
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

मैंने डॉ० जैन की संस्कृत-प्रवेशिका को पढ़ा है। पुस्तक छात्रों के लिए परम उपयोगी है, पठनीय है तथा संग्रहणीय है।

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग — डॉ० सुरेश चन्द्र पाण्डेय
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ० जैन ने संस्कृत भाषा को सीखने और सिखाने के उद्देश्य से बहुत ही अच्छी पुस्तक लिखी है। इससे छात्रों और अध्यापकों को बड़ी सुविधा होगी।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग — डॉ० हरिनारायण दीक्षित
कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ० जैन अनुभवी विद्वान हैं उनकी यह रचना निःसंदेह बहुत अच्छी है। स्नातक छात्रों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगी।

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग — डॉ० कृष्णकान्त चतुर्वेदी
जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

मैंने संस्कृत-प्रवेशिका का भली-भाँति अवलोकन किया है। इसमें संस्कृत व्याकरण के सभी अङ्गों का सुबोध शैली में प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत है।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग — डॉ० सत्यप्रकाश सिंह
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

संस्कृत-व्याकरण सीखने की प्राचीन और नवीन पद्धतियों का समीकरण करने में डॉ० जैन को अद्भुत सफलता मिली है। इस पुस्तक से संस्कृत व्याकरण का अभ्यास करने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ेगी।

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग — डॉ० रामजी उपाध्याय
सागर विश्वविद्यालय, सागर — (संपादक, सागरिका)

Although the book is an introduction to sanskrit it contains copious notes and is authenticated with original references at the footnotes. I have therefore no doubt to recommend the book for use by University and Institutions.

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग — **Dr. S. Bhattacharya**
का० हि० वि० वि०, वाराणसी — (5-2-1974)

उत्तरीतुं परीक्षाब्धिं संस्कृतं शिक्षितुं तथा।
प्रकामं सेव्यतां छात्रैः संस्कृतैषा प्रवेशिका॥
सुधिया सुहृदा सम्यग् ग्रंथरत्नमकारि यत्।
कण्ठे कृत्वा तु तत् प्रेम्णा सर्वे सन्तु सुदर्शनाः॥

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग — डॉ० कपिलदेवपाण्डेयः
आर्य महिला डिग्री कालेज, वाराणसी

संस्कृत-प्रवेशिका संस्कृत व्याकरण और रचना की अद्वितीय पुस्तक है।

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग — डॉ० वाचस्पति उपाध्याय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ० जैन द्वारा लिखित संस्कृत-प्रवेशिका को मैं बी० ए०, एम० ए०, शास्त्री तथा आचार्य कक्षाओं के लिए संस्तुत करता हूँ।

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग — डॉ० राय अश्विनी कुमार
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

संस्कृत-प्रवेशिका देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसमें संस्कृत व्याकरण, अनुवाद और निबन्धों को सुबोध शैली में प्रस्तुत किया गया है।

प्राध्यापक, डी. ए. वी. कालेज, कानपुर — डॉ० शिवबालक द्विवेदी

संस्कृत व्याकरण, अनुवाद और निबन्ध के लिए डॉ० जैन की संस्कृत-प्रवेशिका एक आदर्श पुस्तक है।

रीडर, संस्कृत विभाग — डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

गम्भीर विषय को सरल ढंग से प्रस्तुत करने में डॉ० जैन सिद्धहस्त हैं। संस्कृत-प्रवेशिका, प्राकृत दीपिका, तर्कसंग्रह आदि उसके निदर्शन हैं।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग — डॉ० प्रभाकर शास्त्री
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

विषय-सूची

पृष्ठ

प्राक्कथन — क
शुभाशंसा — ग

भाग : १ : व्याकरण (Grammar) — १–१५८

प्रथम अध्याय : वर्णमाला (Alphabet) — १–१५

[वर्णमाला (१), स्वरों के प्रकार (१) व्यञ्जनों के प्रकार (३), माहेश्वर सूत्र (६), प्रत्याहारविधि (६), वर्णों के उच्चारणस्थान (९) वर्णों के उच्चारण में प्रयत्न (११), सवर्ण-असवर्ण में अन्तर (१४), शब्द और पद में अन्तर (१५), अभ्यास (१५)]

द्वितीय अध्याय : सन्धि (Euphonic Combination of Letters) — १६–३१

[संयोग और सन्धि में अन्तर (१६), **स्वर सन्धि** (१७)—दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण्, अयादि, पूर्वरूप, पररूप, प्रकृतिभाव। **व्यञ्जन सन्धि** (२२)—श्चुत्व, ष्टुत्व, जश्त्व, चर्त्व, छत्व, अनुस्वार, परसवर्ण, ङमुडागम, तुगागम। **विसर्ग सन्धि** (२६)—रुत्व, विसर्ग, सत्व, उत्व, यत्व, र-लोप, विसर्ग-लोप। अभ्यास (३०), विसर्ग-सन्धि बोधक तालिका (३१)]

तृतीय अध्याय : कृत्-प्रत्यय (Primary-Suffixes) — ३२–४७

[**वर्तमानकालिक** (३३)—शतृ, शानच्। **भविष्यत्कालिक** (३५)—शतृ, शानच्। **भूतकालिक** (३५)—क्त, क्तवतु। **पूर्वकालिक** (३७)—क्त्वा, ल्यप्। **विधि कृदन्त या कृत्य प्रत्यय** (३९)—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत् आदि (केलिमर्, क्यप्, ण्यत्)। **निमित्तार्थक** (४२)—तुमुन्। **कर्तृवाचक** (४२)—ण्वुल्, तृच्, णिनि आदि (खच्, खश्, ट, क, कञ्, क्विप्, ङ, ल्यु, वुञ्, इष्णुच्, आलुच्, उ, युच्, षाकन्)। **भाववाचक संज्ञायें** ४५)—ल्युट्, घञ्, क्तिन् आदि (अच्, अप्, अङ्, नङ्, कि, क्विप्, युच्, अ, घ, खल्)]

चतुर्थ अध्याय : तद्धित-प्रत्यय (Secondary Suffixes) — ४७–५७

[कृत् और तद्धित में अन्तर (४७)। **अपत्यार्थक** (४८)—इञ्, अण्, ढक् आदि (यत्, ण्य, यञ्, घ, ठक्, अञ्)। **अतिशयार्थक** (५०)—तरप्, तमप्, ईयसुन्, इष्ठन्। **भावार्थक** (५२)—त्व, तल्, इमनिच् आदि (ष्यञ्, य, थक, ढक्, अण्)। **मत्वर्थीय** (५३)—मतुप्, इनि आदि (ठन्, विनि)। **विभक्त्यर्थक** (५४)—तसिल्, त्रल्, ह, अत्। **कालाद्यर्थक** (५५)—दा, हिल्, थाल्, थमु। **विभिन्नार्थक** (५६)—धा, मात्रच्, वति, च्वि, तीय, थुक्, मट्, तयप्, अयच्, डट्, छ, कन्, अग् इनच्। 'अण्' का

अपत्य से भिन्न अर्थों में प्रयोग (५७)—समूह, देवता, सम्बन्ध, रक्त, जात, विकार, काल, भाव, कर्म, आगत, प्रोक्त, निवास, अधीत ।]

पञ्चम अध्याय : स्त्री-प्रत्यय (Formation of Feminine Bases) ५८-६२

['आ' वर्ग (५८)—टाप्, डाप्, चाप् । 'ई' वर्ग (५९)—ङीप्, ङीष्, ङीन्) । अन्य (६२)—ऊङ्, ति]

षष्ठ अध्याय : अव्यय (Indeclinable Words) ६२-६३

[अर्थ, अव्ययों के उपसर्ग, निपात आदि भेद]

सप्तम अध्याय : कारक और विभक्ति (Case and Case-ending) ६४-८२

[परिचय (६४), कारक-विभक्ति और उपपद-विभक्ति (६५), प्रथमा (६५), द्वितीया (६७), तृतीया (७२), चतुर्थी (७४), पञ्चमी (७६), षष्ठी (७९), सप्तमी (८१)]

अष्टम अध्याय : समास (Compound) ८३-९४

[परिचय तथा भेद (८३), अव्ययीभाव (८४), तत्पुरुष (८६), कर्मधारय (८८), द्विगु (९०), द्वन्द्व (९१), बहुव्रीहि (९२)]

नवम अध्याय : शब्दरूप (Declension) ९५-११५

नोट—एक समान रूप चलने वाले अन्य शब्दों का फुटनोट में यथावसर संकेत जिससे अनेक शब्दरूपों को बनाया जा सके ।

[परिचय (९५), स्वरान्त पुं० (९५)—राम, (पाद, दन्त, निर्झर), विश्वपा, हरि, पति, (सखि), सुधी, गुरु, कर्तृ, पितृ, गो । स्वरान्त स्त्री० (९८)—लता, मति, नदी, श्री, धेनु, वधू, स्वसृ । स्वरान्त नपुं० (१००)—ज्ञान, वारि, दधि, मधु, कर्तृ । व्यञ्जनान्त पुं० (१०१)—ऋत्विज्, भूभृत्, भगवत्, धावत्, सुहृद्, राजन्, आत्मन्, युवन्, करिन्, पथिन्, तादृश्, विद्वस् । व्यञ्जनान्त स्त्री० (१०४)—वाच्, अप्, गिर्, दिव्, आशिस् । व्यञ्जनान्त नपुं० (१०५)—जगत्, नामन्, कर्मन्, अहन्, मनस्, धनुष् । सर्वनाम (१०७)—अस्मद्, युष्मद्, तद्, भवत्, एतद्, इदम्, अदस्, यद्, किम्, सर्व, (कति, उभ, उभय) । संख्यावाचक (१११)—एक से दशन्, विंशति, त्रिंशत्, (पूरणार्थक, एक से परार्ध तक संख्या)]

दशम अध्याय : धातुरूप (Conjugation of Verbs) ११६-१५८

नोट—धातुकोष के लिए देखें परिशिष्ट १

[गणादि परिचय (११६), १. भ्वादि (१२१)—भू, पठ्, गम्, चल्, श्रु, दृश्, स्था, वद्, गद्, णद्, अत्, या, एध्, वृतु, कमु, नी, श्रिञ्, यज् । २. अदादि (१३२)—(दुह्, रुद्, स्ना, स्वप्, या, शास्, इण्), अद्, विद्, क्रीङ्, इङ्, ब्रूञ्, अस्, हन् । ३. जुहोत्यादि (१३६)—(हा, धा), हु, भी,

दा । ४. दिवादि (१३८)—(भ्रम्, युध्, पा, विद्), दिव्, जन्, नश्, तृन् । ५. स्वादि (१४०)—षुञ्, चिञ्, आप्, शक् । ६. तुदादि (१४३)—(मुच्, क्षिप्, मिल्, लिप्), तुद्, षिच्, लिख्, इष्, मृज्, प्रच्छ् । ७. रुधादि (१४७)—रुधिर्, युजिर्, भुज् । ८. तनादि (१५०)—तनु, कृ । ९ क्रयादि (१५२)—डुक्रीञ्, पूञ्, ज्ञा, ग्रह् । १०. चुरादि (१५५)—चुर्, गण्, कथ् ।]

नोट—व्याकरण-सम्बन्धी अन्य विषयों के लिए देखें परिशिष्ट ३ से ७ ।

भाग : २ : अनुवाद (Translation) १५९-१९५

नोट—प्रत्येक पाठ तीन भागों में विभक्ति है—उदाहरण वाक्य, नियम और अभ्यास

पाठ १ : सामान्य वर्तमानकाल—लट् लकार का प्रयोग १५९

पाठ २ : सामान्य वर्तमानकाल—विभक्तियों का सामान्य प्रयोग १६०

पाठ ३ : सामान्य वर्तमानकाल—भवत्, च और वा शब्दों का प्रयोग १६१

पाठ ४ : सामान्य भूतकाल और भविष्यत्काल—लङ् और लट् का प्रयोग १६२

पाठ ५ : सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण और अव्यय-तीनों कालों का प्रयोग १६३

पाठ ६ : आज्ञा, चाहिए, संभावना और आशीर्वाद—लोट् और विधिलिङ् १६६

पाठ ७ : अपूर्ण वर्तमान-भूत-भविष्यत्काल—शतृ-शानच् प्रत्ययों का प्रयोग १६८

पाठ ८ : 'जाते हुए', 'सुनते हुए' आदि वाक्य—शतृ-शानच् प्रत्ययों का प्रयोग १६९

पाठ ९ : वाच्य-परिवर्तन—कर्तृ-कर्म-भाव वाच्यों का प्रयोग १७०

पाठ १० : भूतकालिक वाक्य—क्त-क्तवतु प्रत्ययों का प्रयोग १७२

पाठ ११ : पूर्ण वर्तमान-भूत-भविष्यत् काल—क्त-क्तवतु प्रत्ययों का प्रयोग १७३

पाठ १२ : पूर्णापूर्ण वर्तमान-भूत-भविष्यत्काल—शतृ-शानच् प्रत्ययों का प्रयोग १७४

पाठ १३ : कर्तृ-कर्म कारक—प्रथमा-द्वितीया विभक्तियों का प्रयोग १७५

पाठ १४ : करण कारक—तृतीया विभक्ति का प्रयोग १७६

पाठ १५ : सम्प्रदान कारक—चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग १७८

पाठ १६ : अपादान कारक—पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग १८०

पाठ १७ : सम्बन्धार्थ—षष्ठी विभक्ति का प्रयोग १८१

पाठ १८ : अधिकरण कारक—सप्तमी विभक्ति का प्रयोग १८३

पाठ १९ : पूर्वकालिक 'कर' या 'करके' वाक्य—क्त्वा-ल्यप् प्रत्ययों का प्रयोग १८४

पाठ २० : विध्यर्थक 'चाहिए' आदि वाक्य—तव्यत्-अनीयर्-यत् प्रत्ययों का० १८५

पाठ २१ : तुलनात्मक वाक्य—तरप्-तमप् प्रत्ययों का प्रयोग १८६

पाठ २२ : प्रेरणात्मक वाक्य—णिच् प्रत्यय का प्रयोग १८७

पाठ २३ : निमित्तार्थक वाक्य—तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग १८८

पाठ २४ : हेतुहेतुमद्भावात्मक वाक्य—यदि, चेत् और तर्हि का प्रयोग १८९

पाठ २५ : 'करने वाला' अर्थवाचक शब्द—ण्वुल्-तृच् प्रत्ययों का प्रयोग १८९

पाठ २६ : भाववाचक संज्ञायें—ल्युट्-घञ्-क्तिन् प्रत्ययों का प्रयोग १९१

पाठ २७ : सर्वनाम और विशेषण—एक-द्वि-बहुवचन का विशेष प्रयोग १९२
पाठ २८ : 'होने पर' अर्थ वाले वाक्य—कृत् प्रत्यय एवं सप्तमी का प्रयोग १९४
नोट—अनुवादार्थ अभ्यास संग्रह के लिए देखें परिशिष्ट ८

भाग : ३ : निबन्ध (Composition) १९६–२२५

[१. काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयः (१९६); २. गङ्गा (१९८); ३. वाराणसी (१९८); ४. भगवान् बुद्धः (२००); ५. महामना मदन-मोहन-मालवीयः (२०१); ६. महात्मा गांधिः (२०२); ७. महाकविः कालिदासः (२०४); ८. सत्सङ्गतिः (२०६); ९. सदाचारः (२०७); १०. परोपकारः (२०९); ११. संस्कृतभाषायाः महत्त्वम् (२१०); १२. मातृभक्तिः देशभक्तिश्च (२१२); १३. अनुशासनम् (२१४); १४. विद्यार्थिकर्त्तव्यम् (२१५) १५. आधुनिकं विज्ञानम् (२१७); १६. विद्या (२२०); १७. सत्यम् (२२१); १८. उद्योगः (२२२); १९. अहिंसा (२२३), २०. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न लिङ्गं न च वयः (२२४)]
नोट—अन्य निबन्धों के लिए देखें परिशिष्ट ९

परिशिष्ट (Appendix) २२६–२८६

१. धातुकोष (भ्वादि २२६, अदादि २३२, जुहोत्यादि २३३, दिवादि २३३, स्वादि २३४, तुदादि २३५, रुधादि २३६, तनादि २३६, क्रयादि २३६, चुरादि २३७)
२. वाग्व्यवहार शब्दकोष (सम्बन्धी वर्ग २३९, शरीर वर्ग २४०, आभूषण वर्ग २४२, वस्त्र वर्ग २४२, गृहस्थी की सामग्री २४२, पशु-पक्षि आदि २४४, खाद्य पदार्थ २४६)
३. प्रत्ययान्त (सनाद्यन्त) धातुयें (णिजन्त २४९, सन्नन्त २५०, यङन्त २५१, यङ्लुगन्त २५२, नामधातु २५२—क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, क्विप्, णिच् और णिङ् प्रत्ययों का इच्छा, आचार, करोति, उत्साह, उद्वमन, वेदन, भवति, वर्तन अर्थों में प्रयोग)
४. कर्मवाच्य और भाववाच्य की क्रियायें २५४
५. आत्मनेपद और परस्मैपद विधान २५५
६. मूर्द्धन्यीकरण (णत्व-विधान और षत्व-विधान) २५६
७. प्रकृति-प्रत्यय, संज्ञायें तथा अनुबन्ध २५७
८. अनुवादार्थ अभ्यास-संग्रह (संस्कृत से हिन्दी २६२, हिन्दी से संस्कृत २६७)
९. निबन्ध (पुस्तकालयः २७१, दीपावली २७२, षड्ऋतवः २७३, त्रीणि राष्ट्रियपर्वाणि २७७, श्रीकृष्णः २७९, श्रीमहावीरः २८०, नौका-विहारः २८१, वाष्पयानयात्रा २८२, सैनिकशिक्षा २८३, समाचारपत्रम् २८४, पुस्तकस्य आत्मकथा, २८६)।

भाग १ : व्याकरण (Grammar)

प्रथम अध्याय

वर्णमाला (Alphabet)

स्वर १३			व्यञ्जन ३३							अन्य ३
मूल ६		संयुक्त ४	स्पर्श २५					अन्तःस्थ ४	ऊष्म ४	अयोगवाह ३
ह्रस्व	दीर्घ	दीर्घ	कवर्ग	चवर्ग	टवर्ग	तवर्ग	पवर्ग			
अ	आ	ए (अ+ई)	क्	च्	ट्	त्	प्	य्	श्	विसर्ग :
इ	ई	ओ (अ+उ)	ख्	छ्	ठ्	थ्	फ्	र्	ष्	अर्धविसर्ग ⟩ (१ जिह्वा-मूलीय ⟩क⟨ ख
उ	ऊ	ऐ (अ+ए)	ग्	ज्	ड्	द्	ब्	ल्	स्	
ऋ	ॠ	औ (अ+ओ)	घ्	झ्	ढ्	ध्	भ्	व्	ह्	२ उपध्मानीय ⟩प⟨ फ)
ऌ	—	—	ङ्	ञ्	ण्	न्	म्	—	—	अनुस्वार ं

(१) स्वर (Vowels)—जो स्वयं प्रकाशित (उच्चारित) होते हैं, अन्य के द्वारा नहीं अर्थात् जिनका उच्चारण करने में अन्य वर्ण की सहायता अपेक्षित नहीं होती है उन्हें स्वर कहते हैं।[1] एक अन्य व्याख्या के अनुसार 'जिनकी सहायता से व्यञ्जनों का उच्चारण होता है उन्हें स्वर कहते हैं'।[2] स्वरों की गणना 'अच्' प्रत्याहार (देखें, पृ० ८) में होने से इन्हें 'अच्' भी कहा जाता है। स्वरों के विभाजन के कुछ प्रकार निम्नाङ्कित हैं—

(अ) रचना की दृष्टि से स्वरों के दो भेद—**(क) मूल स्वर (Root vowels)**—इनके मिश्रण से संयुक्त स्वर बनते हैं, अतः इन्हें मूल स्वर कहा जाता

१. स्वर्यन्ते शब्द्यन्त इति स्वराः। ऋग्वेद-प्रातिशाख्य, उवट भाष्य १।१३ 'स्वर्यं राजन्ते नान्येन व्यज्यन्त इति स्वराः' कै० प्रा० १।५ पर वै० भा०।

२. स्वर्यते शब्द्यतेऽनेन व्यञ्जनमिति। पा० शि० ४ पर पञ्जिका टीका। 'स्वर्यते शब्द्यते व्यञ्जनमेभिः स्वेन राजन्त इति वा।' याज्ञवल्क्य शिक्षा की शिक्षा-वल्ली नाम की विवृत्ति, पृ० ७६।

है। इन्हें समानाक्षर (Monophthongs = उच्चारण में समरूपता) तथा साधारण स्वर (Simple vowels) भी कहा जा सकता है। **(ख) संयुक्त स्वर (Vowels of combination)**—ये दो स्वरों के मेल से बनते हैं, अतः इन्हें संयुक्तस्वर कहा जाता है। इन्हें ही सन्ध्यक्षर (Diphthongs) तथा मिश्रस्वर (Mixed vowels) भी कहा जा सकता है। ये सभी दीर्घ स्वर हैं।

(ब) उच्चारणकाल की मात्रा (समय का एक अंश) के भेद से तीन भेद[1]—**(क) ह्रस्व स्वर (Short vowels = एक मात्रिक)**—जिनका उच्चारण करने में एक मात्रा का समय लगे। **(ख) दीर्घ स्वर (Long vowels = द्विमात्रिक)**—जिनका उच्चारण करने में दो मात्रा का समय लगे। **(ग) प्लुत स्वर (Prolated vowels = त्रिमात्रिक)**—जिनका उच्चारण करने में तीन मात्रा का समय लगे। प्लुत शब्द का अर्थ है—'गति करना' या 'लम्बा करना'। यह दीर्घ स्वर से भी लम्बा होता है। बाण की तरह दूरगामी होने से इसे प्लुत कहा जाता है।[2] प्लुत स्वर को ३ अङ्क के द्वारा प्रकट किया जाता है। इसका प्रयोग प्रायः पुकारने के अर्थ में होता है। जैसे—हे राम ३।

इन तीनों प्रकार के स्वरों का भेद मुर्गे की बोली में क्रमशः देखा जा सकता है। जैसे—कु (ह्रस्व स्वर), कू (दीर्घ स्वर) और कू३ (प्लुत स्वर)। चुटकी बजाने में अथवा पलक गिरने में जितना समय लगता है उसे एक मात्रा कहते हैं। चाष पक्षी की एक बोली में एक मात्रा, कौवे की एक बोली में दो मात्राओं और मयूर की एक बोली में तीन मात्राओं का समय लगता है।[3] व्यञ्जन वर्णों के उच्चारण में आधी मात्रा मानी जाती है।

(स) स्वरों के उच्चारण के उतार-चढ़ाव (आरोह-अवरोह) की दृष्टि से तीन भेद[4]—**(क) उदात्त (Acute)**—जिनका उच्चारण ऊँची ध्वनि से किया

१. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः। अ० १. २. २७.
एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्॥ श्रुतबोध, ३।

२. शरादिवद् दूरगामित्वात्प्लुत इत्युच्यते। तै० प्रा० १।३६ पर वै० आ०।

३. चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रां वायसोऽब्रवीत्।
शिखी त्रिमात्रो विज्ञेय एष मात्रापरिग्रहः॥ ऋ० प्रा० १३।५०.
अँगुलीस्फोटनं यावान् तावान् कालस्तु मात्रिकः। व्यासशिक्षा २७।३.
निमेषकाला मात्रा स्यात्। शिक्षासंग्रह, पृ० ४३२.

४. उच्चैरुदात्तः। नीचैरनुदात्तः। समाहारः स्वरितः। अ० १. २. २९–३१, विशेष के लिए देखिए 'ऋग्वेद-प्रातिशाख्य : एक परिशीलन' स्वर-प्रकरण।

जाए वे उदात्त स्वर हैं। सिद्धान्तकौमुदी में कहा है—'तालु आदि स्थानों के ऊर्ध्व-भाग से उच्चरित होने वाले स्वर उदात्त स्वर हैं'।[1] इनका उच्चारण ध्वनि के आरोह (Rising tone) के साथ होता है। उनके उच्चारण में उच्चारणावयव ऊपर की ओर खिंच जाते हैं। **(ख) अनुदात्त (Grave)**—जिनका उच्चारण नीची ध्वनि से किया जाए वे अनुदात्त स्वर हैं। सिद्धान्तकौमुदी में कहा है—'तालु आदि स्थानों के अधो-भाग मे उच्चरित होने वाले स्वर अनुदात्त स्वर हैं।' इनका उच्चारण ध्वनि के अवरोह (Falling tone) के साथ होता है। इसमें उच्चारणावयव नीचे की ओर शिथिल हो जाते हैं। **(ग) स्वरित (Circumflex)**—जिनका उच्चारण मध्यम ध्वनि से किया जाए वे स्वरित स्वर हैं। इनमें उदात्तत्व और और अनुदात्तत्व दोनों धर्म रहते हैं। इनका उच्चारण ध्वनि के आरोह और अवरोह के साथ होता है। अतः उदात्त अंश के उच्चारण में ध्वनि का आरोह होता है और अनुदात्त अंश के उच्चारण में ध्वनि का अवरोह होता। इनका उपयोग वेदों में प्रमुख रूप से होता है।

(ङ) उच्चारण के समय नासिका के उपयोग और अनुपयोग के आधार पर स्वरों के दो भेद—**(क) अनुनासिक**—जिनके उच्चारण में नासिका का उपयोग किया जाता है वे स्वर अनुनासिक कहलाते हैं।[2] जैसे—अँ, आँ, एँ आदि। **(ख) अननुनासिक**—जिनके उच्चारण में नासिका का उपयोग नहीं किया जाता है वे स्वर अननुनासिक कहलाते हैं। जैसे—अ, आ आदि।

स्वरों के १८ भेद—ह्रस्व दीर्घ प्लुत × उदात्त अनुदात्त स्वरित × अनुनासिक अननुनासिक (३ × ३ = ९ × २ = १८)। 'अ इ उ ऋ' इनमें से प्रत्येक के १८ भेद होगें। 'ऌ' के दीर्घ न होने से १२ भेद (२ × ३ × २ = १२) होंगे। 'ए ओ ऐ औ' के ह्रस्व न होने से इनके प्रत्येक के १२ भेद होंगे।

(२) व्यञ्जन (Consonants)—जिनका उच्चारण करने में स्वरों की सहायता अपेक्षित हो अथवा जिनका उच्चारण विना स्वर की सहायता के सम्भव न हो, उन्हें व्यञ्जन कहते हैं। इन्हें सामान्यरूप से 'अ' स्वर के साथ लिखा जाता है। वस्तुतः ये स्वरहीन हैं इसीलिए इनके वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने के लिए इनके नीचे एक तिरछी रेखा (्) का प्रयोग किया जाता है। इनका उच्चारण करने में अर्धमात्रा का समय लगता है।[3] 'हल्' प्रत्याहार में इनका समावेश होने से इन्हें 'हल्' भी कहा जाता है। ये सामान्यरूप से तीन प्रकार के हैं—

१ वही, वृत्ति 'तालवादिषु सभागेषु स्थानेष्वूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽनुदात्तसंज्ञः स्यात्।

२. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः। अ० १. १. ८.

३. देखिए पृ० २, टि० १.

(क) स्पर्श व्यञ्जन (Contact consonants)—इन वर्णों का उच्चारण करते समय मुख के दो उच्चारण-अवयव एक दूसरे का स्पर्श करके वायु को रोकते हैं और बाद में एक दूसरे से अलग होकर वायु को बाहर निकलने देते हैं। इस तरह दो उच्चारण-अवयवों का स्पर्श होने से ये वर्ण स्पर्श कहे जाते हैं। इनकी संख्या 'क' से लेकर 'म' तक २५ है जो क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग इन पाँच वर्गों में विभक्त हैं।[1] कवर्गादि को क्रमशः 'कु चु टु तु पु' के नाम से भी कहा जाता है। इनमें 'उ' का लोप होने से इन्हें उदित् (उत् + इत्) भी कहा जाता है।[2]

(ख) अन्तःस्थ या अर्धस्वर (Semi-vowels)—अन्तःस्थ (अन्तः + स्था + क) शब्द की कई तरह से व्याख्या की जाती है—(१) स्वर और व्यञ्जन के मध्यवर्ती होने से ये अन्तःस्थ हैं।[1] ये न तो स्पर्श वर्णों के समान स्पृष्ट हैं और न स्वर वर्णों के समान विवृत। माहेश्वर सूत्रों में भी इनकी गणना स्वर और व्यञ्जन वर्णों के मध्य में की जाती है। (२) सम्प्रसारण होने पर 'य र ल व' ये क्रमशः 'इ ऋ ऌ उ' में परिवर्तित होते हैं तथा 'यण्' सन्धि के होने पर 'इ ऋ ऌ उ' ये क्रमशः 'य् र् ल् व्' में परिवर्तित होते हैं। अतः स्वर के आधे गुणों से युक्त होने के कारण इन्हें अर्धस्वर (Semi-vowels) कहा जाता है। (३) वर्णमाला के क्रम में इन्हें स्पर्श वर्णों और ऊष्म वर्णों के मध्य में माना गया है। अतः इन्हें अन्तःस्थ कहा गया है।[4] इसके अतिरिक्त अन्य व्याख्यायें भी अन्तःस्थ की हैं।[5] 'यण्' प्रत्याहार में इनका समावेश होने से इन्हें 'यण्' भी कहा जाता है।

(ग) ऊष्म (Spirants or Sibilants)—'ऊष्मन्' शब्द का अर्थ है 'गर्म वायु' या 'वाष्प'। इन वर्णों के उच्चारण के समय मुख से गर्म वायु प्रधानरूप से निकलती है।[6] इन वर्णों के उच्चारण के समय वायुमार्ग सकरा होता है जिससे वायु घर्षण करती हुई शीत्कार ध्वनि के साथ बाहर निकलती है। इसीलिए इन वर्णों को संघर्षी (Fricatives), सप्रवाह (Continuants) तथा शीत्कार-ध्वनि-युक्त (Hissing sounds) भी कहा जाता है। 'शल्' प्रत्याहार में इनका समावेश होने से इन्हें 'शल्' भी कहा जाता है।

१. कादयो मावसानाः स्पर्शाः। ल० कौ०, पृ० २२.
२. कुचुटुतुपु एते उदितः। ल० कौ०, पृ० २४.
३. यहाँ सूत्र में 'ह' वर्ण विशेष-प्रयोजन के लिए प्रयुक्त है। देखिए पृ० ६, टिं० २
४. 'स्पर्शोष्मणामन्तर्मध्ये तिष्ठन्तीति अन्तःस्थाः। उ० भाष्य १।६.
५. विशेष के लिए देखिए 'ऋग्वेद प्रातिशाख्य : एक परिशीलन' पृ० १३-१४.
६. ऊष्मा वायुस्तत्प्रधानवर्णा ऊष्माणः। उ० भाष्य १।१०.

नोट—'क ख च छ ट ठ त थ प फ श ष स' (अघोष वर्ण या 'खर्' प्रत्याहार के वर्ण) इन्हें **'परुष व्यञ्जन'** (कठोर वर्ण) भी कहा जाता है तथा शेष को **'मृदुव्यञ्जन'** (कोमल वर्ण)।

(३) अयोगवाह—विसर्ग, अर्धविसर्ग और अनुस्वार को अयोगवाह (वर्ण-समाम्नाय के १४ माहेश्वर सूत्रों में जिनका योग न होने पर भी व्यवहार में वाह = प्रयोग हो) कहते हैं। इनकी गणना स्वर और व्यञ्जन वर्णों में नहीं की जाती है। वस्तुतः ये कुछ व्यञ्जन वर्णों के ही रूपान्तर हैं। जैसे—

(क) विसर्ग—(वि + सृज् + घञ्) इसमें वायु को शीघ्रता से बाहर किया जाता है। यह 'स्' अथवा 'र्' का रूपान्तर है। जैसे—राम + सु > स् > र् = रामः।

(ख) अर्धविसर्ग—जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के भेद से यह दो प्रकार का है। 'क' और 'ख' से पूर्ववर्ती अर्धविसर्ग के समान ध्वनि (≍ क, ≍ ख) को **जिह्वामूलीय** (Sound produced at the root of the tongue = जिह्वा के मूलभाग से उच्चरित होने वाला वर्ण) कहते हैं[1]। पाणिनि-सम्प्रदाय में इसे कण्ठ्य माना गया है। 'प' और 'फ' से पूर्ववर्ती अर्ध-विसर्ग के समान ध्वनि (≍ प, ≍ फ) को **उपध्मानीय** कहते हैं[2]। उपध्मानीय (उप + ध्मा + अनीयर्) के उच्चारण में उसी प्रकार का प्रयत्न करना पड़ता है जिस प्रकार फूँक मारकर दीपक के बुझाने में किया जाता है। उपध्मान का अर्थ है 'फूँक मारना'। आजकल इन दोनों का प्रयोग प्रचलन में नहीं रह गया है। इनके स्थान पर अब विसर्ग (:) का ही प्रयोग होता है। (ग) **अनुस्वार** (pure nasal)—अनुस्वार (अनु + स्वृ + घञ्) शब्द का अर्थ है 'वह वर्ण जिसका उच्चारण अन्य वर्ण के पश्चात् किया जाता है' (अनु = पश्चात् = अन्यवर्णानन्तरम्, स्वर्यते = उच्चार्यत इत्यनुस्वारः)। इसे 'अनुगामी ध्वनि' (After sound) तथा पूर्ववर्ती स्वर के बिना न रह सकने के कारण 'पराश्रित ध्वनि' (Dependent sound) भी कहते हैं। ऋ० प्रा० में इसे व्यञ्जन और स्वर दोनों माना है।[3] अनुस्वार स्वर है या व्यञ्जन इस विषय में मतभेद है।[4] वस्तुतः अनुस्वार 'म्' अथवा 'न्' का ही रूपान्तर है। जैसे—सत्यम् वद = सत्यं वद। यशान् + सि = यशांसि। आजकल अनुस्वार की गणना स्वरों के बाद की जाती है तथा अनुस्वार के बाद विसर्ग की गणना की जाती है (अं, अः)। इस तरह इन सभी वर्णों का प्रयोग स्वर के बाद ही किया जाता है।

१. ≍ क ≍ ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। ल० कौ० पृ० २२.
२. ≍ प ≍ फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। ल० कौ०, पृ० २२.
३. 'अनुस्वारो व्यञ्जनं वा स्वरो वा'। ऋ० प्रा० १।५.
४. देखिए, ऋग्वेद प्रातिशाख्य : एक परिशीलन, पृ० ५१-५४.

नोट—क्ष (क् + ष् + अ), त्र (त् + र् + अ), ज्ञ (ज् + ञ् + अ) ये सभी संयुक्त व्यञ्जन हैं। अतः संस्कृत वर्णमाला में इन्हें नहीं गिनाया जाता है

माहेश्वर सूत्र (वर्णसमाम्नाय सूत्र या प्रत्याहार सूत्र) :

पाणिनि ने संस्कृत-वर्णमाला (वर्ण-समाम्नाय=अक्षरसमाम्नाय=वर्णराशि) का अधोलिखित चौदह सूत्रों में सन्निवेश किया है। महर्षि पाणिनि ने इन सूत्रों को महेश्वर (शिव) की कृपा से प्राप्त किया था।[1] अतः इन्हें 'माहेश्वर सूत्र' भी कहा जाता है। इनका उपयोग आगे बतलाये जाने वाले प्रत्याहारों के बनाने के लिए किया जाता है। अतः इन्हें 'प्रत्याहार सूत्र' भी कहते हैं। इन सूत्रों में जो अंतिम (हलन्त) वर्ण हैं उन्हें 'इत्' (लुप्त) कहा जाता है।[2] अतः उन्हें वर्णमाला के क्रम में नहीं गिना जाता है। यहाँ वर्णों का जो क्रम बतलाया गया है वह प्रत्याहारों की दृष्टि से है।[3] चौदह सूत्र क्रमशः निम्नाङ्कित हैं—

स्वर

१. अइउण्	२. ऋलृक्	३. एओङ्	४. ऐऔच्
अन्तःस्थ	वर्ग के पंचम वर्ण		वर्ग के चतुर्थ वर्ण
५. हयवरट्	६. लण्	७. ञमङणनम्	८. झभञ्	९. घढधष्
वर्ग के तृतीय वर्ण	वर्ग के द्वितीय वर्ण	वर्ग के प्रथम वर्ण	ऊष्म वर्ण	
१०. जबगडदश्	११. खफछठथ	-चटतव् १२. कपय्	१३. शषसर्	१४. हल्

प्रत्याहार-विधि

वर्णों के संक्षेप में कथन करने को (प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णा यत्र स प्रत्याहारः) प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार बनाते समय पूर्वोक्त १४ सूत्रों के इत्-संज्ञक वर्णों को छोड़कर किसी भी एक वर्ण को लेकर आगे के किसी भी इत्-संज्ञक वर्ण के साथ जोड़ दिया जाता है और तब वह (प्रत्याहार) दोनों वर्णों (पूर्ववर्ण और इत्-संज्ञक वर्ण) के बीच में आये हुए सभी वर्णों (इत्-संज्ञक वर्णों को छोड़कर)

१. संभवतः माहेश्वर व्याकरण के लिए है। २. एषामन्त्या इतः। ल० कौ० पृ५

३. इस वर्णमाला में 'ह' वर्ण दो बार (हयवरट्, हल्) आया है। इसका कारण है कि 'अट्' और 'शल्' दोनों प्रकार के प्रत्याहारों में 'ह' को लिया जा सके जिससे अहेंण, अधुक्षत आदि प्रयोग सिद्ध हो सकें। व्यञ्जन वर्णों में जो 'अ' जुड़ा है वह उच्चारणार्थ है (हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। ल० कौ०, पृ० ६)। 'लण्' सूत्र के 'ल' का 'अ' केवल उच्चारणार्थ ही नहीं है (लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः। ल० कौ०, पृ० ६) अपितु इसका एक विशेष प्रयोजन है जिससे 'र्' प्रत्याहार बन सके। (देखें, पृ० ६)।

का और स्वयं का (पूर्ववर्ण का) भी बोधक होता है[1]। जैसे—'अइउण्' सूत्र से 'अ' लेकर उसको 'ऐऔच्' के इत्-संज्ञक 'च्' के साथ जोड़ने पर 'अच्' प्रत्याहार बना। इस तरह इस 'अच्' से 'अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ' इन सभी वर्णों का बोध होगा। यहाँ एक बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्याहार के मध्यवर्ती इत्-संज्ञक वर्णों को कदापि न जोड़ें। यद्यपि इस प्रक्रिया से अनेक प्रत्याहार बन सकते हैं परन्तु पाणिनि आदि वैयाकरणों ने जिन प्रत्याहारों का प्रयोग किया है, वे निम्न तेतालीस हैं[2]—

क्रमाङ्क	प्रत्याहार	तद्गत वर्णसमुदाय
१.	अण्—	अ इ उ।
२.	अक्—	अ इ उ ऋ ऌ (मूल स्वर)।

१. आदिरन्त्येन सहेता। अ० १.१.७१.

२. 'अण्' आदि प्रत्याहारों के प्रयोग अष्टाध्यायी के सूत्रों में क्रमशः द्रष्टव्य हैं—

१. ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (६.३.१११); २. अकः सवर्णे दीर्घः (६.१.१०१); ३. इको यणचि (६.१.७७); ४. शश्छोऽटि (८.४.६३); ५. अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः (१.१.६८), ६. पुमः खय्यम्परे (८. ३.६); ७. भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि (८.३.१७); ८. अलोऽन्त्यस्य (१.१.५२); ९. इको यणचि (६.१.७७), इग्यणः संप्रसारणम् (१.१.४५); १०. नादिचि (६.१.१०४); ११. इणः षः (८.३.३९), १२. आगदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः (७.१.७०); १३. एङि पररूपम् (६.१.९४.) १४ एचोऽयवायावः (६.१.७८); १५. वृद्धिरादैच् (१.१.१); १६ हशि च (६.१.११४); १७. हलन्त्यम् (१.३.३); १८. इको यणचि (६.१.७७), १९. हलो यमां यमि लोपः (८.४.६४); २०. अतो दीर्घो यञि (७.३.१०१); २१ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (८.४.५८); २२. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (८.४.४५), २३. नेड्वशि कृति (७.२ ८); २४ लोपो व्योर्वलि (६.१.६६); २५. उरण् रपरः (१.१.५१); २६. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च (१.२.२६); २७. मय उञो वो वा (८.३.३३); २८. डमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् (८.३.३२); २९. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः (८.२.३७); ३०. झलां जश् झशि (८.४.५३); ३१. झयो होऽन्यतरस्याम् (८.४.६२); ३२. झरो झरि सवर्णे (८.४.६५); ३३. झलो झलि (८.२.२६); ३४. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः (८.२.३७); ३५, झलां जश् झशि (८.४.५३); ३६. एकाचो बशो० (८ २.३७); ३७. पुमः खय्यम्परे (८.३.६) ३८. खरि च (८.४.५५) ३९. नश्छव्यप्रशान् (८.३.७); ४०. चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् (वार्तिक); ४१. अभ्यासे चर्च (८.४.५४); ४२. शरोऽचि (८.४.४९), ४३. शल इगुपधादनिटः क्सः (३.१.४५)।

३. अच्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ (सभी स्वर वर्ण)।
४. अट्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र।
५ अण्[1]—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल (स्वर, ह, अन्तःस्थ)।
६. अम्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के पंचम वर्ण)।
७. अश्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ५, ४, ३ वर्ण)।
८ अल्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह (पूर्ण वर्णमाला)।
९ इक्—इ उ ऋ ऌ।
१०. इच्—इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ('अ' छोड़कर शेष स्वर)।
११. इण्[2]—इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह, य व र ल ('अ' रहितस्वर, ह, अन्तःस्थ)
१२ उक्—उ ऋ ऌ।
१३. एङ्—ए ओ।
१४. एच्—ए ओ ऐ औ (संयुक्त स्वर)।
१५ ऐच्—ऐ औ।
१६. हश्—ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द (ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ५, ४, ३ वर्ण)।
१७ हल्—ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह (सभी व्यञ्जन वर्ण)।
१८. यण्—य व र ल (अन्तःस्थ)।
१९. यम्—य व र ल ञ म ङ ण न (अन्तःस्थ, वर्ग के ५ वर्ण)।
२०. यञ्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।
२१. यय्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प (अन्तःस्थ, वर्ग के ५, ४, ३, २, १ वर्ण)।

---

१. अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः (अ० १।१।६९)। केवल इस सूत्र में ही 'अण्' से परवर्ती 'ण्' लेना है, अन्यत्र नहीं। कहा भी है—
'परेणैवेण्ग्रहाः सर्वे पूर्वेणैवाण्ग्रहा मताः।
ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु॥" भाष्य।
अर्थ—सर्वत्र 'इण्' से परवर्ती 'ण्' लेना चाहिए तथा 'अण्' से पूर्ववर्ती 'ण्' लेना चाहिए परन्तु 'अणुदित्सवर्णस्य०' में 'अण्' से परवर्ती 'ण्' लेना चाहिए।
२. वही।

२२. यर्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स (अन्तःस्थ, वर्ग के ५, ४, ३, २, १ वर्ण तथा श ष स)।
२३. वश्—व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
२४ वल्—व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ('य' छोड़कर सभी व्यञ्जन)।
२५. र्[1]—(र्+अ)—र ल।
२६ रल्—र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह (य व छोड़कर सभी व्यञ्जन)।
२७. मय्—म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
२८. ङम्—ङ ण न।
२९ झष्—झ भ घ ढ ध (वर्ग के चतुर्थ वर्ण)।
३० झश्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द (वर्ग के ४, ३ वर्ण)।
३१. झय्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प (वर्ग के ४, ३, २, १ वर्ण)।
३२. झर्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स (वर्ग के ४, ३, २, १, श ष स)।
३३. झल्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह (वर्ग के ४, ३, २, १ ऊष्म)।
३४ भष्—भ घ ढ ध (झ से रहित वर्ग के चतुर्थ वर्ण)।
३५. जश्—ज ब ग ड द (वर्ग के तृतीय वर्ण)।
३६. बश्—ब ग ड द।
३७. खय्—ख फ छ ठ थ च ट त क प (वर्ग के २, १ वर्ण)।
३८. खर्—ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
३९. छव्—छ ठ थ च ट त।
४०. चय्—च ट त क प (वर्ग के पंचम वर्ण)।
४१. चर्—च ट त क प श ष स।
४२. शर्—श ष स।
४३. शल्—श ष स ह (ऊष्म वर्ण)।

वर्णों के उच्चारणस्थान (Places of articulation)

वर्णों के उच्चारण (Pronunciation of letters) की शुद्धता पर प्राचीन-

---

१. देखें पृ० ६, टि० २।

काल से ही महत्त्व बतलाया गया है।[1] वायु (प्राण वायु) की सहायता से ही वर्णों को उत्पन्न किया जाता है। नासिका से जो वायु फेफड़ों में जाती है वही वायु जब नासिका से न निकालकर मुख से निकाली जाती है तो वह विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के उत्पन्न करने के काम में लाई जाती है। अतः फेफड़ों (Lungs) के अन्दर से बाहर आती हुई वायु को रोककर अथवा उसमें विकृति पैदाकर वर्णों को उत्पन्न किया जाता है। अतः जिस स्थान पर वायु को विकृत करके वर्णविशेष को उत्पन्न किया जाता है उस स्थान विशेष को उस वर्णविशेष का उच्चारण-स्थान कहा जाता है। जैसे—अन्दर से बाहर आती हुई वायु को यदि तालु पर विकृत किया जाता है तो उससे उत्पन्न होने वाले वर्ण को 'तालव्य' कहा जायेगा और उसका उच्चारणस्थान 'तालु' होगा। इसी प्रकार यदि मूर्धा भाग (कोमल तालु और कठोर तालु का मध्य भाग) पर विकृत किया जाता है तो उससे उत्पन्न वर्ण को मूर्धन्य कहा जायेगा और उसका उच्चारणस्थान मूर्धा होगा। इस संदर्भ में अधोलिखित वर्गीकरण द्रष्टव्य है[2]—

उच्चारण-स्थान	वर्ण	वर्ण-नाम
कण्ठ (Guttural)	कवर्ग, अ, आ, ह्, विसर्ग	कण्ठ्य
तालु (Palatal)	चवर्ग, इ, ई, य्, श्	तालव्य
मूर्धा (Cerebral)	टवर्ग, ऋ, ॠ, र् ष्	मूर्धन्य
दन्त = दन्तमूल (Dental)	तवर्ग, ऌ, ल् स्	दन्त्य = दन्त्यमूलीय
ओष्ठ (Labial)	पवर्ग, उ, ऊ, उपध्मानीय	ओष्ठ्य
कण्ठ और तालु (Palato-guttural)	ए, ऐ	कण्ठ्य + तालव्य
कण्ठ और ओष्ठ (Labio guttural)	ओ, औ	कण्ठ्य + ओष्ठ्य
दन्त और ओष्ठ (Dento-labial)	व	दन्त्य + ओष्ठ्य
जिह्वामूल (Root of the tongue)	⌒ क ⌒ ख	जिह्वामूलीय
नासिका (Nasal)	अनुस्वार (ं)	नासिक्य

नोट—वर्गों के पञ्चम वर्ण (ङ् ञ् ण् न् म्) के उच्चारण-स्थान दो-दो हैं। जैसे—ङ् (कण्ठ + नासिका), ञ् (तालु + नासिका), ण् (मूर्धा + नासिका),

१. दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्। पा० शि० ५२.

२. अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। इचुयशानां तालु। ऋटुरषाणां मूर्धा। ऌतुलसानां दन्ताः। उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। ञमङणनानां नासिका च। एदैतोः कण्ठतालु। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। वकारस्य दन्तोष्ठम्। जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। नासिकाऽनुस्वारस्य। ल० कौ०, पृ० १७-१८.

न् (दन्त + नासिका), म् (ओष्ठ + नासिका)। इनका उच्चारण-स्थान नासिका भी होने से इन्हें अनुनासिक (Nasals) वर्ण भी कहा जाता है।

वर्णों के उच्चारण में प्रयत्न (Mode of pronunciation)

वर्णों के उच्चारण करने में उच्चारणावयवों को जो आयास (व्यापार या चेष्टा-विशेष) करना पड़ता है उसे प्रयत्न कहते हैं। वह प्रयत्न दो प्रकार का है—(१) बाह्य-प्रयत्न और (२) आभ्यन्तर-प्रयत्न। मुख (ओष्ठ से कण्ठ के मध्य का भाग) के बाहर (स्वर यंत्र में)[1] जो प्रयत्न होता है उसे बाह्यप्रयत्न कहते हैं। इसे ही 'प्रकृति' या 'अनुप्रदान' भी कहा जाता है। बाह्य प्रयत्न में स्वरयन्त्र (Larynx) ही मुख्यरूप से सक्रिय उच्चारणावयव होता है। जब फेफड़े से वायु श्वास-नलिका के मार्ग से बाहर निकलती है तो वायु में सर्वप्रथम स्वरयन्त्र में कुछ विकार पैदा होता है। इस तरह स्वरयन्त्र ही प्रथम उच्चारणावयव है। यहाँ जो प्रयत्न होता है उसे ही बाह्यप्रयत्न (Emitted material) कहते हैं। मुख के भीतर (तालु आदि स्थानों में) जो प्रयत्न होते हैं उन्हें आभ्यन्तर प्रयत्न कहते हैं। इसे ही 'करण' और 'प्रदान' शब्द से भी कहा गया है। आभ्यन्तर-प्रयत्न की सहायता से ही मुख के उच्चारणावयव 'श्वास' एवं 'नाद' रूप वायु से विभिन्न प्रकार के वर्णों के उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। बाह्य और आभ्यन्तर-प्रयत्न के अर्थ में प्रायः लोगों ने भूल की है। आभ्यन्तर प्रयत्न का उपयोग व्याकरण में 'सवर्ण-संज्ञा' (देखें पृ० १४) के ज्ञान के लिए किया जाता है और बाह्य प्रयत्न का उपयोग वर्णों के पारस्परिक सादृश्य के खोजने में किया जाता है। इन्हीं प्रयत्नों के कारण वर्ग के पाँच वर्ण एक ही स्थान से उच्चरित होने पर भी आपस में पृथक्-पृथक् हैं।

बाह्य प्रयत्न - यह ग्यारह प्रकार का है[2]—(१) विवार (Expension), (२) संवार (Contraction), (३) श्वास (Breath), (४) नाद (Voice), (५) अघोष (Unvoiced), (६) सघोष (Voiced), (७) अल्पप्राण (Unaspirate), (८) महाप्राण (Aspirate), (९) उदात्त (Acute), (१०) अनुदात्त (Grave), और (११) स्वरित (Circumflex)।

१. गले में श्वास-नलिका के ऊपरी भाग में स्वर यन्त्र होता है जिसमें पतली झिल्ली के बने दो लचीले पर्दे होते हैं जो स्वरतन्त्री (vocal cords) कहे जाते हैं। इनके मध्य के खुले हुए छेद को स्वरयन्त्र-मुख (glottis) कहते हैं। वायु इसी से होकर भीतर अथवा बाहर जाती है। इन स्वरतन्त्रियों को एक दूसरे के समीप अथवा दूर करके ध्वनियों को उत्पन्न किया जाता है।

२. बाह्यस्त्वेकादशधा—विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा

स्वरतंत्रियों से होकर जब वायु बाहर निकलती है तब स्वरतंत्रियों की प्रमुख-रूप से तीन अवस्थायें होती हैं—(१) **विवृत**—इस स्थिति में स्वरतंत्रियाँ एक दूसरे से दूर रहती हैं जिससे स्वरयंत्र-मुख (कण्ठद्वार) पूर्ण खुला रहता है। फलतः फेफड़ों से बाहर निकलती हुई वायु का स्वरतंत्रियों के साथ घर्षण नहीं होता है तथा उनमें कम्पन भी नहीं होता है, फलस्वरूप वायु अबाधगति से बाहर निकल जाती है। ऐसी वायु को 'श्वास' कहते हैं। 'श्वास' शब्द 'श्वस्' (सांस लेना) धातु से बना है। अतः सांस लेने जैसी स्थिति में स्वरतंत्रियों के विद्यमान रहने पर जिन वर्णों का उच्चारण होता है उन्हें 'अघोष' (unvoiced = गूँज से रहित) कहते हैं। इसीलिए 'खर्' वर्णों (वर्गों के १,२ तथा श ष स वर्णों) को 'विवार' (स्वर तन्त्रियों का खुला रहना), 'श्वास' (सांस लेना जैसी स्थिति में स्वतन्त्रियों का रहना) तथा 'अघोष' (घर्षणरहित या गूँजरहित) कहा गया है। इस तरह अघोष वर्णों की मूल कारण रूप वायु 'श्वास' कही जाती है। अयोगवाह (विसर्ग, अर्धविसर्ग और अनुस्वार) वर्ण भी श्वास में आते हैं। (२) **संवृत**—इस स्थिति में स्वरतन्त्रियाँ एक दूसरे के अत्यधिक समीप रहती हैं जिससे स्वरयन्त्रमुख (कण्ठद्वार) बन्द रहता है। फलतः फेफड़ों से बाहर निकलती हुई वायु का स्वरतन्त्रियों के साथ घर्षण होता है और उनमें कम्पन भी होता है। ऐसी वायु (घर्षण करके निकली हुई गूँज युक्त वायु) को 'नाद' कहा जाता है। 'नाद' शब्द ध्वन्यर्थक 'नद्' धातु से बना है। अतः स्वरयन्त्र से ही ध्वनि करते हुए निकलने के कारण 'सघोष' (गूँजयुक्त) वर्णों ('हश्' वर्णों) की मूल कारण रूप वायु को 'नाद' कहा जाता है। इस तरह 'हश्' वर्णों (वर्ग के ३, ४, ५ तथा य र ल व वर्णों) को 'संवार' (स्वरतन्त्रियों का बन्द जैसी स्थिति में रहना), 'नाद' (स्वर-तन्त्रियों के साथ वायु का घर्षण होने से ध्वनियुक्त होना) तथा 'सघोष' (घर्षणयुक्त या गूँजयुक्त) कहा जाता है। सभी स्वर वर्ण 'सघोष' हैं। (३) **विवृत-संवृत (मध्यमस्थिति)**—इस स्थिति में स्वरतन्त्रियाँ न तो एक दूसरे से अधिक दूर होती हैं और न अधिक पास जिससे स्वरयन्त्रमुख आधा विवृत तथा आधा संवृत अर्थात् मध्यमस्थिति वाला होता है। स्वरयन्त्रमुख की इस स्थिति में बाहर निकलनेवाली वायु श्वास और नाद दोनों होती है। 'घ झ, ढ ध भ ह' (वर्ग के ४ तथा ह) वर्ण इसी स्थिति में उच्चारित होते हैं, परन्तु इनमें 'नाद' होने से इन्हें 'सघोष' के ही अन्तर्गत माना जाता है।

सोष्मता (Aspiration) के आधार पर स्पर्शात्मक व्यञ्जनों को दो भागों में विभक्त किया जाता है—अल्पप्राण (अनूष्मन्-Unaspirate) और महाप्राण

नादा घोषाश्च। वर्गाणां प्रथम-तृतीय-पञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः। ल० कौ०, संज्ञा प्रकरण, पृ० २०

(सोष्मन् Aspirate)। अन्दर से बाहर आती हुई वायु (प्राण वायु) के बल का ही नाम प्राण है। अतः जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में वायु का आधिक्य न हो उन्हें 'अल्पप्राण' तथा जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में वायु का आधिक्य हो उन्हें 'महाप्राण' कहते हैं। वर्गों के प्रथम, तृतीय, पञ्चम वर्ण तथा अन्तःस्थ (यण्) वर्ण अल्पप्राण हैं। वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ तथा ऊष्मवर्ण (शल्) महाप्राण हैं। वर्णों के द्वितीय और चतुर्थ वर्ण को ऊष्म कहने का कारण है उनमें ऊष्म ध्वनि (ह्) का पाया जाना। जैसे—ख् (kh), घ् (gh)।

ध्वनि के आरोह एवं अवरोह के आधार पर स्वरों को तीन भागों में विभक्त किया जाता है—उदात्त (ऊँची आवाज में उच्चरित), अनुदात्त (नीची आवाज में उच्चरित) तथा स्वरित (न ऊँची और न नीची)। व्यञ्जनों में ऐसा विभाजन नहीं होता है।

बाह्यप्रयत्न-विवेक तालिका

विवार, श्वास, अघोष	संवार, नाद, घोष	अल्पप्राण (अनूष्मन्)	महाप्राण (सोष्मन्)	उदात्त, अनुदात्त स्वरित
क ख च छ	ग घ ङ ज झ	क ग ङ च	ख घ छ	अ आ इ ई
ट ठ त थ	ञ ड ढ ण द	ज ञ ट ड	झ ठ ढ	उ ऊ ऋ ॠ
प फ श ष स	ध न ब भ म	ण त द न	थ ध फ	ऌ ए ओ
: ≍ ÷	य व र ल ह	प ब म य	भ श ष	ऐ औ
	अ आ इ ई उ	व र ल	स ह	
	ऊ ऋ ॠ ऌ			
	ए ओ ऐ औ			
(खर् एवं अयोगवाह)	(हश् तथा स्वर)	(वर्ग के १,३ ५ तथा यण्)	(वर्ग के २, ४ तथा शल्)	(सभी स्वर)

आभ्यन्तरप्रयत्न—मुखस्थ उच्चारण-अवयवों के मिलने और न मिलने के आधार पर आभ्यन्तरप्रयत्न के पाँच भेद किए जाते हैं[1]—

(१) स्पृष्ट (Contact)—जिह्वाग्र का तालु आदि के साथ अथवा दो ओष्ठों के परस्पर स्पर्श होने पर उच्चरित होने वाले वर्ण स्पृष्ट (स्पर्शसंज्ञक) कहलाते हैं। जैसे—'क' से 'म' तक पाँचों वर्गों के वर्ण। अर्थात् इनके उच्चारण में भीतर से बाहर आती हुई प्राणवायु को मुखस्थ दो उच्चारण-अवयव परस्पर

१. आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्, प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव। ल० कौ०, पृ० १८-१९।

मिलकर (क्षणिक स्पर्शकर) रोकते हैं पश्चात् शीघ्रता से बाहर जाने देते हैं। (२) **ईषत्-स्पृष्ट** (Slight contact)—इसमें दो उच्चारण-अवयवों (जिह्वाग्र का तालु आदि के साथ या दोनों ओष्ठों) का थोड़ा-सा स्पर्श होता है अतः इसे 'ईषत्स्पृष्ट' कहा जाता है। इसे ही 'दुःस्पृष्ट' (अपूर्ण-स्पर्श) भी कहा जाता है। जैसे—अन्तःस्थ वर्ण (यण्)। (३) **विवृत** (Open)—इसमें दो उच्चारण-अवयवों का बिलकुल स्पर्श नहीं होता है अर्थात् इसमें दोनों उच्चारण-अवयव दूर-दूर रहते हैं जिससे दोनों के बीच का मार्ग खुला रहता है और वायु रुकती नहीं है। जैसे—स्वर वर्ण। (४) **ईषद्-विवृत** (Slight open)—इसमें दो उच्चारण-अवयव कुछ दूरी पर रहते हैं जिससे वायुमार्ग संकरा हो जाता है। जैसे—श ष स ह (शल्)। (५) **संवृत** (Close)—इसमें वायु का मार्ग बन्द सा हो जाता है। जैसे—ह्रस्व 'अ' प्रयोग की अवस्था (सिद्धावस्था) में। प्रक्रिया (रूप-निर्माण) की अवस्था में 'अ' विवृत होता है।[1]

आभ्यन्तरप्रयत्न-विवेक तालिका

स्पृष्ट	ई० स्पृष्ट (दुःस्पृष्ट)	विवृत (अस्पृष्ट)	ई० विवृत (अर्धस्पृष्ट)	संवृत
क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म (पाँचों वर्ग)	य व र ल (यण्)	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ओ ऐ औ : ☓ . (स्वर तथा अयोगवाह)	श ष स ह (शल्)	प्रयोगावस्था (परिनिष्ठित, सिद्धावस्था) का ह्रस्व 'अ'

सवर्ण और असवर्ण में अन्तर :

सवर्ण (Homogeneous)—जिन वर्णों के उच्चारण-स्थान और आभ्यन्तर-प्रयत्न दोनों एक समान होते हैं वे वर्ण परस्पर 'सवर्ण' (सवर्ण'-संज्ञा वाले)

१. प्रक्रियादशा (साधनावस्था) में 'अ' को 'विवृत' मानने का कारण है 'अकः सवर्णे दीर्घः' से अ + आ में दीर्घसंज्ञा हो सके। यदि ऐसा नहीं माना जायेगा तो भिन्न-भिन्न आभ्यन्तर प्रयत्न होने से उनमें सवर्णसंज्ञा नहीं होगी। जैसे—'दण्ड + आढकम्' में 'अ' का आभ्यन्तर प्रयत्न 'संवृत' है और 'आ' का 'विवृत'। ऐसी स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ (अ + आ = आ) नहीं हो सकेगा। अतः प्रक्रिया दशा में 'अ' को 'विवृत' माना गया है।

कहलाते हैं[1]। जैसे—क् ख् ग् घ् ङ्। ये पाँचों वर्ग आपस में सवर्ण-संज्ञा वाले हैं क्योंकि इनका उच्चारण-स्थान (कण्ठ) और आभ्यन्तर-प्रयत्न (स्पृष्ट) दोनों एक समान हैं। **असवर्ण** (Heterogeneous)—जिन वर्णों के उच्चारण-स्थान और आभ्यन्तर-प्रयत्न (दोनों अथवा कोई एक) असमान (भिन्न-भिन्न) होते हैं वे वर्ण परस्पर 'असवर्ण' कहलाते हैं। जैसे—'क्' और 'त्'। ये दोनों आपस में असवर्ण हैं क्योंकि इनका आभ्यन्तर-प्रयत्न (स्पृष्ट) एक समान होने पर भी उच्चारण-स्थान (कण्ठ, दन्त) भिन्न-भिन्न है।

विशेष—'ऋ' और 'ऌ' वर्ण में यद्यपि उच्चारण-स्थान का भेद है फिर भी वार्तिककार ने इन दोनों को आपस में 'सवर्ण' बतलाया है।[2]

शब्द और पद में अन्तर :

शब्द—'सुप्' अथवा 'तिङ्' प्रत्यय[3] से रहित केवल वर्णों का सार्थक समुदाय 'शब्द' कहलाता है। जैसे—राम (र् + आ + म् + अ), भू (भ् + ऊ) आदि।

पद—जिस वर्ण-समुदाय में 'सुप्, अथवा 'तिङ्' प्रत्यय (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) जुड़ा हो उसे 'पद' कहते हैं।[4] अर्थात् वर्ण-समुदायरूप 'शब्द' ही जब सुबादि ('सुप्' अथवा 'तिङ्') प्रत्ययों से युक्त हो जाता है तो वह 'पद' कहलाने लगता है। जिस वर्ण-समुदाय में 'सुप्' प्रत्यय जुड़ा होता है उसे 'सुबन्त-पद' कहते हैं और जिसमें 'तिङ्' प्रत्यय जुड़ा होता है उसे 'तिङन्त-पद'। दोनों प्रकार के पदों के क्रमशः उदाहरण होंगे—रामः (राम + सु) और भवति (भू + ति)।

नोट—यह हमेशा स्मरण रखना चाहिए कि संस्कृत-भाषा में जब तक शब्द 'पद' का रूप धारण नहीं कर लेता है तब तक प्रयोग में नहीं आता है।[5]

अभ्यास—

(क) प्रत्याहार लिखिए—अण्, अल्, अट्, इण्, हल्, झष्, झश्, झर्, झल्, जश्, खर्, चर्, शर्, शल्, एच्, एङ्, हश्, यण्, इक्, अच्, यम्।

(ख) उच्चारण स्थान और प्रयत्न, लिखिए—क्, ग्, य्, अ, ऋ, घ्, र्, ढ्, ञ्, ष्, ठ, थ, ब, छ, भ, ह, ञ्, स्, प्, ख्, ध्।

(ग) अन्तर स्पष्ट कीजिए-सवर्ण और असवर्ण में, शब्द और पद में, आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न में, सघोष और अघोष में, अल्पप्राण और महाप्राण में।

१. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्। अ० १. १ ९.
२. ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्। वार्तिक, अ० १. १. ९.
३. 'सुप्' और 'तिङ्' प्रत्ययों का प्रयोग क्रमशः शब्दरूप और धातुरूप में बतलावेंगे।
४. सुप्तिङन्तं पदम्। अ० १. १. १४.
५. अपदं न प्रयुञ्जीत। उ०, लघुशब्देन्दुशेखर, पृ० १७२

द्वितीय अध्याय

सन्धि (Euphonic Combination of Letters)

अर्थ—व्याकरण के नियमानुसार वर्णों के मेल को सन्धि[1] (संहिता) कहते हैं। इसमें दो स्वरों या दो व्यञ्जनों या स्वर तथा व्यञ्जनों का अत्यन्त सामीप्य होने पर निम्न तीन बातों में से कोई एक अवश्य होती है—

(क) **विकार** (Modification)—दोनों वर्णों के स्थान पर या किसी एक वर्ण के स्थान पर एक तीसरा ही वर्ण हो जाना विकार है। जैसे– रमा + ईशः = रमेशः (लक्ष्मीपति, विष्णु); सुधी + उपास्यः = सुध्युपास्यः (विद्वानों के द्वारा उपास्य)। (ख) **लोप** (Elision)—किसी एक वर्ण का वहाँ से हट जाना लोप है। जैसे–नराः + हसन्ति = नरा हसन्ति। (ग) **आगम** (Augment)—दोनों वर्णों के मध्य में एक नया वर्ण आ जाना। जैसे– वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया, तस्मिन् + अद्रौ = तस्मिन्नद्रौ। पूर्ववर्ती वर्णों को न हटाने से आगम मित्रवत् होता है और लोप पूर्ववर्ती वर्ण को हटाने से शत्रुवत् होता है।

संयोग और सन्धि (संहिता) में अन्तर—केवल (स्वरहीन अव्यवहित) व्यञ्जन वर्णों का मेल संयोग (conjunction) है।[2] संयोग में वर्ण-विकृति नहीं होती है। जैसे–न् + द्र = न्द्र। स्वर और व्यञ्जन दोनों प्रकार के वर्णों का मेल (अत्यन्त सामीप्य) अथवा दो स्वरों या दो व्यञ्जनों का मेल सन्धि (cambination) है।[3] सन्धि होने पर विकृति या लोप या आगम अवश्य होता है।

१. संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥ उ०, सि० कौ० (अ० ८.४.१८)।
अर्थ—एकपद में (पौ + अकः = पावकः), धातु-उपसर्ग में (नि + अवसत् = न्यवसत्) तथा समास में (नीलम् + उत्पलम् = नीलोत्पलम्) सन्धि नित्य होती है। परन्तु वाक्य में (श्यामः + गच्छति = श्यामो गच्छति, श्यामः गच्छति) सन्धि वक्ता की इच्छा पर (वैकल्पिक) है। यद्यपि इस श्लोक में वाक्य में सन्धि करना वैकल्पिक बतलाया गया है परन्तु विद्वान् लोग वाक्य में भी सन्धि आवश्यक मानते हैं। सन्धि न करने पर 'विसन्धि' नामक दोष मानते हैं।
न संहितां विवक्षामीत्यसन्धानं पदेषु यत्।
तद्विसन्धीति निर्दिष्टं न प्रगृह्यादि हेतुकम् ।। काव्यादर्श ३.१५६.

२. हलोऽनन्तराः संयोगः। अ० १.१.७.

३. परः सन्निकर्षः संहिता। अ० १.४.१०९.

सन्धि के प्रमुख तीन भेद—(१) **स्वर-सन्धि**(स्वर + स्वर)—दो स्वरों की सन्धि को स्वर-सन्धि (अच्-सन्धि) कहते हैं। जैसे—रमा + ईशः = रमेशः; दधि + आनय = दध्यानय। (२) **व्यञ्जन-सन्धि** (व्यञ्जन + व्यञ्जन अथवा व्यञ्जन + स्वर)—व्यञ्जन की व्यञ्जन वर्ण के साथ अथवा व्यञ्जन की स्वर वर्ण के साथ होने वाली सन्धि को व्यञ्जन-सन्धि (हल्-सन्धि) कहते हैं। जैसे—हरिस् + शेते = हरिश्शेते; चित् + आनन्दः = चिदानन्दः। (३) **विसर्ग-सन्धि** (विसर्ग + व्यञ्जन अथवा विसर्ग + स्वर)—विसर्ग के साथ व्यञ्जन अथवा स्वर वर्णों की सन्धि को विसर्ग-सन्धि कहते हैं। जैसे—हरिः + चरति = हरिश्चरति, सः + अपि = सोऽपि।

(क) स्वर (अच्) सन्धि (Euphonic Changes in Vowels)

१. दीर्घ-सन्धि (समान दो मूल स्वरों की सन्धि) :

अकः सवर्णे दीर्घः (अक् + सवर्ण अक् = दीर्घ)—अक् (अ इ उ ऋ ऌ) के परे समान (सवर्ण) वर्ण (अ इ उ ऋ ऌ) के होने पर [दोनों के स्थान में] दीर्घ एकादेश होता है। अर्थात् दो समान स्वरों के मिलने पर उसी वर्ण का एक दीर्घ स्वर होता है।[1] जैसे—(क) अ, आ + अ, आ = आ > दैत्य + अरिः = दैत्यारिः (दैत्य का शत्रु, विष्णु), न + अस्ति=नास्ति, तथा + अपि=तथापि। (ख) इ, ई + इ, ई = ई > श्री + ईशः=श्रीशः (विष्णु, लक्ष्मीपति), मुनि + इन्द्रः=मुनीन्द्रः (श्रेष्ठ मुनि), कवि + इन्द्रः=कवीन्द्रः, देवी + इव = देवीव। (ग) उ, ऊ + उ, ऊ = ऊ > विष्णु + उदयः = विष्णूदयः, वधू + उत्सवः=वधूत्सवः। (घ) ऋ, ॠ + ऋ, ॠ=ॠ > पितृ + ऋणम् = पितॄणम्, होतृ + ऋद्धिः=होतॄद्धिः (हवन करने वाले होता की ऋद्धि)। (ङ) **'ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्** (वा०)—ऋ और ऌ में परस्पर सवर्ण संज्ञा होने से 'होतृ + ऌकारः = होतॄकारः' रूप बनेगा।

अन्य उदाहरण—विद्या + आलयः = विद्यालयः। सती + ईशः = सतीशः (शिव)। भानु + उदयः = भानूदयः। इति + इव = इतीव।

१. **दीर्घ-सन्धि के अपवाद (पररूप एवं प्रकृतिभाव)**—
(क) **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** (वा०)—शकन्धु (शक देश या शक जाति के लोगों का कुआँ) आदि में पररूप (पूर्व और पर-वर्ण के स्थान पर पररूप) एकादेश होता है। जैसे—कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः, शक + अन्धुः = शकन्धुः (शक देश के राजाओं का कुआँ), कुल + अटा = कुलटा (व्यभिचारिणी स्त्री), मृत > मार्त + अण्डः = मार्तण्डः (सूर्य), सम + अर्थः = समर्थः, सार + अङ्गः = सारङ्गः (मृग या मोर। अन्यत्र = पशुभिन्न अर्थ में —'साराङ्गः' = पुष्ट अङ्गों वाला)। (ख) **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** (देखिए, पृ० २२)—हरी + ईशौ = हरी ईशौ, विष्णू + उमेशौ = विष्णू उमेशौ।

२. गुण-सन्धि ('अ' के साथ असमान मूल स्वरों की सन्धि) :

(क) अदेङ् गुणः—अत् (ह्रस्व 'अ') और एङ् (ए ओ) की गुणसंज्ञा होती है। गुणसंज्ञा होने पर अगले सूत्र से गुण एकादेश होता है।

(ख) आद्गुणः (अ, आ + इक् = गुण)—आत् (अवर्ण = अ आ) से [इक् परे] गुण हो, अर्थात् अ, आ के बाद यदि कोई असवर्ण मूल स्वर (इक्) आता है तो दोनों के स्थान पर गुण एकादेश हो जाता है।[1] जैसे—(क) अ, आ + इ, ई = ए > उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः, रमा + ईशः = रमेशः, देव + ईशः = देवेशः। (ख) अ, आ + उ, ऊ = ओ > गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम्, पर + उपकारः = परोपकारः। (ग) अ, आ + ऋ, ॠ = अर्[2] > ब्रह्म + ऋषिः = ब्रह्मर्षिः, महा + ऋषिः = महर्षिः।

---

१. गुण सन्धि के अपवाद (वृद्धि-सन्धि)—

(क) अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् (वा०)—'अक्ष' शब्द से 'ऊहिनी' शब्द परे होने पर पूर्व-पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होगा। जैसे—अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी (चतुरङ्गिणी सेना)। (ख) प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु (वा० — प्र उपसर्ग से परे ऊह ऊढ ऊढि एष और एष्य हों तो वृद्धि एकादेश। जैसे—प्र + ऊहः ऊढः ऊढिः एषः एष्यः = प्रौहः (उत्कृष्ट तर्क), प्रौढः (बड़ा), प्रौढिः (प्रौढ़ता), प्रैषः (प्रेरणा), प्रैष्यः (सेवक)। प्रैषः और प्रैष्यः में पररूप का बाध है। (ग) ऋते च तृतीयासमासे (वा०)—अवर्ण से ऋत् शब्द के परे तृतीया समास में वृद्धि एकादेश होगा। जैसे—सुख + ऋतः = सुखार्तः (सुखेन ऋतः = सुख से प्राप्त)। तृतीया समास न होने पर गुण ही होगा। जैसे—परम + ऋतः = परमर्तः (परमश्चासौ ऋतः = मुक्त)। (घ) प्रवत्सतरकम्बलवसवार्णदशानामृणे (वा०)—प्र आदि से परे ऋण शब्द के होने पर वृद्धि एकादेश। जैसे—प्र + ऋणम् = प्रार्णम् (अधिक कर्जा), वत्सतरार्णम् (छोटे बछड़े के लिए लिया-हुआ कर्जा), कम्बलार्णम्, ऋणार्णम्, दशार्णम् (देश-विशेष)। (ङ) स्वादीरेरिणोः (वा०)—स्व + ईर, ईरिन्, ईरिणी = स्वैरः, स्वैरिन्, स्वैरिणी (व्यभिचारिणी)। (च) उपसर्गादृति धातौ (६. १. ९१)—अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु हो तो वृद्धि। जैसे—प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति (जाता है), उपार्च्छति (समीप में पहुँचता है)।

२. उरण् रपरः (१.१.५१)—(ऋ > अर्, ऌ > अल्)—ऋ ऌ के स्थान में जो 'अण्' (अ इ उ) होता है वह रपर और लपर ('र ल' है पर = बाद में जिसके अर्थात् अर् इर् उर् अल् इल् उल्) होकर ही प्रवृत्त होता है। यहाँ रपर में प्रयुक्त 'र' से 'र' प्रत्याहार (र, ल) लेना है (र और ल में अभेद

(घ) अ, आ + ऌ = अल् > तव + ऌकारः = तवल्कारः (तेरा ऌकार)।[1]

३. वृद्धि-सन्धि (अ, आ के साथ संयुक्त स्वरों की सन्धि) :

(क) वृद्धिरादैच्—आकार और ऐच् (ऐ औ) की वृद्धिसंज्ञा होती है. पश्चात् 'वृद्धिरेचि' से एच् (ए ओ ऐ औ) को वृद्धि एकादेश (ऐ औ) होता है।

(ख) वृद्धिरेचि (अ, आ + एच् = वृद्धि)—[अवर्ण से] एच् परे होने पर वृद्धि होती है, अर्थात् अ, आ के बाद यदि कोई संयुक्त स्वर (एच्) आता है तो दोनों के स्थान पर वृद्धि (ऐ, औ) होती है[2]। जैसे—(क) अ, आ + ए, ऐ > हित + एषिन् = हितैषिन्, देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्, पञ्च + एते = पञ्चैते, मा + एवम् = मैवम्। (ख) अ, आ + ओ, औ = औ > गङ्गा + ओघः = गङ्गौघः, देव + औषधम् = देवौषधम्, दर्शन + औत्सुक्यम् = दर्शनौत्सुक्यम्।

४. यण्-सन्धि ('इक्' के साथ असमान स्वरों की सन्धि) :

इको यणचि (इक् + असमानस्वर = यण्)—'अच्' परे रहने पर 'इक्' को 'यण्' होता है, अर्थात् ह्रस्व अथवा दीर्घ इ, उ, ऋ, ऌ (इक्) अपने सदृश अन्तःस्थ वर्णों (यण् = य्, व्, र्, ल्) में बदल जाते हैं, यदि बाद में कोई असमान स्वर (अच्) हो। जैसे—(क) इ, ई + असमानस्वर = य् > यदि + अपि = यद्यपि, नदी + अपि = नद्यपि, सुधी + उपास्यः = सुध्युपास्यः।[3] (ख) उ, ऊ + असमान स्वर = व् > सु + आगतम् = स्वागतम्, अनु + एषणम् = अन्वेषणम्, मधु + अरिः = मध्वरिः।[4] (ग) ऋ, ॠ + असमान स्वर = र् > मातृ + इच्छा = मात्रिच्छा, धातृ + अंशः = धात्रंशः[5] (ब्रह्मा का अंश), पितृ + औदार्यम् = पित्रौदार्यम्, पितृ + अनुमतिः = पित्रनुमतिः, मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा। (घ) ऌ + असमान स्वर = ल् > ऌ + आकृतिः = लाकृतिः (ऌ के समान आकृति वाले कृष्ण)।

अन्य उदाहरण—दधि + आनय = दध्यानय, प्रति + एकम् = प्रत्येकम्।

भी माना जाता है)। जैसे—(क) अर् > कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्णर्द्धिः, ग्रीष्म + ऋतुः = ग्रीष्मर्तुः। (ख) अल् > मम + ऌकारः = ममल्कारः; तवल्कारः। (ग) इर् > कृ + अ + ति = किरति (देखें—'ऋत इद्धातोः' ७.१.१००)। (घ) उर् > पितृ + तस् = पितूर्तः (देखें—'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' ७.१.१०२)।

१. वही।

२. विशेष के लिए देखिए, गुणसन्धि और पररूपसन्धि।

३. 'झलां जश् झशि' (८.४.४७)—अच् से परे 'यर्' को विकल्प से द्वित्व होता है, परन्तु 'यर्' के आगे 'अच्' होने पर नहीं होगा। इस सूत्र से द्वित्व होने पर अन्य रूप भी बनेंगे—सुध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, धात्र्यंशः।

५. **अयादि-सन्धि** (एच् के साथ समान असमान स्वरों की सन्धि) :

एचोऽयवायावः (एच् + स्वर = अयादि आदेश)—'एच्' (ए ऐ ओ औ) को क्रमशः अय् आय् अव् आव् आदेश होते हैं [यदि बाद में कोई भी स्वर हो]।[१] जैसे—(क) ए + स्वर = अय् > हरे + ए = हरये, शे + अनम् = शयनम्, ने + अनम् = नयनम्। (ख) ऐ + स्वर = आय् > नै + अकः = नायकः, कस्मै + ऐश्वर्यम् = कस्मायैश्वर्यम्।[२] (ग) ओ + स्वर = अव् > विष्णो + इति = विष्ण-

१. **विशेषः**—(क) **वान्तोयि प्रत्यये** (६.१.७९)—ओ औ के बाद यकारादि प्रत्यय हो तो भी अवादि आदेश होंगे। जैसे—गो + यम् = गव्यम् (गो का विकार दूध, दही, घी आदि), नौ + यम् = नाव्यम् (नौका से तरने-योग्य जल)। ख) **अध्वपरिमाणे च** (वा०)—मार्ग के परिमाण अर्थ में गो शब्द के आगे 'यूतिः' शब्द होने पर भी अवादेश होगा। जैसे—गो + यूतिः = गव्यूतिः (दो कोस)। (ग) **क्षय्य-जय्यौ शक्यार्थे** (६.१.८१)—शक्यार्थ होने पर 'क्षे जे क्रे' के 'ए' को अयादेश होता है यदि बाद में यकारादि प्रत्यय हो। जैसे—क्षे + यम् = क्षय्यम्। जय्यम्, क्रय्यम्। अन्यत्र—क्षेयम्, जेयम्, क्रेयम्।

२. **लोपः शाकल्यस्य** (८.३.१९)—अयादि आदेश होने पर 'य्' और 'व्' का विकल्प से लोप होता है, यदि पदान्त 'य्' और 'व्' के पहले 'अ आ' हो और बाद में 'अश्' वर्ण। जैसे—हरे + इह = हरयिह, हर इह। विष्णो + इह = विष्णविह, विष्ण इह। ते + आगताः = तयागताः, त आगता।

'लोपः शाकल्यस्य' से 'य् व्' का लोप होने के बाद यद्यपि 'हर इह' में गुण-सन्धि प्राप्त थी परन्तु पाणिनि-व्याकरण का एक सूत्र है **'पूर्वत्राऽसिद्धम्'** (८.२.१) जिसका तात्पर्य है कि इस सूत्र के बाद के सूत्रों द्वारा किए गये कार्य इससे पूर्ववर्ती सूत्रों के प्रति असिद्ध (न किए गये की तरह) हैं। तात्पर्यार्थ यह है कि अष्टाध्यायी में ८ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में ४-४ पाद हैं और प्रत्येक पाद में कई-कई सूत्र हैं। 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' आठवें अध्याय के दूसरे पाद का पहला सूत्र है। अर्थात् इससे पहले अष्टाध्यायी के सवा सात अध्याय हैं और बाद में त्रिपादी मात्र (आठवें अध्याय के तीन पाद मात्र)। 'लोपः शाकल्यस्य' (८.३.१९.) यह सूत्र त्रिपादी ('पूर्वत्राऽसिद्धम्' के बाद) का है। अतः इससे 'य् व्' का लोप होने पर भी 'आद्गुणः' (६'१'८७) सूत्र (जो कि त्रिपादी से पूर्ववर्ती है) से गुण-सन्धि नहीं होगी क्योंकि 'य् व्' का लोप होने पर भी उसे असिद्ध (अव्यवहित) माना जायेगा और तब 'य् व्' के लोप होने से गुण-सन्धि (हरे + इह = हरेह) नहीं होगी।

नोट—यह नियम सर्वत्र लागू होता है।

क्षिति, विष्ण इति; विष्णो + ए = विष्णवे, भू > भो + अति = भवति। (घ) औ + स्वर = आव् > पौ + अकः = पावकः, द्वौ + उपमितौ = द्वावुपमितौ, देवौ + आगतौ = देवावागतौ, देवा आगतौ।

६. **पूर्वरूप-सन्धि** (पदान्त 'ए ओ' के साथ 'अ' की सन्धि)

एङः पदान्तादति (एङ् + अ = पूर्वरूप)—अत् (अ) परे होने पर पदान्त 'एङ्' से पूर्वरूप होता है अर्थात् पदान्त 'ए ओ' (एङ्) के बाद यदि 'अ' हो तो परवर्ण (अ) पूर्ववर्ण (ए ओ) में प्रविष्ट होकर तद्रूप (ए ओ रूप) हो जाता है।[१] इस तरह 'अ' वहाँ नहीं रह जाता। पूर्वरूप को सूचित करने के लिए अवग्रहचिह्न ('अ' के स्थान पर 'ऽ') लगा दिया जाता है। जैसे—(क) ए + अ = एऽ > हरे + अव = हरेऽव; संसारे + अस्मिन् = संसारेऽस्मिन्, के + अपि = केऽपि। (ख) ओ + अ = ओऽ > विष्णो + अव = विष्णोऽव; बालः > बालो + अत्र = बालोऽत्र, पण्डितो + अवदत् = पण्डितोऽवदत्।

नोट—यह सूत्र अयादि-सन्धि का प्रतिषेधक है।

७. **पररूप-सन्धि** (अकारान्त उपसर्ग + एकारादि या ओकारादि धातु की सन्धि) :

एङि पररूपम् (अकारान्त उपसर्ग + एङादि धातु = पररूप)—[अकारान्त उपसर्ग के बाद यदि] 'ए' अथवा 'ओ' (एङ्) से प्रारम्भ होने वाली धातु हो तो पररूप ('अ' परवर्ण रूप) हो जाता है।[२] जैसे—(क) अ + ए = ए > प्र + एजते = प्रेजते (अधिक काँपता है), अव + एजते = अवेजते (काँपता है), प्र + एषयति = प्रेषयति (भेजता है)। (ख) अ + ओ = ओ > उप + ओषति = उपोषति (जलाता

१. परन्तु गो + अग्रम् = गोऽग्रम्, गो अग्रम्, गवाग्रम् ये तीन रूप बनेंगे। देखें—'सर्वत्र विभाषा गोः' (६. १. १२२) तथा अवङ् स्फोटायनस्य (६. १. १२३)।

२. (क) **एत्येधत्यूठ्सु** (६. १. ८९)—'अ' के बाद एकारादि धातु (इण्, एध्) के रहने पर तथा ऊठ् सम्बन्धी ऊकार के रहने पर दोनों की वृद्धि होती है। जैसे—उप + एति = उपैति, उप + एधते = उपैधते, अव + एषि = अवैषि, प्रष्ठ + ऊहः = प्रष्ठौहः। (ख) **एवे चानियोगे** (वा०)—'अ' के बाद 'एव' (अनिश्चय अर्थ वाचक होने पर) हो तो पररूप होगा। जैसे—नव + एव = नवेव। परन्तु निश्चय अर्थ रहने पर वृद्धि—अद्य + एव = अद्यैव। (ग) **ओमाङोश्च** (६. १. ९५.)—'ओम्' और 'आङ्' हो तो पररूप—शिवाय + ओंनमः=शिवायों नमः। शिव + आ + इहि = शिवेहि। (घ) **ओत्वोष्ठयोः समासे वा** (वा०)—'ओतु' और 'ओष्ठ' हो तो—स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः (मोटा बिडाल) कण्ठ + ओष्ठम् = कण्ठोष्ठम्, कण्ठौष्ठम्।

हैं), प्र + ओषति = प्रोषति (अधिक जलाता है), अव + ओषति = अवोषति ।

नोट—यह सूत्र वृद्धि-सन्धि का प्रतिषेधक है ।

८. प्रकृतिभाव = सन्ध्यभाव (प्लुत या प्रगृह्यसंज्ञक के साथ स्वर होने पर) :

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (प्लुतसंज्ञक, प्रगृह्यसंज्ञक + स्वर प्रकृतिभाव)—प्लुतसंज्ञक और प्रगृह्यसंज्ञक वर्ण को प्रकृतिभाव (यथापूर्व = सन्ध्यभाव) होता है, यदि बाद में कोई स्वर वर्ण हो । प्लुत-संज्ञा और प्रगृह्य-संज्ञा के विधायक निम्न दो प्रमुख सूत्र हैं—

(अ) दूराद्धूते च (दूर संबोधनान्त स्वर + स्वर-प्लुतसंज्ञा)—दूर स्थित व्यक्ति को जोर से बुलाने पर सम्बोधित पद के अन्तिम स्वर की प्लुत-संज्ञा होती है । जैसे—आगच्छ कृष्ण ३ + अत्र गौश्चरति = आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति (दीर्घ-सन्धि नहीं हुई) । आगच्छ राम३ इह लक्ष्मणः (गुण-सन्धि नहीं हुई) ।

नोट— (१) दीर्घ-सन्धि आदि के प्राप्त होने पर भी प्लुत-संज्ञा होने से कोई सन्धि नहीं हुई । (२) प्लुतसंज्ञक स्वर के बाद तीन का अङ्क दिया रहता है ।

(ब) ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् (द्विवचनान्त ई, ऊ, ए + स्वर = प्रगृह्यसंज्ञा)—ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त पद की प्रगृह्य-संज्ञा होती है, यदि वह पद द्विवचन का हो और उसके बाद कोई स्वर हो ।[1] जैसे—(क) हरी + एतौ = हरी एतौ (यण्-सन्धि नहीं हुई) । (ख) विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ (ये दो विष्णु) । यहाँ यण्-सन्धि नहीं हुई) । (ग) गङ्गे + अमू = गङ्गे अमू (ये दो गङ्गायें । यहाँ पूर्वरूप-सन्धि नहीं हुई) ।

अन्य उदाहरण—कवी + आगच्छतः = कवी आगच्छतः, बालिके अधीयाते (दो लड़कियाँ पढ़ती हैं), पाणी आमृशति (दोनों हाथ पोंछता है) ।

(ख) व्यञ्जन-सन्धि (Euphonic Changes in Consonants)

१ श्चुत्व-सन्धि ('स्' और 'तवर्ग' के साथ 'श्' और 'चवर्ग' की सन्धि) :

स्तोः श्चुना श्चुः (स्, तवर्ग + श्, चवर्ग = श्चुत्व)—'स्' या 'तवर्ग' के बाद में अथवा पहले 'श्' या 'चवर्ग' का कोई भी वर्ण हो तो 'स्' और 'तवर्ग'

१. निम्न स्थानों पर भी प्रगृह्य-संज्ञा होती है—
(क) अदसो मात् (१. १. १२)—जब 'अदस्' शब्द का रूप 'मी' या 'मू' में अन्त हो—अमी + ईशाः = अमी ईशाः ; अमू + आस्ताम् = अमू आस्ताम् । (ख) ओत् (१. १. १५)—अहो, अथो, मिथो, उताहो के होने पर—अहो ईशाः, अथो अपि; मिथो आगच्छतः । (ग) निपात एकाजनाङ् (१. १. १४)—'आङ्' को छोड़कर एक स्वर वाले निपात के होने पर—ङ इन्द्रः, उ उमेशः ।

को क्रमशः 'श्' और 'चवर्ग' होता है ।[1] जैसे—रामस् + शेते = रामश्शेते, सत् + चरित्रम् = सच्चरित्रम्, याच् + ना = याच्ञा (माँगना), रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति (राम चुनता है), सूर्यस् + छत्रः = सूर्यश्छत्रः, विपद् + जालम् = विपज्जालम्, यज् + नः = यज्ञः ।

२. ष्टुत्व-सन्धि ('स्' और 'तवर्ग' के साथ 'ष्' और 'टवर्ग' की सन्धि) :

ष्टुना ष्टुः (स्, तवर्ग + ष्, टवर्ग = ष्टुत्व) 'स्' या 'तवर्ग' के बाद में अथवा पहले 'ष्' या 'टवर्ग' का कोई भी वर्ण हो तो 'स्' और 'तवर्ग' क्रमशः 'ष्' और 'टवर्ग' में बदल जाते हैं ।[2] जैसे—रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः (राम छठा है), पेष् + ता = पेष्टा (पीसने वाला), अधिस्थाता = अधिष्ठाता (स्वामी), तत् + टीका = तट्टीका, प्रष् + ता = प्रष्टा ।

३. जश्त्व-सन्धि ('अघोष्' और 'घोष' वर्णों की सन्धि) :

झलां जशोऽन्ते (अघोष + घोष = घोष । पदान्त झल् + कोई भी वर्ण = जश्त्व)—पदान्त क् च् ट् त् प् (वर्ग के प्रथम वर्ण) को क्रमशः ग् ज् ड् द् ब् (वर्ग का तृतीय वर्ण) होता है ।[3] जैसे—वाक् + ईशः = वागीशः (बृहस्पति),

१. शात् (८. ४. ४४)—'श्' के बाद 'तवर्ग' हो तो 'श्चुत्व' नहीं होगा । जैसे—विश् + नः = विंश्नः (गति, भाषण), प्रश् + नः = प्रश्नः ।

२. ष्टुत्व निषेध—
(क) तोः षि (८. ४. ४३)—'तवर्ग' के बाद 'ष्' हो तो । जैसे—सत् + षष्ठः = सत्षष्ठः (सज्जन छठा है), मयूरात् षण्मुखः । (ख) न पदान्ताट्टोर-नाम् (८. ४. ४२); अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् (वा०)—पदान्त 'टवर्ग' के बाद (नाम, नवति, नगरी शब्दों को छोड़कर) 'स्' या 'तवर्ग' हो तो । जैसे—षट् + सन्तः = षट्सन्तः (छः सज्जन), षट्ते (वे छः) । अपवाद—षट् + नाम् = षण्णाम् (छः को), षण्णवतिः (९६), षण्णगरीः ।

३. (क) यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (८. ४. ४५)—पदान्त यर् + अम् = विकल्प से अनुनासिकत्व । पदान्त 'यर्' ('ह' छोड़कर शेष व्यञ्जन) को विकल्प से (उसी वर्ग का) अनुनासिकत्व होता है, यदि बाद में कोई अनुनासिक वर्ण हो । जैसे—मद् + नीतिः = मन्नीतिः, मदनीतिः; धिग् + मूर्खम् = धिङ्मूर्खम्, धिग्मूर्खम्, जगन्नाथः, जगद्नाथः; एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः, सन्मार्गः, सद्मार्गः । (ख) प्रत्यये भाषायां नित्यम् (वा०)—यदि पदान्त 'यर्' के बाद कोई अनुनासिक प्रत्यय मात्र हो तो नित्य अनुनासिकत्व होता है । जैसे—चित् + मयम् = चिन्मयम्; तद् + मात्रम् = तन्मात्रम्; वाक् + मयम् = वाङ्मयम् (शास्त्र), अप् + मयम् = अम्मयम्, मृद् + मयम् = मृण्मयम् (मिट्टी का) ।

अप्+घटः = अब्घटः, वाक्+दानम् = वाग्दानम्, जगत्+ईशः = जगदीशः, षट्+एव = षडेव, चित्+आनन्दः = चिदानन्दः, अच्+अन्तः = अजन्तः, सुप्+अन्तः = सुबन्तः, दिक्+हस्ती = दिग्हस्ती, दिक्+गजः = दिग्गजः।

नोट—१. शेष 'झल्' वर्णों के उदाहरणों का प्रायः अभाव होने से यहाँ केवल क् च् ट् त् प् को गिनाया गया है।

२. **झलां जश झशि** (८. ४ ५३)—अपदान्त झल्+झश् = जश्त्व—अपदान्त (पदमध्य) घ् झ् ढ् ध् भ् (वर्ग के चतुर्थ वर्ण) को क्रमशः ग् ज् ड् द् ब् (वर्ग का तृतीय वर्ण) होता है, यदि बाद में 'झश्' (वर्ग के ३, ४) वर्ण हो। जैसे—दुघ्+धम् = दुग्धम्; लभ्+धः = लब्धः; सिध्+धिः = सिद्धिः।

४. **चर्त्व-सन्धि** (घोष और अघोष वर्णों की सन्धि) :

खरि च (घोष+अघोष = अघोष। झल्+खर् = चर्त्व)—ग् ज् ड् द् ब् (वर्ग के तृतीय वर्ण) को क्रमशः क् च् ट् त् प् (वर्ग का प्रथम वर्ण) होता है, यदि बाद में कोई 'खर्' (अघोष) वर्ण हो।[1] जैसे—तद्+परः = तत्परः, षड्+टीका=षट्टीका, विपद्+कालः = विपत्कालः, दिग्+पालः = दिक्पालः, उद्+स्थानम्=उत्थानम्।[2]

५ **छत्वं-सन्धि** (पदान्त झय्+श्+अट् के साथ होने वाली सन्धि) :

शश्छोऽटि (पदान्त झय्+श्+अट् = छत्व)—'श्' को विकल्प से 'छ्' होता है, यदि 'श्' के पूर्व 'झय्' (वर्ग के १–४ वर्ण) हो और बाद में 'अट्' (स्वर, ह् य् व् र्)।[3] जैसे—जगत्+शान्तिः = जगच्छान्तिः, जगच्शान्तिः,

१. **वावसाने** (८. ४. ५६)—यदि बाद में कोई वर्ण न हो तो विकल्प से प्रथम या तृतीय वर्ण होता है। जैसे—रामात्, रामाद्, वाक्, वाग्।

२. उत्थानम् (उत्थ्थानम्) और उत्थापकः (उत्थ्थापकः)—यहाँ 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' (८. ४. ६१) सूत्र से 'स्' को पूर्वसवर्ण होने पर 'उद्+थ्+थानम्' रूप बना। पश्चात् 'झरो झरि सवर्णे' (८. ४. ६५) सूत्र से 'थ्' का वैकल्पिक लोप और 'खरि च' से 'द्' को 'त्' होने पर 'उत्थानम्' रूप बना।

३. (क) **छत्वममीति वाच्यम्** (वा०)—पदान्त झय्+श्+अम् = छत्व। जैसे—तद्+श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन। (ख) **झयो होऽन्यतरस्याम्** (८. ४. ६२)—'ह्' (नाद, घोष, संवार और महाप्राण-प्रयत्न वाला) को विकल्प से पूर्वसवर्ण (उसी प्रकार के प्रयत्न वाले वर्ग का चतुर्थ वर्ण) होता है, यदि पहले 'झय्' वर्ण हो (झय्+ह = पूर्वसवर्ण)। जैसे—वाक्+हरिः = वाग्घरिः, वाग्हरिः; अच्+हलौ = अज्झलौ, अज्हलौ।

तद्+शिवः = तच्छिवः, तच्शिवः।[1] वाक्+शूरः = वाक्छूरः, वाक्शूरः। तत्+श्रुत्वा = तच्छ्रुत्वा, तच्श्रुत्वा,। षट्+शेरते = षट्छेरते, षट्शेरते।

६. **अनुस्वार-सन्धि** (पदान्त 'म्' की व्यञ्जन वर्ण के साथ सन्धि) :

मोऽनुस्वारः (पदान्त 'म'+व्यञ्जन = अनुस्वार)—पदान्त 'म्' को अनुस्वार (ं) होता है, यदि बाद में कोई व्यञ्जन वर्ण हो।[2] जैसे—हरिम्+वन्दे = हरिं वन्दे। सत्यम्+वद = सत्यं वद। पुस्तकम्+पठति = पुस्तकं पठति। गृहम्+गच्छति = गृहं गच्छति। धर्मम्+चर = धर्मं चर।

७. **परसवर्ण-सन्धि** (अनुस्वार की 'यय्' वर्ण के साथ सन्धि) :

(क) **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** (अपदान्त अनुस्वार+यय् = परसवर्ण)—अनुस्वार को परसवर्ण (आगे आने वाले वर्ण के वर्ग का पञ्चम अक्षर) होता है, यदि बाद में 'यय्' (वर्ग के १-५, य र ल व) हो।[3] जैसे—शां+तः = शान्तः, अं+कः = अङ्कः, अं+कितः = अङ्कितः (चिह्नित), कं+ठः=कण्ठः, कं+पनम् = कम्पनम्, घं+टा=घण्टा, पं+चम=पञ्च, कां+तः = कान्तः (सुन्दर)।

(ख) **वा पदान्तस्य** (पदान्त अनुस्वार+यय् = विकल्प से परसवर्ण)—पदान्त अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होता है, यदि बाद में 'यय्' वर्ण हो। जैसे—

१. 'तद्+शिवः' यहाँ 'स्तोः श्चुना श्चुः' से 'द्' को 'ज्', 'खरि च' से 'ज्' को 'च्' होगा। पश्चात् 'शश्छोऽटि' से 'श्' को 'छ्' होगा।

२. (क) **नश्चाऽपदान्तस्य झलि** (८. ३. २५)—अपदान्त 'न्' और 'म्' को अनुस्वार होता है, यदि बाद में कोई 'झल्' वर्ण (वर्ग के १–४, ऊष्म) हो। जैसे—यशान्+सि = यशांसि। (ख) **नश्छव्यप्रशान्** (८. ३. ७)—(पदान्त न्+छव्+अम् = अनुनासिकत्व तथा शर्)—पदान्त 'न्' को अनुनासिकत्व तथा 'शर्' (श् ष् स्) होता है (प्रशान् शब्द को छोड़कर), यदि बाद में 'छव्' (च् छ् ट् ठ् त् थ्) और उसके बाद 'अम्' हो। जैसे—चक्रिन्+त्रायस्व = चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व; कस्मिँश्चित्, कस्मिंश्चित्; बुद्धिमाँश्छात्रः, बुद्धिमांश्छात्रः, देवान्+तरति = देवाँस्तरति, देवांस्तरति। परन्तु प्रशान्+तनोति = प्रशान्तनोति। अपदान्त—हन्+ति = हन्ति।

३. **तोर्लि** (८. ४. ६०)—तवर्ग के बाद 'ल' हो तो परसवर्ण (उच्चारण-स्थान के साम्य से 'तवर्ग' को 'ल्') होता है। यदि 'तवर्गीय' अनुनासिक वर्ण (न्) होगा तो उसके स्थान पर होने वाला 'ल्' भी अनुनासिक (लँ) ही होगा (तवर्ग+ल = परसवर्ण = ल्ल) जैसे—तद्+लयः = तल्लयः; उत्+लेखः = उल्लेखः; विद्वान्+लिखति = विद्वाँल्लिखति; कुशान्+लाति = कुशाँल्लाति।

त्वं + करोषि=त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। नदीं + तरति=नदीन्तरति, नदीं तरति। फलं + चिनोति = फलञ्चिनोति, फलं चिनोति। जलं + पिबति=जलम्पिबति, जलं पिबति। मधुरं + गायति = मधुरङ्गायति, मधुरं गायति।

८. ङमुडागम-सन्धि (पदान्त ङ्, ण्, न् की स्वर के साथ सन्धि) :

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् (ह्रस्व स्वर + ङम् + अच् = ङमुडागम)—पदान्त 'ङम्' (ङ् ण् न्) के पहले यदि ह्रस्व स्वर हो और बाद में कोई भी स्वर हो तो ङमुडागम (क्रमशः ङ् ण् न्) होता है।[1] जैसे—जानन् + अपि = जानन्नपि, प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः, राजन् + आगच्छ = राजन्नागच्छ, तस्मिन् + अद्रौ = तस्मिन्नद्रौ, धावन् + आगच्छति = धावन्नागच्छति।

९. तुगागम-सन्धि (ह्रस्व स्वर की 'छ' के साथ सन्धि) :

छे च (ह्रस्व स्वर + छ = तुगागम)—ह्रस्व स्वर के बाद यदि 'छ' हो तो 'त्' (तुक्) का आगम होता है।[2] जैसे—शिव + छाया = शिवच्छाया, संस्कृत + छात्राः = संस्कृतच्छात्राः, वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया, हरि + छाया = हरिच्छाया।

(ग) विसर्ग सन्धि (Euphonic changes in Visarga)

१. रुत्व-विधान (पदान्त 'स्' और सजुष् के 'ष्' को रुत्व-विधान)

ससजुषो रुः (पदान्त 'स्', सजुष् का 'ष्' > रु) —पदान्त 'स्' और सजुष् के 'ष्' को 'र्' (रु) होता है। जैसे—रवि + स् (सु) + एव = रविरेव, भानु + स् (सु) + उदयः = भानुरुदयः, हरि + स् (सु) + गच्छति = हरिर्गच्छति। राम + स् (सु) > रामर् (रामः)। सजुष् + मेद्यति सजूर्मेद्यति, सजुष् = रु > सजुर् = सजुः कवि + स्(सु) + अयम् = कविरयम्।

नोट—(१) (पदान्त स् + पूर्णविराम =)—पदान्त 'स्' को 'रु' होने के बाद अगले सूत्र 'खरवसा०' से 'रु' को विसर्ग हो जाता है, यदि बाद में पूर्ण-विराम हो। (२) यदि पदान्त 'स्' के पूर्व 'अ' 'आ' को छोड़कर कोई अन्य स्वर हो और बाद में 'अश्' वर्ण हो तो 'र्' बना रहता है, अन्यत्र अन्य-अन्य नियमों से अन्य-अन्य कार्य होंगे।

२ विसर्ग-विधान (पदान्त 'रु' को विसर्ग-विधान) :

खरवसानयोर्विसर्जनीयः (पदान्त रु + खर्, पूर्णविराम = :)—पदान्त 'र्'

१. यदि 'ङम्' के पहले दीर्घ स्वर होगा तो ङमुडागम ('ङम्' को द्वित्व) नहीं होगा। जैसे—देवान् + अत्र = देवानत्र।

२. **पदान्ताद्वा** (६. १. ५६)—पदान्त में यदि दीर्घ स्वर हो तो विकल्प से तुगागम होगा। जैसे—लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मी छाया।

(रु) को विसर्ग (:) होता है, यदि बाद में 'खर्' (वर्ग के १, २ श् ष् स्) अथवा पूर्ण-विराम हो। जैसे—पुनर् + पृच्छति = पुनः पृच्छति। रामर् + कथयति = रामः कथयति। हरि + सु > रु > र् = हरिः। शिवर् > शिवः।

३. सत्व-विधान (विसर्ग को सत्व-विधान) :

(क) **विसर्जनीयस्य सः** (: + खर् = स्)—विसर्ग को 'स्' होता है, यदि बाद में 'खर्' वर्ण हो।[1] जैसे—गौः + चरति = गौश्चरति, बालः + चलति =

१. (क) **कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च** (५. ३. ३७)—विसर्ग के बाद यदि 'क ख प फ' हो तो विसर्ग को 'विसर्ग' अथवा 'अर्ध-विसर्ग' ('क ख' के होने पर जिह्वामूलीय और 'प फ' के होने पर उपध्मानीय) विकल्प से होता है। जैसे—कः + करोति = कः करोति, क ≍ करोति; कः + पठति = कः पठति, क ≍ पठति;। कः ≍ खनति फलति वा। (ख) **पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम्** (वा०)—बाद में 'पाश', 'कल्प', 'क' और 'काम्य' शब्द हों तो विसर्ग को 'स्' हो। जैसे—यशः + कल्पम्=यशस्कल्पम्; यशस्काम्यति; पयस्पाशम्; यशस्कम्। परन्तु 'प्रातः + कल्पम् = प्रातःकल्पम्' ही होगा। (ग) **इणः षः** (८. ३. ३९)—यदि 'इण्' (इ, उ) के बाद विसर्ग हो तो 'ष्' होता है। जैसे—सर्पिः + पाशम् = सर्पिष्पाशम्; सर्पिष्कल्पम्; सर्पिष्कम्; सर्पिष्काम्यति। (घ) **नमस्पुरसोर्गत्योः** (८. ३. ४०)—'नमः' और 'पुरः' शब्दों के विसर्ग को 'स्' होता है, यदि बाद में 'करोति', 'कृत्य' आदि शब्द हों। जैसे—नमः + करोति = नमस्करोति; पुरस्करोति, पुरस्कृत्य। (ङ) **इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य** (८. ३. ४१)—उपधा में 'इ उ' हो और अप्रत्यय-सम्बन्धी विसर्ग हो तो उसे 'ष्' होता है। जैसे—दुः + कृतम् = दुष्कृतम्; आविष्कृतम्। प्रत्यय-संबन्धी विसर्ग हो तो—अग्निः + करोति = अग्निः करोति। (च) **तिरसोऽन्यतरस्याम्** (८. ३. ४२)—'तिरः' के बाद 'कवर्ग' हो तो विकल्प से 'स्' होता है। जैसे—तिरस्कर्ता, तिरःकर्ता। (छ) **द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे। इसुसोः सामर्थ्ये** (८. ३. ४३-४४)—'द्विः', 'त्रिः', 'चतुः' तथा 'इस् उस्' प्रत्ययान्त शब्दों के विसर्ग को विकल्प से 'ष्' होता है। जैसे—द्विष्करोति, द्विः करोति; सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति; धनुष्करोति, धनुःकरोति। (ज) **नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य। अतः कृकमिकंसकुम्भ-पात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य। अधःशिरसी पदे। कस्कादिषु च** (८. ३. ४५-४८)—कुछ अन्य शब्दों में—सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपालम्, अयस्कारः, अयस्कामः, अयस्कंसः, अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा (अयः सहिता कुशा) अयस्कर्णी, स्वःकामः, यशःकरोति, परमयशःकारः, अधस्पदम्, अधःपदम्, शिरस्पदम्, शिरःपदम्, भास्करः।

बालश्चलति। रामः + तिष्ठति = रामस्तिष्ठति। विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता। रामः + टङ्कारयति = रामष्टङ्कारयति।

(ख) वा शरि (: + शर्=:, स्)—विसर्ग को विकल्प से विसर्ग (अथवा 'स्') ही रहता है, यदि बाद में 'शर्' हो।[1] जैसे—कविः + शृणोति = कविः शृणोति, कविश्शृणोति। हरि + शेते = हरिः शेते, हरिश्शेते। रामः + षष्ठः = रामःषष्ठः, रामष्षष्ठः। छात्राः + सन्ति = छात्राः सन्ति, छात्रास्सन्ति। गुणाः + षट् = गुणाःषट्, गुणाष्षट्।

नोट—यह सूत्र 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र का ही विशेष विधान करता है।

४. **उत्व-विधान** (अकारोत्तरवर्ती विसर्ग को उत्व-विधान):

(क) अतो रोरप्लुतादप्लुते (अ + : + अ=अ उ)—विसर्ग (सकार-स्थानीय 'रु' = 'र्'[2]) को 'उ' होता है, यदि उसके पहले और बाद में ह्रस्व (अप्लुत) अकार हो। जैसे—रामः + अस्ति = रामोऽस्ति। शिवः + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः। सः + अपि = सोऽपि। कः + अपठत् = कोऽपठत्।

नोट—विसर्ग को 'उ' होने पर 'गुणसन्धि' और 'पूर्वरूपसन्धि' भी होंगी।

(ख) हशि च (अ + : + हश् = उ)—विसर्ग (सकार-स्थानीय 'रु' = 'र्'[3]) को 'उ' होता है, यदि उसके पहले 'अ' हो और बाद में 'हश्' (वर्ग के ३, ४, ५, ह य व र ल) वर्ण हो। जैसे—देवः + जयति = देवो जयति। शिवः + वन्द्यः = शिवो वन्द्यः। बालः + लिखति = बालो लिखति। शिष्यः + हसति = शिष्यो हसति। रामः + गच्छति = रामो गच्छति।

नोट—विसर्ग को 'उ' होने पर गुणसन्धि भी होती है।

५. **यत्व-विधान** (अश् से पूर्ववर्ती विसर्ग को यत्व-विधान):

भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि (भो, भगो, अघो, अ, आ + : + अश् = य्)—विसर्ग (सकार-स्थानीय 'रु' = 'र्'[4]) को 'य्' होता है, यदि विसर्ग के पहले भो, भगो, अघो, अ, आ हो और बाद में 'अश्' (वर्ग के ३-५,

१. **खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः** (वा०)—विसर्ग के बाद 'शर्' हो और उसके बाद 'खर्' हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। जैसे—रामः + स्थाता = रामस्थाता; बाहुः + स्फुरति = बाहुस्फुरति।

२. मौलिक 'र्' होने पर 'र्' ही रहेगा। जैसे—प्रातर् + अत्र = प्रातरत्र। पुनर् + अपृच्छत् = पुनरपृच्छत्; पुनर् + अयम् = पुनरयम्।

३. मौलिक 'र्' होने पर 'र्' ही रहेगा। जैसे—प्रातर् + गच्छ = प्रातर्गच्छ। पुनर् + वन्द्यः = पुनर्वन्द्यः।

४. मौलिक 'र्' होने पर 'र्' ही रहेगा। जैसे—प्रातः + आगतः = प्रातरागतः स्वर्गतः।

ह, य, व, र, ल) हो। जैसे—देवाः + इह = देवायिह, देवा इह। अधोः + याहि = अधो याहि। नरः + इच्छति = नरयिच्छति, नर इच्छति। देवाः + गच्छन्ति = देवा गच्छन्ति। भोः + देवाः = भो देवाः। देवाः + जयन्ति = देवा जयन्ति। छात्राः + आगच्छन्ति = छात्रायागच्छन्ति, छात्रा आगच्छन्ति।

नोट—(१) **हलि सर्वेषाम्** (८.३.२२)—यदि 'य्' के बाद व्यञ्जन हो तो 'य्' का नित्य लोप हो जाता है यदि स्वर हो तो विकल्प से लोप होता है।[1]

(२) 'य्' का लोप होने पर फिर अन्य दीर्घ आदि सन्धियाँ नहीं होंगी।

(३) उत्व-विधायक सूत्रों की प्रवृत्ति न होने पर ही यह सूत्र प्रवृत्त होगा।

६. **'र्' लोप व दीर्घ-विधान** (विसर्ग-स्थानीय 'र्' का लोप व दीर्घ-विधान):

(क) रोरि (र् + र् = पूर्व 'र्' का लोप)—'र्' (विसर्ग-स्थानीय) का लोप होता है, यदि बाद में भी 'रकार' हो।[2] 'र्' का लोप होने पर अगले सूत्र 'ढ्रलोपे०' से दीर्घ होगा। जैसे—पुनर् + रमते = पुना रमते। हरिर् + राजते—हरी राजते।

(ख) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (अ, इ, उ + 'ढ् र्' लोप = दीर्घ)—'ढ्' या 'र्' का लोप होने पर पूर्ववर्ती 'अण्' (अ, इ, उ) को दीर्घ होता है।[3] जैसे—पुनर् + रमते = पुना रमते। हरिः > हरिर् + रम्यः = हरी रम्यः। शिशुः > शिशुर् + रोदिति = शिशू रोदिति। अन्तर् + राष्ट्रियः = अन्ताराष्ट्रियः।

७. **विसर्ग (सु) लोप-विधान** ('एतत्' 'तत्' सम्बन्धी 'सु' का लोप-विधान):

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि (एषः, सः + हल् = विसर्गलोप)—'एषः' (एतत्) और 'सः' (तत्) के विसर्ग (सु) का लोप होता है, यदि बाद में कोई

१. **लोपः शाकल्यस्य** (८. ३. १९)—अ, आ + पदान्त य् व् + अश्=विकल्प से य्, व् लोप। जैसे—देवा + इह=देवायिह, देवा इह। ते + आगताः=तयागताः त आगताः। रात्रौ + आगताः=रात्रावागताः, रात्रा आगताः। तौ + ईश्वरौ=तावीश्वरौ, ता ईश्वरौ। विष्णो + इह=विष्णविह, विष्ण इह।
विशेष—देखिए, अयादि-सन्धि।

२. **अपवाद**—मनस् (र्) + रथः = मनोरथः। यहाँ 'रोरि' से 'र्' का लोप प्राप्त था और 'हशि च' से 'उत्व' प्राप्त था। ऐसी स्थिति में 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' (१. ४. २) से 'र्' लोप की प्राप्ति हुई परन्तु 'पूर्वत्रासिद्धम्' (देखिए-अयादि, सन्धि) के नियमानुसार 'हशि च' से 'उ' होकर 'मनोरथः सिद्ध हुआ।

३. (क) 'ढ्' लोप का दृष्टान्त—लिढ् + ढः=लीढः (वे दो चाटते हैं)। उढ् + ढः=ऊढः। यहाँ 'ढ्' का लोप 'ढो ढे लोपः' (८. ३. १३) सूत्र से हुआ है।
(ख) अण् ही को दीर्घ होगा; अन्य को नहीं होगा। जैसे—तृढ् + ढः=तृंढः=(मारा)। वृढः (उद्यत)।

'हल्' (व्यञ्जन) हो। जैसे—सः + हसति = स हसति, एषः + तरति = एष तरति। सः + शम्भुः = स शम्भुः। सः + लिखति = स लिखति। एषः + विष्णु = एष विष्णुः।

नोट—(१) 'सः' और 'एषः' में 'क' प्रत्यय जुड़ा हो अथवा 'नञ्' समास हो तो लोप नहीं होगा। जैसे—एषकः + हरिणः = एषको हरिणः, असः (न सः) + शिवः = असः शिवः। (२) 'सः' के बाद हल् के अतिरिक्त वर्ण (स्वर) होने पर भी कहीं-कहीं सु (विसर्ग) का लोप हो जाता है।[१]

अभ्यास—

(क) सन्धि कीजिए—वृक्ष + उपरि, नव + ऊढा, गिरि + ईशः, उमा + ईशः, महा + ऐश्वर्यम्, सदा + एव, एकस्मिन् + अहनि, अं + चितः। धिग् + मूर्खम्। इति + आदिः, प्रति + उपकारः, सखी + ऊढः, पचति + ओदनम्, वधू + इच्छा, साधु + इति, पितृ + ईहितम्, शे + इतः, गजे + अग्निम्, पचेते + इमौ, सु + उक्तम्, एषः + अब्रवीत्, गुरु + अस्ति, बालः + अत्र, नराः + आगच्छन्ति, शम्भुः + राजते, रामः + आगतः, एषः + बालकः, वायुः + चलति, अश्वः + धावति, शत्रून् + जयति, मधुरम् + वदति, सम् + लोषः, सत् + शास्त्रम्, पेष् + ता, जगत् + नाथः, सद् + मतिः, उत् + लेखः, विष् + नुः, उत् + डयनम्, वाक् + जालम्, जगत् + बन्धुः, विपद् + शान्तिः, उत् + साहः, तृणं + चरति, अप् + जम्।

(ख) सन्धि-विच्छेद कीजिए—तयेति, सूर्योदयः, गङ्गोर्मिः, गणेशः, हितोपदेशः, जन्मोत्सवः, यथेच्छसि, तवौदार्यम्, मनैक्यम्, अद्यैव, जलौघः, एकैकम्, भवनम्, उपैति, अत्युत्तमः, इत्याह, देवा गच्छन्ति, देव्यौपम्यम्, प्रत्येकम्, गुरुदिशः, अन्वेषणम्, पवित्रः, ह्यवैतिहासिकौ, हरेऽव, माले इमे, विद्यार्थी कोऽयम् गजो गच्छति, देवायिह, रात्रावागतः, नद्यास्तीरम्, पूर्णेश्चन्द्रः, दयार्णवः, पृथ्वीश्वरः दिक्पालः, धनं ददाति, महट्टीका, अजन्तः, दिगम्बरः, तच्च, उच्छ्वासः, संचयः, मृण्मयम्, सन्मार्गः, तल्लीनः, धीमाँल्लिखति, जानन्नपि, चक्रिस्त्रायस्व, षडेव, उच्छिष्टः, सत्कारः, तृणञ्चरति, आकृष्टः, उज्ज्वलः, षड्दर्शनानि, महद्धनम्, सन्मतिः, तत्र।

---

१. **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** (६. १. १३४)—'अच्' परे रहते भी 'सः' के विसर्ग (सु) का लोप होता है, यदि वैसा करने से पाद की पूर्ति हो। जैसे—

सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महादानी, सैष भीमो महाबलः॥

नोट—'सैष' (सः + एषः = सैषः) यहाँ इस सूत्र से विसर्ग का लोप हो जाने से वृद्धि-सन्धि होकर 'सैषः' बन गया अन्यथा 'भो भगो०' सूत्र से 'यत्व' करके लोप करने पर वृद्धि-सन्धि न होने से 'स एषः' बनता जिससे पादपूर्ति नहीं होती।

विसर्ग-सन्धि बोधक तालिका

पूर्ववर्ण + परवर्ण	विसर्ग पर प्रभाव	उदाहरण
अ + अ अ + ह्रस्व	ः + ऽ (ओ ऽ) ,, (ओ)	रामः + अस्ति = रामोऽस्ति। रामः + गच्छति = रामो गच्छति, वदति हसति वा।
अ + 'आ' से 'औ' आ + ह्रस्व एष, स + ह्रस्व आ + 'अ' से 'औ' अ, इ, उ + र	लोप ,, ,, ,, (अथवा 'ः') ,, (+ 'रूप' को दीर्घ)	रामः + आगच्छति = राम आगच्छति, इच्छति वा। रामाः + गच्छन्ति = रामा गच्छन्ति, वदन्ति हसन्ति वा। सः + लिखति = स लिखति। एषः + विष्णुः = एष विष्णुः। रामाः + आगच्छन्ति = रामा आगच्छन्ति, रामायागच्छन्ति वा। पुनः + रमते = पुना रमते। हरिः + रम्यः = हरी रम्यः।
'अ' से 'औ' + 'अ' से 'औ' 'इ' से 'औ' + ह्रस्व	र् ,, (रेफ)	हरिः + अस्ति = हरिरस्ति। हरिरागच्छति। हरिः + गच्छति = हरिर्गच्छति। हरिर्हसति।
'अ' से 'औ' + त, थ, च, छ, ट, ठ	स् श् ष्	रामः + तिष्ठति = रामस्तिष्ठति। रामश्चलति। रामष्टङ्कारयति।
'अ' से 'औ' + स, श, ष	,, (अथवा ः)	रामाः + सन्ति = रामास्सन्ति, रामाः सन्ति वा।
'अ' से 'औ' + पूर्णविराम	ः	रामः। हरिः।
'अ' से 'औ' + क, ख, प, फ	,, (अथवा)( )	रामः + कथयति = रामः कथयति, रामः)(कथयति वा।

तृतीय अध्याय

कृत्-प्रत्यय (Primary-Suffixes)

१. धातुओं से संज्ञा, विशेषण, अव्यय आदि [प्रातिपदिक] शब्दों को बनाने के लिए जिन प्रत्ययों को जोड़ा जाता है उन्हें 'कृत्-प्रत्यय'[1] कहते हैं और उनके जुड़ने पर जो संज्ञादि शब्द बनते हैं उन्हे 'कृदन्त' (कृत् + अन्त) कहते हैं।[2]

२. कृदन्त शब्द जब संज्ञा अथवा विशेषण होते हैं तो उनके प्रथमा आदि विभक्तियों में रूप चलते हैं, अव्यय होने पर सदा एकरूप रहते हैं।

३. कुछ कृदन्त शब्द कभी-कभी क्रिया का भी काम करते है। जैसे—गम् + क्त=गतः, गम् + क्तवतु=गतवान्।[3]

---

१. (अ) 'कृत्' प्रत्ययों को वैयाकरणों ने मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया है—(क) **कृत्य-प्रत्यय**—ये संख्या में सात हैं। तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप् और ण्यत्। ये कर्मवाच्य और भाववाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं—(ख) **उणादि प्रत्यय**—'उण्' प्रत्यय से प्रारम्भ होने वाले प्रत्यय। ये प्रत्यय बहुत अधिक हैं। जैसे—कृ + उण्=कारुः (करोतीति कारुः); पृ + उषच्=परुषम्, आदि। (ग) **शेष कृत्-प्रत्यय**—क्त, क्तवतु, ण्मुल् आदि। (आ) व्यावहारिक दृष्टि से कृदन्तों के दो प्रकार संभव हैं—(क) **संज्ञासूचक कृदन्त**—जो क्रिया का स्वरूप अपने अन्दर रखते हुए भी व्यवहार में संज्ञा शब्द की तरह प्रयुक्त होते हैं। ये भाववाचक, कर्तृवाचक आदि के भेद से कई प्रकार के हैं। (ख) **क्रिया-सूचक कृदन्त**—जो यद्यपि सुबन्त ही हैं परन्तु विशेष रूप से क्रिया को व्यक्त करते हैं। कभी-कभी कुछ पूर्ण क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। ये वर्तमान कालिक, भूतकालिक, भविष्यत् कालिक, विध्यर्थक, निमित्तार्थक, पूर्वकालिक आदि कई प्रकार के हैं।

२. **तिङन्त और कृदन्त में अन्तर**—यद्यपि 'तिङ्' और कृत् प्रत्यय धातुओं में ही जुड़ते हैं परन्तु तिङन्त शब्द सदा क्रियारूप ही होते हैं और उनमें अन्य प्रत्यय नहीं जुड़ते हैं जबकि कृदन्त शब्द संज्ञादिरूप होते हैं तथा उनमें बाद में 'सुप्' प्रत्यय जोड़े जाते हैं। (देखिए सूत्र—धातोः ३. १. ९१, कृदतिङ् ३. १. ९३)।

३. 'गतः' आदि कृदन्त शब्द यद्यपि क्रिया का भी काम करते हैं परन्तु वास्तव में ये विशेषण ही हैं क्योंकि 'गतः' आदि का जो रूप होता है वह अपने विशेष्य के अनुरूप होता है। जैसे—सः गतः, सा गता।

(४) 'क्' युक्त कृत्-प्रत्यय के जुड़ने पर धातु में 'ऋ इ उ' रहते हैं एवं 'क'-भिन्न कृत्-प्रत्यय के जुड़ने पर वे 'र य व' हो जाते हैं। जैसे—दृश् + क्त = दृष्टः, दृश् + तुमुन् = द्रष्टुम्, स्वप् + क्त्वा = सुप्त्वा, स्वप् + तुमुन्=स्वप्तुम्, यज् + क्त = इष्टः, यज् + तव्यत् = यष्टव्यम्, वच् + तव्यत् = वक्तव्यम्, वच् + क्त = उक्तः, ग्रह् + क्त = गृहीतः, ग्रह् + तुमुन् = ग्रहीतुम्। अपवाद—पृच्छत् (प्रच्छ् + शतृ), उपकृत्य आदि।

(१) वर्तमानकालिक कृत्-प्रत्यय (Present Participle)—शतृ, शानच्[1]

वर्तमानकाल में किसी कार्य के लगातार होते रहने के अर्थ में परस्मैपदी धातुओं से शतृ (अत्), आत्मनेपदी धातुओं से शानच् (आन या मान) और उभयपदी धातुओं से दोनों प्रकार के प्रत्यय होते है[2]। जैसे—पठ + शतृ = पठत् (पढ़ता हुआ); वृध् + शानच् = वर्धमान (बढ़ता हुआ)।

(क) परस्मैपदी धातुओं से 'शतृ' प्रत्ययान्त रूप—

धातु अर्थ	नपुं० (अत्)	पुं० (अन्)	स्त्री० (अन्ती-असी)
भू = होना	भवत्	भवन्	भवन्ती
पठ् = पढ़ना	पठत्	पठन्	पठन्ती
पा = पीना	पिबत्	पिबन्	पिबन्ती

---

१. (क) 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययान्त शब्द कर्त्ता के विशेषण होते हैं। जैसे—गच्छन् बालकः। वर्धमानेन बालकेन। पठन्त्याः नार्याः। पठन्ती स्त्री। वर्धमानं वनम्। (ख) इनके रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। जैसे—'शतृ' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'धावत्', स्त्री० में 'नदी' और नपुं० में 'जगत्' की तरह। 'शानच्' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'राम', स्त्री० में 'लता' और नपुं० में 'ज्ञान' की तरह। (ग) कुछ अन्य वर्तमानकालिक कृदन्त रूप। जैसे—आस् + शानच्=आसीनः।[3] पू + शानन्=पवमानः। यज् + शानन्=यजमानः।[4] विद् + शतृ = विदत्। विद् + वसु = विद्वस्।[5] (घ) ऊपर के उदाहरण कर्तृवाच्य में हैं। यदि कर्मवाच्य करेंगे तो कर्मवाच्य का प्रत्यय जुड़ेगा और सभी धातुओं में 'शानच्' प्रत्यय ही जुड़ेगा, शतृ नहीं। जैसे—पठ् > पठ्यमान (पठ् + य + शानच्) = जो पढ़ा जा रहा हो। प्रयोग होगा—पठ्यमानं पुस्तकम्। पठ्यमानः ग्रन्थः आदि।

२. (क) अदादि, स्वादि, क्र्यादि, तनादि और जुहोत्यादि में 'अती' होता है। (ख)

---

1. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे। अ० ३. २. १२४.
2. ईदासः। अ० ७. २. ८३.
3. पूङ्यजोः शानन्। अ० ३. २. १२८. 4. विदेःशतुर्वसुः। अ० ७. १. ३६.

स्वप् = सोना (अदादिगण)	स्वपत्	स्वपन्	स्वपती
दृश् = देखना	पश्यत्	पश्यन्	पश्यन्ती

अन्य उदाहरण—स्था = ठहरना > तिष्ठत्, तिष्ठन्, तिष्ठन्ती। श्रु = सुनना > शृण्वत्, शृण्वन्, शृण्वती। अस् = होना (अदादिगण) > सत्, सन्, सती। इष् = इच्छा करना (तुदादिगण) > इच्छत्, इच्छन्, इच्छती या इच्छन्ती। गै = गाना > गायत्, गायन्, गायन्ती। घ्रा = सूंघना > जिघ्रत्, जिघ्रन्, जिघ्रन्ती। प्रच्छ् = पूछना (तुदादिगण) > पृच्छत्, पृच्छन्, पृच्छती या पृच्छन्ती।

(ख) आत्मनेपदी धातुओं से 'शानच्' प्रत्ययान्त रूप—

धातु	अर्थ	नपुं० (आनम्-मानम्)	पुं० (आनः-मानः)	स्त्री० (आना-माना)
वृध्	बढ़ना (भ्वादि)	वर्धमानम्	वर्धमानः	वर्धमाना
ईक्ष्	देखना (भ्वादि)	ईक्षमाणम्	ईक्षमाणः	ईक्षमाणा
शीङ्	सोना (अदादि)	शयानम्	शयानः	शयाना
सेव्	सेवा करना (भ्वादि)	सेवमानम्	सेवमानः	सेवमाना

(ग) उभयपदी धातुओं से 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययान्त रूप—

धातु	अर्थ	नपु० (शतृ, शानच्)	पुं० (शतृ, शानच्)	स्त्री० (शतृ, शानच्)
नी	ले जाना (भ्वादि)	नयत्, नयमानम्	नयन्, नयमानः	नयन्ती, नयमाना
ब्रू	कहना (अदादि)	ब्रुवत्, ब्रुवाणम्	ब्रुवन्, ब्रुवाणः	ब्रुवती, ब्रुवाणा
दा	देना (जुहोत्यादि)	ददत्, ददानम्	ददत्,[1] ददानः	ददती, ददाना
धा	रखना (जुहोत्यादि)	दधत्, दधानम्	दधत्, दधानः	दधती, दधाना
ज्ञा	जानना (क्रयादि)	जानत्, जानानम्	जानन्, जानानः	जानती, जानाना
कृ	करना (तनादि)	कुर्वत्, कुर्वाणम्	कुर्वन्, कुर्वाणः	कुर्वती, कुर्वाणा

'शतृ' और 'शानच्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—

१. लट् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन में धातु का जो रूप बनता है उसमें से 'ति' प्रत्यय हटाकर 'शतृ' अथवा 'शानच्' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है।

२. यदि 'शतृ' अथवा 'शानच्' प्रत्यय जोड़ने के पूर्व धातुरूप में 'अ' हो तो 'शतृ' प्रत्यय जुड़ने पर उस 'अ' का लोप हो जाता है और 'शानच्' प्रत्यय जुड़ने

अदादिगणीय आकारान्त और तुदादिगणीय धातुओं में विकल्प से 'अती' और 'अन्ती' दो रूप बनते हैं। जैसे—भाती, भान्ती। लिखती, लिखन्ती। (ग) अन्यत्र 'अन्ती' होता है।

१. द्विरुक्तधातुओं में 'नुम्' नहीं होगा। (नाभ्यस्ताच्छतुः। अ० ७.१.७८.)

पर 'आन' के स्थान पर 'मान' हो जाता है।[१]

(२) भविष्यत्-कालिक कृत्-प्रत्यय (Future Participle)—शतृ, शानच्

वर्तमानकालिक 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्यय जब 'लृट्' लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन के धातुरूप में जुड़ते हैं तो उससे भविष्यत्-काल में किसी कार्य के लगातार होते रहने का बोध होता है।[1] जैसे—पठ् > पठिष्यत् (पढ़ता हुआ होगा), दृश् > द्रक्ष्यत् (देखता हुआ होगा), याच् > याचिष्यमाण (माँगता हुआ होगा), वृध् > वर्धिष्यमाण (बढ़ता हुआ होगा)। भू > भविष्यत्, भविष्यन्, भविष्यन्ती। सह् > सहिष्यमाणम्, सहिष्यमाणः, सहिष्यमाणा।

नोट—भविष्यत्काल में शतृ और शानच् के जुड़ने पर उसमें भविष्यत्कालिक प्रत्यय 'स्य' या 'इस्य' भी जुड़ता है, शेष वर्तमानकाल की तरह है।

(३) भूतकालिक कृत्-प्रत्यय (Past Participle)—क्त और क्तवतु[2]

भूतकाल में किसी कार्य की समाप्ति के अर्थ को प्रकट करने के लिए 'क्त' (त) और 'क्तवतु' (तवत्) प्रत्यय होते हैं।[२] जैसे—

१. आने मुक् (७. २. ८२)—अदन्त अङ्ग को मुक् (म्) का आगम होता है। अतः भ्वादि में शप् (अ), दिवादि में श्यन् (य), तुदादि में श (अ) और चुरादि में शप् (अ) जुड़ने से इन गणों की धातुयें अदन्त (अ + अन्त) होती हैं। अतः इन्हीं गणों की धातुओं में 'म' होगा, अन्यत्र नहीं।

२. (क) इनका प्रयोग विशेषण और क्रिया दोनों रूपों में होता है। जैसे—गतस्य गतवतः वा बालकस्य (विशेषण के रूप में)। बालकः गतः गतवान् वा (क्रिया के रूप में)। (ख) इनके रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। जैसे—'क्त' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'राम', नपुं० में 'ज्ञान' और स्त्री० में 'लता' की तरह। 'क्तवतु' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'भगवत्', नपुं० में 'जगत्' और स्त्री० में 'नदी' की तरह। (ग) 'क्तवतु' प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है। अतः 'क्तवतु' प्रत्यय लगाने पर कर्त्ता के लिङ्ग, वचन और विभक्ति का उस पर प्रभाव पड़ता है। जैसे—ते पठितवन्तः। (घ) 'क्त' प्रत्यय प्रायः कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। अतः 'क्त' प्रत्यय लगाने पर कर्मवाच्य में कर्म के लिङ्ग आदि का तथा भाववाच्य में भाव (नपुं० एकवचन) का प्रभाव पड़ता है। जैसे—तेन पुस्तकं पठितम्। तेन हसितम्। (ङ) गत्यर्थक, अकर्मक, श्लिष्, शीङ्, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह् तथा जृ धातुओं से 'क्त' प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी होता है।[3] अतः जब 'क्त' प्रत्यय कर्तृवाच्य में

1. लटः सद्वा। अ० ३. ३. १४. 2. क्तक्तवतू निष्ठा। अ० १. २. २६.
3. गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च। अ० ३. ४. ७२.

धातु	अर्थ	नपुं० क्त (तम्)	नपुं० क्तवतु (तवत्)	पुं० क्त (तः)	पुं० क्तवतु (तवान्)	स्त्री० क्त (ता)	स्त्री० क्तवतु (तवती)
भू	= होना >	भूतम्,	भूतवत्	भूतः,	भूतवान्	भूता,	भूतवती
गम्	= जानः >	गतम्,	गतवत्	गतः,	गतवान्	गता,	गतवती
पठ्	= पढ़ना >	पठितम्	पठितवत्	पठितः,	पठितवान्	पठिता,	पठितवती
कृ	= करना >	कृतम्,	कृतवत्,	कृतः,	कृतवान्	कृता,	कृतवती
सह्	= सहना >	सोढम्,	सोढवत्	सोढः,	सोढवान्	सोढा,	सोढवती
धा	= रखना >	हितम्,	हितवत्	हितः,	हितवान्	हिता,	हितवती
घ्रा	= सूँघना >	घ्राणम् } घ्रातम् }	घ्राणवत् घ्रातवत्	घ्राणः } घ्रातः }	घ्राणवान् घ्रातवान्	घ्राणा } घ्राता }	घ्राणवती, घ्रातवती
खिद्	= खिन्नहोना >	खिन्नम्,	खिन्नवत्	खिन्नः,	खिन्नवान्	खिन्ना,	खिन्नवती
मुच्	= मुक्तहोना >	मुक्तम्	मुक्तवत्	मुक्तः,	मुक्तवान्	मुक्ता,	मुक्तवती
पा	= पान करना >	पीतम्,	पीतवत्,	पीतः,	पीतवान्	पीता,	पीतवती
पा	= रक्षा करना >	पातम्,	पातवत्	पातः,	पातवान्	पाता,	पातवती
जन्	= पैदा होना >	जातम्,	जातवत्	जातः,	जातवान्	जाता,	जातवती

'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—

१. धातु को 'गुण' तथा 'वृद्धि' नहीं होती। जैसे—हृ > हृतः, कथ् > कथितः, विद् > विदितः, पूज् > पूजितः, स्मृ > स्मृतः, अर्च् > अर्चितः, पत् > पतितः।

२. व्यञ्जनान्त 'सेट्' धातुओं से 'इ' जुड़ता है, अनिट् में नहीं। जैसे—लिख् > लिखितम्।

३. 'ऋ' से 'ईर्' या 'ऊर्' होने पर यदि धातु के अन्त में 'र्' या 'द्' हो (धातु और प्रत्यय के मध्य 'ई' न हो) तो प्रत्यय के 'त्' को 'न्', धातु के 'द्' को 'न्' और 'ऋ' को 'ईर्' या 'ऊर्' होता है।[1] जैसे—तॄ > तीर्णः; पॄ > पूर्णः; छिद् > छिन्नः। भिद् > भिन्नः, शॄ > शीर्णः, जॄ > जीर्णः, कॄ > कीर्णः, गॄ > गीर्णः।

४. 'वच्' आदि सम्प्रसारण वाली धातुओं में सम्प्रसारण (यदि पहला अक्षर 'य्, र्, ल्, व्' है तो क्रमशः 'इ, ऋ, ऌ, उ') होता है।[2] जैसे—ब्रू (वच्) > उक्तः; वस् > उषितः; यज् > इष्टः; स्वप् > सुप्तः; ग्रह् > गृहीतः; प्रच्छ् > पृष्टः; वह् > ऊढः, वद् > उदितः।

होगा तो उस पर कर्त्ता के लिङ्ग, वचन आदि का प्रभाव पड़ेगा। जैसे—सः गृहं गतः। तेन भूतम्।

1. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः। अ० ८. २. ४२.

2. इग्यणः सम्प्रसारणम्। अ० १. १. ४५.

५. 'मा', 'स्था' के 'आ' को 'इ' तथा 'गा', 'पा', 'हा' के 'आ' को 'ई' होता है। जैसे—परिमितः, स्थितः, गीतः, पीतः, हीनः।

६. यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन्, वन् और तनादिगणीय धातुओं के 'म्' और 'न्' का लोप होता है। जैसे—संयतः, रतः, नतः, गतः, हतः, मतः।

७. जन्, सन्, खन् के 'न्' को 'आ' होगा। जैसे—जातः, सातः, खातः।

८. उपधा के 'न्' का प्रायः लोप होता है। जैसे—बन्ध् > बद्धः, दंश् > दष्टः।

९. पृष्ठ ३८ (क्त्वा प्रत्यय) के नियम नं० ४-५ भी लगेंगे। जैसे—लभ् > लब्धः, त्यज् > त्यक्तः, + सृज् > सृष्टः।

नोट—(१) 'क्त' प्रत्ययान्त रूपों में 'वत्' जोड़ देने से 'क्तवतु' प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं। (२) कुछ अन्य 'क्त', 'क्तवतु' प्रत्ययान्त रूप—दा > दत्तः; अस् > भूतः; अद् > जग्धः; पच् > पक्वः; शुष् > शुष्कः; शम् > शान्तः; शीङ् > शयितः; सिच् > सिक्तः; आह्वे > आहूतः; गै > गीतः; त्रै > त्रातः, दुह् > दुग्धः; दिव् > द्यूतः, चुर् > चोरितः, प्रच्छ् = पृष्टः, इष् = इष्टः, शास् > शिष्टः, श्रु > श्रुतः, स्पृश् > स्पृष्टः, अधि + इ > अधीतः; क्षि > क्षीणः, क्रम् > क्रान्तः, चि > चितः, बुध् > बुद्धः, वि + धा > विहितः, लिह् > लीढः, आ + रभ् > आरब्धः, कम् > कान्तः।

(४) पूर्वकालिक क्रिया (Gerund = Indeclinable Participle)

क्त्वा और ल्यप्—'कर' या 'करके' अर्थ में क्त्वा (त्वा) और ल्यप् (य) प्रत्यय होते हैं। अर्थात् जब एक कर्त्ता की एकाधिक क्रियायें होती हैं तो पूर्वकालिक क्रिया-बोधक धातुओं में 'त्वा' और 'य' प्रत्यय जुड़ते हैं[1]। जैसे—भू + क्त्वा = भूत्वा। अनु + भू + ल्यप् = अनुभूय। धा + क्त्वा = हित्वा। वि + धा + ल्यप् = विधाय।

धातु	क्त्वा	ल्यप्	धातु	क्त्वा	ल्यप्
जि (जीतना)	जित्वा	विजित्य	दा (देना)	दत्वा	प्रदाय
कृ (करना)	कृत्वा	अनुकृत्य	गम् (जाना)	गत्वा	आगत्य, आगम्य
भ्रम् (घूमना)	भ्रमित्वा, भ्रान्त्वा	विभ्रम्य	पा (पीना)	पीत्वा	निपाय, निपीय (नि + पीय्)
इ (जाना)	इत्वा	उपेत्य	ईक्ष् (देखना)	ईक्षित्वा	परीक्ष्य
दृश् (देखना)	दृष्ट्वा	संदृश्य	दह् (जलाना)	दग्ध्वा	प्रदह्य
लभ् (पाना)	लब्ध्वा	उपलभ्य	वद् (कहना)	उदित्वा	अनूद्य

नोट—१. ये अव्यय होते हैं। अतः इनके रूप सर्वत्र एक समान चलते हैं।

२. जब धातु के पहले कोई अव्यय या उपसर्ग होता है तब 'ल्यप्' प्रत्यय जुड़ता है, अन्यत्र (उपसर्ग आदि के न होने पर) 'क्त्वा'।

1. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले। अ० ३. ४. २१.

* पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में णमुल् प्रत्यय भी होता है। जैसे—भुज् > भोजं भोजं

३. 'नञ् समास' होने पर 'ल्यप्' नहीं होगा[1] । जैसे—अ + गम् = अगत्वा

'क्त्वा' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—

१. धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी । जैसे—हृ > हृत्वा, कृ > कृत्वा ।

२. 'सेट्' धातुओं से 'इ' जुड़ता है, अनिट् में नहीं । जैसे—पठ् > पठित्वा

३. 'वच्' आदि सम्प्रसारण वाली धातुओं में सम्प्रसारण (य्, र्, ल्, व् को क्रमशः इ, ऋ, ऌ, उ) होता है । जैसे—वच् > उक्त्वा; यज् > इष्ट्वा; ग्रह् > गृहीत्वा; स्वप् > सुप्त्वा; वह् > ऊढ्वा; वप् > उप्त्वा; वस् > उषित्वा ।

४. धातु के अंतिम 'च्' तथा 'ज्' को 'क्'; 'द्' को 'त्'; 'भ्' को 'ब्' और 'ध्' को 'द्' हो जाता है । जैसे—भुज् > भुक्त्वा; पच् > पक्त्वा; बुध् > बुद्ध्वा; त्यज् > त्यक्त्वा; छिद् > छित्त्वा, रुध् > रुद्ध्वा, लभ् > लब्ध्वा ।

५. धातु के अंतिम 'क्ष्' और 'श्' को तथा भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्राज् इन धातुओं के 'ज्' को 'ष्' हो जाता है । जैसे—प्रच्छ् > पृष्ट्वा, सृज् > सृष्ट्वा; विश् > विष्ट्वा, यज् > इष्ट्वा ।

६. 'ऋ' को 'ईर्' या 'ऊर्' होता है । जैसे—तॄ > तीर्त्वा, पॄ > पूर्त्वा ।

७ 'धा', 'हा' 'भा' और 'स्था' के 'आ' को 'इ'; 'गा' और 'पा' के 'आ' को 'ई' होता है । जैसे—भा > भित्वा; स्था > स्थित्वा; गा > गीत्वा; पा > पीत्वा, हा > हित्वा, धा > हित्वा ।

८. यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन्, वन् और तनादिगणीय धातुओं के 'म्' और 'न्' का लोप हो जाता है । जैसे—गम् > गत्वा; हन् > हत्वा ।

९. उपधा के 'न्' का प्रायः लोप हो जाता है । जैसे—बन्ध् > बद्ध्वा ।

१०. जन्, सन् और खन् के 'न्' को या तो 'आ' होता है या फिर 'इ' का आगम होता है । जैसे—जन् > जात्वा-जनित्वा; सात्वा-सनित्वा; खात्वा-खनित्वा ।

नोट १. प्रायः ये सभी नियम 'क्त', 'क्तवतु' प्रत्यय जोड़ते समय भी लगते हैं ।

२. कुछ अन्य 'क्त्वा' प्रत्ययान्त रूप—कम् > कमित्वा-कान्त्वा; क्रम् > क्रमित्वा-क्रान्त्वा; शम् > शमित्वा-शान्त्वा; श्रम् > श्रमित्वा-श्रान्त्वा; दा > दत्त्वा, अद् > जग्ध्वा, चि > चित्वा, दुह् > दुग्ध्वा, सिच् > सिक्त्वा; रुह् > रूढ्वा, ह्वे > हूत्वा, गण् > गणयित्वा, ग्रन्थ् > ग्रन्थित्वा, रञ्ज् > रक्त्वा-रङ्क्त्वा, भञ्ज् > भक्त्वा-भङ्क्त्वा, नश् > नष्ट्वा-नंष्ट्वा-नशित्वा, भज् > भजित्वा ।

'ल्यप्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम —

१. प्रायः धातु मूल रूप में रहती है । जैसे—आनीय, आलिख्य, प्रदाय ।

२. धातु के अन्त में यदि ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ) हो तो 'ल्यप्' के पहले

1. रागारोऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप । अ० ७. १. ३७

'त्' (तुक्) जुड़ जाता है ।[1] जैसे—वि + जि > विजित्य, प्र + हृ > प्रहृत्य ।

३. णिजन्त और चुरादिगणीय धातुओं की उपधा में यदि ह्रस्व स्वर हो तो 'ल्यप्' के पहले 'अय्' जुड़ता है ।[2] जैसे प्र + णम् > प्रणमय्य, वि + गण् > विगणय्य, वि + रच् > विरचय्य ।

४. गम्, नम्, यम्, रम् धातुओं के 'म्' का विकल्प से तथा हन्, तन्, मद् धातुओं के 'न्' का नित्य लोप होता है । जैसे—आ + गम् > आगत्य - आगम्य, आ + हन् > आहत्य, प्र + नम् > प्रणत्य-प्रणम्य, अनु + मन् > अनुमत्य ।

नोट – (१) 'क्त्वा' प्रत्यय के नियम नं० ३ और ६ भी लगते हैं । जैसे—प्र + वच् > प्रोच्य, उत् + तॄ = उत्तीर्य । (२) कुछ अन्य 'ल्यप्' प्रत्ययान्त रूप—ह्वे > आहूय, वस् > अध्युष्य, आप् > प्राप्य, विचारि > विचार्य, प्रहारि > पहार्य, सम् + ज्ञी > संज्ञय्य, प्र + दृश् > प्रदर्श्य (णिजन्त) अधि + इङ् = अधीत्य ।

(५) विधि-कृदन्त (Potential Participle)—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत्[5]

विधि, चाहिए, योग्यता आदि अर्थों में तव्यत् (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय) और यत् (य) प्रत्यय होते हैं[1] । 'तव्यत्' और 'तव्य' प्रत्ययान्त रूपों में कोई अन्तर नहीं होता है । उसका प्रभाव केवल स्वरप्र-क्रिया पर पड़ता है ।

(क) 'तव्यत्' और 'अनीयर्' प्रत्ययान्त रूप—

धातु	नपुं० (तव्यम्)	(अनीयम्)	पुं० (तव्यः)	(अनीयः)	स्त्री० (तव्या)	(अनीया)
भू[5]	भवितव्यम्,	भवनीयम्	—	—	—	—
पठ्	पठितव्यम्,	पठनीयम्	पठितव्यः,	पठनीयः	पठितव्या,	पठनीया
गम्	गन्तव्यम्,	गमनीयम्	गन्तव्यः,	गमनीयः	गन्तव्या	गमनीया

१. (क) विधि अर्थ में तव्यत्, तव्य, अनीयर् और यत् के अलावा 'केलिमर्' (एलिम), 'क्यप्' (य) और 'ण्यत् (य) ये प्रत्यय भी होते हैं ।[4] इन सभी प्रत्ययों को 'कृत्य-प्रत्यय' कहा जाता है । उदाहरण—पच् + केलिमर् = पचेलिमम्, भिद् > भिदेलिमम्, स्तु + क्यप् = स्तुत्यम्, कृ + ण्यत् = कार्यम् । (ख) कृत्य-प्रत्ययान्त संज्ञाओं के रूप पुं० में 'राम', नपुं० में 'ज्ञान' और स्त्री० में 'लता' की तरह चलेंगे । (ग) कभी-कभी इन प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है । जैसे—कर्तव्यं कर्म, दानीयो विप्रः (दीयतेऽस्मै) ।

1. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् । अ० ६.१.७१. 2. ल्यपि लघुपूर्वात् । अ० ६.४.५९
3. तव्यत्तव्यानीयरः । अचो यत् । अ० ३.१.९६.९७
4. केलिमर उपसंख्यानम् (वा०) । एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् । (अ० ३.१.१०९) । मृजेर्विभाषा । अ० ३.१.११३ । ऋहलोर्ण्यत् । अ० ३.१.१२४ ।
5. अकर्मक धातुओं से केवल नपुं० के रूप बनेंगे ।

दृश्	द्रष्टव्यम्,	दर्शनीयम्	द्रष्टव्यः,	दर्शनीयः	द्रष्टव्या,	दर्शनीया
नी	नेतव्यम्,	नयनीयम्	नेतव्यः,	नयनीयः	नेतव्या,	नयनीया
दा	दातव्यम्,	दानीयम्	दातव्यः,	दानीयः	दातव्या,	दानीया
भुज्	भोक्तव्यम्	भोजनीयम्	भोक्तव्यः,	भोजनीयः	भोक्तव्या,	भोजनीया
अद्	अत्तव्यम्,	अदनीयम्	अत्तव्यः,	अदनीयः	अत्तव्या	अदनीया
पच्	पक्तव्यम्,	पचनीयम्	पक्तव्यः,	पचनीयः	पक्तव्या,	पचनीया
कथ्	कथयितव्यम्	कथनीयम्	कथयितव्यः,	कथनीयः	कथयितव्या,	कथनीया

(घ) ये प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में ही होते हैं। कर्तृवाच्य में इस अर्थ में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। कर्मवाच्य में इनका लिङ्ग आदि कर्म के अनुसार और भाववाच्य में नपुं० एकवचन में होता है। जैसे—मया पुस्तकं पठितव्यम्। (ङ) कुछ शब्द कर्तृवाच्य में भी होते हैं। जैसे—भव्योऽयं भव्यमनेन वा। भू + यत् = भव्यः (होनेवाला)। गै + यत् = गेयः (गाने वाला)। प्रवच् + अनीयर् = प्रवचनीयः (व्याख्यान करनेवाला), उप + स्था + अनीयर् = उपस्थानीयः (निकट खड़ा होने वाला), जन् + यत् = जन्यः (पैदा करने वाला), आप्लु + ण्यत् = आप्लव्यः (तैरने वाला), आपत् + ण्यत् = आपात्यः।

(च) ण्यत् (य) प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—(१) ऋवर्णान्त तथा हलन्त धातुओं से 'ण्यत्' होता है। जैसे—कृ + ण्यत् = कार्यम् (नपुं०), कार्यः (पुं०), कार्या (स्त्री०)। मृज् + ण्यत् = मार्ग्यः (पवित्र करने योग्य। 'मृजेर्वृद्धिः'। अ० ७. २. ११४ सूत्र से वृद्धि)। हृ > हार्यम्। स्मृ > स्मार्यम्। पठ् > पाठ्यम्। (२) धातु के अन्तिम स्वर को वृद्धि। यदि उपधा में अकार हो तो उसकी वृद्धि (आ), अन्य स्वर हो तो प्रायः गुण। मृज् के उपधा के ऋ को भी वृद्धि होगी। जैसे—मृज् > मार्ग्यः। कृ > कार्यम्। वह् > वाह्यम्। हन् > घात्यम्। हृ < हार्यम्। धृ > धार्यम्। (३) चकार और जकार को कुत्व (च > क्, ज > ग्) होता है। जैसे—भुज् > भोग्य (भोग करने योग्य)। वच् > वाक्य (पदसमूह)। अपवाद—यज् > याज्य (यज्ञ में देने योग्य, पूज्य), रुच > रोच्य। याच् > याच्य। भुज् > भोज्य (खाने योग्य)। वच् > वाच्य (कहने योग्य)। ऋच् > अर्च्य। त्यज् > त्याज्य। (४) उकारान्त एवं ऊकारान्त धातुओं में भी 'ण्यत्' जुड़ता है यदि आवश्यकता का अर्थबोध कराना हो। जैसे—श्रु > श्राव्य (अवश्य सुनने के योग्य)। पू > पाव्य। (छ) क्यप् प्रत्यय—इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष् धातुओं में [तथा मृज् में विकल्प से] क्यप् होता है। जैसे—इण् > इत्यः, स्तु > स्तुत्यः। मृज् > मृज्यः। शास् > शिष्यः। वृ > वृत्यः। आ + दृ > आदृत्यः। जुष् > जुष्यः।

चुर् चोरयितव्यम्, चोरणीयम् चोरयितव्यः, चोरणीयः चोरयितव्या, चोरणीया
चिन्त् चिन्तयितव्यम्, चिन्तनीयम् चिन्तयितव्यः, चिन्तनीयः चिन्तयितव्या चिन्तनीया
एध् एधितव्यम्, एधनीयम् — — — —
भ्रम् भ्रमितव्यम्, भ्रमणीयम् भ्रमितव्यः, भ्रमणीयः भ्रमितव्या, भ्रमणीया

'तव्यत्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—

१. धातु के अन्तिम और उपधा के स्वर (इ, उ, ऋ) को गुण होता है। जैसे—कृ > कर्तव्यम्; हृ > हर्तव्यम्; लिख् > लेखितव्यम्; रुद् > रोदितव्यम्; दुह् > दोग्धव्यम्।

२. धातु के अन्तिम च् ज् > क् में, द > त् में; भ् > ब् में; ध् > द् में और म् > न् में बदल जाते हैं। जैसे—लभ् > लब्धव्यम्; वच् > वक्तव्यम्; युध् > योद्धव्यम्, गम् > गन्तव्यम्, नम् > नन्तव्यम्।

३. धातु के अंतिम 'ए', 'ऐ' को 'आ' हो जाता है। जैसे—त्रै > त्रातव्यम्।

४. सेट् धातुओं के बीच में 'इ' जुड़ता है। जैसे—भू > भवितव्यम्।

'अनीयर्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—

१. धातु के अन्तिम और उपधा के स्वर को गुण होता है। जैसे—लिख् > लेखनीयम्, इ > अयनीयम्, स्तु > स्तवनीयम्, स्मृ > स्मरणीयम्।

२. धातु के अन्तिम 'ए' और 'ऐ' को 'आ' हो जाता है। जैसे—गै > गानीयम्, त्रै > त्राणीयम्।

(ख) यत् प्रत्ययान्त रूप—

'यत्' (य) प्रत्यय प्रायः स्वरान्त धातुओं में तथा पवर्गान्त धातुओं में [साथ ही उनकी उपधा में 'अ' हो] जुड़ता है।[1] जैसे—दा + यत् = देयम् (नपुं०), देयः (पुं०), देया (स्त्री०)। गम् > गम्यम्। नम् > नम्यम्, जप् > जप्यम्। शप् > शप्यम्। लप् > लप्यम्। लभ् > लभ्यम्, रम् > रम्यम्।

'यत्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—

१. धातु के अन्तिम 'आ, इ, ई, ओ, औ, ए, ऐ' स्वरों के स्थान पर 'ए' (इ > ए) होता है।[2] जैसे—पा + यत् = पेयम्, हा > हेयम्। ग्लै > ग्लेयम् (ग्लानि करना चाहिए)। चि > चेयम् (चयन करना चाहिए)। स्था > स्थेयम्। दा > देयम्। धा > धेयम्। मा > मेयम्। गै > गेयम्। छो > छेयम्। नी > नेयम्।

1. अचो यत्। पोरदुपधात्। अ० ३. १. ९७-९८.
2. ईद्यति (अ० ६. ४. ६५)—'यत्' प्रत्यय के पर में होने पर 'आ' को 'इ' होता है, पश्चात् 'इ' को 'ए' गुण होता है। इसी प्रकार ऐ आदि के विषय में भी जानना चाहिए।

२. धातु के अन्तिम 'उ ऊ' को गुण एवं अवादेश होता है। जैसे—श्रु > श्रव्यम्। हु > हव्यम्। भू > भव्यम्। सु > सव्यम्।

३. 'लभ्' धातु के पूर्व 'आ' अथवा 'उप' उपसर्ग प्रशंसा के अर्थ में जुड़ा होने पर नुम् (न् > म्) का आगम होता है।[1] जैसे—आ + लभ् > आलम्भ्य। उप + लभ् > उपलम्भ्य (उपलम्भ्यः साधुः = साधु प्रशंसनीय है। प्रशंसा अर्थ न होने पर उपलभ्य = 'उलाहना योग्य' होगा)।

४. विशेष प्रयोग (पवर्गभिन्न व्यञ्जनान्त धातुओं में)—जन् > जन्यम्। हन् > वध् > वध्यम्। शक् > शक्यम्। सह् > सह्यम्। गद् > गद्यम्। मद् > मद्यम्। चर् > चर्यम्।

(६) निमित्तार्थक (Gerundial infinitive)—'तुमुन्'

जब कोई क्रिया किसी दूसरी क्रिया के निमित्त से की जाती है तो निमित्तार्थक क्रिया में 'तुमुन्' (तुम्) प्रत्यय होता है।[2] अर्थात् 'को', 'के लिए' अर्थ में 'तुम्' प्रत्यय होता है। जैसे—भू > भवितुम्, हन् > हन्तुम्, दा > दातुम्, दृश् >, द्रष्टुम्, सह् > सोढुम्, वह् > वोढुम्, कृ > कर्तुम्, लिख् > लेखितुम्, गम् > गन्तुम्, त्रै > त्रातुम्।

'तुमुन्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—

'तव्यत्' प्रत्यय जोड़ते समय जो नियम लगते हैं वही यहाँ भी लगते हैं। अतः 'तव्य' के स्थान पर 'तुम्' पद रख देने से 'तुमुन्' प्रत्ययान्त पद बन जाते हैं।[3]

(७) कर्तृवाचक (Agent of the action)—ण्वुल्, तृच् और णिनि

कर्त्ता (करने वाला) अर्थ में ण्वुल् (अक), तृच् (तृ) और णिनि (इन) प्रत्यय होते हैं।[4] जैसे—

१. (क) 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं। (ख) तुमुनन्त क्रिया जिस क्रिया के साथ आती है उसकी अपेक्षा तुमुनन्त क्रिया बाद में समाप्त होती है। जैसे—सः रामं द्रष्टुं याति। (ग) तुमुनन्त क्रिया और मुख्य क्रिया का कर्त्ता एक ही होता है।[5] (घ) तुमुनन्त क्रिया के बाद यदि 'काम' या 'मनस्' (इच्छार्थक) शब्द हों तो 'तुम्' के 'म्' का लोप हो जाता है।[6] जैसे—वक्तुकामः, वक्तुमनाः।

२. कर्त्ता अर्थ में और भी कई प्रत्यय होते हैं। जैसे—खच् (अ)—प्रियंवदः (प्रियं

1. आङो यि। उपात्प्रशंसायाम्। अ० ७.१.६५.६६।
2. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्। अ० ३. ३. १०.
3. समानकर्तृकेषु तुमुन्। अ० ३. ३. १५८.
4. तुमुन्मनसोरपि। काशिका, ६. १. १४४.

(क) ण्वुल् और तृच् प्रत्ययान्त रूप[1]—

धातु	'ण्वुल्' प्रत्ययान्त पद[1]			'तृच्' प्रत्ययान्त पद[1]		
	नपुं० (अकम्)	पुं० (अकः)	स्त्री० (इका)	नपुं० (तृ)	पुं० (ता)	स्त्री० (त्री)

वदतीति)[2], वशंवदः, पतिंवरा। खश्[3] (अ)—स्तनन्धयः (स्तनं धयतीति), जनमेजयः (जन + एज् + खश्)। ट[4] (अ)—दिवाकरः, निशाकरः, भास्करः, कुरुचरः। क[5] (अ)—गोदः (गां ददातीति), सुखदः, बुधः, प्रियः (प्रीणातीति)। कञ्[6] (अ)—तादृशः (तद् + दृश् + कञ्), सदृशः। क्विप्[7] (लोप)—ब्रह्महा (ब्रह्म + हन् + क्विप्), कर्मकृत्, पक्षच्छित्। ड[8] (अ)—अजः, द्विजः, सर्वगः, उरगः। ल्यु[9] (अन)—नन्दनः (नन्द + ल्यु = नन्दयतीति) जनार्दनः। वुञ्[10] (अक)—निन्दकः, हिंसकः। इष्णुच्[11] (इष्णु)—सहिष्णुः, अलङ्करिष्णुः। आलुच्[12] (आलु)—दयालुः, निद्रालुः, श्रद्धालुः। उ[13]—चिकीर्षुः, पिपासुः। युच्[14] (अन)—चलनः (चलितुं शीलम् यस्य सः)। षाकन्[15] (आक)—जल्पाकः, वराकः (वृ + षाकन्)।

१. (क) 'ण्वुल्' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'राम', स्त्री० में 'लता' और नपुं० में 'ज्ञान' की तरह चलेंगे। (ख) 'तृच्' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप स्त्री० में 'नदी'; पुं० और नपुं० में 'कर्तृ' की तरह चलेंगे। (ग) 'तृच्' प्रत्ययान्त पदों के साथ कर्म में षष्ठी होती है। जैसे—धनस्य हर्ता। (घ) कभी-कभी 'ण्वुल्' का प्रयोग 'तुमुन्' की तरह क्रिया के रूप में भी होता है।[16] जैसे—रामं दर्शको द्रष्टुं वा गच्छति। (ङ) मृज् धातु से 'तृच्' प्रत्यय करने पर 'मार्ष्टृ' रूप बनता है।

1. ण्वुल्तृचौ। अ० ३. १. १३३.
2. प्रियवशे वदः खच्। संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः। गमश्च। अ० ३ २. ३८, ४६-४७.
3. अ० ३. २. २६, ३१-३२, ३५-३६, ८३. 4 अ० ३. २. २०-२२.
5. अ० ३. २. ३-४; ३. १. १३५-१३६, १४४.
6. त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च। अ० ३. २. ६०.
7. ३. २. ६१, ७८, ८६, १७७. 8. अ० ३. २. ४८, ६७–१०१.
9. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। अ० ३. १. १३४.
10. अ० ३. २. १४६. 11. अ० ३. २. १३६. 12. अ० ३. २. १५८.
13. सनाशंसभिक्ष उः। अ० ३. २. १६८. 14. अ० ३. २. १४८, १५१
15. जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्। अ० ३. २. १५५,
16. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्। अ० ३. ३. १०.

नी> कृ>	नायकम् कारकम्	नायकः कारकः	नायिका कारिका	नेतृ कर्तृ	नेता कर्ता	नेत्री कर्त्री
जन्>	जनकम्	जनकः	जनिका	जनितृ	जनिता	जनित्री
दा>	दायकम्	दायकः	दायिका	दातृ	दाता	दात्री
पठ्>	पाठकम्	पाठकः	पाठिका	पठितृ	पठिता	पठित्री
गम्>	गमकम्	गमकः	गमिका	गन्तृ	गन्ता	गन्त्री
भू, अस्>	भावकम्	भावकः	भाविका	भवितृ	भविता	भवित्री

'ण्वुल्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—(१) धातु के अन्तिम स्वर (इ, उ, ऋ) को वृद्धि तथा उपधा के स्वर को गुण होता है। (२) आकारान्त धातु में प्रत्यय के पूर्व 'य्' जुड़ जाता है। जैसे—पा > पायकः, धा > धायकः।

'तृच्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—'तव्यत्' और 'तुमुन्' प्रत्यय में लगने वाले सभी नियम यहाँ भी लगते हैं। अतः 'तुम्' या 'तव्य' के स्थान पर 'तृ' रख देने से 'तृच्' प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं।

(ख) 'णिनि' प्रत्ययान्त रूप—

जातिवाचक संज्ञाओं (राम आदि) को छोड़कर यदि कोई अन्य सुबन्त (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) किसी धातु के पूर्व हो और उससे आदत (स्वभाव = ताच्छील्य) का भाव सूचित करना हो तो कर्ता अर्थ में णिनि (इन्) प्रत्यय होता है।[1] जैसे—उष्ण + भुज् + णिनि = उष्णभोजिन् > उष्णभोजी (गरम भोजन करने की आदत वाला = उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलः)। यहाँ 'उष्ण' सुबन्त पद गुणवाचक (जातिवाचक नहीं) है। शीत + भुज् = शीतभोजिन् > शीतभोजी। आमिषभोजी, वनवासी, सात्यवादी, हृदयग्राही, शाकाहारी, मांसाहारी, मिथ्यावादी, मित्रद्रोही, मनोहारी।

विशेष—(आदत अर्थ न होने पर भी)—(क) सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से।[2] दर्शनीय + मन् = दर्शनीयमानी (सुन्दर समझने वाला = दर्शनीयं मन्यते), पण्डितमानी। (ख) करण उपपद रहते भूतकाल में 'यज्' धातु से[3]—सोम + यज् = सोमयाजी (जिसने सोम याग किया हो), अग्निष्टोम + यज् = अग्निष्टोमयाजी। (ग) 'हन्' धातु से पूर्व[4] ब्रह्मादि को छोड़कर क्योंकि वहाँ 'क्विप्' होकर ब्रह्महा, वृत्रहा आदि बनेंगे—कुमारघाती, शीर्षघाती, पितृव्यघाती, पुत्रघाती। (घ) साधु और ब्रह्मन् शब्द यदि 'कृ' या 'वद्' धातु के पूर्व में हों।[5] जैसे—साधुकारी, ब्रह्मवादी। (ङ) व्रत अर्थ में[6] जलाशायी। (च) उपमान पूर्व में होने पर—उष्ट्रक्रोशी (उष्ट्र इव क्रोशति),[1] ध्वाङ्क्षरावी (कौवे की तरह शब्द करने वाला)। (छ) अन्य उदाहरण[2]—ग्रह् + णिनि = ग्राही (ग्रहण करने वाला), स्था + णिनि = स्थायी (स्थिर रहने वाला), मन्त्री (सलाह देने वाला), वस् > वासी, निवासी, प्रवासी, अधिवासी, वद् > वादी, प्रतिवादी, लष् > अभिलाषी, राध् > अपराधी, चर् > व्यभिचारी, सृ > संसारी, द्विष् > द्वेषी, रुध् > रोधी, विरोधी, द्रुह् > द्रोही, कृ > अधिकारी, गम् > अनुगामी।

1. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये। अ० ३.२.७८.
2. मनः। अ० ३.२.८२. 3. भूते करणे यजः। अ० ३.२.८४-८५.
4. कर्मणि हनः। ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्। अ० ३.२.८६-८७.
5. साध्वसाधुप्रयोगे च। ब्रह्मणि वदः (वा०)। 6. व्रते। अ० ३.२.८०.

नियम—(१) 'णित्' होने से उपधा के अकार को वृद्धि होगी (अत उपधायाः। ७.२.११६)। जैसे—ग्रह् > ग्राही। दर्शनीयमानी। (२) उपधा के स्वर (इ, उ, ऋ) को गुण, अन्तिम को वृद्धि—उष्णभोजी, अधिकारी। (३) आकारान्त धातु में 'युक्' (य्) आगम होगा। जैसे—स्था + युक् + णिनि = स्थायी। (४) इनके रूप पुं० में नकारान्त 'करिन्' की तरह तथा स्त्री० में 'नदी' की तरह बनेंगे।

(८) भाववाचक संज्ञायें (Abstract nouns)—ल्युट्, घञ् और क्तिन्[3]

भाववाचक (भाव = क्रिया के स्वरूप के सूचक) शब्द बनाने के लिए ल्युट् (अन), घञ् (अ) और क्तिन् (ति) प्रत्यय होते हैं।[4] इनका प्रयोग संज्ञा की तरह होता है। जैसे—

1. भाववाचक संज्ञायें बनाने वाले कुछ अन्य प्रत्यय—(क) **'अच्'** (अ[1]) यह पचादि और इकारान्त धातुओं से पुं० में होता है। जैसे—पच > पचः (दीर्घ नहीं होगा), चुर् > चोरः; युध् > योधः; चि > चयः; नी > नयः; जि > जयः। (ख) **'अप्'** (अ[2]) यह ऋकारान्त और उकारान्त धातुओं में पुं० में होता है। जैसे—स्तु > स्तवः; भू > भवः; कृ > करः। (ग) **'अङ्'** (अ[3]) यह चिन्त् आदि और सोपसर्ग आकारान्त धातुओं से स्त्री० में होता है। जैसे—चिन्त् > चिन्ता; कथ् > कथा; पूज् > पूजा; चर्च > चर्चा; प्र + दा > प्रदा।

1. कर्तर्युपमाने। अ० ३.२.७६.
2. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। अ० ३.१.१३४.
3. ल्युट् च। अ० ३.३.११५; भावे। अ० ३.३.१८; स्त्रियां क्तिन्। अ० ३.३.९४.
4. एरच्। अ० ३.३.५६; पचाद्यच्। अ० ३.१.१३४; भयादीनामुपसंख्यानम् (वा०)।
5. ऋदोरप्। अ० ३.३.५७. गृहवृदृनिश्चिगमश्च। अ० ३.३.५८., वशिरण्योरुपसंख्यानम् (वा०)।
6. चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च। आतश्चोपसर्गे। अ० ३.३.१०५-१०६.

धातु	ल्युट् = अनम् (नपुं०)[1]	घञ् = अः (पुं०)[1]	क्तिन्=तिः = (स्त्री०)[1]
भू >	भवनम्	भावः, प्रभावः	भूतिः
कृ >	करणम्	कारः, उपकारः	कृतिः
यज् >	यजनम्	यागः	इष्टिः
भुज् >	भोजनम्	भोगः	भुक्तिः

'ल्युट्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—'अनीयर्' प्रत्यय के नियम यहाँ लगते हैं। अतः 'अनीय' के स्थान पर 'अन' जोड़ने से 'ल्युट्' प्रत्ययान्त शब्द बन जाते हैं। जैसे—गम् > गमनम्, पठ् > पठनम्, पा > पानम्, रुद् > रोदनम्, गै > गानम्, ध्यै > ध्यानम्, लिख् > लेखनम्, दृश् > दर्शनम्, रम् > रमनम् (रमना), करणम्, ग्रहणम्, स्मरणम्, भक्षणम्, ज्ञानम् (ज्ञा = जानना)।

'घञ्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—(१) धातु के अन्तिम स्वर (इ, उ, ऋ) को वृद्धि तथा उपधा के अ, इ, उ, ऋ को गुण। जैसे—

(घ) नङ्[1] (अ)—यज्ञः, प्रश्नः यत्नः। (ङ) कि[2] (इ)—प्रधिः, जलधिः। (च) क्विप्[3] (लोप)–सम्पत्, प्रतिपद्, परिषद्। (छ) युच्[4] (अन)–धारणा, वेदना, वन्दना। (ज) अ[5]—चिकीर्षा, पिपासा, बुभुक्षा। (झ) घ[6] (अ)—आकरः, आपणः (अ) खल्[7] (अ)—सुकरः (सुखेन कर्तुं योग्यः), दुष्करः, दुर्लभः।

1. (क) 'ल्युट्' प्रत्ययान्त शब्द नपुं० होते हैं। इनके रूप 'ज्ञान' शब्द की तरह चलेंगे।
   (ख) करण और अधिकरण अर्थ में भी 'ल्युट्' प्रत्यय होता है।[8] जैसे—यानम् (जिससे जाते हैं, सवारी), स्थानम् (जहाँ बैठते हैं)।
   (ग) 'घञन्त' शब्द पुं० होते हैं। इनके रूप 'राम' की तरह चलते हैं।
   (घ) इन प्रत्ययों के साथ कर्म में अथवा कर्त्ता में षष्ठी होती है।[9] जैसे—भोजनस्य पाकः त्यागो वा। शिशोः शयनम्।
   (ङ) 'क्तिन्' प्रत्ययान्त शब्द स्त्री० होते हैं। इनके रूप 'मति' की तरह चलते हैं।

1. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्। अ० ३. ३. ९०.
2. उपसर्गे घोः किः। कर्मण्यधिकरणे च। अ० ३. ३. ९२-९३.
3. सम्पदादिभ्यः क्विप्। क्तिन्नपीष्यते (वा०)।
4. ण्यासश्रन्थो युच्। अ० ३.३.१०७; घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम् (वा०)।
5. अ० ३.३.१०२-१०३. 6. अ० ३.३.११८-११९.
7. ईषद्दुःसुषु कृच्छ्रार्थेषु खल्। अ० ३.३ १२६.
8. करणाधिकरणयोश्च। अ० ३.३.११७.
9. कर्तृकर्मणोः कृति। उभयप्राप्तौ कर्मणि। अ० २.३.६५-६६.

रुध् > रोधः, हृ > हारः, (प्रहारः, आहारः, विहारः), हस् > हासः, उपहासः, पठ् > पाठः, चर् > चारः (आचारः, प्रचारः); वद् > वादः (विवादः, अपवादः), लभ् > लाभः, प्र + नम् > प्रणामः, दिश् > देशः (उपदेशः, प्रदेशः), आ + मुद् > आमोदः, विस्तारः (वि + स्तृ + घञ्। फैलाना), वि + कृ > विकारः (किसी रूप में बदलना) (२) धातु का अन्तिम च् > क् में और ज् > ग् में बदल जाता है (चजोः कु घिण्यतोः। अ० ७.३.५२.)। जैसे—शुच् > शोकः, रुज् > रोगः, त्यज् > त्यागः, पच् > पाकः, (पकाना), भुज् > भोगः, मृज् > मार्गः। (३) कुछ अन्य 'घञ्' प्रत्ययान्त रूप—चि > कायः, रञ्ज् > रागः, नि + इ > न्यायः, हन् > घातः, वि + लप् > विलापः (रोना)।

'क्तिन्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—'क्त्वा' प्रत्यय के नियम यहाँ भी लगते हैं। अतः 'त्वा' के स्थान पर 'ति' जोड़ देने से 'क्तिन्' प्रत्ययान्त शब्द बन जाते हैं। जैसे—गम् > गतिः (जाना), स्था > स्थितिः, कृ > कीर्तिः, सृज् > सृष्टिः, गा > गीतिः, कम् > कान्तिः, स्मृ, > स्मृतिः, बुध् > बुद्धिः, दृश् > दृष्टिः, भ्रम् > भ्रान्तिः, रम् > रतिः, वच् > उक्तिः, मन् > मतिः।

चतुर्थ अध्याय

तद्धित-प्रत्यय (Secondary-Suffixes)

१. प्रातिपदिकों (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि) में जिन प्रत्ययों को जोड़कर किसी विशेष अर्थ को प्रकट किया जाता है उन्हें 'तद्धित' (तत् + हित=तेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिता इति तद्धिता = जो विभिन्न प्रयोगों के काम आवें) प्रत्यय कहते हैं। इनके जुड़ने पर बनने वाले संज्ञादि शब्द (सुबन्त) तद्धितान्त कहलाते हैं।

२. तद्धितान्त शब्द प्रातिपदिक से बनकर पुनः प्रातिपदिक रूप ही होते हैं, अतः इनसे अवयवार्थ के अतिरिक्त एक विशिष्ट समुदायार्थ की भी प्रतीती होती है।

३. **'कृत्' और 'तद्धित' में अन्तर**—यद्यपि 'कृत्' और 'तद्धित' प्रत्ययों से संज्ञादि 'सुबन्त' शब्द ही प्रायः बनते हैं और उनमें 'सुप्' आदि विभक्तियाँ जुड़ती हैं, परन्तु 'कृत्' प्रत्यय केवल धातुओं से और 'तद्धित' प्रत्यय केवल प्रातिपदिकों से होते हैं।

'तद्धित' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम[1]—(१) तद्धित' प्रत्ययों में जो ण्, क्, आदि अनुबन्ध लगाये जाते हैं उनका लोप हो जाता है। अतः ये 'णित्', 'कित्' आदि संज्ञा वाले कहलाते हैं। (२) 'ञित्', 'णित्' और 'कित्' संज्ञावाले प्रत्ययों के जुड़ने पर प्रातिपदिक के प्रथम स्वर में वृद्धि होती है।[1] जैसे—शिव + अण् = शैवः, वर्षा + ठक् (इक) = वार्षिकः।

(१) अपत्यार्थक[2] **(Son or descendent of)—इञ्, अण् और ढक्**[2]

अपत्य (सन्तान = पुत्र या पुत्री) अर्थ में इञ् (इ), अण् (अ) और ढक् (एय) प्रत्यय होते हैं।[3] इन प्रत्ययों के जुड़ने पर किसी के पुत्र या पुत्री का बोध होता है। किसी वंश या गोत्र में उत्पन्न पौत्र आदि के लिए भी अपत्य शब्द का प्रयोग होता है।[3]

---

१. **अन्य स्मरणीय नियम**—(क) (युवोरनाकौ। ठस्येकः। अ०७.१.१;७.३.५०)—प्रत्यय के यु > अन; वु > अक; ठ > इक में बदल जाते हैं। जैसे—सायं + ट् + ट्युल् (अन) = सायन्तनम्; शिक्षा + वुन् = शिक्षकः, अस्ति + ठक् (इक)= आस्तिकः (अस्ति परलोकः इत्येवं मतिर्यस्य सः)। (ख) (आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्। अ०७·१·२)—,प्रत्यय के आदि में स्थित फ् > आयन्; ढ् > एय्; ख् > ईन्; छ् > ईय्; घ् > इय् में बदल जाते हैं। जैसे—युष्मद् + छ (ईय्) = युष्मदीयः, अस्माक + खञ् (ईन्)=आस्माकीनः, वाराणसी + ढक् = वाराणसेयम्, ग्राम + खञ्=ग्रामीणः, राष्ट्र + घ=राष्ट्रियः।

२. **अपत्य अर्थ में कुछ अन्य प्रत्यय**—(क) **यत्** (य)—राजन् और श्वशुर शब्दों से।[4] जैसे—राजन् + यत् = राजन्यः (राजवंश वाले, क्षत्रिय जाति), श्वशुर > श्वश्रूर्यः (साला)। (ख) **ण्य** (य)—दिति, अदिति, आदित्य, पति आदि शब्दों से।[5] 'णित्' होने से आदि स्वर में वृद्धि होगी। रूप रामवत् चलेंगे। जैसे—दिति + ण्य = दैत्यः, अदिति > आदित्यः, प्रजापति > प्राजापत्यः। (ग) **यञ्** (य)—गर्ग आदि शब्दों से।[6] जैसे—गर्ग > गार्ग्यः, वत्स > वात्स्यः, कुरु > कौरव्यः, निषध > नैषध्यः। (घ) **घ** (इय्)—क्षत्र शब्द से।[7] जैसे—क्षत्र > क्षत्रियः। (ङ) **ठक्** (इक)—रेवती

---

1. तद्धितेष्वचामादेः। किति च। अ० ७. २. ११७–११८.
2. तस्यापत्यम्। अ० ४.१.९२. 3. अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्। अ० ४.१.१६२.
4. राजश्वशुराद्यत्। अ० ४.१.१३७, राज्ञोजातावेवेति वाच्यम् (वा०)।
5. दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः। कुरुनाऽऽदिभ्यो ण्यः। ४.१.८५, १७२.
6. गर्गाऽऽदिभ्यो यञ्। अ० ४.१.१०५. 7. क्षत्राद् घः। अ० ४.१.१३८.

(क निम्न स्थानों में 'इञ्' (इ) प्रत्यय होता है—

१. [कुछ शब्दों को छोड़कर] प्रायः सभी अकारान्त शब्दों से[8]। जैसे—दशरथ + इञ् = दाशरथिः (दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिः = दशरथ का पुत्र, राम); दक्ष > दाक्षिः; द्रोण > द्रौणिः (अश्वत्थामा); सुमित्रा > सौमित्रिः (लक्ष्मण); विदेह > वैदेही (सीता)।

२. बाहु आदि शब्दों से[4]। जैसे—बाहु > बाहविः (बाहोरपत्यं पुमान्); उडुलोम > औडुलोमिः (उडूनि नक्षत्राणीव लोमानि यस्य स उडुलोमः, तस्य अपत्यं पुमान्)।

(ख) निम्न स्थानों में 'अण्' (अ) प्रत्यय होता है[9]—

१. ऋषि (मन्त्र-द्रष्टा), अन्धकवंशी (यादव), वृष्णिवंशी (अहीर) और कुरुवंशी से।[5] जैसे—वसिष्ठ + अण् = वासिष्ठः (वसिष्ठस्य अपत्यं पुमान्)। विश्वामित्र > वैश्वामित्रः; वसुदेव > वासुदेवः (कृष्ण); अनिरुद्ध > आनिरुद्धः; यदु > यादवः; कुरु > कौरव; पृथा (कुन्ती) > पार्थः; रघु > राघवः; नकुल > नाकुलः; कश्यप > काश्यपः; पुरु > पौरवः; पाण्डु > पाण्डवः।

२. 'शिव' आदि शब्दों से[7]—शिव > शैवः; गङ्गा > गाङ्गः; विष्णु > वैष्णवः।

३. अश्वपति आदि (शतपति, धनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, प्राणपति और क्षेत्रपति) शब्दों से[7]—अश्वपति > आश्वपतम्; राष्ट्रपति > राष्ट्रपतम्; गृहपति > गार्हपतम्।

४. 'मातृ' शब्द से (यदि उसके पूर्व संख्या, सम् वा भद्र पद हो)[8]—द्विमातृ + अण् = द्वैमातुरः (द्वयोर्मात्रोरपत्यं पुमान्); षण्मातृ > षाण्मातुरः (षण्णां मातृणामपत्यं पुमान् = शिवजी का ज्येष्ठ पुत्र, कुमार); भद्रमातृ > भाद्रमातुरः (भद्रमातुरपत्यं पुमान् = अच्छी माता की सन्तान); संमातृ > सांमातुरः।

५. कन्या शब्द से (कन्या को 'कनीन' आदेश होता)[9]—कन्या > कानीनः

आदि शब्दों से।[1] जैसे—रेवती > रैवतिकः। (च) अञ् (अ)[2]—पुत्र > पौत्रः, पश्चाल > पाश्चालः।

१. 'अण्' का अपत्य से अन्य अर्थों में भी प्रयोग होता है। देखें, पृ० ५७।

---

1. रेवत्यादिभ्यष्ठक्। अ० ४.१.१४६.
2. अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ्। जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्। अ० ४.१.१०४,१६८.
3. अत इञ्। अ० ४.१.९५. 4. बाह्वादिभ्यश्च। अ० ४.१.९६.
5. ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च। अ० ४.१.११४।
6. शिवादिभ्योऽण्। अ० ४.१.११२। 7. अश्वपत्यादिभ्यश्च। अ० ४.१.८४।
8. मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः। अ० ४.१.११५।
9. कन्यायाः कनीन च। अ० ४.१.११६। ऋग्वेद में 'कनीन' शब्द भी है।

(कन्यायाः अपत्यं पुमान् = व्यासः कर्णश्च)।

नोट—प्रायः 'इञ्' से अतिरिक्त स्थलों में 'अण्' प्रत्यय होता है।

(ग) निम्न स्थलों में 'ढक्' (एय) प्रत्यय होता है—

१. स्त्रीलिङ्ग (स्त्री-प्रत्ययान्त) प्रातिपदिक शब्दों से [कुछ को छोड़कर][1]। जैसे—कुन्ति + ढक् = कौन्तेयाः (युधिष्ठिर आदि। एकवचन में 'कौन्तेयः' होगा)। माद्री > माद्रेयौ (माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव। एकवचन में 'माद्रेयः' होगा)। राधा > राधेयः (कर्ण), द्रौपदी > द्रौपदेयः, गङ्गा > गाङ्गेयः, विनता > वैनतेयः (गरुड़), भगिनी > भागिनेयः (भगिन्या अपत्यं पुमान् = भानजा), ताडका > ताडकेयः, सरमा > सारमेयः, रोहिणी > रौहिणेयः।

२ शुभ्र आदि से[2]। जैसे—शौभ्रेयः (शुभ्रस्यापत्यम् पुमान्), अत्रि > आत्रेयः, शकुनि > शाकुनेयः, इतर > ऐतरेयः, मृकण्ड > मार्कण्डेयः, पाण्डु > पाण्डवेयः।

३. अन्य उदाहरण—मण्डूक > माण्डूकेयः, प्रवाहण > प्रावाहणेयः प्रवाहणेयः वा, कल्याणी > काल्याणिनेयः, बन्धकी > बान्धकिनेयः, कुलटा > कौलटेयः कौलटिनेयः वा, सुभगा > सौभागिनेयः।

'इञ्' 'अण्' और ढक्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम[3]—

(१) णित्, कित् एवं ङित् होने से शब्द के आदि स्वर को वृद्धि (अ > आ। इ ई > ऐ उ ऊ > औ। ऋ > आर्)। (२) शब्द का अन्तिम स्वर यदि अ, आ, इ, ई हो तो उसका लोप और यदि उ, ऊ, ओ, औ हो तो गुण और अवादेश।

(२) तुलनार्थक = अतिशयार्थक (Degree)—तरप्, तमप्, ईयसुन्, इष्ठन्

जब दो कि तुलना (Comparative degree) में किसी एक का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष बतलाया जाता है तो विशेषण में 'तरप्' (तर) और 'ईयसुन्' (ईयस्) प्रत्यय होते हैं। जब दो से अधिक की तुलना (Superlative degree) की जाती है तो 'तमप्' (तम) और 'इष्ठन्' (इष्ठ) प्रत्यय होते हैं।[3] तरप् और तमप् प्रत्यय सभी विशेषणों में तथा ईयसुन् और इष्ठन् केवल गुणवाची विशेषणों में जुड़ते हैं।[4]

नोट—दो कि तुलना में जिससे विशेषता बतलाई जाती है, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—गणेशः श्यामात् पटुतरः (अयमनयोरतिशयेन पटुः=पटुतरः)

१. 'अण्' और 'ढक्' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप में पुं० में 'राम' और स्त्री० में ('ई' जोड़कर) 'नदी' की तरह चलेंगे। 'इञ्' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'हरि' और स्त्री० में 'नदी' की तरह चलेंगे।

1. स्त्रीभ्यो ढक्। अ० ४.१.१२०। 2. शुभ्रादिभ्यश्च। अ० ४.१.१२३।
3. अतिशायने तमबिष्ठनौ। द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ। अ० ५.३.५५.५७.
4. अजादी गुणवचनादेव। अ० ५.३.५८.

पटीयान् वा। दो से अधिक की तुलना में षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे—कवीनां कविषु वा कालिदासः पटुतमः (अयमेषामतिशयेन पटुः) पटिष्ठो वा।

(क) 'तरप्' और 'तमप्' प्रत्ययान्त रूप—इनके रूप पुं० में 'राम', स्त्री० में 'लता' और नपुं० में 'ज्ञान' की तरह चलेंगे। जैसे—पटु + तरप् (तर) = पटुतर > पटुतरः (पुं०), पटुतरा (स्त्री०), पटुतरम् (नपुं०)। पटु + तमप् (तम) = पटुतमः (पुं०), पटुतमा (स्त्री०), पटुतमम् (नपुं०)।

अन्य उदाहरण (क्रमशः) पुं० में—लघु > लघुतरः, लघुतमः। चतुर > चतुरतरः, चतुरतमः। मृदु > मृदुतरः, मृदुतमः। गुरु > गुरुतरः, गुरुतमः। प्रिय > प्रियतरः, प्रियतमः (स्त्री० प्रियतमा)। दृढ > दृढतरः, दृढतमः। कृश > कृशतरः, कृशतमः। शुक्ल > शुक्लतरः, शुक्लतमः। बृहत् > बृहत्तरः, बृहत्तमः। महत् > महत्तरः, महत्तमः। विद्वस् > विद्वत्तरः, विद्वत्तमः। धनवत् > धनवत्तरः, धनवत्तमः। प्राचीन > प्राचीनतरः, प्राचीनतमः। नवीन > नवीनतरः, नवीनतमः।

(ख) 'ईयसुन्' और 'इष्ठन्' प्रत्ययान्त रूप—ईयसुन् (ईयस्) प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'श्रेयस्', स्त्री० में 'नदी' और नपुं० में 'मनस्' की तरह चलेंगे। इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'राम'; स्त्री० में 'लता' और नपुं० में 'ज्ञान' की तरह चलेंगे। जैसे—पटु + ईयसुन् (ईयस्) = पटीयस् > पटीयान् (पुं०), पटीयसी (स्त्री०)। पटु + इष्ठन् (इष्ठ) = पटिष्ठ > पटिष्ठः (पुं०), पटिष्ठा (स्त्री०) पटिष्ठम् (नपुं०)।

अन्य उदाहरण (क्रमशः) पुं० में—लघु (लघ्) > लघीयान्, लघिष्ठः। मृदु (मृद्) > मृदीयान्, मृदिष्ठः। गुरु (गर्) > गरीयान्, गरिष्ठः। दृढ (द्रढ) > द्रढीयान्, द्रढिष्ठः। कृश (कृश्) > कृशीयान्, कृशिष्ठः। वरु (वर्) > वरीयान्, वरिष्ठः। प्रशस्य (श्र) > श्रेयान्, श्रेष्ठः। प्रशस्य (ज्य) > ज्यायान् (ईयसुन् की 'ई' को 'आ' हुआ), ज्येष्ठः। युवन् (कन्) > कनीयान्, कनिष्ठः। युवन् (यव्) > यवीयान्, यविष्ठः। प्रिय (प्र) > प्रेयान् (स्त्री० प्रेयसी), प्रेष्ठः। द्राघ् (द्राघ्) > द्राघीयान्, द्राघिष्ठः। बलिन् (बल्) > बलीयान्, बलिष्ठः। स्थिर (स्थ) > स्थेयान्, स्थेष्ठः। वाढ (साध्) > साधीयान्, साधिष्ठः। स्थूल (स्थव्) > स्थवीयान्, स्थविष्ठः। महत् (मह्) > महीयान्; महिष्ठः। बहु (भू) > भूयान् (प्रत्यय के 'ई' का लोप), भूयिष्ठः (प्रत्यय के 'इ' का लोप तथा 'यि' आगम)। वृद्ध (ज्य) > ज्यायान् (ईयसुन् के 'ई' को 'आ'), ज्येष्ठः। वृद्ध (वर्ष) > वर्षीयान्, वर्षिष्ठः। दूर (दव्) > दवीयान्, दविष्ठः। अन्तिक (नेद्) > नेदीयान्, नेदिष्ठः। क्षुद्र (क्षोद्) > क्षोदीयान्, क्षोदिष्ठः। ह्रस्व (ह्रस्) > ह्रसीयान्, ह्रसिष्ठः। क्षिप्र (क्षेप्) > क्षेपीयान्, क्षेपिष्ठः।

'ईयसुन्' और 'इष्ठन्' प्रत्यय जोड़ते समय स्मरणीय नियम—

(१) शब्द के अन्तिम स्वर का लोप होता है। जैसे—लघु > लघ्। (२) शब्द के अन्तिम व्यञ्जन का तथा उसके पूर्ववर्ती स्वर का लोप होता है। जैसे—महत् > मह्। (३) व्यञ्जन से प्रारम्भ होने वाले 'मृदु' आदि शब्दों की 'ऋ' को 'र्' होता है। (४) 'गुरु' को 'गर्' आदेश होता है। (५) 'स्थूल, दूर, युवन् ह्रस्व, क्षिप्र, क्षुद्र' इनमें अन्तःस्थितः 'य् व् र् ल्' अंश का लोप होता है तथा तत्पूर्ववर्ती स्वर को गुण। (६) अन्य आदेश उदाहरणों में देखें।[1]

(३) भावार्थक (Abstract nouns)—त्व, तल्, इमनिच्[2]

भाववाचक संज्ञा (हिन्दी में जिसे 'पन' जोड़कर और अंग्रेजी में 'Ness' जोड़कर प्रकट करते हैं) बनाने के लिए 'त्व', तल्' (ता) और 'इमनिच्' (इमन्) प्रत्यय होते हैं।[3] (१) त्व' प्रत्ययान्त शब्द सदा नपुं० होते हैं और उनके

1. देखें, सिद्धान्तकौमुदी 'तद्धितेषु प्राग्दिवीय' प्रकरण पृ० ३६६–३६८.
2. तस्य भावस्त्वतलौ। पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। अ० ५. १. ११९, १२२. विशेष के लिए देखें, सिद्धान्तकौमुदी 'तद्धितेषु भावकर्मार्थाः' पृ० ३४४–३४६.
3. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। अ० ५.१.१२३-१२४। 4. सख्युर्यः। अ० ५.१.१२६.
5. पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। अ० ५.१.१२८. 6. क्रपिज्ञात्योर्ढक्। अ०५.१.१२७.
7. हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। अ० ५.१.१३०-१३१.

1. भावार्थक कुछ अन्य प्रत्यय—(क) ष्यञ् (य)—गुणवाचक और ब्राह्मण आदि शब्दों से 'ष्यञ्' प्रत्यय होता है।[3] ये नपुं० ही होते हैं। इसके जुड़ने पर अंतिम 'अ' स्वर का लोप होता है तथा आदि स्वर को वृद्धि होती है। जैसे—मधुर+ष्यञ् (य) = माधुर्यम्, चतुर > चातुर्यम्, शीत > शैत्यम्, क्रूर > क्रौर्यम्, पण्डित > पाण्डित्यम्, निपुण > नैपुण्यम्, चपल > चापल्यम्, विदग्ध > वैदग्ध्यम्, विद्वस् > वैदुष्यम्, शूर > शौर्यम्, सुन्दर > सौन्दर्यम्, ब्राह्मण > ब्राह्मण्यम्, धीर > धैर्यम्, सुख > सौख्यम्, कवि > काव्यम्, शुक्ल > शौक्ल्यम्। (ख) य—यह सखि शब्द से भाव और कर्म अर्थ में होता है।[4] जैसे—सखि > सख्यम् (सख्युः कर्म भावो वा = मित्र का कार्य और भाव मित्रता)। (ग) यक् (य)—भाव और कर्म अर्थ में पति शब्द जिनके अन्त में हो उनसे तथा पुरोहित आदि शब्दों से।[5] जैसे—सेनापति > सैनापत्यम्, पुरोहित > पौरोहित्यम्, (पुरोहित का काम या भाव)। (घ) ढक् (एय)—कपि और ज्ञाति शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में[6]—कपि > कापेयम्, ज्ञाति > ज्ञातेयम्। (ङ) अण् (अ)[7]—युवन् > यौवनम्, द्विहायन > द्वैहायनम्, स्थविर > स्थाविरम्, कुशल > कौशलम्, मुनि > मौनम्, सुहृद् > सौहार्दम्, पटु > पाटवम्।

रूप ज्ञान की तरह बनते हैं। (२) 'तल्' प्रत्ययान्त शब्द सदा स्त्री० होते हैं और उनके रूप 'लता' की तरह बनते हैं। (३) 'इमनिच्' प्रत्ययान्त शब्द सदा पुं० होते हैं और उनके रूप 'महिमन्' की तरह बनते हैं।

(क) 'त्व' (त्वम्) और 'तल्' (ता) प्रत्ययान्त रूप (क्रमशः)—गुरु > गुरुत्वम्, गुरुता (भारीपन या बड़प्पन)। लघु > लघुत्वम्, लघुता (हल्कापन या छोटापन)। शुक्ल > शुक्लत्वम्, शुक्लता। शिशु > शिशुत्वम्, शिशुता। मनुष्य > मनुष्यत्वम्, मनुष्यता। दीन > दीनत्वम्, दीनता। जड > जडत्वम्, जडता। मधुर > मधुरत्वम्, मधुरता। हीन > हीनत्वम्, हीनता। महत् > महत्त्वम्, महत्ता। मूर्ख > मूर्खत्वम्, मूर्खता। विद्वस् (विद्वत्) > विद्वत्त्वम्, विद्वत्ता। दृढ > दृढत्वम्, दृढता। खिन्न > खिन्नत्वम्, खिन्नता। पटु > पटुत्वम्, पटुता। दुष्ट > दुष्टत्वम्, दुष्टता।

(ख) 'इमनिच्' (इमन् > इमा) प्रत्ययान्त रूप—वर्णवाची (नील, शुक्ल आदि), 'दृढ' आदि तथा 'पृथु' आदि शब्दों में इमनिच् प्रत्यय होता है। जैसे—मधुर+इमनिच् = मधुरिमन् = मधुरिमा (मधुरस्य भावः)। शुक्ल > शुक्लिमा (शुक्लस्य भावः)। दृढ > द्रढिमा (दृढस्य भावः)। पृथु > प्रथिमा (पृथोर्भावः = विशालता)। मृदु > म्रदिमा (मृदोर्भावः = मृदुता)। गुरु > गरिमा। महत् > महिमा। तनु > तनिमा। काला > कालिमा। रक्त > रक्तिमा। लाल > लालिमा। लघु > लघिमा। उष्ण > उष्णिमा। शीत > शीतिमा। वक्र > वक्रिमा। बहु > बहिमा। अणु > अणिमा, चण्ड > चण्डिमा।

नोट—'इमनिच्' में 'ईयसुन्' और 'इष्ठन्' के नियम १ से ४ लगेंगे।

(४) मत्वर्थीय = अस्त्यर्थक (Possession)—'मतुप्' और 'इनि'[1]

किसी वस्तु का स्वामी होना (जिसे हिन्दी में 'वान्' अथवा 'वाला' = युक्त शब्द के द्वारा प्रकट किया जाता है) अर्थ में 'मतुप्' (मत् या वत्) और 'इनि' (इन्) प्रत्यय होते हैं।[2] जैसे—बुद्धि + मतुप् = बुद्धिमत् (नपुं०), बुद्धिमान्

1. ग्राम, जन, बन्धु, गज, और सहाय शब्दों से समूह अर्थ में भी 'तल्' (ता) प्रत्यय जुड़ता है। जैसे—ग्राम > ग्रामता (गाँवों का समूह), बन्धुता, जनता, सहायता।
2. मत्वर्थीय कुछ अन्य प्रत्यय—(क) ठन् (इक)[2]—अकारान्त और व्रीहि आदि से—दण्ड > दण्डिकः (पुं०), माया > मायिकः, धन > धनिकः, केश > केशिकः, व्रीहि > व्रीहिकः। (ख) विनि (विन्)[3]—माया आदि शब्दों से—माया > मायाविन् > मायावी (पुं०), मायाविनी (स्त्री०)। यशस् > यशस्वी, मेधा > मेधावी, स्रज् > स्रग्वी।

1. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्। अत इनिठनौ। व्रीह्यादिभ्यश्च। अ० ५.२.९४, ११५-११६ तथा लघु-सिद्धान्तकौमुदी 'तद्धितेषु मत्वर्थीय' प्रकरण, पृ० ६८४।
2. वही। 3. अस्मायामेधास्रजो विनिः। अ० ५.२.१२१

(पुं०, बुद्धिवाला या बुद्धि से युक्त), बुद्धिमती (स्त्री०) । गो + मतुप् = गोमत्, गोमान्, गोमती । सुख + इनि = सुखिन् > सुखी (पुं०), सुखिनी (स्त्री०) ।

नोट—मत्वर्थीय का अर्थ दो प्रकार से किया जाता है—(१) तद् अस्य अस्ति (वह इसका है या इसके पास है) और (२) तद् अस्मिन् अस्ति (वह इसमें है) । जैसे—गोमान् = 'गावः अस्य सन्तीति गोमान्' (गायें जिसके पास हैं वह पुरुष) अथवा 'गावः अस्मिन् सन्तीति गोमान् (जहाँ गायें हैं, वह प्रदेश) । ज्ञानी = ज्ञानमस्यास्तीति ज्ञानी = (ज्ञानवान् = ज्ञानवाला) ।

(क) **'मतुप्' (मत् या वत्) प्रत्ययान्त रूप**—'मतुप्' प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुं० में 'भगवत्', स्त्री० में 'नदी' तथा नपुं० में 'जगत्' की तरह बनेंगे । जैसे—(क्रमशः तीनों लिङ्गों में) श्री > श्रीमत्, श्रीमान् (श्रीरस्यास्तीति), श्रीमती । मति > मतिमत्, मतिमान्, मतिमती । धी > धीमत्, धीमान्, धीमती । साधु > साधुमत्, साधुमान्, साधुमती । वधू > वधूमत्, वधूमान् वधूमती । गरुत् > गरुत्मत्, गरुत्मान् (गरुत् = पक्ष जिसके हैं अर्थात् पक्षी) । धन > धनवत्, धनवान् धनवती । गुण > गुणवत्, गुणवान्, गुणवती । यशस् > यशस्वत्, यशस्वान्, यशस्वती । लक्ष्मी > लक्ष्मीवत्, लक्ष्मीवान्, लक्ष्मीवती । अर्थ > अर्थवत्, अर्थवान् (धनवान्). अर्थवती । ज्ञान > ज्ञानवत्, ज्ञानवान्, ज्ञानवती । बल > बलवत्, बलवान्, बलवती । क्षमा > क्षमावत्, क्षमावान्, क्षमावती । विद्या > विद्यावत्, विद्यावान्, विद्यावती । पयस् > पयस्वत्, पयस्वान्, पयस्वती । भास् > भास्वत्, भास्वान्, भास्वती ।

नोट—यदि शब्द के अन्त में या उपधा में 'अ', 'आ' या 'म' हो तो 'मत्' को 'वत्' होता है । परन्तु भूमिमान्, यवमान्, कृमिमान् और ऊर्मिमान् में नहीं हुआ ।

(ख) इनि (इन्) प्रत्ययान्त रूप[1]—अकारान्त और व्रीहि आदि शब्दों से 'इनि' प्रत्यय होता है । इनके रूप पुं० में 'करिन्' और स्त्री० में 'नदी' की तरह बनेंगे । जैसे—दण्ड > दण्डिन् > दण्डी (पुं०), दण्डिनी (स्त्री०) । सुख > सुखिन् > सुखी (पुं०), सुखिनी (स्त्री०) । ज्ञान > ज्ञानिन् (ज्ञानी), धन > धनिन् (धनी), माया > मायिन् (मायी), शिखा > शिखिन् (शिखी), धर्म > धर्मिन् (धर्मी), दन्त > दन्तिन् (दन्ती), अर्थ > अर्थिन् (अर्थी = याचक), विवेक > विवेकिन् (विवेकी), उत्साह > उत्साहिन् (उत्साही), प्रणय > प्रणयिन् (प्रणयी) ।

(५) विभक्त्यर्थक[2]**—तसिल्, त्रल्, ह और अत्**

पञ्चमी आदि विभक्तियों का अर्थ प्रकट करने के लिए कुछ शब्दों से 'तसिल्' आदि प्रत्यय होते हैं । जैसे—

(क) पञ्चम्यर्थक 'तसिल्' (तस्)[3]—'किम्' आदि सर्वनाम शब्दों से तथा

1. वही । 2. देखें, लघुसिद्धान्तकौमुदी 'तद्धितेषु प्राग्दिशीयाः' प्रकरण ।
3. पञ्चम्यास्तसिल् । पर्यभिभ्यां च । अ० ५.३.७, ९.

परि और अभि से 'तसिल्' प्रत्यय पञ्चमी के अर्थ में होता है । जैसे—किम् (कु) > कुतः (कस्मात् = किससे), इदम् (इ) > इतः (अस्मात् = इससे), एतद् (अ) > अतः (एतस्मात् = इससे), अदस् (अमु) > अमुतः (अमुष्मात्=उससे), यत् > यतः (यस्मात् = जिससे), बहु > बहुतः (बहोः = बहुतों से), परि > परितः (सब ओर), सर्व > सर्वतः (सर्वस्मात्), उभय > उभयतः, अभि > अभितः (दोनों ओर से) । **अन्य उदाहरण**—विश्वतः, एकतः, अन्यतः, पूर्वतः (अग्रतः, दक्षिणतः, उत्तरतः, मत्तः (मुझसे), त्वत्तः (तुझसे), अस्मत्तः (हमसे), युष्मत्तः (तुमसे), इतः ।

(ख) सप्तम्यर्थक 'त्रल्' (त्र)[1] **प्रत्यय**—'किम्' आदि शब्दों से सप्तमी के अर्थ में त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है । जैसे—किम् (कु) > कुत्र (कस्मिन्=किसमें, कहाँ), यत् > यत्र (यस्मिन् = जिसमें, जहाँ), तत् > तत्र (तस्मिन् = उसमें, वहाँ), बहु > बहुत्र (बहुषु = बहुतों में), एतद् (अ) > अत्र (एतस्मिन्) । अन्य उदाहरण—उभयत्र, एकत्र, सर्वत्र, अन्यत्र, परत्र, अपरत्र ।

(ग) सप्तम्यर्थक 'ह' और 'अत्' (अ) प्रत्यय[2]—इदम् (इ) + ह = इह (अस्मिन् = इसमें, यहाँ) । किम् (क्व) + अत् = क्व (कुत्र = कहाँ) ।

(६) कालाद्यर्थक—दा, हिल्, थाल् और थमु

(क) **दा**—सप्तम्यन्त सर्व आदि शब्दों से समय अर्थ में ।[3] जैसे— सर्व + दा = सर्वदा (सर्वस्मिन् काले=सब समय), सर्व (स) + दा=सदा (सर्वस्मिन् काले); एक > एकदा (एकस्मिन् काले = एक समय), किम् (क) > कदा (किस समय), यत् > यदा, तत् > तदा, अन्य > अन्यदा । (ख) **हिल्** (हि)–सप्तम्यन्त से काल अर्थ में —[4] इदम् (एत) > एतर्हि (अस्मिन् काले = इस समय, अब । एतर्हि के स्थान पर 'अधुना' और 'इदानीम्' का भी प्रयोग होता है)।[5] किम् (क) > कर्हि (कदा, कस्मिन् काले), यत् > यर्हि (यदा, यस्मिन् काले), तत् > तर्हि (तदा), एतद् (एत्) > एतर्हि (एतस्मिन् काले । इदम् से भी यही रूप बनता है) । (ग) **थाल्** (था)—प्रकार अर्थ में ।[6] जैसे —तद् (त) > तथा (तेन प्रकारेण = उस प्रकार से), यत् > यथा (येन प्रकारेण=जिस प्रकार से), सर्वथा, उभयथा, अन्यथा । (घ) **थमु (थम्)**[7]—प्रकार अर्थ में इदम्, एतद् और किम्

1. सप्तम्यास्त्रल् । अ० ५.३.१०.
2. इदमो हः । किमोऽत् । क्वाऽति । अ० ५.३.११, १२; ७.२.१०५ ।
3. सर्वैकाऽन्यकियत्तदः काले दा । अ० ५.३.१५.
4. इदमो हिल् । अनद्यतने हिलन्यतरस्याम् । अ० ५.३.१६, ५.२.२१.
5. अधुना । दानीं च । अ० ५.३.१७-१८. 6. प्रकारवचने थाल् । अ० ५.३.२३.
7. इदमस्थमुः । किमश्च । अ० ५.३.२४,२५ । एतदोऽपि वाच्यः (वा०) ।

शब्दों से थमु (थम्)। जैसे—इदम्, एतद् > इत्थम् (अनेन एतेन वा प्रकारेण=इस प्रकार से), किम् > कथम् (केन प्रकारेण)।

(७) विभिन्नार्थक विविध प्रत्यय—धा, मात्रच्, वति, च्वि, तीय आदि

(१) **प्रकारार्थक 'धा'**—संख्यावाची शब्दों से।[1] जैसे—एक > एकधा (एक प्रकार से), द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा, शतधा, सहस्रधा, बहुधा (प्रायः, अनेक बार)। (२) **प्रमाणार्थक 'मात्रच्' (मात्र)**—नाप, तौल आदि अर्थों में।[2] जैसे—मुष्टिमात्रम् (मुट्ठीभर), हस्तमात्रम्, कटिमात्रम्, जानुमात्रम्। (३) **सादृश्यार्थक 'वति'** (वत्)[3]—क्षत्रियवत् (क्षत्रिय के समान), ब्राह्मणवत्। (४) **अभूततद्भावार्थक 'च्वि'** (ई)—किसी वस्तु को उस प्रकार का बना देना या उसका वैसा हो जाना, जैसी वह पूर्व में न हो।[4] जैसे—शुक्ल + च्वि + करोति = शुक्लीकरोति (अशुक्लं शुक्लरूपेण संपद्यमानं करोति = जो शुक्ल नहीं है वह उसे शुक्ल बनाता है), कृष्णीकरोति, उत्तरलीकरोति (चञ्चल बनाता है), ब्रह्मीभवति, अग्नीभवति, मुखरीकरोति, मूकीकरोति। (५) **पूरणार्थक 'तीय', 'थुक्' (थ), मट् (म)**—किसी संख्या को पूरा करने वाला।[5] जैसे—द्वितीयः, तृतीयः, चतुर्थः पञ्चमः षष्ठः (विशेष के लिए देखें, पृ० ११२ टि०)। (६) **संख्या-समूह वाचक तयप्' (तय), 'अयच्' (अय), 'डट्' (अ)**—संख्या सम्बन्धी समूह अर्थ में[6]—द्वि + अय = द्वयम्, द्वि + तय = द्वितयम् (द्वयम् = दो का समूह), त्रितयम् (त्रयम्), चतुर + चतुष्टयम्। एकादशन् + डट्=एकादशः। (७) **प्रवचनार्थक छ' ईय्)**[7]—पुस्तक आदि के रचयिता के अर्थ में रचयिता के बाद। जैसे—पाणिनि > पाणिनीयम् (पाणिनिना प्रोक्तम् = पणिनि से प्रवचन किया गया व्याकरण), पाणिनीया (अष्टाध्यायी), वाल्मीकीयम् (रामायण), कालिदासीयम्। (८) **स्वार्थिक 'कन्' (क), अण् (अ)**[8]—स्वार्थ में प्रत्यय होने से अर्थ में वृद्धि नहीं होती। जैसे—अश्व + कन् (क) = अश्वकः (अश्व एव। 'अश्व' से सादृश्य अर्थ में 'कन्' प्रत्यय होने पर भी 'अश्वकः' बनेगा, जिसका अर्थ होगा 'अश्व इव प्रतिकृतिः')। बन्धु + अण् = बान्धवः (बन्धुरेव), देवता + अण् = दैवतः

1. संख्याया विधार्थे धा। अ० ५.३.४२. 2. प्रमाणे द्वय०। अ० ५.२.३७.
3. तेन तुल्यं क्रिया चेद्वति। तत्र तस्येव। अ० ५.१.११५–११६.
4. कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः। अ० ५. ४. ५०.
5. नान्तादसंख्यादेर्मट्। षट्-कति-कतिपय-चतुरां थुक्। द्वेस्तीयः। त्रेः सम्प्रसारणं च। अ० ५. २. ४६, ५१, ५४-५५.
6. संख्याया अवयवे तयप्। द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा। तस्य पूरणे डट्। अ० ५. २. ४२, ४३, ४८. 7. तेन प्रोक्तम्। अ० ४. ३. १०१
8. सर्वं प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् (वा०)। प्रज्ञादिभ्यश्च। अ० ५- ४. ३८.

(देवता एव), प्रज्ञ + अण् = प्राज्ञः (प्रज्ञ एव)। (९) **संजातार्थक 'इतच्' (इत्)**[1]—'इसके हो गये हैं' (अस्य संजातम्) = जो पहले नहीं थे वे अब इसके हो गये हैं। जैसे—तारका + इतच् = तारकितम् (तारकितं नभः = तरकाः संजाता अस्य = तारे इसके हो गये हैं अर्थात् जिसमें तारे निकल आये हैं ऐसा आकाश = तारों से युक्त आकाश), पण्डा + इतच् = पण्डितः (पण्डा सदसद्विवेकिनी बुद्धिः संजाता अस्य = जिसकी अच्छे-खराब को जानने की बुद्धि हो गई है = सदसद्विवेक से युक्त)। पुष्पितः, रोमाञ्चितः, कुसुमितः, अङ्कुरितः, दुःखितः (दुःखितम्, दुःखिता), पिपासा > पिपासितः, क्षुधा > क्षुधितः।

(८) 'अण्' का अपत्य से भिन्न अर्थों में प्रयोग—

(क) समूहार्थ[2]—काकानां समूहः = काकम्। **(ख) देवतार्थ**[3]—विष्णुः देवता अस्य = वैष्णवः। **(ग) सम्बन्धार्थ**[4]—देवस्य अयम् = दैवः। **(घ) रक्तार्थ**[5]—कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। **(ङ) जातार्थ**[6]—मिथिलायां जाताः मैथिलः। **(च) विकारार्थ**[7]—गोधूमस्य विकारः गौधूमः; हैमः। **(छ) कालार्थ**[8]—पुष्य + अण् = पौषः (पौषी पूर्णमासी अस्मिन् इति); चैत्रः (चित्रया युक्तः मासः)। **(ज) भाव-कर्म अर्थ**[9]—मुनेर्भावः कर्म वा मौनम्, शुचेर्भावः कर्म वा शौचम् (स्वच्छता)। **(झ) आगतार्थ**[10]—विदर्भादागतः वैदर्भः। **(ञ) प्रोक्तार्थ**[11]—मनु > मानवः, ऋषि > आर्षः (ऋषि-प्रणीत)। **(ट) निवासार्थ**[12]—स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः। **(ठ) अधीतार्थ**[13]—व्याकरणम् अधीते वेद वा वैयाकरणः।

---

1. तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्। अ० ५. २. ३६.
2. तस्य समूहः। अ० ४. २. ३७। 3. तस्य देवता। अ० ४. २. २४।
4. तस्येदम्। अ० ४. ३. १२०। 5. तेन रक्तं रागात्। अ० ४. २. १।
6. तत्र जातः। अ० ४. ३. २५। 7. तस्य विकारः। अ० ४. ३. १३४।
8. नक्षत्रेण युक्तः कालः। अ० ४. २. ३; तस्मिन् पौर्णमासीति। अ० ४. १. २१।
9. इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। अ० ५. १. १३१। 10. तत आगतः। अ० ४.३.७४।
11. तेन प्रोक्तम्। अ० ४. ३. १०१। 12. सोऽस्य निवासः। अ० ४. ३. ८६।
13. तदधीते तद्वेद। अ० ४. २. ५९।

पञ्चम अध्याय

स्त्री-प्रत्यय (Formation of feminine bases)

पुंल्लिङ्ग संज्ञाओं से स्त्रीलिङ्ग की संज्ञायें बनाने के लिए जिन प्रत्ययों को जोड़ा जाता है उन्हें स्त्री-प्रत्यय कहते हैं। ये आठ प्रकार के हैं जिन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) 'आ' वर्ग (टाप्, डाप् और चाप् । इनका 'आ' शेष रहता है)।
(२) 'ई' वर्ग (ङीप्, ङीष् और ङीन् । इनका 'ई' शेष रहता है)।
(३) अन्य (ऊङ् = ऊ और ति)।

(१) 'आ' वर्ग (टाप्, डाप और चाप्)—

(क) टाप्—प्रायः ह्रस्व अकारान्त शब्दों के बाद 'टाप्' (आ) प्रत्यय होता है।[1] जैसे—अज + टाप् = अजा (बकरी), अश्व > अश्वा (घोड़ी), चटक > चटका (चिड़िया), बाल > बाला, वत्स > वत्सा, पुष्प > पुष्पा, कोकिल > कोकिला, क्षत्रिय > क्षत्रिया, शूद्र > शूद्रा (शूद्र जाति। शूद्र + ङीष् = शूद्री = शूद्र-पत्नी। महत् शब्द के साथ ङीष्—महाशूद्री), साधक > साधिका, अध्यापक > अध्यापिका, मूषक > मूषिका, पुत्रक > पुत्रिका, अचला, कृष्णा, अनुकूला, कारक > कारिका (करने वाली), सरला, पाचिका, ज्येष्ठा, मध्यमा, कनिष्ठा, निपुणा, बालिका, गायिका, वैश्या, वृद्ध > वृद्धा, शङ्क > शङ्का, अश्वपालिका, कृपणा, दीना, प्रथम > प्रथमा, द्वितीया, सर्व > सर्वा, गोपालक > गोपालिका, सुजघना, शूर्पणखा, गौरमुखा, कृष्णमुखा, सुकेशा, अकेशा आदि।

नोट—शब्द के अन्त में 'अक' हो तो उसे 'इक' हो जाता है। परन्तु यदि 'अक' का 'क' किसी प्रत्यय का न होकर मूल शब्द का होगा तो उसे 'इक' नहीं होगा। जैसे—एडक > एडका (भेड़), नौ + क + टाप्=नौका, बहुपरिव्राजक > बहुपरिव्राजका (बहुव्रीहि समास होने से 'सुप्' विभक्ति का लोप हुआ है, अतः यहाँ भी 'इक' नहीं हुआ)।[2]

(ख) डाप् (आ)—मन्नन्त में तथा अन्नन्त बहुव्रीहि समास वाले शब्दों में[3]—सीमन् > सीमा, दामन् > दामा, बहुयज्वन् > बहुयज्वा (परन्तु बहुराजन् में 'ङीप्' होने से 'बहुराज्ञी' होगा)।

(ग) चाप् (आ)—देवता जाति की स्त्री रूप अर्थ में सूर्य शब्द से तथा

1. अजाद्यतष्टाप् अ० ४. १. ४। पालकान्तान्न। शूद्रा चामहत्पूर्वा जाति (वा०)।
2. प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यातइदाप्यसुपः। अ० ७. ३. ४४.
3. मन। अनो बहुव्रीहेः। डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्। अ० ४. १. ११-१५.

'यङन्त' शब्द से[1]। जैसे—सूर्य > सूर्या (सूर्यस्य स्त्री देवता = सूर्य की देवता स्त्री। देवता अर्थ न होने पर 'ङीप्' होकर 'सूरी' बनेगा जिसका अर्थ होगा—'सूर्यस्य स्त्री मानुषी 'कुन्ती'), करीषगन्धि > कारीषगन्ध्या।

(२) 'ई' वर्ग (ङीप्, ङीष् और ङीन्) –

(क) ङीप् (ई)—(१) ऋकारान्त और नकारान्त शब्दों में।[2] जैसे—कर्तृ > कर्त्री, दातृ > दात्री, हर्तृ > हर्त्री, जनयित्री, शिक्षयित्री, दण्डिन् > दण्डिनी, कामिन् > कामिनी, मनोहारिणी, गुणिनी, तपस्विनी, श्वन् > शुनी, राजन् > राज्ञी। (२) उगित् (उक् + इत् = उ, ऋ का जहाँ लोप हुआ हो) प्रत्ययान्त शब्दों में[3]। जैसे—भवत् (भू + शतृ) > भवन्ती, पचन्ती, पठन्ती, दीव्यन्ती (खेलती हुई), श्रेयस् (प्रशस्य + ईयसुन्) > श्रेयसी, (कल्याणकारिणी), पटीयसी, लघीयसी, क्रीडन्ती, क्रीणती (खरीदती हुई), तुदती, तुदन्ती, ददती, भवती (आप), भवन्ती (होती हुई), बुद्धि + मतुप् = बुद्धिमत् > बुद्धिमती, श्रीमती। (३) अकारान्त टित् (ट् + इत्) तथा ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नञ्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, क्वरप्, नञ्, स्नञ् ईकक्, ख्युन्, यञ् प्रत्ययान्त, तरुण और तलुन् शब्दों में[4] (यह 'टाप्' का अपवाद है)। जैसे—कुरुचर (चर् धातु से 'ट्' प्रत्यय होकर कुरुचर बना है। अतः यह टित् शब्द है) > कुरुचरी (कुरु देश में घूमने वाली स्त्री), मद्रचरी, नदट् > नद > नदी, देवट् > देव > देवी, सुपर्णी + ढक् = सौपर्णेय + ङीप् = सौपर्णेयी (सुपर्णी की कन्या, गरुड़ की बहिन), वैनतेयी, कुम्भकार ('अण्' प्रत्यय) > कुम्भकारी, ऐन्द्र (इन्द्र + अण्) > ऐन्द्री (इन्द्र जिसका देवता है), औत्स (उत्स + अञ्) > औत्सी (उत्सस्य इयम्। उत्स = झरना अथवा ऋषिविशेष सम्बन्धिनी), ऊरुद्वयस (ऊरु + द्वयसच्) > ऊरुद्वयसी (जंघा प्रमाण जलवाली तलैया), ऊरुदघ्न > ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्र > ऊरुमात्री, पञ्चतय (पञ्चन् + तयप्) > पञ्चतयी (पाँच अवयवों वाली), दशतयी, आक्षिक (अक्ष + ठक्) > आक्षिकी (अक्षैर्दीव्यति = पासों से खेलने वाली), प्रास्थिक (प्रस्थ + ठञ्) > प्रास्थिकी (एक प्रस्थ से खरीदी गई), लावणिक = लावणिकी (नमक बेचने वाली), यादृश (यत् + दृश् + कञ्) > यादृशी (जैसी), तादृश > तादृशी, इत्वर (इण् + क्वरप्) > इत्वरी (व्यभिचारिणी), नश्वर > नश्वरी स्त्रैण (स्त्री + नञ्) > स्त्रैणी (स्त्री-सम्बन्धी), पौंस्न (पुरुष + स्नञ्)

1. सूर्यदेवतायां चाप् वाच्यः (वा०)। यडश्चाप्। अ० ४. १. ७४.
2. ऋन्नेभ्यो ङीप्। अ० ४. १. ५. 3. उगितश्च। अ० ४. १. ६.
4. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः। नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्। (वा०)। ४ङश्च। अ० ४. १. १५-१६.

पौंस्नी (पुरुष-सम्बन्धी), शाक्तीक (शक्ति + ईकक्) > शाक्तीकी ('शक्ति' नामक अस्त्र वाली स्त्री), आढ्यंकरण (आढ्य + कृ + ल्युट्) > आढ्यङ्करणी (अनाढ्य = निर्धन को धनवान् बनाने वाली स्त्री), सभगंकरिणी, तरुण > तरुणी (युवती), तलुन > तलुनी (युवती), गार्ग्य (गर्ग + यञ्) > गार्गी (गर्ग गोत्र की स्त्री), वात्सी। (४) अकारान्त 'द्विगु' समास-संज्ञक में।[1] जैसे—त्रिलोक > त्रिलोकी (तीन लोकों का समुदाय), पञ्चमूली, सप्तशती। परन्तु 'त्रिफला' में 'टाप्' हुआ क्योंकि यह अजादिगण में है। (५) प्रथम वयस् (अवस्था) का बोध होने पर अकारान्त शब्दों में।[2] जैसे—कुमार > कुमारी, किशोर > किशोरी, वधूट > वधूटी, तरुण > तरुणी (युवती)। चरम अवस्था का बोध होने पर टाप् होगा। जैसे—वृद्ध > वृद्धा, स्थविर > स्थविरा। (६) वर्णवाची शब्दों (यदि अनुदात्तान्त और 'त' उपधा में हो। तकार को नकार भी होगा) में विकल्प से।[3] जैसे—रोहित > रोहिणी (लाल रङ्ग वाली), हरित > हरिणी, श्येत > श्येनी। 'टाप्' होने पर क्रमशः रोहिता, हरिता और श्येता होगा।[4] (७) अन्य उदाहरण—सपत्नी, वीरपत्नी, मानुष > मानुषी, मनु > मानवी, मनायी।

(ख) ङीष् (ई)—(१) अकारान्त 'षित्' और गौरादि गण के शब्दों में[5]। जैसे—नर्तक (नृत् + ण्वुल्) > नर्तकी, खनकी, पथिकी, रजकी। गौरादि गण के शब्दों में—गौर > गौरी, मत्स्य > मत्सी (मछली), मनुष्य > मनुषी (मनुष्य जाति की स्त्री), हरिण > हरिणी, आमलक > आमलकी, शिखण्डी, अनडुह् (बैल) > अनडुही या अनड्वाही, देह > देही, नट > नटी, सुन्दरी, पट > पटी, तटी, कन्दली, मञ्जली, बृहत् > बृहती, महती, उभयी, मण्डली, मतामह > मातामही, (षित् भी है). पितामही। (२) उकारान्त गुणवाचक तथा बहु आदि गण शब्दों में विकल्प से[6]। जैसे—मृदु > मृद्वी (कोमला), पटु > पट्वी, गुरु > गुर्वी, बहु > बह्वी, शकट > शकटी, रात्रि > रात्री। अन्यत्र मृदुः, पटुः, बहुः, शकटिः, रात्रिः होगा। (३) जहाँ पति-पत्नी भाव रूप सम्बन्ध के कारण पुरुषवाचक शब्दों से स्त्री का बोध हो।[7] जैसे—गोप > गोपी (गोपस्य स्त्री। गाय का पालन करने वाला गोप हुआ और उसकी स्त्री 'गोपी'। 'गोपी' को गोपालन करना आवश्यक

1. द्विगोः। अ० ४. १. २१. 2. वयसि प्रथमे। अ० ३. १. २०.
3. वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः। अ० ४. १. ३९.
4. 'अनुदात्तान्त' न होने से कृष्ण > टाप् = कृष्णा, कपिला होगा। अन्यत्र 'क होगा—'सारङ्ग > सारङ्गी, शबली। ('अन्यतो ङीष्। अ० ४. १. ४०.)
5. षिद्गौरादिभ्यश्च। अ० ४.१.४१। 6. वोतो गुणवचनात्। ब्रह्मादिभ्यश्च अ० ४.१.४४.४५। 7. पुंयोगादाख्यायाम्। अ० ४.१.४८।

नहीं हैं। गोपालक से गोपालिका होगा। शूद्री (शूद्र की स्त्री), सूर्य > सूरी ('सूर्या'= देवता)। (४) जातिवाचक अकारान्त शब्दों में[1] (यदि नित्य स्त्रीलिङ्ग न हो और उपधा में यकार न हो) 'यहाँ जाति से' जातिवाचक संज्ञा, ब्राह्मण आदि जाति, अपत्य-प्रत्ययान्त तथा शाखा के पढ़ने वाले' ये चारों अर्थ समझना चाहिए। जैसे—तट > तटी (यह नित्य स्त्रीलिङ्ग नहीं है तथा उपधा में 'य' भी नहीं है), वृषल > वृषली (वृषली = शूद्र जाति की स्त्री), कठ > कठी ('कठ' शाखा को पढ़ने वाली), उपगु + अण् + ङीष् = औपगवी (उपगु की सन्तान स्त्री जाति। यह 'ङीप्' का अपवाद है)। अन्य उदाहरण—कुक्कुटी, ब्राह्मणी (इसमें 'ङीन्' भी होगा। 'क्षत्रिय' में ङीष् नहीं होगा, अपितु 'टाप्' होकर 'क्षत्रिया' बनेगा क्योंकि इसकी उपधा में 'य' है, परन्तु हयी, गवयी, मुकयी, मत्सी, मनुषी में निषेध नहीं है)। अन्य उदाहरण—सिंही, हंसी, व्याघ्री, गर्दभी, मार्जारी। (५) मनुष्य जातिवाचक इकारान्त शब्दों में।[2] जैसे—दक्ष > दाक्षि > दाक्षी (दक्ष की सन्तान स्त्री), कुन्ती। उकारान्त शब्द होने पर 'ऊङ्' होगा। जैसे—कुरु > कुरूः (कुरु जाति की स्त्री), ब्रह्मबन्धूः। (६) इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य शब्दों में ('आनुक' = आन् का भी आगम हो। इन्द्र आदि छह, मातुल तथा आचार्य में पुंयोग अर्थ में ही ङीष् और आनुक् होगा)।[3] जैसे—इन्द्र > इन्द्राणी, (इन्द्र की स्त्री), वरुणानी (वरुण की स्त्री), भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी (शिवजी की स्त्री। भव आदि शिवजी के नाम हैं), हिमानी (अधिक बरफ), अरण्यानी (महद् अरण्य), यवानी (यव गुरु जौ = अन्न), यवनानी (यवनों की लिपि), मातुलानी (मामा की स्त्री = मामी। आनुक् न होने पर 'मातुली' बनेगा), उपाध्यायी (उपाध्याय = पढ़ाने वाले की स्त्री। 'आनुक्' न होने पर उपाध्यायानी), आचार्यानी (आचार्य की स्त्री। यहाँ 'णत्व' का निषेध है। यदि स्त्री आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होगी तो 'टाप्' होकर 'आचार्या' होगा। इसी प्रकार स्वयं अध्यापन कार्य करने पर उपाध्याया और आचार्या होगा), अर्य > अर्याणी (वैश्य कुल की स्त्री। अर्यी और अर्या रूप भी बनेंगे), क्षत्रियाणी (क्षत्रिया और क्षत्रियी रूप भी बनेंगे)। (७) अन्य उदाहरण—वस्त्रक्रीत < वस्त्रक्रीती (वस्त्र से खरीदी गई), चन्द्रमुख > चन्द्रमुखी (चन्द्रमा के समान मुख वाली। चन्द्रमुखा भी होगा), अतिकेशी, (केशों का अतिक्रमण करने वाली। 'अतिकेशा' भी होगा), पाणिगृहीत > पाणिगृहीती (पति अर्थ में न होने पर 'पाणिगृहीता' = वह स्त्री जिसका हाथ पकड़ा गया हो), शुङ्गनासिका (शुङ्गनासिका), सुगात्री (सुगात्रा), सुकण्ठी (सुकण्ठा)।

1. [illegible]यधोपधात्। अ० ४.३.६१। 2. इतो मनुष्यजातेः। अ० ४.१.६५।
[illegible]मृडहिमारण्य-यवयवनमातुलाचार्याणामानुक्। अ० ४.१.४९।

(ग) ङीन् (ई) - (१) शार्ङ्गरव आदि शब्दों में।[1] जैसे—शार्ङ्गरव > शार्ङ्गरवी (शृङ्गरु की स्त्री सन्तान), ब्राह्मण > ब्राह्मणी (ब्राह्मण जाति की स्त्री)। (२) नृ और नर शब्द में।[2] जैसे—नृ, नर > नारी।

(२) अन्य ('ऊङ्' और 'ति')—

(क) ऊङ् (ऊ)—उकारान्त मनुष्य जातिवाचक शब्दों में (परन्तु उपधा में यकार न हो)।[3] जैसे—कुरु > कुरूः (कुरु जाति की स्त्री), ब्रह्मबन्धूः। (२) पङ्गु और श्वसुर शब्दों में।[4] जैसे—पङ्गु > पङ्गूः, श्वसुर > श्वश्रूः (सास)। (३) जिसका पूर्वपद उपमानवाची हो (संहितादि और अनौपम्यवाची में भी) और उत्तरपद 'ऊरु' हो।[5] जैसे—करभोरु > करभोरूः (करभौ इव ऊरू यस्याः सा = हाथ के मणिबन्ध से कानी अङ्गुली तक के निचले कोमल भाग को करभ कहते हैं), संहितोरूः (जिसके ऊरु मिले हुए हों,), वामोरू (जिसके ऊरु सुन्दर हों)।

(ख) 'ति'—'युवन्' शब्द में।[6] जैसे—युवन् > युवतिः (युवावस्थावाली स्त्री)।

षष्ठ अध्याय

अव्यय (Indeclinable words)

जिनके रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता उन्हें अव्यय (न+व्यय) कहते हैं। ये सभी लिङ्गों, सभी वचनों और सभी विभक्तियों में सदा एकरूप रहते हैं[7]। यद्यपि पाणिनि-व्याकरण के अनुसार इनमें सभी विभक्तियाँ होती हैं परन्तु उनका लोप हो जाता है।[8] अव्यय कई प्रकार के होते हैं।[9] जैसे—

(१) विषय की दृष्टि से अव्ययों के विभाजन का प्रथम प्रकार—

(क) उपसर्ग (Perpositions)—ये धातु अथवा धातु से बने शब्दों के पहले जोड़े जाते हैं। ये धात्वर्थ में प्रायः कुछ न कुछ परिवर्तन कर देते हैं या वैशिष्ट्य पैदा करते हैं।[10] ये संख्या में २२ हैं। जैसे—प्र (अधिक), परा (पीछे,

1. शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। ४.१.७३। 2. नृनरयोर्वृद्धिश्च। (वा०)।
3. ऊङुतः। अ० ४.१.६६ 4. पङ्गोश्च। अ० ४.१.६८। श्वसुरस्योकाराकारलोपश्च (वा०)। 5. उरूत्तरपदादौपम्ये। संहितशफलक्षणवामादेश्च। अ० ४.१.६६-७०।
6. यूनस्तिः। अ० ४.१.७७। 7. सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्ययेति तदव्ययम्॥ ल० कौ०, पृ० ३६५. (प्रणवोपनिषद् २.)
8. अव्ययादाप्सुपः। अ० २. ४. ८२. 9. स्वरादिनिपातमव्ययम्। अ० १. १. ३७. स्वादिः प्रादिः स्वरादिश्च तद्धितस्य वदादयः।
तुगुत्तरपाणगुरुल्यप्कृदन्तस्य भवन्त्यव्ययसंज्ञकाः॥
10. धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्तते। तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा॥
उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यः प्रतीयते। प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

उल्टा), अप (दूर), सम् (सुष्ठु), अनु (पीछे, साथ), अव (दूर, नीचे), निस् (बिना, बाहर); निर् (बिना), दुस् (कठिन), दुर् (खराब), वि (अलग, उल्टा, विशेष), आङ् (तक), नि (नीचे, भीतर), अधि (ऊपर), अपि (समीप), अति (अतिक्रमण, अधिक), सु (सुन्दर), उत् (ऊपर), अभि (ओर), प्रति (ओर, उल्टा), परि (चारों ओर) और उप (समीप)।

(ख) क्रिया-विशेषण (Adverbs)—ये क्रिया की विशेषता बतलाते हैं। इनमें कुछ स्थान, परिमाण आदि के भी वाचक हैं। जैसे—उच्चैः, नीचैः, विना।

(ग) पादपूरक (चादि निपात—Particles)—इनका प्रायः पादपूर्ति में प्रयोग किया जाता है। (ये कभी-कभी विशेषता की भी सूचना करते हैं)। जैसे—नु, तु, वै, हि, किल, खलु, चित्, चन, स्वित् आदि।

(घ) समुच्चय-बोधक (Conjunctions)—ये कई प्रकार के हैं।। जैसे—(१) **संयोजक** (Copulative)—अथ, च, किंच आदि। (२) **वियोजक** (Disjunctive)—वा, अथवा आदि। (३) **विरोध-सूचक** (सोपाधिक या शर्त-सूचक = Conditional)—किन्तु, किंवा, यदि, चेत्, यद्यपि आदि। (४) **कारण-सूचक** (Causal)—हि, तेन आदि। (५) **प्रश्न-सूचक** (Interrogative)—आहो, आहोस्वित्, आदि। (६) **स्वीकारात्मक**—अथकिम्, आम् आदि। (७) **समय-सूचक** (Time)—यदा, तदा, यावत् आदि (८) **प्रकीर्ण** (Miscellaneous)—अथ (प्रारम्भ-सूचक), इति (अन्त-सूचक) आदि।

(ङ) मनोविकार-सूचक (विस्मयादि-बोधक—Interjections)—इनसे आश्चर्य, सुख, दुःख, घृणा, आदर, अनादर, सम्बोधन आदि का बोध होता है। जैसे—धिक्, बत, हन्त, हा, अंग, अरे आदि।

(२) रूढ व यौगिक शब्दों की दृष्टि से अव्ययों के विभाजन का द्वितीय प्रकार—

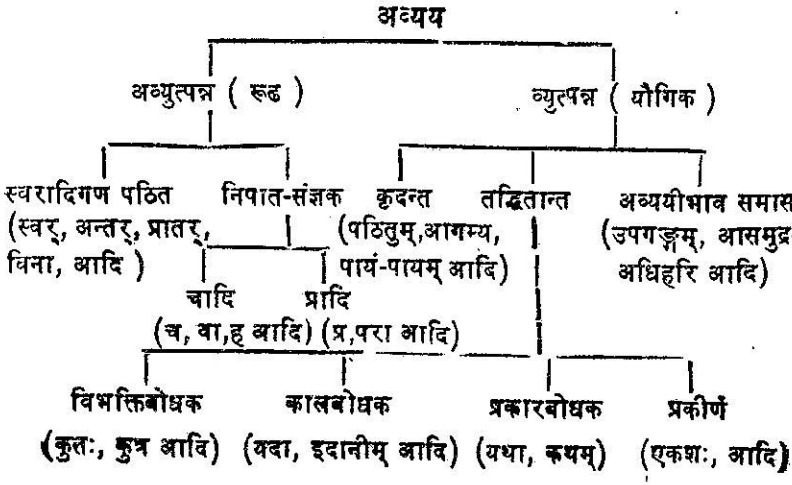

सप्तम अध्याय

कारक और विभक्ति (Cases and Case-endings)

जो क्रिया का साधक होता है वह कारक कहलाता है (क्रिया-जनकत्वं हि कारकत्वम् । येन विना क्रियानिर्वाहो न भवति तत् कारकम्) । कारक छह हैं[1]—

(१) कर्तृ-कारक—क्रिया का प्रधान सम्पादक अर्थात् जो क्रिया के करने में स्वतन्त्र हो और धात्वर्थ व्यापार का आश्रय हो। **(२) कर्म-कारक**—क्रिया के फल का आश्रय (कर्म) अर्थात् क्रिया के द्वारा कर्त्ता जिसे विशेषरूप से प्राप्त करना चाहे। **(३) करण-कारक**—क्रिया के सम्पादन में प्रमुख सहायक (साधकतम)। **(४) सम्प्रदान-कारक**—क्रिया का उद्देश्य अर्थात् जिसके लिए क्रिया की जाए या कुछ दिया जाए। **(५) अपादान-कारक**—क्रिया का विश्लेष अर्थात् जिससे कोई वस्तु अलग हो। **(६) अधिकरण-कारक**—क्रिया का आधार अर्थात् कर्त्ता और कर्म में रहने वाली क्रिया जिस स्थान पर हो।

कारकों का विभक्तियों से सम्बन्ध—कारकों का विभक्तियों से सम्बन्ध है क्योंकि 'विभक्ति' शब्द का अर्थ है—जिसके द्वारा संख्या और कारक का बोध हो (संख्याकारकबोधयित्री विभक्तिः) । विभक्तियाँ सात हैं—प्रथमा, द्वितीया, तृतीया चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी। जैसे—देवदत्त का पुत्र गाँव से आकर वाराणसी में ब्राह्मणों के लिए अपने दोनों हाथों से धन देता है = देवदत्तस्य पुत्रः ग्रामादागत्य वाराणस्यां ब्राह्मणेभ्यः स्वकराभ्यां धनं ददाति । यहाँ 'पुत्रः' में प्रथमा, 'धनम्' में द्वितीया, 'कराभ्याम्' में तृतीया, 'ब्राह्मणेभ्यः' में चतुर्थी, 'ग्रामात्' में पञ्चमी, 'देवदत्तस्य' में षष्ठी और 'वाराणस्याम्' में सप्तमी विभक्ति है।

सामान्यतः कर्त्ता में तृतीया, कर्म में द्वितीया, करण में तृतीया, सम्प्रदान में चतुर्थी, अपादान में पञ्चमी और अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है। षष्ठी विभक्ति को कारक-विभक्ति नहीं माना जाता है क्योंकि उसका क्रिया से सम्बन्ध नहीं है। कर्त्ता, कर्म और करण का क्रिया से सीधा सम्बन्ध है तथा शेष का कर्त्ता आदि के द्वारा परम्परया। कृदन्त क्रिया का प्रयोग होने पर कर्त्ता या कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। व्यवहार में प्रथमा विभक्ति कर्तृवाच्य के कर्त्ता में और कर्मवाच्य के कर्म में होती है। वस्तुतः प्रथमा विभक्ति कर्तृकारक में न होकर प्रातिपदिकार्थ में होती है क्योंकि कर्तृवाच्य में कर्त्ता तो क्रिया के द्वारा ही उक्त हो जाता है फिर प्रथमा विभक्ति के द्वारा कर्तृकारक के पुनः कथन का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। यही स्थिति कर्मवाच्य में कर्म की भी है। अतः पाणिनि ने कहीं भी कर्तृकारक में प्रथमा का उल्लेख नहीं किया है।

दोनों में अन्तर—बाह्य जगत् में जो क्रिया होती है उसे निष्पन्न करने

1. कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट् ॥ समासचक्र, पृ० १३.
2. अनभिहिते (अनुक्ते)
अभिधेयार्थे विधीयन्ते व्यादेयव्यादिलिङादयः।
समासो वा भवेद् यत्र स उक्तः प्रथमा ततः॥

वाले पदार्थ कारक कहे जाते हैं। विभक्तियां भिन्न-भिन्न कारकों को प्रकट करती हैं और उनका सम्बन्ध बाह्य जगत् के पदार्थों से न होकर शब्दरूपों से है। द्वितीयादि विभक्तियां कारकों के अतिरिक्त उपपदों के साथ भी प्रयुक्त होती हैं। अतः उन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) **कारक-विभक्ति**—क्रिया को उद्देश्य करके प्रयुक्त होने वाली विभक्ति को कारक-विभक्ति कहते हैं (क्रियामुद्दिश्य विधीयमाना विभक्तिः कारक-विभक्तिः)।

(२) **उपपद-विभक्ति**—अव्यय आदि पदों को उद्देश्य करके प्रयुक्त होने वाली विभक्ति को उपपद-विभक्ति कहते हैं (पदमुद्दिश्य विधीयमाना विभक्तिः उपपदविभक्तिः)।

जहाँ कारक-विभक्ति और उपपद-विभक्ति दोनों की एक साथ प्राप्ति होती है वहाँ कारक-विभक्ति प्रधान होती है (उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी)। जैसे—(क) 'मुनित्रयं नमस्कृत्य' (मुनित्रय को नमस्कार करके; यहाँ 'मुनित्रय' में 'नमः' अव्यय पद के योग से चतुर्थी विभक्ति की और नमस्करणरूप क्रिया का कर्म होने से द्वितीया विभक्ति की प्राप्ति होती है परन्तु कारक-विभक्ति के प्रधान होने से 'मुनित्रय' में द्वितीया हुई। (ख) 'नमस्करोति देवान्' (देवताओं को नमस्कार करता है)।

विभक्तियों के प्रयोग-सम्बन्धी प्रमुख नियम इस प्रकार हैं—

प्रथमा विभक्ति (First case-ending)

१. **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा**—प्रातिपदिकार्थ में, लिङ्गमात्र [के आधिक्य] में, परिमाणमात्र में और वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे—

(क) **प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा**—शब्द का उच्चारण करने पर जिस अर्थ की नियत-प्रतीति हो उसे प्रातिपदिक (Base or crude form) का अर्थ कहते हैं (नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थ); अर्थात् जब किसी शब्द से उसके अर्थमात्र का ज्ञान कराना अभीष्ट हो तो वहाँ प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार किसी शब्द में जब तक 'सुप्' या 'तिङ्' प्रत्यय न जोड़ा जाये तब तक वह अर्थहीन सा होता है। अतः जब किसी शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना हो तो उसे प्रथमा विभक्ति के द्वारा प्रकट करते हैं। अव्ययों में भी इसी कारण प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। जैसे—उच्चैः (ऊँचा), नीचैः (नीचा), श्रीः (लक्ष्मी), कृष्णः (वासुदेव), ज्ञानम्, पुस्तकम्, रामायणम्, रामायणप्रकाशः, वृक्षः।

यद्यपि प्रातिपदिक से जाति एवं व्यक्ति के अतिरिक्त लिङ्ग, संख्या और कारक का भी बोध होता है परन्तु यहाँ प्रातिपदिक से लिङ्ग, संख्या आदि का ग्रहण

नहीं करना है क्योंकि, १. शब्द सुनते ही नियम से सर्वत्र लिङ्ग, संख्या आदि की एक जैसी प्रतीति नहीं होती है; २. सूत्र में लिङ्ग और संख्या (वचन) का प्रातिपदिक से पृथक् उल्लेख किया गया है। अतः प्रातिपादिकमात्र के वे ही शब्द उदाहरण हो सकते हैं जो उच्चरित होने पर सर्वत्र एक जैसी प्रतीति कराते हैं। ऐसे शब्द या तो अलिङ्ग (अव्यय) होते हैं या नियत लिङ्ग वाले। जिन शब्दों का लिङ्ग विशेष्य के अनुसार बदलता रहता है ऐसे अनियत लिङ्ग वाले शब्द (तटः, तटी, तटम्) लिङ्गमात्राधिक्य के उदाहरण होंगे क्योंकि वहाँ शब्दार्थ (प्रातिपदिकार्थ) के अतिरिक्त उनके लिङ्ग का भी विशेषरूप से ज्ञान होता है।

(ख) **लिङ्गमात्राधिक्य में प्रथमा**—जब अनियत लिङ्ग वाले शब्दों से प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिङ्ग का भी ज्ञान कराना अभीष्ट होता है तब वहाँ लिङ्गमात्राधिक्य में प्रथमा होती है। जैसे—तटः (किनारा), तटी, तटम्। कृष्णः (काला), कृष्णा, कृष्णम्। यद्यपि सूत्र से लिङ्ग मात्र का बोध होता है परन्तु वृत्ति से आधिक्य अर्थ लिया गया है, क्योंकि जाति और व्यक्ति के साथ ही लिङ्ग की प्रतीति होती है, केवल लिङ्ग की नहीं। अतः यहाँ लिङ्गमात्राधिक्य कहा गया है।

(ग) **परिमाणमात्र में प्रथमा**—जब परिमाणवाचक शब्दों से परिमाण-सामान्य का बोध कराना अभीष्ट होता है तब वहाँ परिमाणमात्र में प्रथमा होती है। जैसे – द्रोणो व्रीहिः (द्रोणरूप परिमाण से नपा हुआ धान्य; द्रोण एक बटखरा है, करीब ६४ किलो या २५६ किलो); प्रस्थो व्रीहिः (प्रस्थ=आधा सेर); आढकं चूर्णम् (एक आढक परिमाण चूर्ण; चार आढक का एक द्रोण होता है)। यहाँ यद्यपि प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा हो सकती थी परन्तु परिमाणमात्र में इन उदाहरणों को प्रस्तुत करने का कारण है वैयाकरणों का अन्वय-विषयक शाब्दबोध का सिद्धान्त।[1]

(घ) **वचनमात्र में प्रथमा**—संख्या को वचन कहते हैं। अतः जब संख्यावाचक शब्दों से संख्या-सामान्य का बोध कराना अभीष्ट होता है तब वहाँ वचनमात्र में प्रथमा होती है।[2] जैसे—एकः (एक), द्वौ (दो), बहवः (बहुत)।

---

१. वैयाकरण प्रातिपदिकार्थ का प्रातिपदिकार्थ (नामार्थ का नामार्थ) के साथ अभेदान्वय मानते हैं। अब यदि 'द्रोणो व्रीहिः' में प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा होती है तो द्रोण परिमाण का व्रीहि द्रव्य के साथ अभेदान्वय होने लगेगा और तब 'द्रोणो व्रीहिः' का अर्थ होगा 'द्रोणरूप व्रीहि' जो अभीष्ट नहीं है। यहाँ अभीष्ट है 'द्रोणरूप परिमाण से परिच्छिन्न=तौला हुआ व्रीहि'। इस तरह यहाँ परिमाण और द्रव्य अभिन्न नहीं हैं अपितु उनमें परिच्छेद्य-परिच्छेदकभाव सम्बन्ध है जो परिमाणमात्र में प्रथमा करने पर ही हो सकता है।

२. एक, द्वि आदि संख्यावाचक शब्दों से एकत्व, द्वित्व आदि संख्या के प्रातिपदिकार्थ से ही उक्त होने के कारण यहाँ संख्या अर्थ की बोधक प्रथमा विभक्ति

२. **सम्बोधने च**—सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति होती है। 'सम्बोधन' (शाब्दिक अर्थ—अच्छी तरह समझना) का अर्थ है वक्ता का श्रोता को अपनी बात सुनने के लिए अपनी ओर आकृष्ट करना। जैसे—हे राम ! हे कृष्ण ! यद्यपि सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का रूप कहीं-कहीं कुछ बदल जाता है परन्तु नियमतः वहाँ प्रथमा विभक्ति ही मानी जाती है। शब्दरूपों में स्पष्टता के लिये सम्बोधन के रूप प्रथमा से पृथक् दिखलाये गये हैं।

द्वितीया विभक्ति (Second case-ending)

३. **कर्तुरीप्सिततमं कर्म**—कर्त्ता का ईप्सिततम (सर्वाधिक अभीष्ट) कर्म कहलाता है; अर्थात् कर्त्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिसे विशेषरूप से प्राप्त करना चाहता है उसकी कर्मसंज्ञा होती है।[1] कर्मसंज्ञा होने पर अगले सूत्र 'कर्मणि द्वितीया' से उस कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—(क) देवदत्तः पयसा ओदनं भुङ्क्ते (देवदत्त दूध से भात खाता है)। यहाँ कर्त्ता को यद्यपि 'ओदन' और 'पयस्' दोनों अभीष्ट हैं परन्तु अभीष्टतम केवल 'ओदन' है। अतः उसी में कर्म-

---

अप्राप्त है। ऐसी स्थिति में संख्या अर्थ में जो प्रथमा विभक्ति की गयी है उसका कारण है वैयाकरणों का अभेदान्वय का सिद्धान्त (इहोक्तार्थत्वाद्विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्)।

१. तथायुक्तं चानीप्सितम् [तथा (ईप्सिततमवत्) + युक्तम् (क्रिया से युक्त) + च (अवधारण) + अनीप्सितम् (उपेक्ष्य या द्वेष्य)]—तथा युक्त (जिस प्रकार ईप्सिततम कर्म क्रिया के साथ युक्त रहता है उसी प्रकार यदि कोई) अनीप्सित भी [क्रिया के साथ क्रियाजन्य फलयुक्त हो तो उसे भी कर्मसंज्ञा हो]; अर्थात् कर्त्ता को अनीप्सित होते हुए भी जो पदार्थ अभीष्ट की तरह क्रिया से सम्बद्ध रहते हैं उनकी भी कर्मसंज्ञा होती है। यहाँ इतना विशेष है कि ईप्सिततम तथा अनीप्सित कर्म का कर्ता एक ही हो तथा दोनों का प्रयोग एक काल में हो। यदि अनीप्सित का अन्य क्रिया से योग होगा तो वह क्रिया से पूर्व ही समाप्त होने वाली होगी। जैसे—'ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते' (भात खाते हुए विष खाता है)। यहाँ कर्त्ता को 'ओदन' ईप्सिततम है और 'विष' अनीप्सिततम (द्वेष्य) परन्तु ओदन की ही तरह विष भी भोजन-क्रिया से अनिवार्यरूप से सम्बद्ध है। अतः विष की भी कर्मसंज्ञा हुई। इसी तरह 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' (गांव को जाता हुआ तृण को छूता है); यहाँ कर्त्ता को गमन क्रिया के द्वारा ग्राम ईप्सिततम है। अतः ईप्सिततम ग्राम की तरह अनीप्सित (उपेक्ष्य) 'तृण' की भी कर्मसंज्ञा हुई। यहाँ प्रधान क्रिया (गमन क्रिया) से पूर्व समाप्त होने वाली 'स्पर्श क्रिया' से तृण का योग उसी तरह है जिस तरह गमन के द्वारा ग्राम का।

संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति हुई है। यदि कर्त्ता को 'पयस्' भी अभीष्टतम होगा तो उसमें भी द्वितीया होने पर वाक्य होगा—'देवदत्तः ओदनं पयश्च गृह्णाति' (देवदत्त भात और दूध लेता है)। (ख) 'माषेषु अश्वं बध्नाति' (उड़द के खेत में घोड़े को बाँधता है)। यहाँ कर्त्ता बाँधने की क्रिया के द्वारा अश्व को वशवर्ती करना चाहता है। अतः कर्त्ता को बन्धन-व्यापार द्वारा अश्व ही अभीष्ट है, न कि 'माष'। 'माष' तो कर्मसंज्ञक अश्व के लिए अभीष्ट है। अतएव 'अश्व' की ही कर्मसंज्ञा होगी।

४. **कर्मणि द्वितीया**— [अनुक्त] कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। कर्तृवाच्य में कर्म 'अनुक्त' होता है, अतः वहाँ कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।[1] जैसे—**हरिं** भजति (हरि को भजता है। यहाँ कर्त्ता भक्त को ईप्सिततम हरि है, अतएव हरि की कर्मसंज्ञा हुई तथा कर्तृवाच्य की क्रिया का प्रयोग होने से 'हरि'-गत कर्म 'अनुक्त' है); **ग्रामं** गच्छति (गाँव को जाता है); **पुस्तकं** पठति (पुस्तक पढ़ता है)। कर्मवाच्य में कर्म 'उक्त' होता है; अतः वहाँ प्रातिपदिकार्थ से प्रथमा होती है। जैसे—देवदत्तेन हरिः सेव्यते (देवदत्त के द्वारा हरि की उपासना की जाती है)।

५. **अकथितं च**—अकथित (न कथयितुम् इष्टः = अपादान आदि विशेषरूप से अविवक्षित कारक) भी [कर्मसंज्ञक होता है]; अर्थात् कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो द्विकर्मक धातुओं के कर्मों के साथ नियतरूप से सम्बन्धित होते हैं, परिणामस्वरूप वे कर्म के अतिरिक्त अपादान आदि कारकों के अर्थ को भी प्रकट करते हैं। ऐसे 'अकथित कर्म' (गौण कर्म) की कर्म संज्ञा होती है, यदि वक्ता उसे अपादान आदि के रूप में न कहना चाहे। अपादान आदि की विवक्षा होने पर कर्मसंज्ञा न होकर अपादानादि कारक ही होंगे। अतएव द्विकर्मक धातुओं[2] का प्रयोग होने पर गौण

---

१. अंग्रेजी में कर्त्ता के आधार पर क्रिया, कर्म आदि का निश्चय किया जाता है, जबकि संस्कृत में क्रिया के आधार पर ही कर्त्ता, कर्म आदि का निर्णय किया जाता है। अतः संस्कृत में जिस अर्थ में 'तिप्' आदि प्रत्ययों का प्रयोग होता है वही 'उक्त' कहलाता है, शेष 'अनुक्त'। कर्तृवाच्य में 'कर्त्ता', कर्मवाच्य में 'कर्म' और भाववाच्य में 'भाव' तिङादि प्रत्ययों से उक्त होते हैं, अन्य अनुक्त। कर्त्रादि तिङ्, कृत्, तद्धित और समास से उक्त होते हैं—तिङः कृत्तद्धितसमासैरुक्तानि।

२. द्विकर्मक धातुयें (मुख्य और गौण कर्म वाली धातुयें) इस प्रकार हैं—

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

अर्थ १. दुह् (दुहना), २. याच् (माँगना), ३. पच् (पकाना), ४. दण्ड् (दण्ड देना), ५. रुध् (रोकना), ६. प्रच्छ् (पूछना), ७. चि (चुनना),

कर्म (अकथित या अविवक्षित कर्म) की कर्म संज्ञा होती है, यदि गौणकर्म में अपादान आदि की विवक्षा (वक्तुमिच्छा) न हो। जैसे—गां दोग्धि पयः (गाय से दूध दुहता है)। यहाँ 'पयस्' मुख्य कर्म है क्योंकि कर्त्ता (ग्वाला) को अभीष्टतम 'पयस्' है। 'गौ' अपादान कारक है। द्विकर्मक 'दुह्' धातु का प्रयोग होने से और 'गौ' में अपादान कारक की अविवक्षा होने से मुख्य कर्म 'पयस्' से विशेष-सम्बन्ध रखने वाली 'गौ' अकथित कर्म है। अतः 'गाम्' में द्वितीया विभक्ति हुई है। अपादान की विवक्षा होने पर 'गोर्दोग्धि पयः' होगा।

द्विकर्मक धातुओं के अपादानादि कारकों की विवक्षा और अविवक्षा में अन्य प्रयोगः—

	हिन्दी अर्थ	अविवक्षा में	विवक्षा में
१.	बलि से पृथ्वी माँगता है—	बलिं याचते वसुधाम्	= बलेः याचते वसुधाम्।
२.	चावलों से भात पकाता है—	तण्डुलान् ओदनं पचति	= तण्डुलैः ओदनं पचति।
३.	गर्गों से सौ रुपया दण्ड लेता है—	गर्गान् शतं दण्डयति	= गर्गेभ्यः शतं दण्डयति।
४.	व्रज में गाय को रोकता है—	व्रजम् अवरुणद्धि गाम्	= व्रजे अवरुणद्धि गाम्।
५.	लड़के से मार्ग पूछता है—	माणवकं पन्थानं पृच्छति	= माणवकात् पन्थानं०।
६.	वृक्ष से फलों को चुनता है—	वृक्षम् अवचिनोति फलानि	= वृक्षादवचिनोति फलानि।
७.	लड़के के लिए धर्म का उपदेश देता है—	माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा	= माणवकाय धर्मं ब्रूते शास्ति वा।
८.	देवदत्त से सौ रुपये जीतता है—	शतं जयति देवदत्तम्	= शतं जयति देवदत्तात्।
९.	अमृत के लिये समुद्र को मथता है—	सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति	= सुधायै क्षीरनिधिं मथ्नाति।
१०.	देवदत्त से सौ रुपये चुराता है—	देवदत्तं शतं मुष्णाति	= देवदत्तात् शतं मुष्णाति।
११.	गाँव में बकरी को ले जाता है या खींचता है—	ग्रामम् अजां नयति हरति कर्षति वा	= ग्रामे अजां०।
१२.	बलि से पृथिवी माँगता है—	बलिं भिक्षते वसुधाम्	= बलेः भिक्षते वसुधाम्।
१३.	लड़के को धर्म कहता है—	माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्ति वा	= माणवकाय धर्मं०।

---

८. ब्रू (कहना), ९. शास् (शासन करना), १०. जि (जीतना), ११. मथ् (मथना), १२. मुष् (चुराना), १३. नी (ले जाना), १४. हृ (हरना), १५. कृष् (खींचना) और १६. वह् (ले जाना)। इन १४ धातुओं के अतिरिक्त वे धातुयें भी द्विकर्मक हैं जो इनके समान अर्थ वाली हैं। जैसे—भिक्ष् (माँगना), भाष् (कहना) आदि।

६. **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-शब्द-कर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ**—गमनार्थक (गम्, इण् आदि), ज्ञानार्थक (ज्ञा, बुध्, विद् आदि), भक्षणार्थक (= प्रत्यवसानार्थक—अद्, भुज् आदि), शब्दकर्मक (पठ्, वच्, उच्चर् आदि) तथा अकर्मक[1] (उत्तिष्ठ्, आस् आदि) धातुओं का साधारण-अवस्था (अणि = अणिजन्त अवस्था) का कर्त्ता प्रेरक-अवस्था (णि = णिजन्त अवस्था) में कर्म-संज्ञक हो जाता है। जैसे—

शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम्॥
आसयत् सलिले पृथ्वीं, यः स मे श्रीहरिर्गतिः।[2]

अर्थ—जिन्होंने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा, आत्मीय जनों को वेद का अर्थ समझाया, देवताओं को अमृत पिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया और पृथिवी को जल पर बैठाया वे हरि ही मेरी गति (आश्रयदाता) हैं।

जहाँ उपर्युक्त नियम लागू नहीं होगा वहाँ अणिजन्तावस्था के कर्त्ता में णिजन्तावस्था में तृतीया होगी। जैसे—पाचकः ओदनं पचति=प्रभुः पाचकेन ओदनं पाचयति।

णिजन्तरूप बनाने के लिए मूल धातु में णिच् (अय) प्रत्यय जोड़ा जाता है तथा उसके रूप चुरादिगणीय धातुओं के समान चलते हैं।

७. **अधिशीङ्स्थासां कर्म**—'अधि' उपसर्गपूर्वक शी (शीङ्=शयन करना), स्था (ठहरना) और आस् (बैठना) धातुओं का (आधार) कर्मसंज्ञक होता है। जैसे—भूपतिः सिंहासनम् अध्यास्ते (राजा सिंहासन पर बैठा है); अधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ में शयन करते हैं अथवा रहते हैं अथवा हैं)। अन्यत्र सप्तमी होगी—सिंहासने शेते तिष्ठति आस्ते वा।

८. **उपान्वध्याङ्वसः**—उप, अनु, अधि तथा आ (आङ्) उपसर्गपूर्वक 'वस्' (रहना) धातु [के आधार] की कर्मसंज्ञा होती है। जैसे—उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ में वास करते हैं)। जब 'उप' आदि उपसर्ग नहीं होंगे अथवा 'वस्' धातु का अर्थ 'रहना' नहीं होगा तो उसके आधार में सप्तमी होगी। जैसे—हरिः वैकुण्ठे वसति निवसति वा (हरि वैकुण्ठ में निवास करते हैं); रामः वने उपवसति (राम वन में उपवास करते हैं)।

१. अधोलिखित पद्यान्तर्गत अर्थवाली धातुयें अकर्मक होती हैं—
लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं, बुद्धि-क्षय-भय-जीवित-मरणम्।
शयनं क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं, धातुगणं तमकर्मकमाहुः॥

२. उक्त पद्य में आये हुए णिजन्त-वाक्यों के अणिजन्त-वाक्य क्रमशः इस प्रकार होंगे—शत्रवः स्वर्गमगच्छन्। स्वे वेदार्थमविदुः। देवा अमृतमाश्नन्। विधिः वेदमधीते। पृथ्वी सलिले आस्ते।

९. **उभसर्वतसोः कार्या धिग्युपर्यादिषु त्रिषु।**
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥ (वार्तिक)

उभयतः, सर्वतः ('उभ' तथा 'सर्व' शब्द के साथ 'तस्' = तसिल् प्रत्यय जोड़ने-से क्रमशः उभयतः तथा सर्वतः पद बने हैं—'उभसर्वयोस्तसौ उभसर्वतसौ तदन्तयोर्योगे) और धिक् [शब्द] के योग में; आम्रेडितान्त 'उपरि' आदि तीन (उपरि, अधः और अधि—ये तीनों सामीप्य अर्थ में द्विरुक्त=आम्रेडित होते हैं; अतः उपर्युपरि, अधोऽधः और अध्यधि) के योग में [इनका जिससे संयोग हो उसमें] द्वितीया होती है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों (अभितः, परितः आदि) में भी द्वितीया देखने में आती है। जैसे—उभयतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं); सर्वतः कृष्णम् (कृष्ण के सभी ओर); धिक् कृष्णाभक्तम् (कृष्ण के अनुपासक को धिक्कार है); उपर्युपरि लोकं हरिः (लोक के समीप उपरिभाग में हरि हैं अर्थात् हरि लोक के ठीक ऊपर हैं); अधोऽधो लोकं पातालः (लोक के समीप अधोभाग में पाताल है); अध्यधि लोकम् (लोक के समीप में)।

'धिक् के साथ कभी-कभी प्रथमा और सम्बोधन का भी प्रयोग होता है। जैसे—धिगियं दरिद्रता (इस दरिद्रता को धिक्कार है); धिङ् मूढ !।

१०. **अभितःपरितःसमया-निकषा-हा-प्रतियोगेऽपि** (वार्तिक)—अभितः (अभि + तसिल्=दोनों ओर), परितः (परि + तसिल् = चारों ओर), समया (समीप या मध्यभाग), निकषा (समीप), हा (खेद) और प्रति (ओर) के योग में [इनका जिससे संयोग हो उसमें] भी [द्वितीया विभक्ति होती है]। जैसे—अभितः कृष्णम् (कृष्ण के दोनों ओर); परितः कृष्णम् (कृष्ण के चारों ओर); ग्रामं समया (गाँव के पास या मध्यभाग में); निकषा लङ्कां (लङ्का के समीप); हा कृष्णाभक्तम् (कृष्ण के अभक्त के विषय में खेद है); मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति (नगर जाने के प्रति उत्कण्ठा मन्द है); मातुः हृदयं कन्यां प्रति स्निग्धं भवति (माता का हृदय कन्या के प्रति कोमल होता है); बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् (भूखे को कुछ अच्छा नहीं लगता है); समया तं स्थिता राधा (उसके पास राधा थी)।

११. **अन्तराऽन्तरेण युक्ते**—अन्तरा (बीच में) और अन्तरेण (बिना) [अव्ययों] के योग में [इनका जिसके साथ सम्बन्ध हो उसमें द्वितीया होती है]। जैसे अन्तरा त्वां मां हरिः (तुम्हारे और मेरे बीच में हरि हैं); अन्तरेण हरिं न

सुखम् (हरि के बिना सुख नहीं); त्वामन्तरेण कोऽन्यः प्रतिकर्तुं समर्थः (तुम्हारे बिना दूसरा कौन बदला लेने में समर्थ है)।

१२. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे—अत्यन्त-संयोग (निरन्तरता=अविच्छिन्नता) होने पर कालवाचक और मार्ग (अध्व) वाचक [शब्दों] में [द्वितीया होती है]। जैसे—मासमधीते (निरन्तर महीने भर पढ़ता है); क्रोशं कुटिला नदी (एक कोस तक नदी टेढ़ी है); क्रोशं गिरिः (एक कोस लम्बा पहाड़ है); क्रोशमधीते (कोस भर चलते हुए पढ़ता है); मासं कल्याणी (महीना भर कल्याणी है)। अत्यन्त संयोग न होने पर द्वितीया नहीं होगी—मासस्य द्विरधीते (महीने में दो बार पढ़ता है); क्रोशस्य एकदेशे पर्वतः (कोस के एक भाग में पर्वत है)। विशेष के लिए देखिए—'अपवर्गे तृतीया'।

तृतीया विभक्ति (Third case-ending)

१३. साधकतमं करणम्—[कर्ता को क्रिया की सिद्धि में] साधकतम(सबसे अधिक सहायक या उपकारक) करण कारक कहलाता है। करण कारक में अग्रिम सूत्र 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे —कुठारेण काष्ठं छिनत्ति (कुठार से लकड़ी काटता है; यहाँ काष्ठ-छेदन क्रिया में कुठार सर्वाधिक सहायक है ; अतः कुठार में तृतीया विभक्ति हुई)।

१४. कर्तृकरणयोस्तृतीया—[अनुक्त] कर्ता (कर्मवाच्य और भाववाच्य का कर्ता) तथा करण में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—रामेण बाणेन हतो वाली (राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया; यहाँ 'हन्' धातु से कर्मवाच्य में 'क्त' प्रत्यय जोड़ने पर 'हतः' बना है। कर्मवाच्य में 'क्त' होने से यहां 'क्त' से कर्म 'उक्त' है, तथा कर्ता और करण अनुक्त हैं); मया गम्यते (मेरे द्वारा जाया जाता है; यहाँ भाववाच्य की क्रिया का प्रयोग है; अतः कर्ता अनुक्त है); अहं जलेन मुखं प्रक्षालयामि (मैं जल से मुख धोता हूँ; इस कर्तृवाच्य के प्रयोग में क्रिया से कर्ता 'उक्त' है परन्तु करण 'अनुक्त' है)।

१५. अपवर्गे तृतीया—अपवर्ग (फलप्राप्ति या कार्यसिद्धि) में तृतीया होती है। यह 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' का विशेष विधान है; अर्थात् कालवाचक और मार्गवाचक शब्दों में तृतीया होती है यदि वहाँ अत्यन्तसंयोग के साथ फलप्राप्ति भी हो। जैसे—अह्ना क्रोशेन वा पुस्तकम् अधीतवान् (एक दिन में या एक कोस में पुस्तक पढ़ ली; अर्थात् पूरे दिन भर अथवा पूरे एक कोस चलते-चलते पुस्तक को पढ़ लिया तथा पढ़ने का फल जो ज्ञान है वह भी प्राप्त कर लिया); पञ्चभिः दिनैः नीरोगो जातः (पाँच दिनों में नीरोग हो गया); मासेन योजनेन वा व्याकरणम्

अधीतम् (एक महीने में या एक योजन में व्याकरण पढ़ ली); अह्ना क्रोशेन वा कथां समाप्तवान् (एक दिन में या एक कोस में कथा पूरी पढ़ ली)।

फलप्राप्ति न होने पर द्वितीया ही होगी—'मासमधीतो नायातः' (महीने भर पढ़ा परन्तु ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ)।

१६. सहयुक्तेऽप्रधाने—सह (सह, साकं, समं, सार्धम् आदि सहार्थक शब्दों) का योग होने पर अप्रधान (जो प्रधान = कर्त्ता का साथ देता है) में तृतीया होती है। जैसे—पुत्रेण सह आगतः पिता (पुत्र के साथ पिता जी आए; यहाँ पिता प्रधान कर्त्ता है और पुत्र अप्रधान कर्त्ता क्योंकि पिता का ही क्रिया के साथ मुख्य सम्बन्ध है); पित्रा सह आगतः पुत्रः (पिता के साथ पुत्र आया; इस वाक्य में पुत्र प्रधान कर्त्ता है और पिता अप्रधान); गुरुणा साकं सार्धं समं सह वा छात्राः गच्छन्ति (गुरु के साथ छात्र जाते हैं)।

१७. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्—पृथक् (अलग), विना और नाना (बिना) इन शब्दों के योग से तृतीया विकल्प (= अन्यतर—द्वितीया और पञ्चमी) से होती है। जैसे—रामेण रामात् रामं वा विना दशरथो नाजीवत् (राम के बिना दशरथ नहीं जिये); उर्मिला चतुर्दशवर्षाणि लक्ष्मणं लक्ष्मणेन लक्ष्मणाद् वा पृथक् निवसति स्म (उर्मिला चौदह वर्षों तक लक्ष्मण से अलग रही); नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा (नारी के बिना संसारयात्रा निष्फल है); प्रकृतेः पृथक् (प्रकृति से भिन्न); विद्यां विना सुखं नास्ति।

१८. येनाङ्गविकारः—जिससे अङ्गी ('अवयवधर्म का समुदाय में आरोप होता है' इस नियम से सूत्र में अङ्ग शब्द अङ्गीवाचक है। 'अङ्गानि अस्य सन्ति' = इसके अङ्ग हैं; इस अर्थ में अङ्ग शब्द से मत्वर्थीय 'अच्' प्रत्यय हुआ है) का विकार द्योतित हो, उससे तृतीया हो; अर्थात् जिस अङ्ग के विकृत होने से अङ्गी का विकार लक्षित होता है उस विकृत अङ्गवाचक शब्द से तृतीया होती है। जैसे—अक्ष्णा काणः (एक आँख से काना); कर्णेन बधिरः (कान से बहिरा); उदरेण तुन्दिलः (पेट से तोंदू); पृष्ठेन कुब्जः (पीठ से कुबड़ा); पादेन खञ्जः (पैर से लंगड़ा); शिरसा खल्वाटः (शिर से गंजा)। जहाँ अङ्गी में विकार न मालूम पड़े वहाँ तृतीया नहीं होगी—अक्षि काणम् अस्य (इसकी आँख कानी है)।

१९. इत्थंभूतलक्षणे—इत्थंभूतलक्षण (अयं प्रकारः इत्थं, तं भूतः = प्राप्तः इत्थंभूतः, तस्य लक्षणे = इत्थंभूतलक्षणे। इत्थं का अर्थ है—अयं प्रकारः 'यह प्रकार'; अर्थात् इसका सामान्य अर्थ है—विशेषण। भूतः 'भू + क्त' का अर्थ है—'प्राप्त'। लक्षण का अर्थ है—'ज्ञापित') में तृतीया होती है; अर्थात् जब किसी चिह्नविशेष से किसी वस्तुविशेष की पहचान होती है तो वहाँ उस चिह्नविशेष में तृतीया होती

है। जैसे—जटाभिस्तापसः (जटाओं से तपस्वी ज्ञात होता है; यहाँ 'तापसत्व' तापस का प्रकार=विशेषण है और तापस का ज्ञापक है 'जटा'); दण्डेन सन्यासी (दण्ड से सन्यासी लगता है)।

२०. **हेतौ**—हेतु (हेत्वर्थ = कारण अर्थ) में [हेतुवाचक शब्दों से तृतीया होती है]। जैसे—दण्डेन घटः (दण्डहेतुक घट = दण्ड घट का हेतु है); पुण्येन दृष्टो हरिः (पुण्य के कारण हरि के दर्शन हुए); धनं परिश्रमेण भवति (धन परिश्रम से प्राप्त होता); बुद्धिः विद्यया वर्धते (बुद्धि विद्या से बढ़ती है)। विशेष के लिए 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' द्रष्टव्य है।

चतुर्थी विभक्ति (Fourth case-ending)

२१. **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्**—[दान क्रिया के] कर्म के द्वारा [कर्त्ता] जिसको अभिप्रेत (सन्तुष्ट या सम्बन्धित) करता है वह सम्प्रदान (सम्यक् प्रदीयते अस्मै तत् सम्प्रदानम् = जिसको पूरी तरह से दिया जाता है ऐसे देय द्रव्य का उद्देश्य सम्प्रदान) कहा जाता है। सम्प्रदानसंज्ञा होने पर अग्रिम सूत्र 'चतुर्थी सम्प्रदाने' से उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—विप्राय गां ददाति (ब्राह्मण को दान में गाय देता है; यहाँ कर्त्ता गोदान कर्म के द्वारा ब्राह्मण को सन्तुष्ट करना चाहता है)।

यदि सर्वथा दान अर्थ नहीं होगा तो 'षष्ठी शेषे' सूत्र से षष्ठी विभक्ति होगी—'रजकस्य वस्त्रं ददाति' (धोबी को धोने के लिए कपड़ा देता है)।

२२. **चतुर्थी सम्प्रदाने**—सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—बालकाय पुस्तकं ददाति (लड़के को पुस्तक दान में देता है)।

२३. **रुच्यर्थानां प्रीयमाणः**—रुच्यर्थकों (प्रीति अर्थ वाली रुच्, स्वद् आदि धातुओं) के [योग में] प्रीयमाण (प्रसन्न होने वाला) सम्प्रदान हो। जैसे—हरये रोचते भक्तिः (हरि को भक्ति अच्छी लगती है); मह्यम् अध्ययनं रोचते (मुझे अध्ययन अच्छा लगता है); बालकाय मोदकाः रोचन्ते (बालक को लड्डू अच्छे लगते हैं)।

२४. **धारेरुत्तमर्णः**—धारि (णिजन्त 'धृ' = कर्ज लेना या उधार लेना) धातु के योग में उत्तमर्ण (ऋण देने वाला साहूकार) सम्प्रदान होता है। जैसे—श्यामः यज्ञदत्ताय शतं धारयति (श्याम ने यज्ञदत्त से सौ रुपया उधार लिया है); त्वं मह्यं सहस्रं धारयसि (तुम मेरे सौ रुपये के ऋणी हो); भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (हरि भक्त के लिए मोक्ष के ऋणी हैं)।

२५. **क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः**—क्रुध् (क्रोध करना), द्रुह् (द्रोह या वैर करना), ईर्ष्य् (ईर्ष्या करना) तथा असूय् (डाह करना या ऐब

निकालना) के अर्थ वाली धातुओं के योग में जिसके प्रति क्रोधादि किया जाता है, वह सम्प्रदान होता है। जैसे—हरये क्रुध्यति द्रुह्यति ईर्ष्यति असूयति वा (हरि के ऊपर क्रोध करता है, द्रोह करता है अथवा असूया करता है); खलाः सज्जनेभ्यः असूयन्ति (दुष्ट सज्जनों से असूया करते हैं)।

विशेष—जब क्रुध् और द्रुह धातुयें सोपसर्ग होती हैं तब वहाँ कर्मसंज्ञा होती है—गुरुं खलः छात्रः संक्रुध्यति (गुरु के प्रति दुष्ट छात्र क्रोध करता है); क्रूरमभिक्रुध्यति अधिद्रुह्यति वा (क्रूर के प्रति क्रोध या द्रोह करता है)।

२६. **तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक)**—तादर्थ्य (तस्मै कार्याय इदं तदर्थम्, तदर्थस्य भावः तादर्थ्यम् = तदर्थ + ष्यञ्) में चतुर्थी जानना चाहिए; अर्थात् जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है उस प्रयोजन में चतुर्थी होती है। जैसे—मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि को भजता है); शिशुः मोदकाय रोदिति (बालक लड्डू के लिए रोता है); काव्यं यशसे (काव्य यश के लिए); विद्या विवादाय धनं मदाय (विद्या विवाद के लिए और धन मद के लिए)।

२७. **क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः**—क्रियार्था-क्रिया (क्रिया अर्थः फलं यस्याः सा क्रियार्था सा क्रिया=क्रियार्थाक्रिया[1] अर्थात् जिस क्रिया का फल कोई क्रिया हो उस क्रिया को 'क्रियार्थाक्रिया' कहते हैं) जिसका उपपद (पदस्य समीपम् उपपदम् = पद के समीप में जो रहता है उसे उपपद कहते हैं। यद्यपि क्रिया उपपद नहीं हो सकती है तथापि वाचक शब्द के द्वारा उसमें उपपदत्व माना गया है) है ऐसे स्थानी (पदनिवृत्त अधिकारी 'स्थानी' कहलाता है, तदनुसार अप्रयुज्यमान 'तुमुन्' प्रत्ययान्त पद की प्रकृतिभूत धातु) के कर्म में चतुर्थी होती है; अर्थात् यदि 'तुमुन्' प्रत्ययान्त धातु का प्रयोग परोक्ष रहे तो उसके कर्म में चतुर्थी होती है। जैसे—फलेभ्यो याति (=फलानि आनेतुं याति =फल लाने के लिए जाता है। यहाँ 'याति' क्रिया 'क्रियार्था-क्रिया' या 'क्रिया फलक-क्रिया' है क्योंकि 'गमन' क्रिया का प्रयोजन है 'फलों को लाना'। यह 'याति' क्रिया अप्रयुज्यमान 'आहर्तुम्' 'आ + हृ + तुमुन्' पद के लिए उपपद है। अतएव स्थानी 'हृ' धातु के कर्म 'फल' में द्वितीया न होकर चतुर्थी हुई); वनाय गाम् अमुञ्चत् (=वनं गन्तुं गाम् अमुञ्चत्=वन जाने के लिए गाय को छोड़ा); नमस्कुर्मो नृसिंहाय (=नृसिंहम् अनुकूलयितुं नमस्कुर्मः=नृसिंह भगवान् को अनुकूल करने के लिए नमस्कार करते हैं)।

२८. **तुमर्थाच्च भाववचनात्**—'तुमुन्' अर्थवाची भाव-प्रत्ययान्त शब्दों से भी चतुर्थी होती है; अर्थात् 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ को प्रकट करने के लिए उसी धातु (जिससे 'तुमुन्' प्रत्यय करना हो) से बनी हुई भाववाचक संज्ञाओं से चतुर्थी होती है। जैसे—यागाय (यज् + घञ्=यागः) याति (=यष्टुं 'यज् + तुमुन्' याति=यज्ञ

1. क्रियायै इयं क्रियार्था, क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य सः तस्य क्रियार्थोपपदस्य।

करने के लिए जाता है); दानाय (दातुम्) धनमर्जयति (दान देने के लिए धन कमाता है); पठनाय (पठितुम्) इच्छति (पढ़ने की इच्छा रखता है) ।

२९. **नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च**—नमः (नमस्कार), स्वस्ति (मंगल, कल्याण), स्वाहा (देवता को दान), स्वधा (पितरों को दान), अलम् (समर्थ, पर्याप्त) और वषट् (हवि का दान) के योग से [जिसे नमस्कार आदि किया जाए, उसमें] चतुर्थी होती है । जैसे—हरये नमः (हरि को नमस्कार); प्रजाभ्यः स्वस्ति (प्रजाओं का मंगल); अग्नये स्वाहा (अग्नि देवता को दान); पितृभ्यः स्वधा (पितरों को दान); दैत्येभ्यो हरिरलम् (दैत्यों के लिए हरि पर्याप्त हैं); इन्द्राय वषट् (इन्द्र के लिए हवि का दान) ।

'अलम्' यदि निषेध अर्थ में प्रयुक्त होगा तो तृतीया विभक्ति होगी—'अलं महीपाल तव श्रमेण' (हे राजन् ! आप व्यर्थ श्रम न करें) ।

'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' इस पूर्वोक्त नियम से 'मुनित्रयं नमस्कृत्य' में द्वितीया विभक्ति हुई है ।

पञ्चमी विभक्ति (Fifth case-ending)

३०. **ध्रुवमपायेऽपादानम्**—अपाय (अप + अय् + घञ्=अपाय = विश्लेष या विभाग) होने पर ध्रुव (अवधिभूत) अपादानसंज्ञक होता है; अर्थात् जिससे विभाग होता है वह (ध्रुव) अपादान होता है । अपादान संज्ञा होने पर अग्रिम सूत्र 'अपादाने पञ्चमी' से पञ्चमी विभक्ति होती है । जैसे—वृक्षात् पत्रं पतति (वृक्ष से पत्र गिरता है । यहाँ 'वृक्ष' अवधिभूत है और उससे पत्र विभक्त हो रहा है); धावतोऽश्वात् पतति (दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है) ।

३१. **अपादाने पञ्चमी**—अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है । जैसे—सः प्रासादात् अपतत् (वह महल से गिरा); ग्रामादायति सः (वह गाँव से आता है) ।

३२. **जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्** (वा०)—जुगुप्सा (घृणा), विराम (विरति) तथा प्रमाद (असावधानी) अर्थ वाली धातुओं का भी [अपादान संज्ञा के रूप में] परिगणन करना चाहिए; अर्थात् इन धातुओं के अर्थ वाली धातुओं के योग में जिससे जुगुप्सा आदि की जाये उसकी अपादान संज्ञा होती है । इसमें बुद्धि परिकल्पित विभाग का विधान किया गया है । जैसे—पापाज्जुगुप्सते विरमति वा (पाप से घृणा करता है या विरक्त होता है); धर्मात्प्रमाद्यति (धर्म से प्रमाद करता है); स्वाधिकारात्प्रमत्तः (अपने अधिकार से प्रमत्त); सत्यान्न प्रमदितव्यम् (सत्य से प्रमाद नहीं करना चाहिए); स्वाध्यायान्मा प्रमदः (स्वाध्याय से प्रमाद मत करो) ।

३३. **भीत्रार्थानां भयहेतुः**—भयार्थक और त्राणार्थक धातुओं ('भी' तथा 'त्रै' धातु के अर्थ वाली धातुओं) का योग होने पर भय का कारण अपादान होता है । वस्तुतः यहाँ बुद्धिकल्पित विभाग ही है । जैसे—चौराद् बिभेति (चोर से डरता है); लोकापवादाद् भयम् (लोकनिन्दा से भय); मार्जाराद् दुग्धं त्रातुमिच्छति (बिल्ली से दूध की रक्षा करना चाहता है); मां नरकपातात् रक्ष (नरक में गिरने से मेरी रक्षा करो) । भय-हेतु के न होने पर अपादान संज्ञा नहीं होगी—अरण्ये बिभेति (जंगल में डरता है; यहाँ जंगल से भय नहीं है अपितु जंगली जीवों से भय है जो इस वाक्य में नहीं है) ।

३४. **वारणार्थानामीप्सितः**—वारणार्थक (वारण=प्रवृत्ति को रोकना) धातुओं के [प्रयोग होने पर] ईप्सित की अपादान संज्ञा होती है; अर्थात् जिससे किसी को वारण करना अभिलषित हो उसमें पञ्चमी होती है । जैसे—यवेभ्यो गां वारयति (जौ से गाय को रोकता है); पापान्निवारयति मित्रम् (मित्र को पाप से दूर करता है); अग्नेः बालकान् वारयति (आग से बालक को दूर करता है) ।

३५. **अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति**—गोपन (=अन्तर्धि 'अन्तर् + धा + कि'= व्यवधान) होने पर जिससे अदर्शन की इच्छा करता है वह अपादान होता है; अर्थात् जब कोई किसी से अपने को छिपाना चाहता है तो जिससे छिपाना चाहता है वह अपादानसंज्ञक होता है । जैसे—मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण माता से छिपता है); अन्तर्धत्स्व रघुव्याघ्रात् राक्षसेश्वर ! (हे राक्षसराज रावण ! तुम रघुरूपी व्याघ्र से अपने को छिपाओ) ।

३६. **आख्यातोपयोगे**—उपयोग (उपयुज्यते फलाय इति उपयोगः=जो निश्चित फल के लिए प्रयुक्त हो; परन्तु यहाँ यह शब्द नियमपूर्वक विद्याग्रहण में रूढ है) में आख्याता (आ समन्ताद् ख्याति वक्ति इति आख्याता=गुरु, उपाध्याय) अपादानसंज्ञक होता है; अर्थात् जिससे नियमपूर्वक विद्या सीखी जाती है वह गुरु अपादान होता है । जैसे—उपाध्यायाद् अधीते (उपाध्याय से पढ़ता है); अध्यापकात् संस्कृतं पठति (शिक्षक से संस्कृत पढ़ता है) । नियमपूर्वक विद्या न सीखने पर षष्ठी होगी—'नटस्य गाथां शृणोति' (नट की गाथा सुनता है) ।

३७. **जनिकर्तुः प्रकृतिः**—उत्पत्ति के कर्ता (जनेः उत्पत्त्याः कर्ता जनिकर्ता तस्य जनिकर्तुः = जायमानस्य = उत्पत्ति का कर्ता वही होता है जो उत्पन्न होता है) की प्रकृति (हेतु) अपादान होती है; अर्थात् 'जनि' (पैदा होना) धातु के कर्ता का मूल कारण अपादान होता है । जैसे—ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते (ब्रह्मा से प्रजायें उत्पन्न होती हैं); गोमयात् वृश्चिको जायते (गोबर से बिच्छू पैदा होता है);

'पात्रापात्रविवेकोऽस्ति धेनुपन्नगयोर्यथा। तृणात्संजायते क्षीरं क्षीरात्संजायते विषम्'। (गाय और सर्प में पात्र और अपात्र का विवेक है। अतः गाय में घास से दूध पैदा होता है और सर्प में दूध से विष पैदा होता है)।

३८. **भुवः प्रभवः**—भू (=भवन=प्रथम प्रकाश या आविर्भाव) [के कर्ता] का प्रभव (प्रथम प्रकाशन स्थल) अपादानसंज्ञक होता है; अर्थात् प्रभव (प्र + भू धातु) के योग में प्रथम प्रकाशन स्थल (आविर्भाव स्थल) अपादान होता है। यहाँ 'प्रथम प्रकाशन' का अर्थ उत्पत्ति नहीं है। पूर्वसूत्रस्थ 'जनि' का अर्थ है—'अभूतप्रादुर्भाव' और 'प्रभव' का अर्थ है—'अन्य स्थल से सिद्ध वस्तु का प्रथम उपलम्भ (ज्ञान या प्रकाशन)। जैसे—हिमवतो गङ्गा प्रभवति (हिमालय से गङ्गा आविर्भूत होती है; यहाँ गङ्गा का उत्पत्तिस्थान हिमालय नहीं है अपितु गङ्गा का उत्पत्तिस्थान विष्णु का चरण है, पश्चात् ब्रह्मा के कमण्डलु में, अनन्तर शिव की जटा में, पुनः हिमालय में उसका प्रकाशन होता है); धर्मादर्थः प्रभवति (धर्म से अर्थ होता है); लोभात् क्रोधः प्रभवति (लोभ से क्रोध होता है)।

३९. **पञ्चमी विभक्ते**—विभक्त (विभाग होने पर भेदाश्रय) में पञ्चमी होती है। यह सूत्र आगे आने वाले 'यतश्च निर्धारणम्' सूत्र का विशेष विधान करता है; अर्थात् जब सर्वथा भिन्न दो वस्तुओं में परस्पर (तारतम्य के आधार से) पार्थक्य (विभाजन) बतलाया जाता है तो जिससे भेद बतलाया जाता है उसमें पञ्चमी होती है। जैसे—माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः (मथुरा के लोग पटना के लोगों की अपेक्षा धनी अधिक हैं); धनात् विद्या गरीयसी (धन से विद्या प्रशस्य है); देवदत्तात् यज्ञदत्तः सुन्दरतरः (देवदत्त से यज्ञदत्त सुन्दर है); मौनात् सत्यं विशिष्यते (मौन से सत्य प्रशस्य है); ईश्वरात् परं नास्ति (ईश्वर से बढ़कर कुछ नहीं है)।

४०. **अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते**—अन्य(भिन्न), आरात् (दूर या निकट), इतर (भिन्न), ऋते (विना), दिग्वाचक शब्द (पूर्व, दक्षिण आदि), अञ्चूत्तरपद (समास के अन्त में प्रयुक्त 'अञ्चु' धातु से निष्पन्न दिग्वाचक शब्द—प्राक्, प्रत्यक्, उदक् आदि), 'आच्' प्रत्ययान्त दिग्वाचक शब्द (दक्षिणा, उत्तरा आदि) तथा 'आहि' प्रत्ययान्त दिग्वाचक शब्द (दक्षिणाहि, उत्तराहि आदि)—इनके योग में पञ्चमी होती है। यहाँ 'इतर' शब्द का पृथक् ग्रहण अन्यार्थक भिन्न, पर, अपर आदि समस्त शब्दों के ग्रहण के लिये है। 'अञ्चूत्तरपद' वस्तुतः दिक् शब्द ही है। जैसे—अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्(कृष्ण से भिन्न); आराद् वनात्, (वन से निकट या दूर); ऋते कृष्णात्, (कृष्ण के विना); ज्ञानात् ऋते न सुखम् (ज्ञान के विना सुख नहीं); प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात् (गाँव के पूर्व या पश्चिम की ओर);

चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः (चैत्र से पहले फाल्गुन है); दक्षिणा दक्षिणाहि वा ग्रामात् (गाँव से दक्षिण या दक्षिणी दिशा की ओर); दक्षिणाहि ग्रामात् (गाँव से दक्षिण); उत्तरा समुद्रात् (समुद्र से उत्तर की ओर)।

४१. **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च**—दूरार्थक और अन्तिकार्थक (समीपार्थक) शब्दों से द्वितीया [तृतीया और पञ्चमी] भी हो। यहाँ चकार से तृतीया और पञ्चमी का ग्रहण होता है 'तथा सप्तम्यधिकरणे च' सूत्र में प्रयुक्त 'च' से प्रकरण-प्राप्त दूर और अन्तिक अर्थ वाले शब्दों से सप्तमी भी होती है। जैसे—दूरं दूरेण दूरात् दूरे वा ग्रामस्य ग्रामद्वा (गाँव से दूर); अन्तिकम् अन्तिकेन अन्तिकाद् अन्तिके वा निकटं निकटेन निकटात् निकटे वा वनस्य वनाद्वा (वन के समीप); 'दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम्। दूराच्च भाष्यं दस्युभ्यो दूराच्च कुपिताद् गुरोः'॥ (म० भा०) निवास स्थान से दूर में पेशाब करना चाहिए तथा पैर धोना चाहिए। चोरों से तथा कुपित गुरु से दूरी पर रहना चाहिए।

षष्ठी विभक्ति (Sixth case-ending)

४२. **षष्ठी शेषे**—शेष (कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्व-स्वामिभाव आदि सम्बन्धविशेषों) में षष्ठी विभक्ति होती है; अर्थात् जो काम अन्य विभक्तियों से नहीं होता है उसमें षष्ठी विभक्ति होती है। षष्ठी विभक्ति कारक-विभक्ति नहीं है। इसमें वाक्य के एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध बतलाया जाता है। ये सम्बन्धविशेष कई प्रकार के होते है। जैसे—स्वामी और नौकर का (स्व-स्वामिभाव), पिता और पुत्र का (जन्य-जनकभाव), मिट्टी और घड़ा का (कार्य-कारणभाव) सम्बन्ध। इन्हीं सम्बन्धविशेषों को बतलाने के लिए षष्ठी का प्रयोग होता है। सम्बन्ध यद्यपि द्विष्ठ (दो में रहने वाला होता है परन्तु षष्ठी विभक्ति सम्बन्धी पदार्थों में जो विशेषण (भेदक) होता है उसी में होती है। जैसे—राज्ञः पुरुषः (राजा का आदमी); बालकस्य पिता (बालक का पिता); मृत्तिकायाः घटः (मिट्टी का घड़ा); रामस्य पुस्तकम् (राम की पुस्तक); तस्य चित्तम् (उसका अन्तःकरण); स्खलनं मनुष्याणां धर्मः (गलती करना मनुष्य का धर्म है); यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा (जिसकी स्वयं बुद्धि नहीं है)।

४३. **षष्ठी हेतुप्रयोगे**—हेतु [शब्द] का प्रयोग होने पर [तथा हेतुत्व के द्योतित होने पर हेतुवाचक शब्द में] षष्ठी हो; अर्थात् हेतु के (कारण या प्रयोजन) अर्थ होने पर यदि 'हेतु' शब्द का भी प्रयोग हुआ हो तो हेतुवाचक शब्द में षष्ठी होती है। यह 'हेतौ' सूत्र का अपवाद है। जैसे—अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न की प्राप्ति के प्रयोजन से रहता है); अध्ययनस्य हेतोः वाराणस्यां तिष्ठति (अध्ययन के प्रयोजन से वाराणसी में रहता है), अन्नस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्।

हेतु' शब्द का प्रयोग न होने पर 'हेतौ' सूत्र से तृतीया होगी—'अध्ययनेन वसति'। निमित्तार्थक शब्द के साथ यदि सर्वनाम का भी प्रयोग हो तो प्रायः सभी विभक्तियों का प्रयोग होता है[1]—को हेतुः, कं हेतुम्, केन हेतुना, कस्मै हेतवे, कस्मात् हेतोः, कस्य हेतोः, कस्मिन् हेतौ (किस हेतु से)। इसी प्रकार— किं निमित्तम्, किं प्रयोजनम् (कौन सा प्रयोजन); ज्ञानेन निमित्तेन, ज्ञानाय निमित्ताय, ज्ञानात् निमित्तात्, ज्ञानस्य निमित्तस्य, ज्ञाने निमित्ते हरिः सेव्यः (ज्ञान के लिए हरि सेव्य हैं)। असर्वनाम का प्रयोग होने पर प्रथमा और द्वितीया नहीं होती हैं।

४४. **कर्तृकर्मणोः कृति**—'कृत्' (तृच्, घञ्, ल्युट्, क्तिन्, ण्वुल् आदि कृत्) [प्रत्ययान्त शब्दों के योग] में कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है। सामान्य नियमानुसार 'अनुक्त' कर्ता में तृतीया, अनुक्त कर्म में द्वितीया तथा उक्त कर्ता एवं कर्म में प्रथमा होती हैं; यह इस नियम का अपवाद है। अर्थात् कृत् प्रत्ययान्त (गतिः भोजनम् आदि) पदों का प्रयोग होने पर उनके कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है (तिङन्त के कर्ता और कर्म में नहीं)। जैसे—कृष्णस्य कृतिः (कृ + क्तिन्; कृष्णकर्तृक कृति=कृष्ण की कृति); वेदस्य अध्येता (अधि + ईङ् + तृच्; वेद का अध्ययन—कर्ता)। यहाँ प्रथम वाक्य में 'कृति' का कर्ता 'कृष्ण' तथा द्वितीय वाक्य में 'अध्येता' का कर्म 'वेद' षष्ठी विभक्ति में है। अन्य उदाहरण—जगतः कर्ता (कृ + तृच्) कृष्णः (जगत् का कर्ता कृष्ण है); बालकानां रोदनम् (रुद् + ल्युट्; बालकों का रोना); विषस्य भोजनम् (भुज् + ल्युट्; विष का भोजन); राक्षसानां घातः (हन् + घञ्; राक्षसों का विनाश); राज्यस्य प्राप्तिः (प्राप् + क्तिन्; राज्य की प्राप्ति); पुस्तकस्य पाठकः (पठ् + ण्वुल्; पुस्तक का पाठक); या सृष्टिः ब्रह्मणाद्या (सृज् + क्तिन्; जो ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि है)।

४५. **उभयप्राप्तौ कर्मणि**—[एक ही कृत् के योग में] उभयप्राप्ति (कर्ता और कर्म दोनों की उपस्थिति) होने पर कर्म में षष्ठी हो [कर्ता में नहीं]। जैसे—आश्चर्यो गवां दोहः (दुह् + घञ्) अगोपेन (अगोपकर्तृक गोकर्मक जो दोहन वह अद्भुत है = आश्चर्य है, अगोप से गायों का दुहा जाना); ग्रन्थानां पाठः अशिक्षितेन (अशिक्षित ने ग्रन्थों का पाठ किया)। यदि कर्ता और कर्म भिन्न-भिन्न 'कृत्' से सम्बन्धित होंगे तो इस सूत्र की गति नहीं होगी। जैसे—ओदनस्य पाकः ब्राह्मणानां च प्रादुर्भावः (अन्न का पाक और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव)।

४६. **तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्**—'तुला' और 'उपमा' को छोड़कर तुल्यार्थक (तुल्य, सदृश, सम आदि) शब्दों से तृतीया विकल्प (विकल्पाभाव में षष्ठी) से होती है। तुला और उपमा के साथ षष्ठी ही होती है, तृतीया नहीं। जैसे—कृष्णस्य उपमा तुला वा नास्ति (कृष्ण की तुलना नहीं है); कृष्णस्य कृष्णेन

1. निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्। प्रायग्रहणात् असर्वनाम्नः प्रथमा द्वितीये न स्तः। वा०

तुल्यं
वा तुल्यः सदृशः समो वा (कृष्ण के सदृश); नायं मया मम वा पराक्रमं बिभर्ति (यह मेरे बराबर पराक्रम नहीं रखता)।

४७. **षष्ठी चानादरे**—अनादर [के अतिशय] में [सप्तमी के साथ] षष्ठी भी हो [यदि भावलक्षण हो]। इस सूत्र में 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र की अनुवृत्ति है तथा चकार से सप्तमी की अनुवृत्ति है। इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ हुआ 'जिसके भाव (क्रिया) से अनादर (तिरस्कारातिशय) विषयक भावान्तर (क्रियान्तर) लक्षित हो उससे षष्ठी तथा सप्तमी हो। अनादर का अर्थ न होने पर सप्तमी ही होगी, षष्ठी नहीं'। जैसे—रुदति पुत्रे रुदतः वा पुत्रस्य प्राव्राजीत् (रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह सन्यासी हो गया; यहाँ 'रुदतः' क्रिया शब्द से 'प्राव्राजीत्' रूप क्रियान्तर तथा बच्चों की परवाह न करके उनका अत्यधिक तिरस्कार भी लक्षित हो रहा है); निवारयत्यपि पितरि निवारयतोऽपि पितुः देवदत्तः अध्ययनं परित्यक्तवान् (पिता के रोकने पर भी देवदत्त ने पढ़ना छोड़ दिया)।

सप्तमी विभक्ति (Seventh case-ending)

४८. **आधारोऽधिकरणम्**—[कर्ता या कर्म से सम्बन्धित क्रिया का] आधार अधिकरण होता है। अधिकरण तीन प्रकार का होता है:—

(क) **औपश्लेषिक आधार** (Location of contact)—जिसके साथ आधेय का संयोग (भौतिक या शारीरिक) सम्बन्ध हो। जैसे—कटे आस्ते (चटाई पर बैठा है); स्थाल्यां पचति (बटलोई में पकाता है)। (ख) **वैषयिक आधार** (Location of object)—जिसके साथ आधेय का बौद्धिक सम्बन्ध हो। जैसे—मोक्षे इच्छाऽस्ति (मोक्ष में इच्छा है); प्रातःकाले पठति (सुबह पढ़ता है)। (ग) **अभिव्यापक आधार**—(Location of pervasion)—जिसके साथ आधेय का व्याप्य-व्यापक (आधार के सभी अवयवों को व्याप्त करके आधेय वस्तु का रहना) सम्बन्ध हो। जैसे—तिलेषु तैलम् [तिलों में तेल है]; सर्वस्मिन्नात्मास्ति [सब में आत्मा है]।

४९. **सप्तम्यधिकरणे च**—अधिकरण में सप्तमी होती है [सूत्र में प्रयुक्त 'च' का अर्थ ४१वें सूत्र में स्पष्ट किया गया है]। जैसे—पृथिव्यां क्रीडति (जमीन पर खेलता है); भानौ तापः (सूर्य में गर्मी है); पुष्पे गन्धः (फूल में गन्ध है)।

५०. **निमित्तात्कर्मयोगे** [वा०]—कर्मयोग (कर्म-सम्बन्ध) में निमित्त [फल] से सप्तमी होती है; अर्थात् जिस फल की प्राप्ति के लिए कोई क्रिया की जाती है, वह फल यदि उस क्रिया के कर्म से सम्बद्ध (समवेत) हो तो उस फल (निमित्त) में सप्तमी होती है। जैसे—चर्मणि द्वीपिनं हन्ति (चमड़े के लिए हाथी

को मारता है; यहाँ फलभूत चर्म हनन क्रिया के कर्म (हाथी) के साथ सम्बद्ध है। अतः चर्म में सप्तमी हुई है); दन्तयोः हन्ति कुञ्जरम् (दाँत के लिए कुञ्जर हाथी को मारता है); केशेषु चमरीं हन्ति (बालों के लिए चमरी मृग को मारता है)।

५१. **यस्य च भावेन भावलक्षणम्** (यस्य च क्रियया क्रियालक्षणम्)—जिसके भाव (क्रिया) से भाव का लक्षण (क्रियान्तर का द्योतन) हो उससे सप्तमी हो। यहाँ 'भाव' का अर्थ है—'क्रिया'। भाव शब्द के दो बार प्रयोग होने से परवर्ती भाव का अर्थ है—द्वितीय क्रिया (क्रियान्तर)। फलतः इस सूत्र का अर्थ होगा—'जिसकी क्रिया से दूसरी क्रिया का पता चलता है उससे (प्रथम क्रिया वाले से) सप्तमी हो।' इस प्रकार के वाक्यों में एक कार्य (क्रिया) के होने पर दूसरे कार्य (क्रिया) का होना प्रकट होता है तथा पहले होने वाले कार्य में 'शतृ', 'शानच्' अथवा क्त, क्तवतु आदि प्रत्ययों से निष्पन्न शब्द का क्रिया के रूप में प्रयोग किया जाता है। पहले प्रारम्भ होने वाली क्रिया यदि कर्तृवाच्य में होती है तो 'शतृ' आदि क्रिया के साथ कर्ता में और यदि कर्मवाच्य में होती है तो 'शतृ' आदि क्रिया के साथ कर्म में सप्तमी होती है। जैसे—मया कार्ये कृते सः आगतः (मेरे द्वारा कार्य किये जाने पर वह आया); गोषु दुह्यमानासु बालकाः गृहमगच्छन् (गायों के दुहे जाते समय बालक घर गये); रामे वनं गते दशरथः मृतः (राम के वन जाने पर दशरथ मृत्यु को प्राप्त हो गये); ब्राह्मणेषु अधीयानेषु सः गतः (ब्राह्मणों के अध्ययन करते समय वह गया); सूर्ये अस्तं गते गौपा गृहमगच्छन्।

५२. **यतश्च निर्धारणम्**—जिससे (जिस समुदाय से) निर्धारण (एक देश का पृथक्करण) हो उससे (समुदाय से) षष्ठी तथा सप्तमी हो; अर्थात् जब किसी समुदाय (वर्ग) से किसी विशेषता (जाति, गुण, क्रिया आदि) के कारण निर्धारण (पृथक्करण) किया जाता है तो समुदायवाचक शब्द में सप्तमी तथा षष्ठी होती है। जैसे—गोषु गवां वा कृष्णा बहुक्षीरा (गायों में काली गाय बहुत दूध देती है); छात्रेषु छात्राणां वा मैत्रः पटुः (छात्रों में मैत्र चतुर है); गच्छत्सु गच्छतां वा धावन् शीघ्रः (चलने वालों में दौड़ने वाला शीघ्र होता है); कविषु कवीनां वा कालिदासः श्रेष्ठः (कवियों में कालिदास श्रेष्ठ है)।

जब दो में से किसी एक का निर्धारण किया जाता है तो जिससे निर्धारण किया जाता है उसमें 'पञ्चमी विभक्ते' से पञ्चमी होती है—धनात् विद्या गरीयसी (धन से विद्या गुरुतर है)।

अष्टम अध्याय

समास (Compound)

समास (सम् + अस् + घञ्) शब्द का अर्थ है—'संक्षेप' (अनेक सुबन्तों का एक पद बन जाना); अर्थात् जब दो या दो से अधिक शब्दों (सुबन्तों) को आपस में इस प्रकार से जोड़ दिया जाता है कि शब्द का आकार छोटा होने पर भी उसके अर्थ में परिवर्तन नहीं होता है, तो उसे समास कहते हैं। समास शब्द की व्युत्पत्ति है—'समसनम् एकपदीभवनं (संक्षेपः) समासः' अथवा 'समस्यते एकत्र क्रियते अनेक सुबन्तम् इति समासः'।

समास होने पर प्रायः पूर्ववर्ती शब्दों की विभक्तियों को हटा (लोप) दिया जाता है। यद्यपि पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रयुक्त परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, भयङ्करः, युधिष्ठिरः, सरसिजम्, वागर्थाविव आदि कुछ अलुक् समास प्रसिद्ध हैं जिनमें पूर्वपद की विभक्तियों का लोप नहीं हुआ है परन्तु एक पद बनना रूप समास का प्रयोजन यहाँ वर्तमान है। समास के प्रयोजन (फल) हैं—(१) एक पद बन जाना, (२) विभक्ति का लोप और (३) एक पद बनने से एक उदात्त स्वर होना। व्याकरण के नियमानुसार एक पद में एक ही उदात्त स्वर माना जाता है। अतः विभक्ति का लोप न होने पर भी एक पद बनना रूप फल समास का रहता ही है।

जब समस्त पद के शब्दों को अलग-अलग करके (विभक्ति के साथ) दर्शाया जाता है तो उसे 'विग्रह' कहते हैं। जैसे—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः। यहाँ 'राजपुरुषः' समस्त पद है और 'राज्ञः पुरुषः' उसका विग्रह।

समास में आये हुये शब्दों की प्रधानता और अप्रधानता के आधार पर समास के प्रमुख चार प्रकार माने गये हैं—(१) अव्ययीभाव (प्रायः पूर्व-पदार्थ = अव्यय प्रधान), (२) तत्पुरुष (प्रायः उत्तर पदार्थ प्रधान), (३) द्वन्द्व (प्रायः उभय पदार्थ प्रधान) और (४) बहुव्रीहि (प्रायः अन्य पदार्थ प्रधान)।[1] जब

(१) लक्षण में प्रायः पद देने का कारण है कि तत् तत् समासों के प्रकरण में कुछ ऐसे भी समस्त पद आये हुए हैं जिनमें उक्त लक्षण (पूर्व पदार्थ प्रधान अव्ययीभाव है, आदि लक्षण) घटित नहीं होता है परन्तु उनके उस समास के प्रकरण में होने से वहाँ वह समास माना जाता है। अतः प्रत्येक के लक्षण में प्रायः पद दिया गया है। जैसे—(क) 'उन्मत्ता गङ्गा यत्र सः = उन्मत्तगङ्गो नाम देशः' (जहाँ गङ्गा उन्मत्त है, वह उन्मत्तगङ्ग नामक देश है)। यह पद अव्ययीभाव के प्रकरण में है परन्तु यहाँ

'कर्मधारय' और 'द्विगु' को तत्पुरुष से पृथक् बतलाया जाता है तो समास के छः भेद माने जाते हैं—[1]

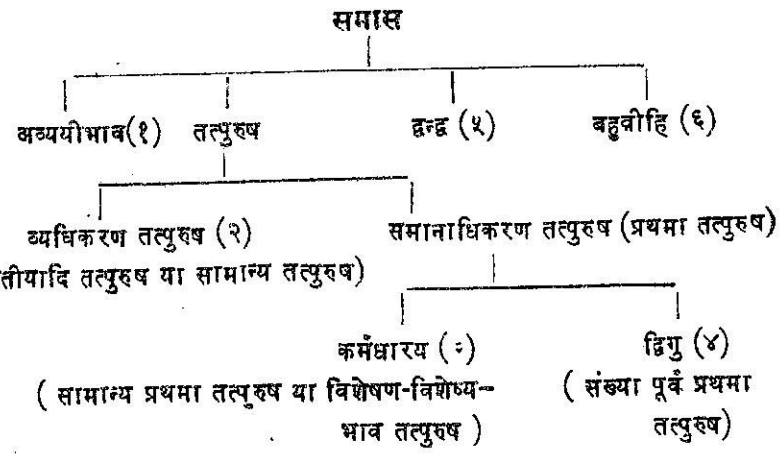

अव्ययीभाव समास (Adverbial or Indeclinable Compound)

अव्ययीभाव शब्द का अर्थ—जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय बन जाना। इस समास में प्रथम पद 'अव्यय' होता है और दूसरा पद 'संज्ञा'। इसमें प्रायः पूर्व पदार्थ का (अव्यय का) प्राधान्य होता है अतएव समास होने पर समस्त पद अव्यय हो जाता है और तब उसका रूप नहीं बदलता अंतिम पद का आकार नपुंसकलिङ्ग के

देश रूप अन्य-पदार्थ का प्राधान्य है। (ख) 'पञ्चानां तन्त्राणां समाहारः' (पाँच तन्त्रों का समाहार) इस समाहार अर्थ वाले तत्पुरुष में समाहार अन्य पद का अर्थ है, उत्तर-पद का नहीं। (ग) 'द्वित्राः' (दो या तीन) यह उभय-पदार्थ प्रधान होने पर भी बहुव्रीहि है। (घ) संज्ञा च परिभाषा च=संज्ञापरिभाषम् (संज्ञा और परिभाषा का समूह) इस समाहार द्वन्द्व में समाहार अर्थ के अन्य पदार्थ होने पर भी द्वन्द्व कहलाता है।

१. अधोलिखित द्व्यर्थक सूक्ति में छहों समासों के नाम गिनाये गये हैं—

द्वन्द्वोऽस्मि द्विगुरहं गृहे च मे सततमव्ययीभावः।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः॥

अर्थः—कोई पुरुष किसी से काम करने के लिए कह रहा है—हे पुरुष! मैं द्वन्द्व (पति-पत्नी) हूँ। द्विगु (दो गायों अथवा बैलों वाला) हूँ। मेरे घर में सदा अव्ययीभाव (खर्च नहीं के बराबर) है। तुम वह काम (कर्म) करो जिससे मैं बहुव्रीहि (बहुत धान्य वाला) हो जाऊँ।

एकवचन जैसा होता है। जैसे—हरौ इति = अधिहरि (हरि में; यहाँ पूर्व पद 'अधि' का अर्थ 'में' प्रधान है), गङ्गायाः समीपम्=उपगङ्गम् (गङ्गा के समीप); कामम् अनतिक्रम्य=यथाकामम् (इच्छानुसार)।

अव्ययीभाव समास बनाते समय स्मरणीय नियम—

(१) यदि संज्ञा शब्द का अन्तिम वर्ण दीर्घ होता है तो उसे ह्रस्व कर दिया जाता है [ऐ, ए, ई > इ। औ, ओ, ऊ > उ। आ > अ]—गङ्गायाः समीपे = उपगङ्गम् (उप + गङ्गा); नद्याः समीपे = उपनदि (उप + नदी); वध्वाः समीपे = उपवधु (उप + वधू); गोः समीपे=उपगु (उप + गो); नावः समीपे = उपनु (उप + नौ)।

(२) अन्नन्त (अन् में अन्त होने वाली) पुं० और स्त्री० संज्ञाओं का 'न्' नित्य हटा दिया जाता है परन्तु अन्नन्त नपुं० संज्ञाओं का 'न्' विकल्प से हटाया जाता है। जैसे—राज्ञः समीपे=उपराजम् (उप + राजन्); सीम्नः समीपे=उपसीमम् (उप + सीमन्); चर्मणः समीपे = उपचर्मम् उपचर्म वा (उप + चर्मन्)।

(३) यदि अव्ययीभाव समास के अन्त में झय् (वर्ग का १, २, ३, ४) वर्ण आता है तो विकल्प से समासान्त 'अ' (टच्) प्रत्यय जुड़ता है। जैसे—सरितः समीपे = उपसरितम् (उप + सरित् + अ) उपसरित् वा। उपसमिधम् उपसमित् वा (समिधा के समीप)।

(४) शरद्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, अनडुह्, दिव्, हिमवत्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, तद्, यद्, कियत् और जरस् इनमें 'अ' (टच्) अवश्य जुड़ता है। जैसे—जरायाः समीपम् = उपजरसम् (बुढ़ापे के निकट); उपशरदम् (शरदः समीपम् = शरद के समीप); अधिमनसम्; उपदिशम्।

(५) नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी और गिरि शब्द के अन्त में आने पर विकल्प से 'अ' (टच्) प्रत्यय जुड़ता है। जैसे—उपगिरम् उपगिरि वा; उपनदम् उपनदि वा।

अव्ययीभाव समास प्रायः निम्न १६ अर्थों में होता है—

१. **विभक्ति** (सप्तमी)—अधिहरि (अधि हरौ इति = हरि के विषय में); अध्यात्मम् (आत्मनि अधि = आत्मा के विषय में); अधिगोपम्। २. **समीप**—उपगङ्गम् (गङ्गायाः समीपम् = गङ्गा के पास); उपराजम् (राज्ञः समीपम् = राजा के पास); उपकृष्णम्। ३. **समृद्धि**—सुमद्रम् (मद्राणां समृद्धिः=मद्र देश की समृद्धि)। ४. **व्यृद्धि** (विनाश, दरिद्रता)—दुर्यवनम् (यवनानां व्यृद्धिः = यवनों का विनाश)। ५. **अभाव**—निर्मक्षिकम् (मक्षिकाणाम् अभावः = मक्खियों का अभाव); निर्जनम्। ६. **अत्यय** (नाश, समाप्ति)—अतिहिमम् (हिमस्य अत्ययः

= जाड़े की समाप्ति)। ७. **असम्प्रति** (अनौचित्य)—अतिनिद्रम् (निद्रा सम्प्रति न युज्यते = निद्रा के अनुपयुक्त काल में)। ८. **शब्दप्रादुर्भाव** (शब्द का प्रकाश)—इति हरि (हरिशब्दस्य प्रकाशः=हरि शब्द का उच्चारण)। ९. **पश्चात्**—अनुविष्णु (विष्णोः पश्चात्=विष्णु के पीछे); अनुरथम्। १०. **यथाभाव** (योग्यता, वीप्सा, अनतिक्रम)—अनुरूपम् (रूपस्य योग्यम्=रूप के योग्य); प्रत्यर्थम् (अर्थम् अर्थम् प्रति=प्रति अर्थ); यथाशक्ति (शक्तिमनतिक्रम्य=शक्ति के अनुसार); प्रतिगृहम्; यथाकामम्। ११. **आनुपूर्व्य** (क्रम)—अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण=ज्येष्ठ के क्रम से)। १२. **यौगपद्य** (एक साथ)—सचक्रम्[1] (चक्रेण युगपत्=चक्र के एकदम साथ)। १३. **सादृश्य**—सहरि (हरेः सादृश्यम्=हरि के सदृश); ससखि (सदृशः सख्या=सखि के सदृश)। १४. **सम्पत्ति**—सक्षत्रम् (क्षत्राणां सम्पत्तिः=क्षत्रियों की सम्पत्ति)। १५. **साकल्य** (सम्पूर्णता)—सतृणम् (तृणमपि अपरित्यज्य=सब कुछ)। १६. **अन्त** (तक)—साग्नि (अग्निग्रन्थपर्यन्तम्=अग्निकाण्ड पर्यन्त); आसमुद्रम्।

तत्पुरुष समास

(१) तत्पुरुष समास में उत्तरपद की प्रधानता होती है। इसमें पूर्वपद विशेषण का कार्य करता है और उत्तरपद विशेष्य का।

(२) इस समास में लिङ्ग और वचन उत्तरपद के अनुसार होते हैं। जैसे—देवस्य मन्दिरम्=देवमन्दिरम् (भगवान का मंदिर)।

(३) तत्पुरुष शब्द का दो प्रकार से विग्रह किया जाता है—(१) तस्य पुरुषः=तत्पुरुषः (व्यधिकरण); (२) सः पुरुषः=तत्पुरुषः (समानाधिकरण)। अतः तत्पुरुष समास के अधिकरण (विभक्ति) की अपेक्षा दो प्रमुख भेद हैं—(क) **व्यधिकरण तत्पुरुष**—जिसके दोनों पद विभिन्न विभक्तियों वाले हों अर्थात् पूर्वपद में द्वितीयादि विभक्तियां और उत्तरपद में प्रथमा विभक्ति हो (ख) **समानाधिकरण तत्पुरुष**—जिसके दोनों पद समान विभक्ति (प्रथमा विभक्ति) वाले हों।

(४) **व्यधिकरण तत्पुरुष** 'तत्पुरुष' के नाम से और **समानाधिकरण तत्पुरुष** 'कर्मधारण' के नाम से प्रसिद्ध है। कर्मधारण समास में जब पूर्वपद संख्यावाची होता है तो उसे ही 'द्विगु' समास के नाम से जाना जाता है।

तत्पुरुष (व्यधिकरण तत्पुरुष = Determinative Compound)

इसमें पूर्वपद द्वितीया, तृतीया आदि विभक्तियों वाला होता है और उत्तरपद प्रथमा विभक्ति वाला होता है। पूर्वपद की विभक्ति के भेद से यह ६ प्रकार का है—

१. अव्ययीभाव समास में काल से भिन्न अर्थ में 'स' को 'सह' हो जाता है। जैसे—सह + चक्र=सचक्र; सह + हरि=सहरि; सह+अग्नि=साग्नि; सह + तृणम् =सतृणम्।

१. **द्वितीया तत्पुरुष** (द्वितीयान्त + प्रथमान्त)—कृष्णं श्रितः=कृष्णश्रितः (कृष्ण के सहारे); आशाम् अतीतः=आशातीतः (आशा से अधिक); शोकं पतितः=शोकपतितः (शोक में डूबा हुआ); सुखं प्राप्तः=सुखप्राप्तः अथवा प्राप्तसुखः (सुख को प्राप्त हुआ; प्राप्त और आपन्न शब्दों का पहले भी प्रयोग हो सकता है); शरणं प्राप्तः=शरणप्राप्तः अथवा प्राप्तशरणः (शरण में आया हुआ); दुःखम् अतीतः=दुःखातीतः (दुःख के पार गया हुआ); कूपं पतितः=कूपपतितः (कुए में गिरा हुआ); ग्रामं गतः=ग्रामगतः (गाँव को गया हुआ) कूपम् अत्यस्तः=कूपात्यस्तः (कुए में फेंका हुआ)।

२. **तृतीया तत्पुरुष** (तृतीयान्त + प्रथमान्त)—शङ्कुलया खण्डः=शङ्कुलाखण्डः (सरौता से किया हुआ टुकड़ा); हरिणा त्रातः=हरित्रातः (हरि से रक्षा किया हुआ); नखैः भिन्नः=नखभिन्नः (नखों से फाड़ा हुआ); आचारेण कुशलः=आचारकुशलः (आचार से कुशल); कुट्टनेन श्लक्ष्णम्=कुट्टनश्लक्ष्णम् (कूटने से चिकना); वाचा युद्धम्=वाग्युद्धम् (वाणी से युद्ध); मासेन पूर्वः=मासपूर्वः (एक माह पूर्व); वाचा कलहः=वाक्कलहः (वाणी से कलह); मात्रा सदृशः=मातृसदृशः (माता के समान)।

३. **चतुर्थी तत्पुरुष** (चतुर्थ्यन्त + प्रथमान्त)—गोभ्यो रक्षितम्=गोरक्षितम् (गौओं के लिए रखा हुआ); धनाय लोभः=धनलोभः (धन के लिए लोभ); यूपाय दारु=यूपदारु (यज्ञ-स्तम्भ के लिए लकड़ी); कुम्भाय मृत्तिका=कुम्भमृत्तिका (घड़े के लिए मिट्टी); भूतेभ्यो बलिः=भूतबलिः (भूतों के लिए उपहार); छात्राय हितम्=छात्रहितम्, (छात्र के लिए हितकर); द्विजाय अयम्=द्विजार्थः सूपः (ब्राह्मण के लिए दाल; अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होगा और समस्तपद का लिङ्ग तथा विग्रह में 'इदम्' के रूप का प्रयोग विशेष्य के अनुसार होगा); द्विजाय इदम्=द्विजार्थं पयः (ब्राह्मण के लिए दूध); द्विजाय इयम्=द्विजार्था यवागूः (ब्राह्मण के लिए लप्सी)।

४. **पञ्चमी तत्पुरुष** (पञ्चम्यन्त + प्रथमान्त)—चौराद् भयम्=चौरभयम् (चोर से डर); सिंहात् भीतः=सिंहभीतः (सिंह से भय); सर्पाद् भीतिः=सर्पभीतिः (सर्प से भय); अयशसः भीः=अयशोभीः (निन्दा से डर); स्तोकात्मुक्तः=स्तोकान्मुक्तः (थोड़े से मुक्त; स्तोकादि से परे पञ्चमी का लोप नहीं होता); दूरात् आगतः=दूरादागतः (दूर से आया हुआ); वृक्षात् पतितः=वृक्षपतितः (वृक्ष से गिरा हुआ); मार्गाद् भ्रष्टः=मार्गभ्रष्टः (मार्ग से पतित)।

५. **षष्ठी तत्पुरुष** (षष्ठ्यन्त + प्रथमान्त)—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः (राजा का आदमी); देवस्य मन्दिरम्=देवमन्दिरम् (देवता का मन्दिर); लक्ष्म्याः

पतिः=लक्ष्मीपतिः (लक्ष्मी का स्वामी); जगतः स्रष्टा=जगत्स्रष्टा (जगत् की सृष्टि करने वाला); विष्णोः पूः=विष्णुपुरम् (विष्णु की नगरी; 'पुर्' से समासान्त 'अ'); सख्युः पन्थाः=सखिपथः (मित्र का मार्ग; 'पथिन्' से समासान्त 'अ')।

६. **सप्तमी तत्पुरुष (सप्तम्यन्त + प्रथमान्त)**—कर्मणि कुशलः=कर्मकुशलः (काम करने में प्रवीण); सभायां पण्डितः=सभापण्डितः (सभा में विद्वान्); क्रीडायां चपलः=क्रीडाचपलः (खेलने में चञ्चल); अक्षेषु शौण्डः=अक्षशौण्डः (पासे खेलने में चतुर); आतपे शुष्कः=आतपशुष्कः (धूप में सूखा)।

कर्मधारय (समानाधिकरण तत्पुरुष = Appositional Compound)

समानाधिकरण तत्पुरुष समास को कर्मधारय समास कहते हैं। इसमें दोनों पद प्रथमा विभक्ति में होते हैं; अतः इसे प्रथमा तत्पुरुष भी कहा जा सकता है। द्वितीयादि विभक्तियों के साथ होने वाले तत्पुरुष समास में दो पदों के मध्य में कोई कारक का सम्बन्ध (क्रिया का द्रव्य के साथ सम्बन्ध। जैसे—चौराद् भयम्=चौरभयम्) या दो द्रव्यों का सम्बन्ध (जैसे—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः) होता है परन्तु कर्मधारय (प्रथमा तत्पुरुष) में ऐसा सम्बन्ध नहीं होता है, अपितु दोनों पद एक ही वस्तु को कहते हैं (जैसे—कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः); अतएव कर्मधारय समास की क्रिया समास के दोनों पदों को धारण कर सकती है। जैसे—'कृष्णसर्पः अपसर्पति' इस वाक्य में सर्प जब संचलन क्रिया करता है तब कृष्णत्व भी उसके साथ रहता है; परन्तु 'राज्ञः पुरुषः अपसर्पति' में राजा पुरुष के साथ नहीं रहता है। अतएव प्रथमा तत्पुरुष (समानाधिकरण तत्पुरुष) को कर्मधारय के नाम से पृथक् बतलाया जाता है। कर्मधारय समास प्रायः तीन परिस्थितियों में होता है—

(क) प्रथम पद द्वितीय पद का विशेषण हो और द्वितीय पद विशेष्य संज्ञा पद।
(ख) दोनों पद संज्ञा हों।

(ग) दोनों पद विशेषण हों जो समय पड़ने पर संयुक्त होकर किसी तीसरे पद के विशेषण हों।

कर्मधारय समास के प्रमुख तीन प्रकार —

(१) विशेषणपूर्वपद कर्मधारय, (२) उपमित कर्मधारय (इसके दो प्रकार हैं—उपमानपूर्वपद और उपमानोत्तरपद) और (३) विशेषणोभयपद कर्मधारय।

(क) **विशेषणपूर्वपद कर्मधारय**—(विशेषण + विशेष्य)—इसमें पूर्वपद विशेषण और उत्तरपद विशेष्य होता है (विशेषणं विशेष्येण बहुलम्)। दोनों पदों में समान विभक्ति तथा प्रायः समान लिङ्ग और वचन होते हैं। जैसे—नीलम् उत्पलम् = नीलोत्पलम् (नीला कमल); कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः (काला साँप); दीर्घं नयनम् = दीर्घनयनम् (विशाल नेत्र); पीतम् अम्बरम् = पीताम्बरम् (पीला कपड़ा); पीतः पटः = पीतपटः (पीला कपड़ा; इसका बहुव्रीहि समास भी हो सकता है। जैसे—पीतः पटः यस्य सः = पीतपटः = पीले कपड़े वाला); महान् राजा अथवा महान् च असौ राजा च महाराजः (बड़ा राजा; यहाँ 'राजन्' में समासान्त अ = 'टच्' प्रत्यय जुड़ने तथा महत् को आकार अन्तादेश होने से 'महाराजः' होगा। इसी प्रकार—परमश्चासौ राजा च = परमराजः = श्रेष्ठ राजा; महत् यशः = महायशः; महती नदी = महानदी; महावीरः; महायुद्धम्; महाभारतम्)।

(ख) **उपमित समास**—इसमें उपमेय-उपमान-भाव प्रकट होता है। इसके दो प्रकार हैं—

(१) **उपमान पूर्वपद कर्मधारय** (उपमानानि सामान्यवचनैः = उपमान + साधारण धर्म)—इसमें पूर्वपद उपमान (जिससे उपमा दी जाती है) होता है और उत्तरपद साधारणधर्म (उपमेय और उपमान में रहने वाला साधारण गुण)। जैसे—समुद्र इव गम्भीरः = समुद्रगम्भीरः (समुद्र के समान गम्भीर; यहाँ समुद्र उपमान है और 'गाम्भीर्य' सामान्य गुण); घन इव श्यामः = घनश्यामः (मेघ के समान काले वर्ण वाला); मृग इव चपला = मृगचपला (हिरण के समान चञ्चल); विद्युदिव चञ्चला = विद्युच्चञ्चला (बिजली के समान चञ्चल); चन्द्र इव आह्लादकः = चन्द्राह्लादकः (चन्द्रमा के समान आह्लादक)।

(२) **उपमानोत्तरपद कर्मधारय** (उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे = उपमेय + उपमान)—इसमें पूर्वपद उपमेय (जिसकी उपमा दी जाती है) होता है और उत्तरपद उपमान। इसमें सामान्य धर्म का प्रयोग नहीं रहता है। जैसे—पुरुषो व्याघ्र इव = पुरुषव्याघ्रः (पुरुष व्याघ्र के समान है); मुखं कमलम् इव = मुखकमलम् (मुख कमल के समान है); नरः सिंह इव = नरसिंहः (मनुष्य सिंह सदृश है)। 'पुरुषव्याघ्रः' आदि का अन्य प्रकार से भी विग्रह होता है। जैसे—पुरुष एव व्याघ्रः = पुरुषव्याघ्रः (पुरुष ही व्याघ्र है); मुखम् एव कमलम् = मुखकमलम् (मुख ही कमल है)। यहाँ उपमेय और उपमान में तादात्म्य (अभेद) होने से रूपक 'कर्मधारय' होगा।

विशेष—उपमान पूर्वपद के विग्रह में 'इव' शब्द दोनों पदों के मध्य में और उपमानोत्तरपद के विग्रह में दोनों पदों के बाद में आता है।

(ग) **विशेषणोभयपद कर्मधारय** (विशेषण + विशेषण)—दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को विशेषणोभयपद कर्मधारय समास कहते हैं (विग्रह में 'च'

रहने पर भी यह द्वन्द्व नहीं है क्योंकि द्वन्द्व समास केवल संज्ञा-पदों में होता है; अतः इससे अन्तर है)। जैसे—कृष्णश्च श्वेतश्च = कृष्णश्वेतः (काला और सफेद = अश्व); स्नातश्च अनुलिप्तश्च = स्नातानुलिप्तः (स्नान और अनुलेप किया हुआ = मनुष्य); चरश्च अचरश्च = चराचरम् (स्थावर और जङ्गम = जगत्); कृतश्च अकृतश्च = कृताकृतम् (किया हुआ और नहीं किया हुआ = कर्म)।

द्विगु समास (Numeral Compound)

जब कर्मधारय समास में पूर्वपद संख्या तथा उत्तरपद संज्ञा हो तो वहाँ द्विगु समास होता है यदि वहाँ तद्धितार्थ (तद्धित प्रत्यय का अर्थ) अथवा समाहार (समूह) का बोध हो (संख्यापूर्वो द्विगुः । तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च)।[1] यह समास तीन परिस्थितियों में होता है—१. या तो उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो या (२) वह किसी अन्य शब्द के साथ समास में आया हो या (३) किसी समूह का बोधक हो। जैसे—

(क) **तद्धितार्थ में**—षण्णां मातॄणाम् अपत्यं पुमान् = षाण्मातुरः (= कार्तिकेयः —षष् + मातृ + 'अ' तद्धित प्रत्यय); द्वयोः मात्रोः अपत्यं पुमान् = द्वैमातुरः (गणेशः); द्वाभ्यां गोभ्यां क्रीतः = द्विगुः (दो गायों से खरीदा गया); पञ्चभिः गोभिः क्रीतः = पञ्चगुः।

(ख) **शब्दान्तर के साथ समास में (उत्तरपद द्विगु)**—इसमें दो समास होते हैं। जैसे—पञ्च गावः धनं यस्य सः = पञ्चगवधनः (द्विगुगर्भ बहुव्रीहि। यहाँ 'पञ्चगव' में द्विगु समास है, परन्तु यह तभी संभव हुआ है जब यह 'धन' के साथ पुनः समस्त हुआ है। यदि 'धन' के साथ पुनः समास में न आता तो 'पञ्चगव' में द्विगु नहीं होता); द्वे अह्नि जातस्य = द्व्यह्नजातः (द्विगुगर्भ तत्पुरुष)।

(ग) **समाहार में**—समाहार अर्थ में समस्त पद नपुंसकलिङ्ग एकवचन में रहता है। जैसे—पञ्चानां पात्राणां समाहारः = पञ्चपात्रम्; त्रयाणां भुवनानां समाहारः=त्रिभुवनम्; चतुर्णां युगानां समाहारः=चतुर्युगम्; पञ्चानां गवां समाहारः=पञ्चगवम् (पाँच गायों का समुदाय); त्रिसृणां रात्रीणां समाहारः=त्रिरात्रम् (तीन रातों का समुदाय; संख्या शब्द के पहले रहने पर समास में रात्रि शब्द नपुंसकलिङ्ग हो जाता है); त्रयाणां लोकानां समाहारः = त्रिलोकी (तीन लोकों का समुदाय; पात्र,

---

१. केवल संख्यावाची शब्द के पूर्ववर्ती होने पर 'द्विगु' नहीं होता है। जैसे—सप्त ऋषयः = सप्तर्षयः (आकाशस्थ सात तारे)। यहाँ कर्मधारय समास है क्योंकि यहाँ न तो तद्धितार्थ है और न समाहार। किन्हीं सात ऋषियों के लिए इसका प्रयोग नहीं है अपितु खास संज्ञा का बोधक है।

भुवन आदि को छोड़कर वट, लोक, मूल आदि अकारान्त शब्दों के साथ समस्तपद ईकारान्त = स्त्रीलिङ्ग होता है); पञ्चानां मूलानां समाहारः = पञ्चमूली; शतानाम् अब्दानां समाहारः = शताब्दी; पञ्चवटी; अष्टाध्यायी; सप्तशती।

द्वन्द्व समास (Copulative Compound)

जब दो या दो से अधिक संज्ञायें 'च' शब्द से जुड़ी होती हैं तो उनमें द्वन्द्व समास होता है। इसमें सभी संज्ञा पदों का अथवा उनके समूह का प्राधान्य होता है (चार्थे द्वन्द्वः। प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः)। विग्रह करने पर प्रत्येक पद के साथ 'च' का प्रयोग होता है। इसके प्रमुख ३ प्रकार हैं—(१) इतरेतरयोग द्वन्द्व, (२) समाहार द्वन्द्व और (३) एकशेष द्वन्द्व।

(१) **इतरेतरयोग द्वन्द्व**—जहाँ एक पद दूसरे पद से इस प्रकार जुड़ा हो कि दोनों एक दूसरे से अलग-अलग प्रधान भाव रक्खें। जैसे—रामश्च लक्ष्मणश्च=रामलक्ष्मणौ (राम और लक्ष्मण); रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्च=रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नाः; कन्दश्च मूलञ्च फलञ्च = कन्दमूलफलानि; कुक्कुटश्च मयूरी च = कुक्कुटमयूर्यौ (मुर्गा और मोरनी); दधि च पयश्च दधिपयसी (दही और दूध); वाक् च मनश्च = वाङ्मनसे ('मनस्' में समासान्त 'अ' जुड़ने से वह अकारान्त नपुंसकलिङ्ग बन गया है; अतः वाङ्मनसे रूप बना); गङ्गायमुने; युधिष्ठिरभीमौ; इन्द्राग्नी।

नियम—(१) जब दो पदों में समास होगा तो समासान्त पद द्विवचन में होगा और जब तीन या उससे अधिक पदों में समास होगा तो बहुवचन में होगा। जैसे—शिवकेशवौ, हरिहरगुरवः। (२) बाद वाले पद का जो लिङ्ग रहता है वही समस्तपद का लिङ्ग रहता है। जैसे—कन्दमूलफलानि, कुक्कुटमयूर्यौ। (३) ऋकारान्त (विद्या या योनि सम्बन्ध वाचक) पदों के रहने पर अन्तिम पद के ठीक पूर्ववर्ती 'ऋ' को 'आ' हो जाता है। जैसे—माता च पिता च = मातापितरौ (मातृ + पितृ); होता च पोता च उद्गाता च = होतृपोतोद्गातारः।

(२) **समाहारद्वन्द्व**—जहाँ परस्पर जुड़ी हुई संज्ञाओं में समूह (समाहार या इकट्ठेपन) का भाव प्रमुख हो। अतः इसमें समस्त पद सर्वदा नपुंसकलिङ्ग एकवचन में रहता है। जैसे—पाणी च पादौ च = पाणिपादम् (हाथ और पैर। यहाँ दोनों के समूह का भाव ज्ञात हो रहा है); आहारश्च निद्रा च भयञ्च = आहारनिद्राभयम्; धनूंषि च शराश्च = धनुःशरम् (धनुष और बाण)।

निम्न अवस्थाओं में समाहार द्वन्द्व समास होता है—

(क) **प्राणि, वाद्य तथा सेना के अङ्गवाचक शब्दों में**—हस्तौ च पादौ च = हस्तपादम् (हाथ और पैर); भेरी च पटहश्च = भेरीपटहम् (भेरी और

नगाड़ा); दन्ताश्च ओष्ठौ च = दन्तोष्ठम् (दांत और ओष्ठ): रथिकाश्च अश्वारोहाश्च = रथिकाश्वारोहम् (रथिक और घुड़सवार); मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्च = मार्दङ्गिकवैणविकम् (मृदङ्ग बजाने वाला और वंशी बजाने वाला); पाणिपादम्; धनुःशरम्)।

(ख) **जिनका जन्मसिद्ध वैर हो**—मूषकश्च मार्जारश्च = मूषकमार्जारम् (चूहा और बिल्ली); सर्पश्च नकुलश्च = सर्पनकुलम् (सांप और नेवला)।

(ग) **भिन्न-भिन्न लिङ्ग वाले नदी, देश और नगर वाचक शब्दों में**—गङ्गा च शोणश्च=गङ्गाशोणम् (गङ्गा और शोण नदी); मथुरा च पाटलिपुत्रश्च=मथुरापाटलिपुत्रम् (मथुरा और पटना)।

(घ) **क्षुद्र जीवों के नाम में**—यूका च लिक्षा च=यूकालिक्षम् (जुएँ और लीखें)।

(ङ) **परस्पर विरुद्ध पदार्थों में (विकल्प से)**—शीतश्च उष्णश्च=शीतोष्णम् शीतोष्णे वा (ठंड़ा और गरम); सुखं च दुःखञ्च=सुखदुःखम् सुखदुःखे वा (सुख और दुख)।

(३) **एकशेष द्वन्द्व**—जब दो या अधिक पदों में से एक शेष रहे, अन्य का लोप हो जाये तो एकशेष द्वन्द्व समास होता है। इसमें लुप्त पद का बोध समस्तपद में प्रयुक्त संख्या से होता है। यदि समस्त होने वाले शब्द पुं० और स्त्री० दोनों प्रकार के होते हैं तो स्त्रीलिङ्ग वाले शब्द का लोप कर दिया जाता है। जैसे–माता च पिता च = पितरौ ('मातापितरौ' तथा 'मातरपितरौ' ये दो रूप भी बनते हैं); पुत्रश्च दुहिता च = पुत्रौ (पुत्र और लड़की); भ्राता च स्वसा च = भ्रातरौ (भाई और बहिन); हंसी च हंसश्च = हंसौ; श्वश्रूश्च श्वशुरश्च = श्वशुरौ (सास और श्वसुर; 'श्वश्रूश्वशुरौ' भी होगा); सीता च सीता च = सीते; फलञ्च फलञ्च फलञ्च = फलानि।

बहुव्रीहि समास (Attributive Compound)

१. जिसमें अन्य पदार्थ की प्रधानता होती है उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं (अनेकमन्यपदार्थे); अर्थात् जब समास में आये हुए सभी पद किसी अन्य पदार्थ के विशेषण के रूप में कार्य करते हैं तो वहाँ बहुव्रीहि समास होता है। बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है—बहुः व्रीहिः (धान्यम्) यस्य अस्ति सः=बहुव्रीहिः (जिसके पास बहुत धान्य हो, वह व्यक्ति विशेष)। यहाँ 'बहु' शब्द 'व्रीहि' का विशेषण है और फिर दोनों मिलकर किसी तीसरे व्यक्ति के विशेषण हैं। पीतम् अम्बरं यस्य सः = पीताम्बरः (कृष्ण)। यहाँ भी 'पीत' शब्द 'अम्बर' का विशेषण है और फिर दोनों मिलकर 'कृष्ण' के विशेषण हैं। अतः बहुव्रीहि को अन्य पदार्थ प्रधान कहा जाता है।[1]

२. बहुव्रीहि समास का विग्रह (पदच्छेद) करते समय 'यत्' शब्द के किसी न किसी रूप का प्रयोग किया जाता है जिससे समास में आये हुए पदों का सम्बन्ध किसी अन्य पद के साथ ज्ञात होता है।

३. पूरा समस्त पद चूंकि विशेषण होता है अतः वह अपने विशेष्य के लिङ्ग, वचन आदि के अनुसार रक्खा जाता है।

४. समानाधिकरण (समान विभक्तिक) और व्यधिकरण (असमान विभक्तिक) के भेद से बहुव्रीहि समास दो प्रकार का है—

(क) **समानाधिकरण बहुव्रीहि समास** (प्रथमान्त + प्रथमान्त)—इसमें समस्त होने वाले पदों की विभक्ति (अधिकरण) एक जैसी (प्रथमा) होती है। विग्रह में प्रयुक्त 'यत्' शब्द की द्वितीयादि विभक्ति के भेद से इसके ६ भेद किए जाते हैं—

१. **द्वितीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि**—प्राप्तम् उदकं यं सः=प्राप्तोदकः (ग्रामः = ऐसा गाँव जहां पानी पहुँच चुका हो); प्राप्तं धनं यं सः = प्राप्तधनः (नरः); आरुढो वानरो यं सः = आरुढवानरः (वृक्षः)।

२. **तृतीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि**—जितानि इन्द्रियाणि येन सः = जितेन्द्रियः (पुरुषः=जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है); दत्तं चित्तं येन सः =दत्तचित्तः (नरः); कृतं कार्यं येन सः = कृतकार्यः (नरः); ऊढः रथः येन सः=ऊढरथः (अनड्वान् = बैल)।

३. **चतुर्थीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि**—दत्तं धनं यस्मै सः = दत्तधनः (ब्राह्मणः); उपहृतः पशुः यस्मै सः = उपहृतपशुः (रुद्रः = जिसके लिए बलि के प्रयोजन से पशु लाया गया हो)।

---

१. एक ही समास अर्थभेद होने पर प्रकरण के अनुसार बहुव्रीहि और तत्पुरुष दोनों हो सकता है। जैसे—पीतम् अम्बरं यस्य तत् = पीताम्बरम् (पीले वस्त्र वाली पुस्तक आदि); पीतम् अम्बरम्=पीताम्बरम् (पीला कपड़ा); लोकस्य नाथः = लोकनाथः (राजा); लोकाः (प्रजाः) नाथाः यस्य सः = लोकनाथः (भिखारी)। 'लोकनाथ' शब्द कैसे राजा और भिखारी का वाचक है इस सम्बन्ध में भिखारी की उक्ति है—

'अहञ्च त्वञ्च राजेन्द्र ! लोकनाथावुभावपि।
बहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठी तत्पुरुषो भवान्॥'

४. **पञ्चमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि**—उद्धृतम् ओदनं यस्याः सा = उद्धृतौदना (स्थाली = ऐसी बटलोई जिससे भात निकाल लिया गया हो); निर्गतं धनं यस्मात् सः = निर्धनः (नरः); पतितं पत्रं यस्मात् सः = पतितपत्रः (वृक्षः)।

५. **षष्ठीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि**—पीतम् अम्बरं (पीतानि अम्बराणि वा) यस्य सः = पीताम्बरः (हरिः); लम्बौ कर्णौ यस्य सः = लम्बकर्णः (गर्दभः); महत् यशः यस्य सः = महायशः महायशस्कः वा; व्यूढं उरो यस्य सः = व्यूढोरस्कः (चौड़ी छाती वाली); रूपवती भार्या यस्य सः=रूपवद्भार्यः (नरः); ईश्वरः कर्त्ता यस्य सः =ईश्वरकर्तृकः (संसारः); महत् धनं यस्य सः = महाधनः; कृष्णः सखा यस्य सः =कृष्णसखः ।

६. **सप्तमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि**—वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः = वीरपुरुषः वीरपुरुषकः वा (ऐसा गाँव जिसमें वीर मनुष्य हों); बहवः दण्डिनः यस्यां सा = बहुदण्डिका (ऐसी नगरी जहाँ बहुत दण्डधारी हों)।

(ख) **व्यधिकरण बहुव्रीहि** (प्रथमान्त + षष्ठ्यन्त या सप्तम्यन्त)—इसमें समस्त होने वाले पदों की विभक्तियाँ (अधिकरण) भिन्न-भिन्न होती हैं; अर्थात् एक पद प्रथमा में होता है और दूसरा षष्ठी या सप्तमी में होता है। जैसे—चक्रं पाणौ यस्य सः = चक्रपाणिः (विष्णुः=चक्र है हाथ में जिसके); चन्द्रः शेखरे यस्य सः=चन्द्रशेखरः (शिवः); दण्डः पाणौ यस्य सः दण्डपाणिः (हाथ में दण्ड है जिसके); पुस्तकं हस्ते यस्य सः=पुस्तकहस्तः (छात्रः); चन्द्रस्य कान्तिः इव कान्तिः यस्य सः=चन्द्रकान्तिः (चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति है जिसकी); व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः = व्याघ्रपात् (व्याघ्र के समान पैर हैं जिसके) पद्मं नाभौ यस्य सः=पद्मनाभः (विष्णुः=कमल है नाभि में जिसके)।

नवम अध्याय

शब्दरूप (Declension)

संस्कृत में संज्ञादि शब्दों (प्रातिपदिकों) का प्रयोग तभी होता है जब उनमें सु, औ, जस् आदि 'सुप्' प्रत्ययों को जोड़ दिया जाता है। तीन वचन और सात विभक्तियाँ होने से इनकी संख्या २१ (३ × ७) है। इन सुप् प्रत्ययों के जुड़ने से जो 'पद' (शब्दरूप) बनते हैं उन्हें सुबन्त (सुप् + अन्त) कहते हैं। ये प्रत्यय निम्न प्रकार हैं:—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु (:)	औ	जस् (अः)
द्वितीया	अम्	औट् (औ)	शस् (अः)
तृतीया	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भिः)
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पञ्चमी	ङसि (अः)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
षष्ठी	ङस् (अः)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप् (सु)

विशेष—१. 'सम्बोधन' में प्रथमा विभक्ति के ही प्रत्यय जुड़ते हैं।

२. व्यञ्जनान्त संज्ञा शब्दों में ये सभी प्रत्यय प्रायः इसी रूप में जुड़ते हैं, अन्यत्र कुछ परिवर्तित होकर जुड़ते हैं।

स्वरान्त (अजन्त) पुं० संज्ञा शब्द

(१) अकारान्त 'राम'[1] (राम):			(२) आकारान्त 'विश्वपा'[2] (संसार का रक्षक)		
रामः	रामौ	रामाः	प्र० विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपा

---

१. निम्न शब्दों के भी रूप राम की तरह चलेंगे—

(क) नर (मनुष्य), बाल (बालक), उपहार (भेंट), वृक (भेड़िया), पुत्र, शिष्य, आचार्य, रथ, गज (हाथी); कर (हाथ), सज्जन, दुर्जन, नृप (राजा), भक्त, अश्व (घोड़ा), मयूर (मोर), प्रश्न, धर्म, लोक (संसार), अनल (अग्नि), अनिल (हवा), सुर (देवता), सूर्य, चन्द्र, सर्प, मूषक (चूहा), हस्त (हाथ), बालक, मेघ, दास, वृक्ष, विवाह, विनोद, संशय, कूप (कुआँ), रजक (धोबी), आम्र (आम का पेड़), घर (घड़ा), कलश (घड़ा), मातुल (मामा), वानर (बन्दर), पिक (कोयल), खल (दुष्ट), जनक (पिता), क्रोश (कोस), प्राज्ञ (विद्वान्), वंश (कुल), मनुष्य आदि।

रामम्	रामौ	रामान्	द्वि०	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	तृ०	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः	च०	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः	पं०	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्	ष०	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
रामे	रामयोः	रामेषु	स०	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
हे राम !	हे रामौ !	हे रामाः !	सं०	हे विश्वपाः !	हे विश्वपौ !	हे विश्वपाः !

(३) इकारान्त 'हरि'[1] (विष्णु, बन्दर): (४) इकारान्त 'पति'[2] (स्वामी, दूल्हा):

हरिः	हरी	हरयः	प्र०	पतिः	पती	पतयः
हरिम्	हरी	हरीन्	द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्

(ख) तादृश (वैसा), मादृश (मेरे जैसा), भवादृश (आप जैसा), यादृश (जैसा), त्वादृश (तुम्हारे जैसा), एतादृश (ऐसा) [ये शब्द अकारान्त और शकारान्त दोनों होते हैं । शकारान्त होने पर देखें रूप क्रमाङ्क ३२] ।

(ग) पाद (पैर), दन्त (दांत) [इनको शस् से सुप् तक क्रमशः 'पद्' और 'दत्' आदेश होते हैं जिससे वहाँ विकल्प से दो दो रूप बनेंगे—पदः, पादान्; दतः, दन्तान्] ।

(घ) निर्जर (देव) [अजादि विभक्तियों में 'जर' को 'जरस्' आदेश होने से वहाँ विकल्प से दो-दो रूप बनेंगे—निर्जरसः, निर्जरस्य] ।

२. इसी प्रकार अन्य आकारान्त पुं० शब्द—गोपा (ग्वाला), सोमपा (सोमरस पीने वाला), धूम्रपा (धुआँ या सिगरेट आदि पीने वाला), बलदा (बल प्रदान करने वाला), शङ्खध्मा (शंख बजाने वाला) आदि । [पृ० ९५ का फुटनोट]

१. इसी प्रकार अन्य इकारान्त पुं० शब्द—मुनि, कवि, ऋषि, यति (संयमी), विधि (ब्रह्मा, भाग्य), निधि (खजाना), गिरि (पर्वत), कपि (बन्दर), जलधि (समुद्र), रवि (सूर्य), विरञ्चि (ब्रह्मा), अग्नि, अरि (शत्रु), असि (तलवार), अतिथि, रश्मि (किरण), समाधि, वह्नि (आग), उदधि (समुद्र), पाणि (हाथ), मरीचि (किरण), व्याधि (रोग), आधि (रोग), सारथि (गाड़ीवान्), अद्रि (पर्वत), मणि, भूपति (राजा), गृहपति (घर का स्वामी), नरपति (राजा), सुरपति (देवेन्द्र), लोकपति, गजपति, बृहस्पति, अधिपति, पृथिवीपति (राजा) आदि ।

२. (क) 'पति' शब्द जब समास के अन्त में आता है तो 'हरि' की तरह रूप चलेंगे और जब अकेला होता है तो तृतीया से सप्तमी के एकवचन में अन्तर होता है । 'पति शब्द का स्त्रीलिङ्ग 'पत्नी' होता है जिसके रूप नदी की तरह चलेंगे ।

हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः	तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः	च०	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः	पं०	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
हरेः	हर्योः	हरीणाम्	ष०	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
हरौ	हर्योः	हरिषु	स०	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
हे हरे !	हे हरी !	हे हरयः !	सं०	हे पते !	हे पती !	हे पतयः !

(५) ईकारान्त 'सुधी'[1] (विद्वान्): (६) उकारान्त 'गुरु'[2] (शिक्षक):

सुधीः	सुधियौ	सुधियः	प्र०	गुरुः	गुरू	गुरवः
सुधियम्	सुधियौ	सुधियः	द्वि०	गुरुम्	गुरू	गुरून्
सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः	तृ०	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः
सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः	च०	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः	पं०	गुरोः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्	ष०	गुरोः	गुर्वोः	गुरूणाम्
सुधियि	सुधियोः	सुधीषु !	स०	गुरौ	गुर्वोः	गुरुषु
हे सुधीः !	हे सुधियौ !	हे सुधियः	सं०	हे गुरो !	हे गुरू !	हे गुरवः !

(७) ऋकारान्त 'कर्तृ'[3] (करने वाला): (८) ऋकारान्त 'पितृ'[4] (पिता):

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	प्र०	पिता	पितरौ	पितरः

(ख) 'सखि' (मित्र) शब्द के रूप—सखा सखायौ सखायः । सखायम् सखायौ सखीन् । शेष 'पति' की तरह बनेंगे । 'सखि' शब्द का स्त्रीलिङ्ग 'सखी' होता है और उसके रूप 'नदी' की तरह बनेंगे ।

१. इसी प्रकार—शुद्धधी, परमधी, सुश्री आदि ।

२. इसी प्रकार—साधु (सज्जन), भानु (सूर्य), ऋतु, शिशु, रिपु (शत्रु), शत्रु, विधु (चन्द्रमा), पशु, प्रभु (समर्थ), विष्णु, वायु, कृशानु (आग), ऊरु (जँघा), पांशु (धूलि), हेतु (कारण), मृत्यु, बाहु, मन्यु (क्रोध), असु (प्राण), सूनु (पुत्र), इक्षु (गन्ना), बन्धु (कुटुम्बी), इषु (तीर), तरु (पेड़), सेतु (पुल), वेणु (बांस), जन्तु, शम्भु आदि ।

३. इसी प्रकार—(क) दातृ (दाता), धातृ (रचयिता), नेतृ (नेता), योद्धृ (योद्धा), जेतृ (विजेता), गोप्तृ (रक्षक), वक्तृ (वक्ता), भर्तृ (पति), होतृ (हवन करने वाला), श्रोतृ (श्रोता), द्रष्टृ (द्रष्टा), सवितृ (सूर्य), गन्तृ (जाने वाला), पोतृ (पोता), रक्षितृ (रक्षक) आदि । (ख) 'कर्तृ' शब्द के स्त्रीलिङ्ग के द्वितीया बहुवचन में 'कर्तॄः' रूप बनेगा, शेष पुं० की तरह ।

४. इसी प्रकार—(क) भ्रातृ (भाई), जामातृ (जामाता), देवृ (देवर), नृ

कर्तारम्	कर्तारौ	कर्तॄन्	द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः	च०	पित्रे	,,	पितृभ्यः
कर्तुः	,,	,,	पं०	पितुः	,,	,,
,,	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्	ष०	,,	पित्रोः	पितॄणाम्
कर्तरि	,,	कर्तृषु	स०	पितरि	,,	पितृषु
हे कर्तः !	हे कर्तारौ !	हे कर्तारः !	सं०	हे पितः !	हे पितरौ !	हे पितरः !

(९) ओकारान्त 'गो'[1] (बैल । 'गाय' और 'वाणी' अर्थ में स्त्रीलिङ्ग):

प्र०	गौः	गावौ	गावः	पं०	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
द्वि०	गाम्	,,	गाः	ष०	,,	गवोः	गवाम्
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः	स०	गवि	,,	गोषु
च०	गवे	,,	गोभ्यः	सं०	हे गौः!	हे गावौ !	हे गावः !

स्वरान्त (अजन्त) स्त्रीलिङ्ग संज्ञा शब्द

(१०) आकारान्त 'लता'[2] (बेल):

लता	लते	लताः	प्र०	मतिः	मती	मतयः
लताम्	,,	,,	द्वि०	मतिम्	,,	मतीः
लतया	लताभ्याम्	लताभिः	तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
लतायै	,,	लताभ्यः	च०	मत्यै, मतये	,,	मतिभ्यः

(११) इकारान्त 'मति'[3] (बुद्धि):

(मनुष्य । इसके षष्ठी बहुवचन में दो रूप बनेंगे—नृणाम्,नॄणाम्)। (ख) 'मातृ' (माता) स्त्रीलिङ्ग के द्वितीया बहुवचन में 'मातॄः' बनता है, शेष 'पितृ' की तरह बनेंगे ।

१. इसी प्रकार ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'द्यो' (आकाश) के भी रूप बनेंगे ।

२. इसी प्रकार—रमा (लक्ष्मी), सीता, माला, कन्या, विद्या, गङ्गा, बाला (स्त्री), कथा, छाया, लज्जा, चिन्ता, गङ्गा, तृष्णा, आशा, कान्ता (स्त्री), भार्या (पत्नी), अजा (बकरी), अबला, दुर्गा, शोभा, परीक्षा, आशा, सन्ध्या, भिक्षा, वार्ता (खबर), जरा (बुढ़ापा), मक्षिका (मक्खी), ग्रीवा (गर्दन), ललना (स्त्री), कला, राधा, नासिका, निशा (रात्रि), बडवा (घोड़ी), सुमित्रा, धरा (पृथ्वी), सुधा (अमृत), प्रार्थना, दया, करुणा, क्षमा, अम्बा (माता । सम्बोधन में—हे अम्ब ! होगा) आदि ।

३. इसी प्रकार—बुद्धि, मूर्ति, स्तुति, भक्ति, शुद्धि, जाति, रुचि, रीति, कीर्ति वृष्टि, दृष्टि, शक्ति, स्मृति, शान्ति, नीति, धूलि, पंक्ति, गति, श्रुति (वेद), धृति (धैर्य), कान्ति, सृष्टि, भूमि, आकृति, प्रीति, हानि, उन्नति, कृति, प्रकृति, विपत्ति, गीति, भूति (ऐश्वर्य), रात्रि आदि ।

लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः	पं०	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
,,	लतयोः	लतानाम्	ष०	,,	,,	मत्योः	मतीनाम्
लतायाम्	,,	लतासु	स०	मत्याम्, मतौ	,,	मतिषु
हे लते !	हे लते !	हे लताः !	सं०	हे मते !	हे मती !	हे मतयः !

(१२) ईकारान्त 'नदी'[1] (नदी)

नदी	नद्यौ	नद्यः	प्र०	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
नदीम्	,,	नदीः	द्वि०	श्रियम्	,,	,,
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
नद्यै	,,	नदीभ्यः	च०	श्रियै, श्रिये	,,	श्रीभ्यः
नद्याः	,,	,,	पं०	श्रियाः, श्रियः	,,	,,
,,	नद्योः	नदीनाम्	ष०	,,	,,	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
नद्याम्	,,	नदीषु	स०	श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु
हे नदि !	हे नद्यौ !	हे नद्यः !	सं०	हे श्रीः !	हे श्रियौ !	हे श्रियः !

(१३) ईकारान्त 'श्री'[2] (लक्ष्मी)

(१४) उकारान्त 'धेनु'[3] (गाय):

धेनुः	धेनू	धेनवः	प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
धेनुम्	,,	धेनूः	द्वि०	वधूम्	,,	वधूः
धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः	तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः	च०	वध्वै	,,	वधूभ्यः

(१५) ऊकारान्त 'वधू'[4] (बहू):

१. इसी प्रकार—नारी (स्त्री), कुमारी, गौरी, जननी, दासी, पत्नी, नगरी, पृथ्वी, मैत्री, पुत्री, राज्ञी, काली, सखी, वाणी, धात्री (धाय), वल्ली (बेल), वापी (बावड़ी), वीची (लहर), महिषी (पटरानी), जानकी, सावित्री, पार्वती, नटी, कमलिनी, नलिनी, अटवी (जंगल), कौमुदी (चाँदनी), देवी, त्रिलोकी, विदुषी, भगिनी (बहिन), द्रौपदी, पंचवटी, कादम्बरी, गायत्री, गृहिणी, युवती आदि ।

२. इसी प्रकार—भी (भय), धी (बुद्धि), ह्री (लज्जा), सुश्री आदि ।

३. इसी प्रकार—रेणु (धूलि—पुं० भी है), तनु (शरीर), रज्जु (रस्सी), वेणु (ठुड्डी—पुं० भी है) आदि ।

४. इसी प्रकार—चमू (सेना), श्वश्रू (सास), कर्कन्धू (बेर), चम्पू (गद्य-पद्यमय काव्य), यवागू (लप्सी), जम्बू (जामुन) आदि ।

धेन्वाः,धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः	पं०	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्	ष०	,,	वध्वोः	वधूनाम्
धेन्वाम्, धेनौ	,,	धेनुषु	स०	वध्वाम्	,,	वधूषु
हे धेनो !	हे धेनू !	हे धेनवः !	सं०	हे वधु !	हे वध्वौ !	हे वध्वः !

(१६) ऋकारान्त 'स्वसृ' (बहिन):

प्र०	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
द्वि०	स्वसारम्	,,	स्वसॄः

शेष पुं० 'कर्तृ' की तरह ।

विशेष—ऋकारान्त स्त्री० के रूप पुं० के समान ही चलते हैं, द्वितीया बहुवचन में 'ऋत्' की जगह 'ऋः' होता है। दुहितृ (लड़की), यातृ (देवरानी), ननान्दृ (ननद) के रूप 'मातृ' की तरह हैं। (देखें–फुटनोट 'पितृ' शब्द)

स्वरान्त (अजन्त) नपुंसकलिङ्ग संज्ञा शब्द

(१७) अकारान्त 'ज्ञान'[1] (ज्ञान):

ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि	प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि	द्वि०	,,	,,	,,
ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः	तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
ज्ञानाय	,,	ज्ञानेभ्यः	च०	वारिणे	,,	वारिभ्यः
ज्ञानात्	,,	,,	पं०	वारिणः	,,	,,
ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्	ष०	,,	वारिणोः	वारीणाम्
ज्ञाने	,,	ज्ञानेषु	स०	वारिणि	,,	वारिषु
हे ज्ञान !	हे ज्ञाने !	हे ज्ञानानि !	सं०	हे वारि, हे वारे !	हे वारिणी!	हे वारीणि!

(१८) इकारान्त 'वारि'[2] (जल):

१. इसी प्रकार—फल, पुस्तक, जल,, मित्र, शरीर, धन, वस्त्र, वन, नेत्र, भूषण, नगर, यन्त्र, अरण्य (जंगल), गगन (आकाश), तृण (घास), सुख, दुःख, मुख, पुष्प, पाप, भय, गृह, अन्न, औषध, छत्र (छतरी), आम्र (आम का फल), लवण (नमक), गद्य, पद्य, रूप, युद्ध, कुसुम (फूल), नक्षत्र, कार्य, भाग्य, काव्य, सौन्दर्य, कलत्र (स्त्री), पत्र (पत्ता या कागज), बीज, पर्ण (पत्ता), कमल, अन्तःकरण, अब्ज (कमल), अभ्र (मेघ), अमृत, आसन, उद्यान, ध्यान, कुटुम्ब, गीत, साहित्य, व्याकरण, स्वास्थ्य, सोपान, वचन आदि ।

२. दधि (दही), अस्थि (हड्डी), अक्षि (आँख), और सक्थि (जाँघ) को छोड़कर शेष सभी इकारान्त नपुंसक लिङ्ग के रूप वारि के समान चलते हैं ।

(१९) इकारान्त 'दधि'[1] (दही):

दधि	दधिनी	दधीनि	प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
दध्ने	,,	दधिभ्यः	च०	मधुने	,,	मधुभ्यः
दध्नः	,,	,,	पं०	मधुनः	,,	,,
,,	दध्नोः	दध्नाम्	ष०	,,	मधुनोः	मधूनाम्
दध्नि, दधनि	,,	दधिषु	स०	मधुनि	,,	मधुषु
हे दधि, हे दधे !	हे दधिनी !	हे दधीनि !	सं०	हे मधु, हे मधो !	हे मधुनी !	हे मधूनि!

(२०) उकारान्त 'मधु'[2] (शहद):

(२१) ऋकारान्त 'कर्तृ'[3] (करने वाला):

प्र०	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	पं०	कर्तुः, कर्तोः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
द्वि०	,,	,,	,,	ष०	,,	,,	कर्तॄणाम्
तृ०	कर्त्रा, कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	स०	कर्तरि, कर्तृणि	,,	,,	कर्तृषु
च०	कर्त्रे, कर्तृणे	,,	कर्तृभ्यः	सं०	हे कर्तः ! हे कर्तृ,	हे कर्तारौ !	हे कर्तृणी !	हे कर्तृणि !

व्यञ्जनान्त (हलन्त) पुंल्लिङ्ग संज्ञा शब्द

(२२) जकारान्त 'ऋत्विज्'[4] (यज्ञ कर्ता): (२३) तकारान्त 'भूभृत्'[5] (राजा, पहाड़):

ऋत्विक्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः	प्र०	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः

१. देखिये— पृ० १०० फुटनोट नं० २ ।

२. इसी प्रकार—अम्बु (जल), अलाबु (लौकी), अश्रु, जानु (घुटना), तालु, त्रपु, दारु (लकड़ी), वसु (धन), वस्तु, श्मश्रु (मूँछ), जतु (लाख), बहु (बहुत), मृदु, कटु, लघु, पटु [विशेषण वाचक उकारान्त शब्दों के चतुर्थी से सप्तमी के एकवचन में तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में उकारान्त पुं० की तरह भी रूप बनने से विकल्प से दो-दो रूप बनेंगे] आदि ।

३. इसी प्रकार—धातृ (रक्षक), नेतृ (नेता) आदि ।

४. इसी प्रकार—वणिज् (बनिया), भूभुज् (राजा), भिषज् (वैद्य), हुतभुज् (अग्नि) आदि पुं० शब्दों तथा स्रज् (माला), ऊर्ज् (बल), रुज् (रोग) आदि जकारान्त स्त्री० शब्दों के भी रूप 'ऋत्विज्' की तरह चलेंगे ।

५. इसी प्रकार—(क) महीभृत् (राजा, पर्वत), पापकृत् (पापी), विपश्चित् (विद्वान्), तनूनपात् (अग्नि), हरित् (हरा), कर्मकृत् (कर्म करने वाला), शशभृत् (चन्द्रमा), दिनकृत् (सूर्य), मरुत् (वायु), दुष्कृत् (पाप) परभृत्

ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः	द्वि०	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः	तृ०	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
ऋत्विजे	,,	ऋत्विग्भ्यः	च०	भूभृते	,,	भूभृद्भ्यः
ऋत्विजः	,,	,,	पं०	भूभृतः	,,	,,
,,	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्	ष०	,,	भूभृतोः	भूभृताम्
ऋत्विजि	,,	ऋत्विक्षु	स०	भूभृति	,,	भूभृत्सु
हे ऋत्विक् !	हे ऋत्विजौ !	हे ऋत्विजः !	सं०	हे भूभृत् !	हे भूभृतौ !	हे भूभृतः !

(२४) तकारान्त 'भगवत्'[1] (भगवान्): (२५) तकारान्त ('शतृ'प्रत्ययान्त) 'धावत्'[2] (दौड़ता हुआ):

भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः	प्र०	धावन्	धावन्तौ	धावन्तः
भगवन्तम्	,,	भगवतः	द्वि०	धावन्तम्	,,	धावतः
हे भगवन् !	हे भगवन्तौ !	हे भगवन्तः !	सं०	हे धावन् !	हे धावन्तौ !	हे धावन्तः !

विशेष—दोनों के रूप शेष विभक्तियों में 'भूभृत्' की तरह चलेंगे।

(२६) दकारान्त 'सुहृद्'[3] (मित्र): (२७) नकारान्त (अञ्नन्त) 'राजन्' (राजा):

सुहृत्-द्	सुहृदौ	सुहृदः	प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
सुहृदम्	,,	,,	द्वि०	राजानम्	,,	राज्ञः

(कोयल), विश्वजित् (संसार-विजयी, यज्ञ विशेष) आदि। (ख) सरित् (नदी), क्षुत् (छींक), पृत् (सेना), योषित् (स्त्री), विद्युत् (बिजली), तडित् (बिजली), आदि तकारान्त स्त्री० शब्दों के भी रूप 'भूभृत्' के समान चलेंगे।

१. इसी प्रकार—(क) श्रीमत् (बुद्धिमान्), बुद्धिमत्, श्रीमत् (भाग्यवान्), आयुष्मत् (दीर्घायु), विद्यावत्, बलवत्, धनुष्मत् (धनुर्धारी), धनवत्, गुणवत्, रूपवत्, लज्जावत् (लज्जावान्), गतवत् (गया हुआ), उक्तवत् (कथित), जितवत् (विजित), यावत् (जितना), एतावत् (इतना), कियत् (कितना), इयत् (इतना), भवत् (आप) आदि 'मतुप्' (मत् या वत्) और क्तवतु (तवत्) प्रत्ययान्त शब्द। (ख) महत् (महान् महान्तौ महान्तः। महान्तम् महान्तौ महतः)।

२. इसी प्रकार—(क) भवत् (होता हुआ), कुर्वत् (करने वाला), पठत् (पढ़ने वाला, पढ़ता हुआ) आदि 'शतृ' और 'स्यतृ' प्रत्ययान्त शब्द। (ख) ददत् (पुं० ददत् ददतौ ददतः। ददतम् ददतौ ददतः। स्त्री० ददत् ददती ददन्ति, ददति।)

३. इसी प्रकार—(क) ब्रह्मविद् (ब्रह्मज्ञ), तमोनुद् (अन्धकार हटाने वाला, सूर्य), वेदविद् (वेद का ज्ञाता), धर्मविद्, उद्भिद् (तरु, लता), निरापद् (आपद्-शून्य), गोत्रभिद् (इन्द्र), सभासद्, नखनिष्कृद् (नाखून काटने वाला), मर्मभिद् (रहस्य

सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः	तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
सुहृदे	,,	सुहृद्भ्यः	च०	राज्ञे	,,	राजभ्यः
सुहृदः	,,	,,	पं०	राज्ञः	,,	,,
,,	सुहृदोः	सुहृदाम्	ष०	,,	राज्ञोः	राज्ञाम्
सुहृदि	,,	सुहृत्सु	स०	राज्ञि, राजनि	,,	राजसु
हे सुहृत्-द् !	हे सुहृदौ !	हे सुहृदः !	सं०	हे राजन् !	हे राजानौ !	हे राजानः !

(२८) अञ्नन्त 'आत्मन्'[1] (अपना, आत्मा): (२९) अञ्नन्त 'युवन्' (युवक)

आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः	प्र०	युवा	युवानौ	युवानः
आत्मानम्	,,	आत्मनः	द्वि०	युवानम्	,,	यूनः
आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः	तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
आत्मने	,,	आत्मभ्यः	च०	यूने	,,	युवभ्यः
आत्मनः	,,	,,	पं०	यूनः	,,	,,
,,	आत्मनोः	आत्मनाम्	ष०	,,	यूनोः	यूनाम्
आत्मनि	,,	आत्मसु	स०	यूनि	,,	युवसु
हे आत्मन् !	हे आत्मानौ !	हे आत्मानः !	सं०	हे युवन् !	हे युवानौ !	हे युवानः !

(३०) इन्नन्त 'करिन्'[2] (हाथी): (३१) इञन्त 'पथिन्' (पथ):

करी	करिणौ	करिणः	प्र०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
करिणम्	,,	,,	द्वि०	पन्थानम्	,,	पथः
करिणा	करिभ्याम्	करिभिः	तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः

भेदन करनेवाला) आदि पुं० शब्द (ख) शरद् (पतझड़ ऋतु), आपद् (आपत्ति), विपद् (विपत्ति), सम्पद् (धन), संसद् (सभा), परिषद् (सभा), दृषद् (पत्थर), ककुद् (चोटी), प्रतिपद् (पड़वा तिथि), मृद् (मिट्टी), संविद् (ज्ञान), उपनिषद् (वेदान्त) आदि दकारान्त स्त्री० शब्दों के भी रूप 'सुहृद्' की तरह चलेंगे।

१. इसी प्रकार—अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यागकर्ता), ब्रह्मन् (विधाता), द्विजन्मन् (ब्राह्मण), अध्वन् (मार्ग) आदि।

२. इसी प्रकार—हस्तिन् (हाथी), गुणिन् (गुणी), मन्त्रिन् (मन्त्री), शशिन् (चन्द्रमा), शृङ्गिन् (सींग वाला), पक्षिन् (पक्षी), अग्निन् (धनी), वाजिन् (घोड़ा), तपस्विन्, बलिन् (बलवान्), सुखिन् (सुखी), एकाकिन् (अकेला), सत्यवादिन्, स्वामिन्, मानिन्, शरीरिन्, देहिन्, प्राणिन्, सहवासिन्, स्रग्विन् (मालाधारी), मनस्विन्, यशस्विन्, मेधाविन्, मालिन् (माली), ज्ञानिन्, मनोहारिन्, अर्थिन् (याचक), वाजिन् (घोड़ा), आत्मघातिन्, कामिन् (प्रेमी),

करिणे	करिभ्याम्	करिभ्यः	च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
करिणः	,,	,,	पं०	पथः	,,	,,
,,	करिणोः	करिणाम्	ष०	,,	पथोः	पथाम्
करिणि	,,	करिषु	स०	पथि	,,	पथिषु
हे करिन् !	हे करिणौ !	हे करिणः !	सं०	हे पन्थाः !	हे पन्थानौ !	हे पन्थानः !

(३२) शकारान्त 'तादृश्'[1] (वैसा):

तादृक्-ग्	तादृशौ	तादृशः	प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
तादृशम्	,,	,,	द्वि०	विद्वांसम्	,,	विदुषः
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः	तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
तादृशे	,,	तादृग्भ्यः	च०	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः
तादृशः	,,	,,	पं०	विदुषः	,,	,,
,,	तादृशोः	तादृशाम्	ष०	,,	विदुषोः	विदुषाम्
तादृशि	,,	तादृक्षु	स०	विदुषि	,,	विद्वत्सु
हे तादृक्-ग् !	हे तादृशौ !	हे तादृशः !	सं०	हे विद्वन् !	हे विद्वांसौ !	हे विद्वांसः !

(३३) सकारान्त 'विद्वस्'[2] (विद्वान्):

व्यञ्जनान्त (हलन्त) स्त्रीलिङ्ग संज्ञा शब्द[3]

(३४) चकारान्त 'वाच्'[4] (वाणी):

वाक्-ग्	वाचौ	वाचः	प्र०	वाचः	द्वि०	वाचम्
वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः	तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
वाचे	,,	वाग्भ्यः	च०	वाचे	,,	वाग्भ्यः
वाचः	,,	,,	पं०	वाचः	,,	,,
,,	वाचोः	वाचाम्	ष०	,,	वाचोः	वाचाम्
वाचि	,,	वाक्षु	स०	वाचि	,,	वाक्षु
हे वाक्-ग् !	हे वाचौ !	हे वाचः !	सं०	हे वाचः !	हे वाचौ !	हे वाचः !

(३५) 'अप्' (जल) (नित्य बहुवचनान्त):

अप्-क्	अपौ	अपः	प्र०	अपः	द्वि०	अपः
अद्भिः	तृ०	अद्भ्याम्	अद्भिः	तृ०	अद्भ्याम्	अद्भिः
अद्भ्यः	च०	अद्भ्याम्	अद्भ्यः	च०	अद्भ्याम्	अद्भ्यः
,,	पं०	,,	,,	पं०	,,	,,
अपाम्	ष०	अपोः	अपाम्	ष०	अपोः	अपाम्
अप्सु	स०	अपि	अप्सु	स०	अपि	अप्सु
हे अप्-क् !	सं०	हे अपौ !	हे अपः !	सं०	हे अपौ !	हे अपः !

(३६) रकारान्त 'गिर्'[5] (वाणी):

गीः	गिरौ	गिरः	प्र०	गीः	द्वि०	गिरम्
गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः	तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
गिरे	,,	गीर्भ्यः	च०	गिरे	,,	गीर्भ्यः
गिरः	,,	,,	पं०	गिरः	,,	,,
,,	गिरोः	गिराम्	ष०	,,	गिरोः	गिराम्
गिरि	,,	गीर्षु	स०	गिरि	,,	गीर्षु
हे गीः !	हे गिरौ !	हे गिरः !	सं०	हे गीः !	हे गिरौ !	हे गिरः !

कुटुम्बिन्, कुशलिन् (सुखी), केशरिन् (सिंह), क्रयिन् (खरीदने वाला), गृहिन् (गृहस्थ), चक्रवर्तिन् (सम्राट्), तपस्विन्, दूरदर्शिन्, द्वेषिन्, रोगिन्, वाग्मिन् (शीघ्र बोलने वाला), वादिन् (वादी), विटपिन् (वृक्ष), वैरिन् (शत्रु), शाखिन् (वृक्ष), शिखिन् (मयूर), साक्षिन् (साक्षी) आदि ।

१. इसी प्रकार—(क) मादृश् (मेरे समान), भवादृश् (आपके समान), त्वादृश् आदि पुं० शब्द । (ख) 'दिश्, दृश् (नेत्र) आदि शकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के भी रूप इसी प्रकार बनेंगे ।

२. 'विद्वस्' का स्त्री० 'विदुषी' होता है और उसके रूप 'नदी' की तरह बनेंगे ।

३. प्रायः इसके रूप व्यञ्जनान्त पुं० संज्ञा शब्दों के तुल्य होते हैं ।

४. इसी प्रकार—(क) त्वच् (चमड़ा, छाल), रुच् (चमक), शुच् (शोक), ऋच् (वेदमन्त्र) आदि स्त्रीलिङ्ग शब्द । (ख) जलमुच् (मेघ), वारिमुच् (मेघ), पयोमुच् (मेघ), सत्यवाच् (सत्यवादी) आदि चकारान्त पुं० शब्दों के भी रूप वाच् की तरह चलेंगे ।

५. इसी प्रकार—पुर् (नगर) और धुर् (धुरी) स्त्री० शब्दों के रूप बनेंगे ।

(३७) वकारान्त 'दिव्' (आकाश, स्वर्ग):

द्यौः	दिवौ	दिवः	प्र०	दिवम्	द्वि०	दिवम्
दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः	तृ०	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
दिवे	,,	द्युभ्यः	च०	दिवे	,,	द्युभ्यः
दिवः	,,	,,	पं०	दिवः	,,	,,
,,	दिवोः	दिवाम्	ष०	,,	दिवोः	दिवाम्
दिवि	,,	द्युषु	स०	दिवि	,,	द्युषु
हे द्यौः !	हे दिवौ !	हे दिवः !	सं०	हे द्यौः !	हे दिवौ !	हे दिवः !

(३८) सकारान्त 'आशिस्'[1] (आशीर्वाद):

आशीः	आशिषौ	आशिषः	प्र०	आशीः	आशिषौ	आशिषः
आशिषम्	,,	,,	द्वि०	आशिषम्	,,	,,
आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः	तृ०	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
आशिषे	,,	आशीर्भ्यः	च०	आशिषे	,,	आशीर्भ्यः
आशिषः	,,	,,	पं०	आशिषः	,,	,,
,,	आशिषोः	आशिषाम्	ष०	,,	आशिषोः	आशिषाम्
आशिषि	,,	आशीःषु	स०	आशिषि	,,	आशीःषु, आशीष्षु
हे आशीः !	हे आशिषौ !	हे आशिषः !	सं०	हे आशीः !	हे आशिषौ !	हे आशिषः !

व्यञ्जनान्त (हलन्त) नपुंसकलिङ्ग संज्ञा शब्द

(३९) तकारान्त 'जगत्'[2] (विश्व):

जगत्	जगती	जगन्ति	प्र०, द्वि०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः	तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः	च०	नाम्ने	,,	नामभ्यः
जगतः	,,	,,	पं०	नाम्नः	,,	,,

(४०) नकारान्त 'नामन्'[3] (नाम):

१. इसी प्रकार—स्त्रीलिङ्ग अर्चिस् (लौ) शब्द के भी रूप बनेंगे परन्तु 'आशिस्' के रूपों में जहाँ दीर्घ 'ई' है वहाँ 'अर्चिस्' के रूपों में ह्रस्व 'इ' ही रहेगा ।

२. तृतीया से लेकर आगे के सभी रूप 'भूभृत्' के तुल्य हैं ।

३. इसी प्रकार—प्रेमन् (प्रेम), दामन् (रस्सी), व्योमन् (आकाश), सामन् (सामवेद का मन्त्र), धामन् (चमक, मकान), लोमन् (रोम), वेमन् (कर्घा) आदि ।

जगतः	जगतोः	जगताम्	ष०	नाम्नः	नाम्नोः	नाम्नाम्
जगति	,,	जगत्सु	स०	नाम्नि, नामनि	,,	नामसु
हे जगत् !	हे जगती !	हे जगन्ति !	सं०	हे नाम,नामन् !	हे नाम्नी, हे नामानि ! नामनी !	

(४१) नकारान्त 'कर्मन्'[1] (कर्म):

कर्म	कर्मणी	कर्माणि	प्र०, द्वि०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
कर्मणा	कर्मभ्याम्	कर्मभिः	तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
कर्मणे	,,	कर्मभ्यः	च०	अह्ने	,,	अहोभ्यः
कर्मणः	,,	,,	पं०	अह्नः	,,	,,
,,	कर्मणोः	कर्मणाम्	ष०	,,	अह्नोः	अह्नाम्
कर्मणि	,,	कर्मसु	स०	अह्नि,अहनि	,,	अहःसु, अहस्सु
हे कर्म,कर्मन् !	हे कर्मणी !	हे कर्माणि !	सं०	हे अहः !	हे अह्नी, हे अहनी !	हे अहानि !

(४२) नकारान्त 'अहन्'[2] (दिन):

(४३) सकारान्त 'मनस्'[3] (मन):

मनः	मनसी	मनांसि	प्र०, द्वि०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः	तृ०	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
मनसे	,,	मनोभ्यः	च०	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
मनसः	,,	,,	पं०	धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
,,	मनसोः	मनसाम्	ष०	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
मनसि	,,	मनःसु-स्सु	स०	धनुषि	,,	धनुःषु, धनुष्षु
हे मनः !	हे मनसी !	हे मनांसि !	सं०	हे धनुः !	हे धनुषी !	हे धनूंषि !

(४४) सकारान्त 'धनुस्'[4] (धनुष):

१. इसी प्रकार—चर्मन् (चमड़ा), छद्मन् (छल, वेष), जन्मन् (जन्म), वर्मन् (कवच), वर्त्मन् (मार्ग), शर्मन् (सुख), वेश्मन् (घर), ब्रह्मन् (ब्रह्म), जन्मन् (जन्म), पर्वन् (जोड़), मर्मन् (मर्मस्थान), भस्मन् (राख), नर्मन् (हँसी मजाक, परिहास), पर्वन् (त्यौहार, गाँठ), लक्ष्मन् (चिह्न, दाग), सद्मन् (महल) आदि 'अन्' भागान्त ('अन्' का 'अ' म्-संयुक्त या र्-संयुक्त वर्ण में मिलित रहता है) नपुं० शब्दों के रूप बनेंगे ।

२. असर्वनामस्थान हलादि विभक्तियों में 'अहन्' को अहः (न्>र्) हो जाता है ।

३. इसी प्रकार—पयस् (जल, दूध), अम्भस् (जल), नभस् (आकाश), आगस् (दोष, पाप), तपस् (तप), यशस् (यश), रजस् (धूलि), तमस् (अन्धकार), अवस् (रक्षा), वक्षस्, उरस् (वक्षस्थल), चेतस् (चित्त), वासस् (वस्त्र), शिरस् (मस्तक), एनस् (पाप), वर्चस् (तेज), तेजस् (तेज, प्रकाश), वयस् (आयु), वचस् (वचन), तरस् (वेग), अयस् (लोहा), सरस् (तालाब), ओकस् (घर), ओजस् (प्रकाश), छन्दस् (छन्द), रक्षस् (राक्षस), रहस् (रहस्य) रोधस् (नदी का तट, बाँध), प्रेयस् (प्रिय), सदस् (सभा, संसद) आदि 'अस्' भागान्त नपुं० शब्दों के रूप बनेंगे ।

४. इसी प्रकार—आयुस् (आयु), वपुस् (शरीर), चक्षुस् (आँख), ज्योतिस् (प्रकाश), हविस् (हवि), सर्पिस् (घी), यजुस् (यजुर्वेद) आदि 'उस्' भागान्त नपुं० शब्दों के रूप बनेंगे । इन शब्दों को कहीं-कहीं 'षकारान्त' भी लिखा जाता है ।

सर्वनाम शब्द (Pronouns)

(पुरुष वाचक सर्वनाम = Personal Pronouns)

(४५) 'अस्मद्' (मैं=First Person) : (४६) युष्मद् (तुम=Second Person) :

अहम्	आवाम्	वयम्	प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
माम् [मा],, [नौ]		अस्मान्[नः]	द्वि०	त्वाम्[त्वा]	,, [वां]	युष्मान् [वः]
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
मह्यम् [मे],, [नौ]		अस्मभ्यम्[नः]	च०	तुभ्यम्[ते]	,, [वां]	युष्मभ्यम् [वः]
मत्	,,	अस्मत्	पं०	त्वत्	,,	युष्मत्
मम [मे]	आवयोः[नौ]	अस्माकम् [नः]	ष०	तव [ते]	युवयोः [वां]	युष्माकम् [वः]
मयि	,,	अस्मासु	स०	त्वयि	,,	युष्मासु

विशेष—'अस्मद्' और 'युष्मद्' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में एक समान होते हैं ।

(४७) 'तद्' (वह = He=Third Person) पुं० (४८) 'तद्' (वह = She) स्त्री०

सः	तौ	ते	प्र०	सा	ते	ताः
तम्	,,	तान्	द्वि०	ताम्	,,	,,
तेन	ताभ्याम्	तैः	तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
तस्मै	,,	तेभ्यः	च०	तस्यै	,,	ताभ्यः
तस्मात्	,,	,,	पं०	तस्याः	,,	,,
तस्य	तयोः	तेषाम्	ष०	,,	तयोः	तासाम्
तस्मिन्	,,	तेषु	स०	तस्याम्	,,	तासु

(४९) 'तद्' (वह = It) नपुं०—

तद्, तत् ते तानि प्र०, द्वि० शेष पुं० की तरह ।

(५०) 'भवत्' (आप=You=) पुं० (५१) 'भवत्' (आप) स्त्री०

भवान्	भवन्तौ	भवन्तः	प्र०	भवती	भवत्यौ	भवत्यः
भवन्तम्	”	भवतः	द्वि०	भवतीम्	”	भवतीः
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः	तृ०	भवत्या	भवतीभ्याम्	भवतीभिः
भवते	”	भवद्भ्यः	च०	भवत्यै	”	भवतीभ्यः
भवतः	”	”	पं०	भवत्याः	”	”
”	भवतोः	भवताम्	ष०	”	भवत्योः	भवतीनाम्
भवति	”	भवत्सु	स०	भवत्याम्	”	भवतीषु
हे भवन् !	हे भवन्तौ !	हे भवन्तः !	सं०	हे भवति !	हे भवत्यौ !	हे भवत्यः !

(५२) 'भवत्' (आप) नपुं०—

भवत्	भवती	भवन्ति	प्र०, द्वि० शेष पुं० की तरह।

(वस्तुनिर्देशक या निश्चयवाचक सर्वनाम् = Demonstrative Pronouns)

(५३) 'एतद्'[1] (यह) पुं० ('तद्' की तरह) (५४) 'एतद्' (यह) स्त्री० ('तद्' की तरह)

एषः	एतौ	एते	प्र०	एषा	एते	एताः
एतम् एनम्[1]	एतौ, एनौ	एतान्,एनान्	द्वि०	एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः, एनाः
एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः	तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
एतस्मै	”	एतेभ्यः	च०	एतस्यै	”	एताभ्यः
एतस्मात्	”	”	पं०	एतस्याः	”	”
एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्	ष०	”	एतयोः,एनयोः	एतासाम्
एतस्मिन्	” ”	एतेषु	स०	एतस्याम्	” ”	एतासु

(५५) 'एतद्' (यह) नपुं० ('तद्' की तरह)—

एतत्-द्	एते	एतानि	प्र० शेष पुं० की तरह।
एतत्-द्, एनत्-द्	एते, एने	एतानि, एनानि	द्वि०

(५६) 'इदम्'[2] (यह = This) पुं० (५७) 'इदम्' (यह) स्त्री०

अयम्	इमौ	इमे	प्र०	इयम्	इमे	इमाः
इमम्,एनम्	इमौ एनौ	इमान्,एनान्	द्वि०	इमाम्,एनाम्	इमे, एने	इमाः, एनाः
अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः	तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
अस्मै	”	एभ्यः	च०	अस्यै	”	आभ्यः

1-2 'एतद्' और 'इदम्' शब्दों के वैकल्पिक रूपों का प्रयोग किसी के बारे में एक बार कुछ कह लेने के बाद पुनः उसके बारे में कहने पर (अन्वादेश=द्विरुक्ति) होता है। जैसे—अयं वेदमधीतवान्। एनं दर्शनम् अध्यापय।

अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः	पं०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
अस्य	अनयोः,एनयोः	एषाम्	ष०	”	अनयोः,एनयोः	आसाम्
अस्मिन्	” ”	एषु	स०	अस्याम्	” ”	आसु

(५८) 'इदम्' (यह) नपुं०—

इदम्	इमे	इमानि	प्र०, द्वि० शेष पुं० की तरह।

(५९) 'अदस्' (वह = That) पुं० (६०) 'अदस्' (वह) स्त्री०—

असौ	अमू	अमी	प्र०	असौ	अमू	अमूः
अमुम्	”	अमून्	द्वि०	अमुम्	”	”
अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
अमुष्मै	”	अमीभ्यः	च०	अमुष्यै	”	अमूभ्यः
अमुष्मात्-द्	”	”	पं०	अमुष्याः	”	”
अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्	ष०	”	अमुयोः	अमूषाम्
अमुष्मिन्	”	अमीषु	स०	अमुष्याम्	”	अमूषु

(६१) 'अदस्' (वह) नपुं०—

अदः	अमू	अमूनि	प्र०, द्वि० शेष पुं० की तरह।

(सम्बन्धवाचक सर्वनाम = Relative Pronouns)

(६२) 'यद्' (जो = Who) पुं०— (६३) 'यद्' (जो = Who) स्त्री०—

यः	यौ	ये	प्र०	या	ये	याः
यम्	”	यान्	द्वि०	याम्	”	”
येन	याभ्याम्	यैः	तृ०	यया	याभ्याम्	याभिः
यस्मै	”	येभ्यः	च०	यस्यै	”	याभ्यः
यस्मात्-द्	”	”	पं०	यस्याः	”	”
यस्य	ययोः	येषाम्	ष०	”	ययोः	यासाम्
यस्मिन्	”	येषु	स०	यस्याम्	”	यासु

(६४) 'यद्' जो = which) नपुं०—

यत्-द्	ये	यानि	प्र०, द्वि० शेष पुं० की तरह।

(प्रश्नवाचक सर्वनाम = Interrogative Pronouns)

(६५) 'किम्' (कौन = who, which, what) पुं० (६६) 'किम्' (कौन) स्त्री०

कः	कौ	के	प्र०	का	के	काः

कम्	कौ	कान्	द्वि०	काम्	के	काः
केन	काभ्याम्	कैः	तृ०	कया	काभ्याम्	काभिः
कस्मै	”	केभ्यः	च०	कस्यै	”	काभ्यः
कस्मात्-द्	”	”	पं०	कस्याः	”	”
कस्य	कयोः	केषाम्	ष०	”	कयोः	कासाम्
कस्मिन्	”	केषु	स०	कस्याम्	”	कासु

(६७) 'किम्' (कौन) नपुं०—

किम्	के	कानि	प्र०, द्वि० शेष पुं० की तरह।

('सर्व'वाचक सर्वनाम[1]-विशेषण=Pronominal Adjective)

(६८) 'सर्व'[2] (सब = All) पुं०— (६९) 'सर्व' (सब) स्त्री०

सर्वः	सर्वौ	सर्वे	प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वम्	”	सर्वान्	द्वि०	सर्वाम्	”	”

१. सर्वनामों के कुछ अन्य प्रकार—(१) **निजवाचक सर्वनाम** (Reflexive Pronoun)—स्व (स्वयम्) आदि। (२) **अनिश्चयवाचक सर्वनाम** (Indefinite Pronoun)—'किम्' शब्द में चित्, चन, अपि, और स्वित् जोड़कर अनिश्चयवाचक सर्वनाम सब लिङ्गों और सब विभक्तियों में बनते हैं। जैसे—कः + चित् = कश्चित्, कौचित्, केचित्। कः + अपि=कोऽपि, कावपि, केऽपि। कः + चन=कश्चन, कौचन, केचन। का + चित्=काचित्। किम् + चित्=किञ्चित्। कस्मिन् + चित्=कस्मिंश्चित्। (३) **अन्योन्य-सम्बन्धवाचक सर्वनाम** (Reciprocal Pronoun)—अन्योन्य, इतरेतर, परस्पर आदि। (४) **सम्बन्धवाचक सर्वनाम-विशेषण** (Possessive Pronoun)—ये 'तद्' आदि शब्दों में 'ईय' (छ) जोड़कर बनते हैं। जैसे— तदीय, मदीय, अस्मदीय आदि।

२. (क) अन्य (दूसरा), सम (सब), अन्यतर (दो में से कोई एक), इतर (दूसरा), कतम (बहुतों में से कौन), एकतम (बहुतों में से एक), विश्व, एकतर, पूर्व (पहला, पूर्व दिशा), अवर (पीछे, पश्चिम), दक्षिण, उत्तर (पिछला, उत्तर दिशा, बड़ा), अवर (दूसरा, घटिया), अधर (निचला, घटिया), पर (दूसरा), अन्तर, स्व (अपना) आदि प्रायः सभी सर्वनाम शब्दों के रूप सर्व शब्द की ही तरह चलते हैं।

(ख) कति, उभ और उभय शब्दों के रूप—'कति' (कितने) शब्द के रूप नित्य बहुवचनान्त और तीनों लिङ्गों में एक से होते हैं। जैसे—कति, कति,

सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्मै	”	सर्वेभ्यः	च०	सर्वस्यै	”	सर्वाभ्यः
सर्वस्मात्	”	”	पं०	सर्वस्याः	”	”
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	ष०	”	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्मिन्	”	सर्वेषु	स०	सर्वस्याम्	”	सर्वासु

(७०) 'सर्व' (सब) नपुं०—

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	प्र०, द्वि० शेष पुं० की तरह।

संख्यावाचक शब्द (Cardinals)[1]

(७१) 'एक' (एक) ['सर्व' शब्दवत्] (७२) 'द्वि' (दो) (७३) 'त्रि' (तीन)

	पुं०	स्त्री०	नपुं०	पुं०	स्त्री०,नपुं०	पुं०	स्त्री०	नपुं०
प्र०	एकः	एका	एकम्	द्वौ	द्वे	त्रयः	तिस्रः	त्रीणि
द्वि०	एकम्	एकाम्	”	”	”	त्रीन्	”	”

कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु। 'उभ' (दोनों) शब्द के रूप नित्य द्विवचनान्त होते हैं। जैसे—पुं० में क्रमशः रूप होंगे—उभौ, उभौ, उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभयोः, उभयोः। स्त्री० एवं नपुं० के प्रथमा-द्वितीया में 'उभे' रूप बनेंगे; शेष पुं० की तरह। 'उभय' (उभ + अयच्) शब्द के रूप एकवचन और बहुवचन में होते हैं। जैसे—पुं० में 'तद्' शब्द की तरह (उभयः, उभये। उभयम् उभयान्)। स्त्री० में 'नदी' की तरह (उभयी, उभय्यः)। नपुं० में प्र० द्वि० के 'उभयम्, उभयानि' रूप होंगे, शेष पुं० की तरह।

१. (क) संख्यावाची शब्दों में 'एक' शब्द के एकवचन में 'द्वि' शब्द के द्विवचन में और 'त्रि' से लेकर 'अष्टादश' तक के शब्दों के रूप केवल बहुवचन में चलते हैं।

(ख) संख्यावाची एक शब्द का प्रयोग निम्न ७ अर्थों में होता है—
'एकोऽल्पार्थो प्रधाने च प्रथमे केवले तथा। साधारणे समानेऽपि संख्यायाश्च प्रयुज्यते।'

नोट—संख्यातिरिक्त 'अल्प' आदि अर्थों में 'एक' शब्द का प्रयोग होने पर उसके द्वि० और बहुवचन के भी रूप बनेंगे। जैसे—एकानि फलानि।

(ग) एकोनविंशति (१९) से सहस्र (१०००) तक के सभी रूप यद्यपि एकवचनान्त होते हैं परन्तु वे बहुवचनान्त विशेष्यों के साथ प्रयुक्त होते हैं। जैसे – विंशतिः छात्राः ; शतं स्त्रियः। नियत-संख्या के परिमाण के लिए द्विवचन और बहुवचन में भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे—विंशतयः ब्राह्मणानाम्, द्वे शते स्त्रीणाम्।

(घ) एक, द्वि, त्रि और चतुर् शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न-भिन्न चलते हैं। 'पञ्चन्' से 'एकोनविंशति' (१९) तक के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते हैं। 'विंशति' (२०) से 'नवनवति' (९९) तक के सभी शब्द स्त्रीलिङ्गक हैं। 'शतम्' आदि नपुं० हैं। जैसे—विंशतिः बालकाः फलानि बालिकाः वा।

(ङ) 'कोटि' शब्द स्त्रीलिङ्गक है। 'महापद्म' और 'जलधि' शब्द पुं० हैं।

(च) 'एक' से 'अष्टादश' पर्यन्त संख्यावाची शब्द विशेषण (संख्येय) के रूप में प्रयुक्त होते हैं परन्तु अष्टादश से बाद के संख्यावाची शब्द विशेष्य (संख्या) के भी रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे–एकः छात्रः ('छात्रस्य एकः' नहीं होगा)। विंशतिः छात्राः छात्राणां विंशतिः वा।

(छ) क्रमवाचक (पूरणार्थक=Ordinal) शब्दों के रूप संख्याओं की तरह चलते हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय शब्दों के चतुर्थी से सप्तमी तक एकवचन में सर्वनाम संबन्धी रूप भी बनते हैं। जैसे—द्वितीयस्मै, द्वितीयस्याः।

(ज) संख्यावाची एक, द्वि, आदि शब्दों से बने हुए पूरणार्थक (प्रथमः, द्वितीयः आदि) शब्द निम्न प्रकार होंगे—

	पुं०	स्त्री०	नपुं०
एक—	प्रथमः	प्रथमा	प्रथमम्
	(अग्रिमः, आदिमः)		
द्वि—	द्वितीयः	द्वितीया	द्वितीयम्
त्रि—	तृतीयः	तृतीया	तृतीयम्
चतुर्—	चतुर्थः	चतुर्थी	चतुर्थम्
	(तुरीयः, तुर्यः)		
पञ्चन्—	पञ्चमः	पञ्चमी	पञ्चमम्
षष् —	षष्ठः	षष्ठी	षष्ठम्
सप्त —	सप्तमः	सप्तमी	सप्तमम्
अष्ट —	अष्टमः	अष्टमी	अष्टमम्
नवन्—	नवमः	नवमी	नवमम्
दशन्—	दशमः	दशमी	दशमम्

विंशति—	विंशः, विंशतितमः
एकविंशति—एकविंशः,	एकविंशतितमः
त्रिंशत् —	त्रिंशः, त्रिंशत्तमः
चत्वारिंशत्–	चत्वारिंशः, चत्वारिंशत्तमः
पञ्चाशत्—	पञ्चाशः, पञ्चाशत्तमः
षष्टि—	षष्टितमः
सप्तति—	सप्ततितमः
अशीति—	अशीतितमः
नवति—	नवतितमः
शत —	शततमः।
द्विशत —	द्विशततमः
सहस्र—	सहस्रतमः

(झ) एक से परार्ध तक संख्या निम्न प्रकार है—

तृ०	एकेन	एकया	एकेन	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	त्रिभिः	तिसृभिः	त्रिभिः
च०	एकस्मै	एकस्यै	एकस्मै	,,	,,	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रिभ्यः
पं०	एकस्मात्	एकस्याः	एकस्मात्	,,	,,	,,	,,	,,
ष०	एकस्य	,,	एकस्य	द्वयोः	द्वयोः	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	त्रयाणाम्
स०	एकस्मिन्	एकस्याम्	एकस्मिन्	,,	,,	त्रिषु	तिसृषु	त्रिषु

(७४-७७) चतुर् (चार) पञ्चन् (पाँच) षष् (छः) सप्तन् (सात)

	पुं०	स्त्री०	नपुं०			
प्र०	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि	पञ्च	षट्	सप्त
द्वि०	चतुरः	,,	,,	,,	,,	,,
तृ०	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः	पञ्चभिः	षड्भिः	सप्तभिः
च०	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः
पं०	,,	,,	,,	,,	,,	,,
ष०	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्	पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्
स०	चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु	पञ्चसु	षट्सु	सप्तसु

(७८-८२) अष्टन् (आठ) नवन् (नौ) दशन् (दस) विंशति (बीस) त्रिंशत् (तीस)

प्र०	अष्ट, अष्टौ	नव	दश	विंशतिः	त्रिंशत्
द्वि०	,,	,,	,,	विंशतिम्	त्रिंशतम्

१ एक	१३ त्रयोदशन्	२३ त्रयोविंशति
२ द्वि	१४ चतुर्दशन्	२४ चतुर्विंशति
३ त्रि	१५ पञ्चदशन्	२५ पञ्चविंशति
४ चतुर्	१६ षोडशन्	२६ षड्विंशति
५ पञ्चन्	१७ सप्तदशन्	२७ सप्तविंशति
६ षष्	१८ अष्टादशन्	२८ अष्टाविंशति
७ सप्तन्	१९ नवदशन्	२९ नवविंशति
८ अष्टन्	एकोनविंशति	एकोनत्रिंशत्
९ नवन्	ऊनविंशति	ऊनत्रिंशत्
१० दशन्	एकाशविंशति	एकात्रिंशत्
११ एकादशन्	२० विंशति	३० त्रिंशत्
१२ द्वादशन्	२१ एकविंशति	३१ एकत्रिंशत्
	२२ द्वाविंशति	

तृ०	अष्टभिः,अष्टाभिः	नवभिः	दशभिः	विंशत्या त्रिंशता
च०	अष्टभ्यः,अष्टाभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः	विंशत्यै, विंशतये त्रिंशते
पं०	"	"	"	विंशत्याः, विंशतेः त्रिंशतः

३२ द्वात्रिंशत्
३३ त्रयस्त्रिंशत्
३४ चतुस्त्रिंशत्
३५ पञ्चत्रिंशत्
३६ षट्त्रिंशत्
३७ सप्तत्रिंशत्
३८ अष्टात्रिंशत्
३९ नवत्रिंशत्
एकोनचत्वारिंशत्
ऊनचत्वारिंशत्
एकान्नचत्वारिंशत्
४० चत्वारिंशत्
४१ एकचत्वारिंशत्
४२ द्वा(द्वि)चत्वारिंशत्
४३ त्रयः(त्रि)चत्वारिंशत्
४४ चतुश्चत्वारिंशत्
४५ पञ्चचत्वारिंशत्
४६ षट्चत्वारिंशत्
४७ सप्तचत्वारिंशत्
४८ अष्टा-चत्वारिंशत्
अष्टचत्वारिंशत्
४९ नवचत्वारिंशत्
एकोनपञ्चाशत्
ऊनपञ्चाशत्
एकान्नपञ्चाशत्
५० पञ्चाशत्
५१ एकपञ्चाशत्
५२ द्वा(द्वि)पञ्चाशत्
५३ त्रयः(त्रि)पञ्चाशत्
५४ चतुःपञ्चाशत्
५५ पञ्चपञ्चाशत्
५६ षट्पञ्चाशत्
५७ सप्तपञ्चाशत्
५८ अष्टा-पञ्चाशत्
अष्टपञ्चाशत्
५९ नवपञ्चाशत्
एकोनषष्टि
ऊनषष्टि
एकान्नषष्टि
६० षष्टि
६१ एकषष्टि
६२ द्वा(द्वि)षष्टि
६३ त्रयः(त्रि)षष्टि
६४ चतुष्षष्टि
६५ पञ्चषष्टि
६६ षट्षष्टि
६७ सप्तषष्टि
६८ अष्टा(अष्ट)षष्टि
६९ नवषष्टि
एकोनसप्तति
ऊनसप्तति
एकान्नसप्तति
७० सप्तति
७१ एकसप्तति
७२ द्वा(द्वि)सप्तति
७३ त्रयः(त्रि) सप्तति
७४ चतुस्सप्तति
७५ पञ्चसप्तति
७६ षट्सप्तति
७७ सप्तसप्तति
७८ अष्टा(अष्ट)सप्तति
७९ नवसप्तति
एकोनाशीति
ऊनाशीति
एकन्नाशीति
८० अशीति
८१ एकाशीति
८२ द्व्यशीति
८३ त्र्यशीति
८४ चतुरशीति
८५ पञ्चाशीति
८६ षडशीति
८७ सप्ताशीति
८८ अष्टाशीति
८९ नवाशीति
एकोननवति
ऊननवति
एकान्ननवति
९० नवति
९१ एकनवति
९२ द्वा(द्वि)नवति
९३ त्रयो(त्रि)नवति
९४ चतुर्नवति
९५ पञ्चनवति
९६ षण्णवति
९७ सप्तनवति
९८ अष्टा (अष्ट) नवति
९९ नवनवति
एकोनशत (नपुं०)
१०० शत
२०० द्विशत

ष०	अष्टानाम्	नवानाम्	दशानाम्	विंशत्याः विंशतेः त्रिंशतः
स०	अष्टसु, अष्टासु	नवसु	दशसु	विंशत्याम्, विंशतौ त्रिंशति

१००० सहस्र (नपुं०) करोड़-कोटि (स्त्री०) नील-शङ्कु (पुं०)
१०००० अयुत (न०) दस करोड़-अर्बुद (न०) दसनील-जलधि (पुं०)
१००००० लक्ष (न०) अरब-अब्ज (न०) पद्म-अन्त्य (न०)
लक्षा (स्त्री०) दस अरब-खर्व (पुं०,न०) दस पद्म- मध्य (न०)
दस लाख-प्रयुत (न०) खरब-निखर्व (पुं० न०) शङ्ख-परार्ध (न०)

दशम अध्याय

धातु रूप[1] (Conjugation of Verbs)

(१) गण (Class)—संस्कृत में सभी धातुओं (Roots) को १० भागों में विभक्त किया गया है जिन्हें गण (समूह) के नाम से कहा जाता है। धातुरूपों में होने वाली प्रक्रिया की समानता के आधार पर धातुओं को गणों में विभक्त किया गया है। गणों का नामकरण उन गणों के प्रारम्भ में आई हुई प्रथम धातु के आधार पर किया गया है। जैसे[2]—१. भ्वादि (भू), २. अदादि (अद्), ३. जुहोत्यादि (हु), ४. दिवादि (दिवु), ५. स्वादि (षुञ्), ६. तुदादि (तुद्), ७. रुधादि (रुधिर्), ८. तनादि (तनु), ९. क्रयादि (डुक्रीञ्) और १०. चुरादि (चुर्)। प्रथम गण, द्वितीय गण आदि के रूप में भी इन गणों का क्रमशः व्यवहार होता है।

(२) विकरण (Peculiar Modification)—गण-भेद बतलाने वाले प्रत्ययों को विकरण कहते हैं। ये विकरण धातु और उसमें जुड़ने वाले 'तिङ्' प्रत्ययों के मध्य में जुड़ते हैं। गणों में जुड़ने वाले विकरण इस प्रकार हैं—

गण-नाम	विकरण[3]	कार्य (धातु पर प्रभाव)	उदाहरण
१. भ्वादि	अ (शप्)	गुण	भू + अ + ति = भवति
२. अदादि	× (शप् का लोप)	×	हन् + ति = हन्ति
३. जुहोत्यादि	"	द्वित्व	दा + ति = ददाति
४. दिवादि	य (श्यन्)	गुणाभाव	नृत् + य + ति = नृत्यति
५. स्वादि	नु[1] (श्नु)	"	चि + नु + ति = चिनोति
६. तुदादि	अ (श)	"	स्पृश् + अ + ति = स्पृशति
७. रुधादि	न (श्नम्)	"	भु(न)ज् + ति = भुनक्ति
८. तनादि	उ[2]	गुण	कृ + उ + ति = करोति
९. क्रयादि	ना[3] (श्ना)	गुणाभाव	क्री + ना + ति = क्रीणाति
१०. चुरादि	अ (शप्)	गुण	चोरि[4] + अ + ति = चोरयति

विकरण की दृष्टि से गण-विभाजन[5]

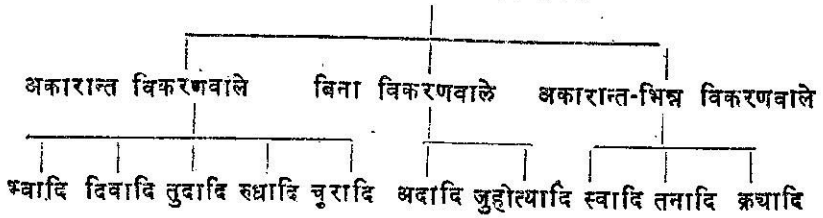

(३) लकार (Tenses and Moods)—विभिन्न कालों (Tenses) तथा आज्ञा, निमन्त्रण आदि विविध अर्थ-विशेषों (Moods) को प्रकट करने के लिए संस्कृत में १०[6] लकारों का प्रयोग किया जाता है।

	लकार	कार्य
१.	लट्	वर्तमान काल (*Present Tense*)
२.	लङ्	अनद्यतन भूतकाल (Imperfect)
३.	लिट्	परोक्ष भूतकाल (*Perfect*)
४.	लुङ्	सामान्य भूतकाल (Aorist)

---

१. धातु—भू, कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं। इनसे 'तिङ्' प्रत्यय होने पर 'भवति', 'करोति' आदि क्रियायें (तिङन्त) बनती हैं तथा 'कृत्' प्रत्यय जुड़ने पर 'भावकः', 'कारकः' आदि संज्ञायें (कृदन्त) बनती हैं। कुछ वैयाकरणों का कहना है कि संज्ञा आदि समस्त शब्द-भण्डार धातुओं से प्रत्यय जुड़कर बना है। अतः इस दृष्टि से धातु शब्द का अर्थ है—'शब्द-योनि' (शब्दों की उत्पत्ति का मूल स्रोत)। धातुयें दो तरह की हैं—(१) मूल-धातुयें (Primitive Roots) और (२) सनाद्यन्त आदि मिश्र-धातुयें (Derivative Roots)। मूल धातुएँ करीब २ हजार हैं।

२. गणों के नाम क्रमशः याद रखने के लिए निम्न पद्य स्मरणीय है—
भ्वाद्यदादिजुहोत्यादि-दिवादिस्वादयस्तथा।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादिक्रयादिरेव च।
चुरादिश्चेति धातूनां गणा दश समीरिताः॥

३. ये विकरण केवल सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्) में ही जुड़ते हैं।

१. परस्मैपद में लट्, लोट्, लङ् के एकवचन में 'नो' होता है।

२. परस्मैपद में लट्, लोट्, लङ् के एकवचन में 'ओ' होता है।

३. 'ना' को भी कभी-कभी 'नी' अथवा 'न्' हो जाता है।

४. 'चुर्' धातु से 'णिच्' (अब) प्रत्यय करने पर 'चोरि' धातु बनती है। चुरादि-गणीय सभी धातुओं में ऐसा होता है। इसके बाद धातु से विकरण होगा तथा 'भ्वादिगण' की तरह तज्जन्य प्रभाव होगा।

५. यह विभाजन रूपों की समता को दृष्टि में रखकर किया गया है।

६. ग्यारहवाँ 'लेट्' लकार (Subjunctive Mood) है। इसका प्रयोग वेद में मिलता है।

५.	लुट्	अनद्यतन भविष्यत्काल (*Periphrastic or Ist Future*)
६.	लृट्	सामान्य भविष्यत्काल (IInd Future)
७.	लोट्	आज्ञा, आशीर्वाद आदि (Imperative)
८.	विधिलिङ्	विधि, निमन्त्रण आदि (Optative or Potential)
९.	आशीर्लिङ्	आशीर्वाद (Benedictive)
१०.	लृङ्	क्रियातिपत्ति (Conditional)

विशेष—प्रारम्भ के ६ लकार 'काल' के और शेष 'अर्थविशेष' के बोधक हैं।

विकरण के प्रभाव की दृष्टि से लकारों का विभाजन

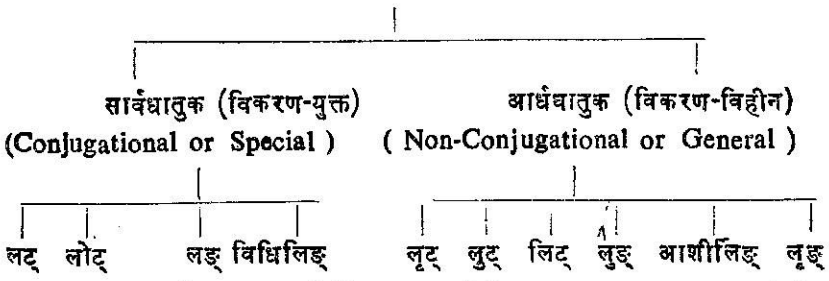

विशेष—सार्वधातुक लकारों में कुछ धातुओं के मूल रूप एकदम बदल जाते हैं। जैसे— गम् > गच्छ्। पा > पिब्। घ्रा > जिघ्र्। स्था > तिष्ठ्। दृश् > पश्य्। सृ > धौ (धावति)। सद् > सीद् (सीदति)।

(४) **तिङ् प्रत्यय**—धातुओं में जुड़ने वाले और लकारों के स्थान में होने वाले 'तिङ्' प्रत्यय १८ हैं। ये परस्मैपद और आत्मनेपद[1] के भेद से दो भागों में विभक्त हैं—

'परस्मैपद' के प्रत्यय				'आत्मनेपद' के प्रत्यय			
एकवचन	द्विवचन	बहुवचन		एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
तिप्	तस्	झि	प्र० पु०	त	आताम्	झ	

१. संस्कृत व्याकरण में **'परस्मैपद'** का अर्थ है—'वह पद जो दूसरे के लिए हो' अर्थात् क्रिया का फल परगामी (कर्त्ता से भिन्न के लिए) हो। जैसे—सः पचति = वह दूसरों के लिए पकाता है। **'आत्मनेपद'** का अर्थ है—'वह पद जो अपने लिए हो' अर्थात् क्रिया का फल काम करने वाले कर्ता को ही प्राप्त हो (कर्तृगामी)। जैसे—सः पचते = वह अपने लिए पकाता है। परन्तु व्यवहार में ऐसा भेद दिखलाई नहीं पड़ता है। आजकल सुगमता की दृष्टि से प्रायः सर्वत्र परस्मैपदी धातुओं का ही प्रयोग अधिक प्रचलित है।

सिप्	थस्	थ	म० पु०	थास्	आथाम्	ध्वम्
मिप्	वस्	मस्	उ० पु०	इट्	वहि	महिङ्

विशेष—धातुओं में जुड़ने वाले इन 'तिङ्' प्रत्ययों के आधार से धातुओं को तीन भागों में विभक्त किया जाता है[1]—१. **परस्मैपदी धातुएँ** (जैसे—भू, गम्, पठ् आदि। इनके रूप केवल परस्मैपद के होते हैं), २. **आत्मनेपदी धातुएँ** (जैसे—वृध्, लभ्, सेव्, वृत् आदि। इनके रूप केवल आत्मनेपद के होते हैं) और ३. **उभयपदी धातुएँ** (जैसे—नी, दा, कथ्। इनके रूप दोनों पदों वाले होते हैं)।

(५) **लकारों में 'तिङ्' प्रत्ययों के परिवर्तित रूप—**

परस्मैपद

लट् लकार

गण (१, ४, ६, १०)			गण (२, ३, ५, ७, ८, ९)			
एक०	द्वि०	बहु०	एक०	द्वि०	बहु०	
अति	अतः	अन्ति	प्र० पु० ति	तः	अन्ति (अति)	

१. **धातुओं के विभाजन के दो अन्य प्रकार**—(१) **सकर्मक धातुएँ और अकर्मक धातुएँ**। जिस धातु का फल तथा व्यापार अलग-अलग अधिकरण में रहे उसे सकर्मक (कर्म-सहित) धातु कहते हैं और जिसका फल तथा व्यापार एक ही अधिकरण में रहे उसे अकर्मक (कर्म-रहित) धातु कहते हैं। 'फलव्यधिकरणवाचकत्वम् सकर्मकत्वम्। फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वम् अकर्मकत्वम्' जैसे—रामः ग्रामं गच्छति। यहाँ गमनरूप व्यापार 'राम' में है और उसका फल 'ग्राम-संयोग' (ग्राम) में है। परन्तु 'सीता हसति' में 'हँसना' रूप व्यापार और उसका फल दोनों एक ही अधिकरण 'सीता' में हैं। अतः 'गच्छति' क्रिया 'सकर्मक' हुई और 'हसति' क्रिया 'अकर्मक'। लजाना, रहना, ठहरना, जागना, बढ़ना, घटना, डरना, जीना, मरना, सोना, खेलना, चाहना, और चमकना इन अर्थों वाली धातुयें अकर्मक होती हैं (देखिए, पृ० ७०, टि० १)। कभी-कभी अकर्मक धातुएँ भी सकर्मक हो जाती हैं और सकर्मक धातुयें भी अकर्मक हो जाती हैं। (२) **सेट्, अनिट् और वेट्**—लृट्, लुट्, और लृङ् लकारों में धातु और प्रत्यय के मध्य में 'इ' (इट्) के जुड़ने और न जुड़ने के आधार से धातुओं के ये तीन भेद हैं। **सेट्** (इट्-सहित। जैसे—गम् + इ + स्यति = गमिष्यति। भविष्यति, गमिता, भविता आदि); **अनिट्** (इट्-रहित। जैसे—दा + स्यति = दास्यति। जि + स्यति = जेष्यति) और **वेट्** (वैकल्पिक इट्। जैसे—गुप् + स्यति = गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति)।

असि	अथः	अथ	म० पु०	सि	थः	थ
आमि	आवः	आमः	उ० पु०	मि	वः	मः

लङ् लकार (धातु के पहले 'अ' जुड़ेगा)

अत्	अताम्	अन्	प्र० पु०	त	ताम्	अन्
अः	अतम्	अत	म० पु०	:	तम्	त
अम्	आव	आम	उ० पु०	अम्	व	म

लृट् लकार ('सेट्' में 'इ' जुड़ेगा)

(इ)स्यति	(इ) स्यतः	(इ) स्यन्ति	प्र० पु०	(इ)स्यति	(इ)स्यतः	(इ)स्यन्ति
(इ) स्यसि	(इ) स्यथः	(इ) स्यथ	म० पु०	(इ)स्यसि	(इ)स्यथः	(इ)स्यथ
(इ)स्यामि	(इ) स्यावः	(इ) स्यामः	उ० पु०	(इ)स्यामि	(इ)स्यावः	(इ)स्यामः

लोट् लकार

अतु, अतात्	अताम्	अन्तु	प्र० पु०	तु	ताम्	अन्तु
अ, तात्	अतम्	अत	म० पु०	हि	तम्	त
आनि	आव	आम	उ० पु०	आनि	आव	आम

विधिलिङ् लकार

एत्	एताम्	एयुः	प्र० पु०	यात्	याताम्	युः
एः	एतम्	एत	म० पु०	याः	यातम्	यात
एयम्	एव	एम	उ० पु०	याम्	याव	याम

आत्मनेपद

लट् लकार

अते	एते	अन्ते	प्र० पु०	ते	आते	अते
असे	एथे	अध्वे	म० पु०	से	आथे	ध्वे
ए	आवहे	आमहे	उ० पु०	ए	वहे	महे

लङ् लकार (धातु से पहले 'अ' जुड़ेगा)

अत	एताम्	अन्त	प्र० पु०	त	आताम्	अत
अथाः	एथाम्	अध्वम्	म० पु०	थाः	आथाम्	ध्वम्
ए	आवहि	आमहि	उ० पु०	इ	वहि	महि

लृट् लकार ('सेट्' में 'इ' जुड़ेगा)

(इ)स्यते	(इ)स्येते	(इ)स्यन्ते	प्र० पु०	(इ)स्यते	(इ)स्येते	(इ)स्यन्ते

(इ)स्यसे	(इ)स्येथे	(इ)स्यध्वे	म० पु०	(इ)स्यसे	(इ)स्येथे	(इ)स्यध्वे
(इ)स्ये	(इ)स्यावहे	(इ)स्यामहे	उ० पु०	(इ)स्ये	(इ)स्यावहे	(इ)स्यामहे

लोट् लकार

अताम्	एताम्	अन्ताम्	प्र० पु०	ताम्	आताम्	अताम्
अस्व	एथाम्	अध्वम्	म० पु०	स्व	आथाम्	ध्वम्
ऐ	आवहै	आमहै	उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

विधिलिङ् लकार

एत	एताम्	एरन्	प्र० पु०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
एथाः	एयाथाम्	एध्वम्	म० पु०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
एय	एवहि	एमहि	उ० पु०	ईय	ईवहि	ईमहि

(१) भ्वादि गण[1]

भू[2] (होना) प०	अक०, सेट्		लट्	पठ्[2] (पढ़ना) प०	सक०, सेट्	
भवति	भवतः	भवन्ति	प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
भवसि	भवथः	भवथ	म० पु०	पठसि	पठथः	पठथ
भवामि	भवावः	भवामः	उ० पु०	पठामि	पठावः	पठामः

---

१. इस गण में १०३५ धातयें हैं जो आधे से भी अधिक हैं। इस गण की प्रमुख विशेषतायें हैं—(१) धातु और प्रत्यय के बीच में 'अ' (शप्) विकरण जुड़ता है। (२) धातु के अंतिम स्वर (इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ) को तथा उपधा के स्वर को गुण (ए, ओ, अर्) होता है। (३) 'ए' को 'अय्' और 'ओ' को 'अव्' आदेश होता है।

२. 'भू' और 'पठ्' धातुओं के अवशिष्ट लकारों के रूप—

लिट्

बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम

लुङ्

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	प्र०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः
अभूः	अभूतम्	अभूत	म०	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
अभूवम्	अभूव	अभूम	उ०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

लङ्

अभवत्	अभवताम्	अभवन्	प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
अभवः	अभवतम्	अभवत	म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
अभवम्	अभवाव	अभवाम	उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम

लृट्

भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ	म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	उ० म०	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

लोट्

भवतु, भवतात्	भवताम्	भवन्तु	प्र० पु०	पठतु, पठतात्	पठताम्	पठन्तु
भव, भवतात्	भवतम्	भवत	म० पु०	पठ, पठतात्	पठतम्	पठत
भवानि	भवाव	भवाम	उ० पु०	पठानि	पठाव	पठाम

विधि लिङ्

भवेत्	भवेताम्	भवेयुः	प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
भवेः	भवेतम्	भवेत	म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
भवेयम्	भवेव	भवेम	उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

लुट्

भविता	भवितारौ	भवितारः	प्र०	पठिता	पठितारौ	पठितारः
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ	म०	पठितासि	पठितास्थः	पठितास्थ
भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः	उ०	पठितास्मि	पठितास्वः	पठितास्मः

आशीर्लिङ्

भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः	प्र०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त	म०	पठ्याः	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म	उ०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

लृङ्

अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्	प्र०	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत	म०	अपठिष्यः	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम	उ०	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

गम्[1] (जाना) प०, सक०, अनिट् **चल्**[1] (चलना, हिलना) प०, सक०, सेट्
('गम्' को 'गच्छ्' सार्वधातुक में)

लट्

गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति	प्र०	चलति	चलतः	चलन्ति
गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ	म०	चलसि	चलथः	चलथ
गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः	उ०	चलामि	चलावः	चलामः

लङ्

अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्	प्र०	अचलत्	अचलताम्	अचलन्
अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत	म०	अचलः	अचलतम्	अचलत
अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम	उ०	अचलम्	अचलाव	अचलाम

लृट्

गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति	प्र०	चलिष्यति	चलिष्यतः	चलिष्यन्ति
गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ	म०	चलिष्यसि	चलिष्यथः	चलिष्यथ
गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः	उ०	चलिष्यामि	चलिष्यावः	चलिष्यामः

लोट्

गच्छतु-तात्	गच्छताम्	गच्छन्तु	प्र०	चलतु-तात्	चलताम्	चलन्तु
गच्छ-तात्	गच्छतम्	गच्छत	म०	चल-तात्	चलतम्	चलत
गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम	उ०	चलानि	चलाव	चलाम

विधिलिङ्

गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः	प्र०	चलेत्	चलेताम्	चलेयुः
गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत	म०	चलेः	चलेतम्	चलेत
गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम	उ०	चलेयम्	चलेव	चलेम

---

१. 'गम्' और चल् धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

जगाम	जग्मतुः	जग्मुः	लिट्	चचाल	चेलतुः	चेलुः
अगमत्	अगमताम्	अगमन्	लुङ्	अचालीत्	अचालिष्टाम्	अचालिषुः
गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः	लुट्	चलिता	चलितारौ	चलितारः
गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः	आ० लिङ्	चल्यात्	चल्यास्ताम्	चल्यासुः
अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्	लृङ्	अचलिष्यत्	अचलिष्यताम्	अचलिष्यन्

श्रु[1] (सुनना) प० सक०, अनिट् **दृश्**[1] (देखना) प०, सक०, अनिट्
('श्रु' को 'श्रृ' और 'नु' विकरण ('दृश्' को 'पश्य्' सार्वधातुक लकारों में)
सार्वधातुक लकारों में)

लट्

शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	प्र०	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	म०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
शृणोमि	शृणुवः-ण्वः	शृणुमः-ण्मः	उ०	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लङ्

अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्	प्र०	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत	म०	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
अशृणवम्	अशृणुव-ण्व	अशृणुम-ण्म	उ०	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

लोट्

शृणोतु-तात्	शृणुताम्	शृण्वन्तु	प्र०	पश्यतु-तात्	पश्यताम्	पश्यन्तु
शृणु-तात्	शृणुतम्	शृणुत	म०	पश्य-तात्	पश्यतम्	पश्यत
शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम	उ०	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

विधिलिङ्

शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः	प्र०	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात	म०	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम	उ०	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

लृट्

श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति	प्र०	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ	म०	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः	उ०	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

१. 'श्रु' और 'दृश्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः	लिट्	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः	लुङ्	अद्राक्षीत्, अदर्शत्	अद्राष्टाम् अदर्शताम्	अद्राक्षुः अदर्शन्
श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः	लुट्	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः	आ० लिङ्	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्	लृङ्	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्

स्था[1] (ठहरना) प०, अक०, अनिट् **वद्**[1] (कहना) प०, सक०, सेट्
('स्था' को 'तिष्ठ्' सार्वधातुक लकारों में)

लट्

तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति	प्र०	वदति	वदतः	वदन्ति
तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ	म०	वदसि	वदथः	वदथ
तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः	उ०	वदामि	वदावः	वदामः

लङ्

अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्	प्र०	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत	म०	अवदः	अवदतम्	अवदत
अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम	उ०	अवदम्	अवदाव	अवदाम

लृट्

स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति	प्र०	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ	म०	वदिष्यसि	वदिष्यथः	वदिष्यथ
स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः	उ०	वदिष्यामि	वदिष्यावः	वदिष्यामः

लोट्

तिष्ठतु-तात्	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु	प्र०	वदतु, वदतात्	वदताम्	वदन्तु
तिष्ठ-तात्	तिष्ठतम्	तिष्ठत	म०	वद, वदतात्	वदतम्	वदत
तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम	उ०	वदानि	वदाव	वदाम

विधिलिङ्

तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः	प्र०	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत	म०	वदेः	वदेतम्	वदेत
तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम	उ०	वदेयम्	वदेव	वदेम

गद्[2] (स्पष्ट बोलना) प०, स०, सेट् **'णद्'>नद्**[2] (अस्फुट बोलना) प०, अ०, सेट्

१. 'स्था' और 'वद्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः	लिट्	उवाद	ऊदतुः	ऊदुः
अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः	लुङ्	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः	लुट्	वदिता	वदितारौ	वदितारः
स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः	आ० लिङ्	उद्यात्	उद्यास्ताम्	उद्यासुः
अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्	लृङ्	अवदिष्यत्	अवदिष्यताम्	अवदिष्यन्

२. 'गद्' और 'णद्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

लट्

गदति	गदतः	गदन्ति	प्र०	नदति	नदतः	नदन्ति
गदसि	गदथः	गदथ	म०	नदसि	नदथः	नदथ
गदामि	गदावः	गदामः	उ०	नदामि	नदावः	नदामः

लङ्

अगदत्	अगदताम्	अगदन्	प्र०	अनदत्	अनदताम्	अनदन्
अगदः	अगदतम्	अगदत	म०	अनदः	अनदतम्	अनदत
अगदम्	अगदाव	अगदाम	उ०	अनदम्	अनदाव	अनदाम

लृट्

गदिष्यति	गदिष्यतः	गदिष्यन्ति	प्र०	नदिष्यति	नदिष्यतः	नदिष्यन्ति
गदिष्यसि	गदिष्यथः	गदिष्यथ	म०	नदिष्यसि	नदिष्यथः	नदिष्यथ
गदिष्यामि	गदिष्यावः	गदिष्यामः	उ०	नदिष्यामि	नदिष्यावः	नदिष्यामः

लोट्

गदतु-तात्	गदताम्	गदन्तु	प्र०	नदतु-तात्	नदताम्	नदन्तु
गद-तात्	गदतम्	गदत	म०	नद-तात्	नदतम्	नदत
गदानि	गदाव	गदाम	उ०	नदानि	नदाव	नदाम

विधिलिङ्

गदेत्	गदेताम्	गदेयुः	प्र०	नदेत्	नदेताम्	नदेयुः
गदेः	गदेतम्	गदेत	म०	नदेः	नदेतम्	नदेत
गदेयम्	गदेव	गदेम	उ०	नदेयम्	नदेव	नदेम

अत्[1] (हमेशा चलना) प०, स०, सेट् **पा**[1] (पीना) प०, स०, अनिट् ('पा' को 'पिब्' सार्वधातुक लकारों में)

जगाद	जगदतुः	जगदुः	लिट्	ननाद	नेदतुः	नेदुः
{अगादीत् / अगंदीत्}	अगादिष्टाम् / अगदिष्टाम्	अगादिषुः / अगदिषुः	लुङ्	{अनादीत् / अनदीत्}	अनादिष्टाम् / अनदिष्टाम्	{अनादिषुः / अनदिषुः}
गदिता	गदितारौ	गदितारः	लुट्	नदिता	नदितारौ	नदितारः
गद्यात्	गद्यास्ताम्	गद्यासुः	आ० लिङ्	नद्यात्	नद्यास्ताम्	नद्यासुः
अगदिष्यत्	अगदिष्यताम्	अगदिष्यन्	लृङ्	अनदिष्यत्	अनदिष्यताम्	अनदिष्यन्

१. 'अत्' और 'पा' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

लट्

अतति	अततः	अतन्ति	प्र०	पिबति	पिबतः	पिबन्ति
अतसि	अतथः	अतथ	म०	पिबसि	पिबथः	पिबथ
अतामि	अतावः	अतामः	उ०	पिबामि	पिबावः	पिबामः

लङ्

आतत्	आतताम्	आतन्	प्र०	अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्
आतः	आततम्	आतत	म०	अपिबः	अपिबतम्	अपिबत
आतम्	आताव	आताम	उ०	अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम

लृट्

अतिष्यति	अतिष्यतः	अतिष्यन्ति	प्र०	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
अतिष्यसि	अतिष्यथः	अतिष्यथ	म०	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
अतिष्यामि	अतिष्यावः	अतिष्यामः	उ०	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

लोट्

अततु-तात्	अतताम्	अतन्तु	प्र०	पिबतु-तात्	पिबताम्	पिबन्तु
अत-तात्	अततम्	अतत	म०	पिब-तात्	पिबतम्	पिबत
अतानि	अताव	अताम	उ०	पिबानि	पिबाव	पिबाम

विधिलिङ्

अतेत्	अतेताम्	अतेयुः	प्र०	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
अतेः	अतेतम्	अतेत	म०	पिबेः	पिबेतम्	पिबेत
अतेयम्	अतेव	अतेम	उ०	पिबेयम्	पिबेव	पिबेम

एध्[1] (बढ़ना) आ०, अ०, सेट् **वृतु**[1] (रहना) आ०, अ०, सेट्

लट्

एधते	एधेते	एधन्ते	प्र०	वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
एधसे	एधेथे	एधध्वे	म०	वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
एधे	एधावहे	एधामहे	उ०	वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे

आत	आततुः	आतुः	लिट्	पपौ	पपतुः	पपुः
आतीत्	आतिष्टाम्	आतिषुः	लुङ्	अपात्	अपाताम्	अपुः
अतिता	अतितारौ	अतितारः	लृट्	पाता	पातारौ	पातारः
अत्यात्	अत्यास्ताम्	अत्यासुः	आ० लिङ्	पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः
अतिष्यत्	अतिष्यताम्	अतिष्यन्	लृङ्	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्

१. 'एध्' और 'वृतु' धातुओं के शेष लकारों के रूप—

लङ्

ऐवत	ऐधेताम्	ऐधन्त	प्र०	अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त
ऐधथाः	ऐधेथाम्	ऐधध्वम्	म०	अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्
ऐधे	ऐधावहि	ऐधामहि	उ०	अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि

लृट् (विकल्प से 'वर्त्स्यति' आदि प० रूप बनेंगे)

एधिष्यते	एधिष्येते	एधिष्यन्ते	प्र०	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
एधिष्यसे	एधिष्येथे	एधिष्यध्वे	म०	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यध्वे
एधिष्ये	एधिष्यावहे	एधिष्यामहे	उ०	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे

लोट्

एधताम्	एधेताम्	एधन्ताम्	प्र०	वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्
एधस्व	एधेथाम्	एधध्वम्	म०	वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्
एधै	एधावहै	एधामहै	उ०	वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै

विधिलिङ्

एधेत	एधेयाताम्	एधेरन्	प्र०	वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्
एधेथाः	एधेयाथाम्	एधेध्वम्	म०	वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्
एधेय	एधेवहि	एधेमहि	उ०	वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि

('एधयामास' एधाम्बभूव आदि रूप भी होंगे) लिट्

एधाञ्चक्रे	एधाञ्चक्राते	एधाञ्चक्रिरे	प्र०	ववृते	ववृताते	ववृतिरे
एधाञ्चकृषे	एधाञ्चक्राथे	एधाञ्चकृढ्वे	म०	ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिढ्वे
एधाञ्चक्रे	एधाञ्चकृवहे	एधाञ्चकृमहे	उ०	ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे

लुङ् (विकल्प से 'अवृतत्' आदि प० रूप बनेंगे)

ऐधिष्ट	ऐधिषाताम्	ऐधिषत	प्र०	अवर्तिष्ट	अवर्तिषाताम्	अवर्तिषत
ऐधिष्ठाः	ऐधिषाथाम्	ऐधिढ्वम्	म०	अवर्तिष्ठाः	अवर्तिषाथाम्	अवर्तिढ्वम्
ऐधिषि	ऐधिष्वहि	ऐधिष्महि	उ०	अवर्तिषि	अवर्तिष्वहि	अवर्तिष्महि

लुट्

एधिता	एधितारौ	एधितारः	प्र०	वर्तिता	वर्तितारौ	वर्तितारः
एधितासे	एधितासाथे	एधिताध्वे	म०	वर्तितासे	वर्तितासाथे	वर्तिताध्वे
एधिताहे	एधितास्वहे	एधितास्महे	उ०	वर्तिताहे	वर्तितास्वहे	वर्तितास्महे

कमु[1] (इच्छा करना) आ०, स०, सेट्

लट्

कामयते	कामयेते	कामयन्ते	प्र०	अकामयत	अकामयेताम्	अकामयन्त
कामयसे	कामयेथे	कामयध्वे	म०	अकामयथाः	अकामयेथाम्	अकामयध्वम्
कामये	कामयावहे	कामयामहे	उ०	अकामये	अकामयावहि	अकामयामहि

लृट्

कामयिष्यते	कामयिष्येते	कामयिष्यन्ते	प्र०	कमिष्यते	कमिष्येते	कमिष्यन्ते
कामयिष्यसे	कामयिष्येथे	कामयिष्यध्वे	म०	कमिष्यसे	कमिष्येथे	कमिष्यध्वे
कामयिष्ये	कामयिष्यावहे	कामयिष्यामहे	उ०	कमिष्ये	कमिष्यावहे	कमिष्यामहे

लृट् (विकल्प से)

लोट्

कामयताम्	कामयेताम्	कामयन्ताम्	प्र०	कामयेत	कामयेयाताम्	कामयेरन्
कामयस्व	कामयेथाम्	कामयध्वम्	म०	कामयेथाः	कामयेयाथाम्	कामयेध्वम्
कामयै	कामयावहै	कामयामहै	उ०	कामयेय	कामयेवहि	कामयेमहि

विधिलिङ्

आशीर्लिङ्

एधिषीष्ट	एधिषीयास्ताम्	एधिषीरन्	प्र०	वर्तिषीष्ट	वर्तिषीयास्ताम्	वर्तिषीरन्
एधिष्ठाः	एधिषीयास्थाम्	एधिषीढ्वम्	म०	वर्तिषीष्ठाः	वर्तिषीयास्थाम्	वर्तिषीढ्वम्
एधिषीय	एधिषीवहि	एधिषीमहि	उ०	वर्तिषीय	वर्तिषीवहि	वर्तिषीमहि

लृङ् (विकल्प से 'अवर्त्स्यत्' आदि प० रूप बनेंगे)

ऐधिष्यत	ऐधिष्येताम्	ऐधिष्यन्त	प्र०	अवर्तिष्यत	अवर्तिष्येताम्	अवर्तिष्यन्त
ऐधिष्यथाः	ऐधिष्येथाम्	ऐधिष्यध्वम्	म०	अवर्तिष्यथाः	अवर्तिष्येथाम्	अवर्तिष्यध्वम्
ऐधिष्ये	ऐधिष्यावहि	ऐधिष्यामहि	उ०	अवर्तिष्ये	अवर्तिष्यावहि	अवर्तिष्यामहि

१. 'कमु' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के (दो-दो) रूप—

लिट्—कामयाञ्चक्रे कामयाञ्चक्राते कामयाञ्चक्रिरे। चकमे चकमाते चकमिरे।
लुङ्—अचीकमत अचीकमेताम् अचीकमन्त। अचकमत अचकमेताम् अचकमन्त।
लुट्—कामयिता कामयितारौ कामयितारः। कमिता कमितारौ कमितारः।
आ०लिङ्—कामयिषीष्ट कामयिषीयास्ताम् ०षीरन्। कमिषीष्ट ०षीयास्ताम् ०षीरन्।
लृङ्—अकामयिष्यत् ०यिष्येताम् ०यिष्यन्त। अकमिष्यत अकमिष्येताम् अकमिष्यन्त।

नी[1] (ले जाना) उ०, सक०, अनिट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
			लट्			
नयति	नयतः	नयन्ति	प्र०	नयते	नयेते	नयन्ते
नयसि	नयथः	नयथ	म०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
नयामि	नयावः	नयामः	उ०	नये	नयावहे	नयामहे
			लङ्			
अनयत्	अनयताम्	अनयन्	प्र०	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
अनयः	अनयतम्	अनयत	म०	अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्
अनयम्	अनयाव	अनयाम	उ०	अनये	अनयावहि	अनयामहि
			लुट्			
नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति	प्र०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ	म०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः	उ०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे
			लोट्			
नयतु-तात्	नयताम्	नयन्तु	प्र०	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
नय-तात्	नयतम्	नयत	म०	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
नयानि	नयाव	नयाम	उ०	नयै	नयावहै	नयामहै
			विधिलिङ्			
नयेत्	नयेताम्	नयेयुः	प्र०	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
नयेः	नयेतम्	नयेत	म०	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
नयेयम्	नयेव	नयेम	उ०	नयेय	नयेवहि	नयेमहि

१. 'नी' धातु के शेष लकारों (दोनों पदों) में प्र० पु० के रूप—

निनाय	निन्यतुः	निन्युः	लिट्	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः	लुङ्	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
नेता	नेतारौ	नेतारः	लुट्	नेता	नेतारौ	नेतारः
नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः	आ० लिङ्	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्	लृङ्	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त

श्रिञ्[1] > श्रि (सेवा करना, सहारा लेना) उ०, सक०, सेट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
			लट्			
श्रयति	श्रयतः	श्रयन्ति	प्र०	श्रयते	श्रयेते	श्रयन्ते
श्रयसि	श्रयथः	श्रयथ	म०	श्रयसे	श्रयेथे	श्रयध्वे
श्रयामि	श्रयावः	श्रयामः	उ०	श्रये	श्रयावहे	श्रयामहे
			लङ्			
अश्रयत्	अश्रयताम्	अश्रयन्	प्र०	अश्रयत	अश्रयेताम्	अश्रयन्त
अश्रयः	अश्रयतम्	अश्रयत	म०	अश्रयथाः	अश्रयेथाम्	अश्रयध्वम्
अश्रयम्	अश्रयाव	अश्रयाम	उ०	अश्रये	अश्रयावहि	अश्रयामहि
			लुट्			
श्रयिष्यति	श्रयिष्यतः	श्रयिष्यन्ति	प्र०	श्रयिष्यते	श्रयिष्येते	श्रयिष्यन्ते
श्रयिष्यसि	श्रयिष्यथः	श्रयिष्यथ	म०	श्रयिष्यसे	श्रयिष्येथे	श्रयिष्यध्वे
श्रयिष्यामि	श्रयिष्यावः	श्रयिष्यामः	उ०	श्रयिष्ये	श्रयिष्यावहे	श्रयिष्यामहे
			लोट्			
श्रयतु-तात्	श्रयताम्	श्रयन्तु	प्र०	श्रयताम्	श्रयेताम्	श्रयन्ताम्
श्रय-तात्	श्रयतम्	श्रयत	म०	श्रयस्व	श्रयेथाम्	श्रयध्वम्
श्रयाणि	श्रयाव	श्रयाम	उ०	श्रयै	श्रयावहै	श्रयामहै
			विधिलिङ्			
श्रयेत्	श्रयेताम्	श्रयेयुः	प्र०	श्रयेत	श्रयेयाताम्	श्रयेरन्
श्रयेः	श्रयेतम्	श्रयेत	म०	श्रयेथाः	श्रयेयाथाम्	श्रयेध्वम्
श्रयेयम्	श्रयेव	श्रयेम	उ०	श्रयेय	श्रयेवहि	श्रयेमहि

'यज्'[2] (यज्ञ या पूजा करना) उ०, सक०, अनिट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
			लट्			
यजति	यजतः	यजन्ति	प्र०	यजते	यजेते	यजन्ते

१. 'श्रिञ्' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के दोनों पदों में रूप—

शिश्राय	शिश्रियतुः	शिश्रियुः	लिट्	शिश्रिये	शिश्रियाते	शिश्रियिरे
अशिश्रियत्	अशिश्रियताम्	अशिश्रियन्	लुङ्	अशिश्रियत	अशिश्रियेताम्	अशिश्रियन्त
श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः	लुट्	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
श्रीयात्	श्रीयास्ताम्	श्रीयासुः	आ० लिङ्	श्रयिषीष्ट	श्रयिषीयास्ताम्	श्रयिषीरन्
अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यताम्	अश्रयिष्यन्	लृङ्	अश्रयिष्यत	अश्रयिष्येताम्	अश्रयिष्यन्त

२. 'यज्' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के दोनों पदों के रूप—

इयाज	ईजतुः	ईजुः	लिट्	ईजे	ईजाते	ईजिरे
अयाक्षीत्	अयाष्टाम्	अयाक्षुः	लुङ्	अयष्ट	अयक्षाताम्	अयक्षत

यजसि	यजथः	यजथ	म०	यजसे	यजेथे	यजध्वे
यजामि	यजावः	यजामः	उ०	यजे	यजावहे	यजामहे

लङ्

अयजत्	अयजताम्	अयजन्	प्र०	अयजत	अयजेताम्	अयजन्त
अयजः	अयजतम्	अयजत	म०	अयजथाः	अयजेथाम्	अयजध्वम्
अयजम्	अयजाव	अयजाम	उ०	अयजे	अयजावहि	अयजामहि

लृट्

यक्ष्यति	यक्ष्यतः	यक्ष्यन्ति	प्र०	यक्ष्यते	यक्ष्येते	यक्ष्यन्ते
यक्ष्यसि	यक्ष्यथः	यक्ष्यथ	म०	यक्ष्यसे	यक्ष्येथे	यक्ष्यध्वे
यक्ष्यामि	यक्ष्यावः	यक्ष्यामः	उ०	यक्ष्ये	यक्ष्यावहे	यक्ष्यामहे

लोट्

यजतु-तात्	यजताम्	यजन्तु	प्र०	यजताम्	यजेताम्	यजन्ताम्
यज-तात्	यजतम्	यजत	म०	यजस्व	यजेथाम्	यजध्वम्
यजानि	यजाव	यजाम	उ०	यजै	यजावहै	यजामहै

विधिलिङ्

यजेत्	यजेताम्	यजेयुः	प्र०	यजेत	यजेयाताम्	यजेरन्
यजेः	यजेतम्	यजेत	म०	यजेथाः	यजेयाथाम्	यजेध्वम्
यजेयम्	यजेव	यजेम	उ०	यजेय	यजेवहि	यजेमहि

(२) अदादि गण[1]

यष्टा	यष्टारौ	यष्टारः	लुट्	यष्टा	यष्टारौ	यष्टारः
इज्यात्	इज्यास्ताम्	इज्यासुः	आ०लिङ्	यक्षीष्ट	यक्षीयास्ताम्	यक्षीरन्
अयक्ष्यत्	अयक्ष्यताम्	अयक्ष्यन्	लृङ्	अयक्ष्यत	अयक्ष्येताम्	अयक्ष्यन्त

१. इस गण में ७२ धातुयें हैं। इसमें विकरण का लोप हो जाता है।

अदादिगणीय कुछ धातुओं के लट् लकार के रूप—

दुह् (प०)	दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति	रुद् (प०)	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
(दुहना)	धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध	(रोना)	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
	दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः		रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः
(आ०)	दुग्धे	दुहाते	दुहते	स्वप् (प०)	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
	धुक्षे	दुहाथे	धुग्ध्वे	(सोना)	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
	दुहे	दुह्वहे	दुह्महे		स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः
स्ना (प०)	स्नाति	स्नातः	स्नान्ति	या (प०)	याति	यातः	यान्ति
(स्नान करना)	स्नासि	स्नाथः	स्नाथ	(जाना)	यासि	याथः	याथ
	स्नामि	स्नावः	स्नामः		यामि	यावः	यामः
शास् (प०)	शास्ति	शिष्टः	शासति	इण् (प०)	एति	इतः	यन्ति
(शासन करना)	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ	(जाना)	एषि	इथः	इथ
	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः		एमि	इवः	इमः

'अद्'[1] (खाना) प०, सक०, अनिट् 'विद्'[1] (जानना) प०, सक०, सेट्

लट्

अत्ति	अत्तः	अदन्ति	प्र०	वेत्ति,वेद	वित्तः,विदतुः	विदन्ति,विदुः
अत्सि	अत्थः	अत्थ	म०	वेत्सि,वेत्थ	वित्थः,विदथुः	वित्थ,विद
अद्मि	अद्वः	अद्मः	उ०	वेद्मि,वेद	विद्वः, विद्व	विद्मः,विद्म

लङ्

आदत्	आत्ताम्	आदन्,आदुः	प्र०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः,अविदन्
आदः	आत्तम्	आत्त	म०	अवेः	अवित्तम्	अवित्त
आदम्	आद्व	आद्म	उ०	अवेदम्	अविद्व	अविद्म

लृट्

अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति	प्र०	वेदिष्यति	वेदिष्यतः	वेदिष्यन्ति
अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ	म०	वेदिष्यसि	वेदिष्यथः	वेदिष्यथ
अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः	उ०	वेदिष्यामि	वेदिष्यावः	वेदिष्यामः

लोट् ('विदाङ्कुरोतु' आदि रूप भी बनते हैं)

अत्तु,अत्तात्	अत्ताम्	अदन्तु	प्र०	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
अद्धि,अत्तात्	अत्तम्	अत्त	म०	विद्धि	वित्तम्	वित्त
अदानि	अदाव	अदाम	उ०	वेदानि	वेदाव	वेदाम

विधिलिङ्

अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः	प्र०	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
अद्याः	अद्यातम्	अद्यात	म०	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
अद्याम्	अद्याव	अद्याम	उ०	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

१. 'अद्' और 'विद्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

आद	आदतुः	आदुः	लिट्	विवेद	विविदतुः	विविदुः
(जघास	जक्षतुः	जक्षुः)		(विदाञ्चकार	विदाञ्चक्रतुः	विदाञ्चक्रुः)
अघसत्	अघसताम्	अघसन्	लुङ्	अवेदीत्	अवेदिष्टाम्	अवेदिषुः
अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः	लुट्	वेदिता	वेदितारौ	वेदितारः
अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासुः	आ०लिङ्	विद्यात्	विद्यास्ताम्	विद्यासुः
आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्	लृङ्	अवेदिष्यत्	अवेदिष्यताम्	अवेदिष्यन्

शीङ्>शी[1] (सोना) आ०, अ०, सेट् **अधि+ईङ्>इ**[1] (पढ़ना) आ०, स०, अ०

लट्

शेते	शयाते	शेरते	प्र०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
शेषे	शयाथे	शेध्वे	म०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
शये	शेवहे	शेमहे	उ०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

लङ्

अशेत	अशेयाताम्	अशेरत	प्र०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
अशेथाः	अशेयाथाम्	अशेध्वम्	म०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
अशयि	अशेवहि	अशेमहि	उ०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

लृट्

शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते	प्र०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे	म०	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे	उ०	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

लोट्

शेताम्	शयाताम्	शेरताम्	प्र०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्	म०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
शयै	शयावहै	शयामहै	उ०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

विधिलिङ्

शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्	प्र०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्	म०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
शयीय	शयीवहि	शयीमहि	उ०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

ब्रूञ्>ब्रू[2] (कहना) उ०, सक०, अनिट् (आर्धधातुक लकारों में 'ब्रू' को 'वच्' होगा)

१. 'शीङ्' और 'अधि+ईङ्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे	लिट्	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत	लुङ्	अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
				(अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत)
शयिता	शयितारौ	शयितारः	लुट्	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्	आ० लिङ्	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त	लृङ्	अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
				(अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त

२. 'ब्रू' धातु के शेष लकारों के प्र० पु० में दोनों पदों के रूप—

उवाच	ऊचतुः	ऊचुः	लिट्	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्	लुङ्	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त

परस्मैपद				आत्मनेपद		
		लट्				
ब्रवीति,आह	ब्रूतः,आहतुः	ब्रुवन्ति,आहुः	प्र०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
ब्रवीषि,आत्थ	ब्रूथः,आहथुः	ब्रूथ	म०	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः	उ०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे
		लङ्				
अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्	प्र०	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत	म०	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम	उ०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि
		लृट्				
वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	प्र०	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वक्ष्यसि	वक्ष्यथः	वक्ष्यथ	म०	वक्ष्यसे	वक्ष्येथे	वक्ष्यध्वे
वक्ष्यामि	वक्ष्यावः	वक्ष्यामः	उ०	वक्ष्ये	वक्ष्यावहे	वक्ष्यामहे
		लोट्				
ब्रवीतु-तात्	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु	प्र०	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
ब्रूहि-तात्	ब्रूतम्	ब्रूत	म०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम	उ०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै
		विधिलिङ्				
ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः	प्र०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात	म०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम	उ०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

अस्[1] (वर्तमान रहना) प०, अ०, अनिट् **हन्**[2] (वध करना; जाना) प०, स०, सेट्

लट्

अस्ति	स्तः	सन्ति	प्र०	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
असि	स्थः	स्थ	म०	हंसि	हथः	हथ
अस्मि	स्वः	स्मः	उ०	हन्मि	हन्वः	हन्मः

वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः	लुट्	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः	आ०लिङ्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त

१. 'अस्' धातु के शेष लकारों के रूप 'भू' के ही होंगे क्योंकि वहाँ 'अस्' को 'भू' हो जाता है।

२. 'हन्' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप :—लिट्—जघान जघ्नतुः जघ्नुः। लुङ्—अवधीत् अवधिष्टाम् अवधिषुः। लुट्—हन्ता हन्तारौ हन्तारः। आ० लिङ्—वध्यात् वध्यास्ताम् वध्यासुः। लृङ्—अहनिष्यत् अहनिष्यताम् अहनिष्यन्।

लङ्

आसीत्	आस्ताम्	आसन्	प्र०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
आसीः	आस्तम्	आस्त	म०	अहन्	अहतम्	अहत
आसम्	आस्व	आस्म	उ०	अहनम्	अहन्व	अहन्म

लृट्

भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	प्र०	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ	म०	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	उ०	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

लोट्

अस्तु-स्तात्	स्ताम्	सन्तु	प्र०	हन्तु,हतात्	हताम्	घ्नन्तु
एधि-स्तात्	स्तम्	स्त	म०	जहि,हतात्	हतम्	हत
असानि	असाव	असाम	उ०	हनानि	हनाव	हनाम

विधिलिङ्

स्यात्	स्याताम्	स्युः	प्र०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
स्याः	स्यातम्	स्यात	म०	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
स्याम्	स्याव	स्याम	उ०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

(३) जुहोत्यादि-गण[1]

हु[2] (हवन करना) प०, स०, अनिट् भी[2] (डरना) प०, अ०, अनिट्

---

१. इस गण में २४ धातुयें हैं। इस गण की प्रमुख विशेषतायें हैं—(१) लट् लकार प्र० पु० के बहुवचन में 'अन्ति' के स्थान पर 'अति' होता है। (२) लङ् लकार प्र० पु० के बहुवचन में 'अन्' के स्थान पर 'उस्' होता है और तब यदि धातु के अन्त में 'आ' हो तो उसका लोप, यदि इ, उ, ऋ हो तो गुण होता है।

इस गण की 'हा' और 'धा' धातुओं के लट् लकार के रूप—

हा (प०)	जहाति	जहितः	जहति	धा० (प०)	दधाति	धत्तः	दधति
(त्यागना)	जहीतः		(धारण करना)	दधासि	धत्थः	धत्थ
	जहासि	जहिथः	जहिथ		दधामि	दध्वः	दध्मः
		जहीथः	जहीथ	(आ०)	धत्ते	दधाते	दधते
	जहामि	जहिवः	जहिमः		धत्से	दधाथे	दद्ध्वे
		जहीवः	जहीमः		दधे	दध्वहे	दध्महे

२. 'हु' और 'भी' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

जुहाव (जुहवाञ्चकार ०चक्रतुः ०चक्रुः)	जुहुवतुः	जुहुवुः	लिट्	बिभाय (बिभयाञ्चकार ०चक्रतुः ०चक्रुः)	बिभ्यतुः	बिभ्युः

लट् (विकल्प से 'भि' को 'भी' होगा)

जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	प्र०	बिभेति	बिभितः,बिभीतः	बिभ्यति
जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	म०	बिभेषि,बिभिथः,बिभीथः		बिभीथ,बिभीथ
जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	उ०	बिभेमि	बिभिवः,बिभीवः	बिभिमः,बिभीमः

लङ् (लट् के समान 'भि' को 'भी' होगा)

अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	प्र०	अबिभेत्	अबिभिताम्	अबिभयुः
अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	म०	अबिभेः	अबिभितम्	अबिभित
अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	उ०	अबिभयम्	अबिभिव	अबिभिम

लृट् (लट् के समान 'भि' को 'भी' होगा)

होष्यति	होष्यतः	होष्यन्ति	प्र०	भेष्यति	भेष्यतः	भेष्यन्ति
होष्यसि	होष्यथः	होष्यथ	म०	भेष्यसि	भेष्यथः	भेष्यथ
होष्यामि	होष्यावः	होष्यामः	उ०	भेष्यामि	भेष्यावः	भेष्यामः

लोट् (लट् के सामान 'भि' को 'भी' होगा)

जुहोतु, जुहुतात्	जुहुताम्	जुह्वतु	प्र०	बिभेतु,बिभितात्	बिभिताम्	बिभ्यतु
जुहुधि, जुहुतात्	जुहुतम्	जुहुत	म०	बिभिहि,बिभितात्	बिभितम्	बिभित
जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम	उ०	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

विधिलिङ् ('भि' को 'भी' होने से दो-दो रूप)

जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः	प्र०	बिभियात्	बिभियाताम्	बिभियुः
जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात	म०	बिभियाः	बिभियातम्	बिभियात
जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम	उ०	बिभियाम	बिभियाव	बिभियाम

दा[1] (देना) उ०, सक०, अनिट्

अहौषीत्	अहौष्टाम्	अहौषुः	लुङ्	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः
होता	होतारौ	होतारः	लुट्	भेता	भेतारौ	भेतारः
हूयात्	हूयास्ताम्	हूयासुः	आ०लिङ्	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासुः
अहोष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्	लृङ्	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्

१. 'दा' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के दोनों पदों के रूप—

ददौ	ददतुः	ददुः	लिट्	ददे	ददाते	ददिरे
अदात्	अदाताम्	अदुः	लुङ्	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
दाता	दातारौ	दातारः	लुट्	दाता	दातारौ	दातारः
देयात्	देयास्ताम्	देयासुः	आ०लिङ्	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्	लृङ्	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त

परस्मैपद			लट्	आत्मनेपद		
ददाति	दत्तः	ददति	प्र०	दत्ते	ददाते	ददते
ददासि	दत्थः	दत्थ	म०	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
ददामि	दद्वः	दद्मः	उ०	ददे	दद्वहे	दद्महे
			लङ्			
अददात्	अदत्ताम्	अददुः	प्र०	अदत्त	अददाताम्	अददत
अददाः	अदत्तम्	अदत्त	म०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
अददाम्	अदद्व	अदद्म	उ०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि
			लृट्			
दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति	प्र०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ	म०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः	उ०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे
			लोट्			
ददातु-तात्	दत्ताम्	ददतु	प्र०	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
देहि-तात्	दत्तम्	दत्त	म०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
ददानि	ददाव	ददाम	उ०	ददै	ददावहै	ददामहै
			विधिलिङ्			
दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः	प्र०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
दद्याः	दद्यातम्	दद्यात	म०	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
दद्याम्	दद्याव	दद्याम	उ०	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

(४) दिवादि गण[1]

१. इस गण में १४० धातुयें हैं। इस गण की प्रमुख विशेषतायें हैं (१) धातु और प्रत्यय के बीच में 'य' (श्यन्) विकरण जुड़ता है। (२) धातु को गुण नहीं होता। (३) शेष भ्वादि गण की तरह। इस गण की कुछ धातुओं के लट् लकार के रूप—

भ्रम् (प०)	भ्रमति	भ्रमतः	भ्रमन्ति	युध् (आ०)	युध्यते	युध्येते	युध्यन्ते
(घूमना)	भ्रमसि	भ्रमथः	भ्रमथ	(युद्ध करना)	युध्यसे	युध्येथे	युध्यध्वे
	भ्रमामि	भ्रमावः	भ्रमामः		युध्ये	युध्यावहे	युध्यामहे

नोट—इसके 'भ्राम्यति' एवं भ्रम्यति रूप भी होंगे।

पा० (आ०)	पीयते	पीयेते	पीयन्ते	विद् (आ०)	विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते
(पीना)	पीयसे	पीयेथे	पीयध्वे	(वर्तमान होना)	विद्यसे	विद्येथे	विद्यध्वे
	पीये	पीयावहे	पीयामहे		विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे

दिव्[1] (जुआ खेलना, चमकना) प० अर्थानुसार स० अ०, सेट्

जन्[1] (होना) आ०, अक०, सेट् (सार्वधातुक में 'जन्' को 'जा' होता है)

			लट्			
दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति	प्र०	जायते	जायेते	जायन्ते
दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ	म०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः	उ०	जाये	जायावहे	जायामहे
			लङ्			
अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्	प्र०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत	म०	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम	उ०	अजाये	अजायावहि	अजायामहि
			लृट्			
देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति	प्र०	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
देविष्यसि	देविष्यथः	देविष्यथ	म०	जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे
देविष्यामि	देविष्यावः	देविष्यामः	उ०	जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे
			लोट्			
दीव्यतु-तात्	दीव्यताम्	दीव्यन्तु	प्र०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
दीव्य-तात्	दीव्यतम्	दीव्यत	म०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम	उ०	जायै	जायावहै	जायामहै
			विधिलिङ्			
दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः	प्र०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत	म०	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम	उ०	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

नश्[2] (अदृष्ट या नष्ट होना) प० वेट्

नृत्[2] (नाचना) प०, अ०, सेट्

१. 'दिव्' और 'जन्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः	लिट्	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः	लुङ्	अजनि	अजनिषाताम्	अजनिषत
देविता	देवितारौ	देवितारः	लुट्	जनिता	जनितारौ	जनितारः
दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः	आ० लिङ्	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्	जनिषीरन्
अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्	लृङ्	अजनिष्यत्	अजनिष्येताम्	अजनिष्यन्त

२. 'नश्' और 'नृत्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

ननाश	नेशतुः	नेशुः	लिट्	ननर्त्त	ननृततुः	ननृतुः
अनशत्	अनशताम्	अनशन्	लुङ्	अनर्तीत्	अनर्तिष्टाम्	अनर्तिषुः

लट्

नश्यति	नश्यतः	नश्यन्ति	प्र०	नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति
नश्यसि	नश्यथः	नश्यथ	म०	नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ
नश्यामि	नश्यावः	नश्यामः	उ०	नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः

लङ्

अनश्यत्	अनश्यताम्	अनश्यन्	प्र०	अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
अनश्यः	अनश्यतम्	अनश्यत	म०	अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत
अनश्यम्	अनश्याव	अनश्याम	उ०	अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम

(विकल्प से 'नंक्ष्यति' आदि रूप होंगे) **लृट्** (विकल्प से 'नर्त्स्यति' आदि रूप बनेंगे)

नशिष्यति	नशिष्यतः	नशिष्यन्ति	प्र०	नर्तिष्यति	नर्तिष्यतः	नर्तिष्यन्ति
नशिष्यसि	नशिष्यथः	नशिष्यथ	म०	नर्तिष्यसि	नर्तिष्यथः	नर्तिष्यथ
नशिष्यामि	नशिष्यावः	नशिष्यामः	उ०	नर्तिष्यामि	नर्तिष्यावः	नर्तिष्यामः

लोट्

नश्यतु-तात्	नश्यताम्	नश्यन्तु	प्र०	नृत्यतु-तात्	नृत्यताम्	नृत्यन्तु
नश्य-तात्	नश्यतम्	नश्यत	म०	नृत्य-तात्	नृत्यतम्	नृत्यत
नश्यानि	नश्याव	नश्याम	उ०	नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम

विधिलिङ्

नश्येत्	नश्येताम्	नश्येयुः	प्र०	नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः
नश्येः	नश्येतम्	नश्येत	म०	नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत
नश्येयम्	नश्येव	नश्येम	उ०	नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम

(५) स्वादि गण[1]

षुञ्[2] **> सु** (रस निकालना, नहाना) उ०, सक० (नहाना अर्थ में अक०), अनिट्

नशिता,नंष्टा नशितारौ नशितारः **लुट्** नर्तिता नर्तितारौ नर्तितारः
नश्यात् नश्यास्ताम् नश्यासुः **आ० लिङ्** नृत्यात् नृत्यास्ताम् नृत्यासुः
अनशिष्यत् अनशिष्यताम् अनशिष्यन् **लृङ्** अनर्तिष्यत् अनर्तिष्यताम् अनर्तिष्यन्

१. इस गण में ३५ धातुयें हैं। इस गण की प्रमुख विशेषतायें हैं—(१) धातु और प्रत्यय के बीच में 'नु' (श्नु) जुड़ता है। (२) धातु को गुण नहीं होता है। (३) 'नु' को विकल्प से 'न्' हो जाता है यदि बाद में 'व्' या 'म्' हो और पहले कोई स्वर वर्ण। (४) 'नु' को कहीं-कहीं गुण हो जाता है।

२. 'षुञ्' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के दोनों पदों के रूप—

सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः	**लिट्**	सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः	**लुङ्**	असोष्ट	असोषाताम्	असोषत

परस्मैपद				आत्मनेपद		
		लट्				
सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	प्र०	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ	म०	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
सुनोमि	सुनुवः-न्वः	सुनुमः-न्मः	उ०	सुन्वे	सुनुवहे-न्वहे	सुनुमहे-न्महे
		लङ्				
असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	प्र०	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
असुनोः	असुनुतम्	असुनुत	म०	असुनुथाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
असुनवम्	असुनुव-न्व	असुनुम-न्म	उ०	असुन्वि	असुन्(नु)वहि	असुन्(नु)महि
		लृट्				
सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति	प्र०	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
सोष्यसि	सोष्यथः	सोष्यथ	म०	सोष्यसे	सोष्येथे	सोष्यध्वे
सोष्यामि	सोष्यावः	सोष्यामः	उ०	सोष्ये	सोष्यावहे	सोष्यामहे
		लोट्				
सुनोतु-तात्	सुनुताम्	सुन्वन्तु	प्र०	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
सुनु-तात्	सुनुतम्	सुनुत	म०	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	उ०	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै
		विधिलिङ्				
सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः	प्र०	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात	म०	सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	उ०	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

चिञ्[1] (चुनना) उ०, सक०, अनिट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
		लट्				
चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति	प्र०	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते

सोता सोतारौ सोतारः **लुट्** सोता सोतारौ सोतारः
सूयात् सूयास्ताम् सूयासुः **आ०लिङ्** सोषीष्ट सोषीयास्ताम् सोषीरन्
असोष्यत् असोष्यताम् असोष्यन् **लृङ्** असोष्यत असोष्येताम् असोष्यन्त

१. 'चिञ्' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के दोनों पदों के रूप—

चिकाय (चिचाय)	चिक्यतुः	चिक्युः	**लिट्**	चिक्ये(चिच्ये)	चिक्याते	चिक्यिरे
अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः	**लुङ्**	अचेष्ट	अचेषाताम्	अचेषत
चेता	चेतारौ	चेतारः	**लुट्**	चेता	चेतारौ	चेतारः
चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः	**आ०लिङ्**	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्	**लृङ्**	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त

चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ	म०	चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे
चिनोमि	चिनुवः-न्वः	चिनुमः-न्मः	उ०	चिन्वे	चिनुवहे-न्वहे	चिनुमहे-न्महे

लङ्

अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्	प्र०	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत
अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत	म०	अचिनुथाः	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्
अचिनवम्	अचिनुव-न्व	अचिनुम-न्म	उ०	अचिन्वि	अचिन्(नु)वहि	अचिन्(नु)महि

लृट्

चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति	प्र०	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
चेष्यसि	चेष्यथः	चेष्यथ	म०	चेष्यसे	चेष्येथे	चेष्यध्वे
चेष्यामि	चेष्यावः	चेष्यामः	उ०	चेष्ये	चेष्यावहे	चेष्यामहे

लोट्

चिनोतु-तात्	चिनुताम्	चिन्वन्तु	प्र०	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
चिनु-तात्	चिनुतम्	चिनुत	म०	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम	उ०	चिनवै	चिनवावहै	चिनवामहै

विधिलिङ्

चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	प्र०	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	म०	चिन्वीथाः	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	उ०	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

आप्[1] (प्राप्त करना) प०, सक०, अनिट् **शक्**[1] (सकना) प०, सक०, अनिट्

लट्

आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति	प्र०	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ	म०	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः	उ०	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः

लङ्

आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्	प्र०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत	म०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम	उ०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

१. 'आप्' तथा 'शक्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

आप	आपतुः	आपुः	लिट्	शशाक	शेकतुः	शेकुः
आपत्	आपताम्	आपन्	लुङ्	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः	लुट्	शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः	आ०लिङ्	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्	लृङ्	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्

लृट्

आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति	प्र०	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
आप्स्यसि	आप्स्यथः	आप्स्यथ	म०	शक्ष्यसि	शक्ष्यथः	शक्ष्यथ
आप्स्यामि	आप्स्यावः	आप्स्यामः	उ०	शक्ष्यामि	शक्ष्यावः	शक्ष्यामः

लोट्

आप्नोतु-तात्	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु	प्र०	शक्नोतु-तात्	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
आप्नुहि-तात्	आप्नुतम्	आप्नुत	म०	शक्नुहि-तात्	शक्नुतम्	शक्नुत
आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम	उ०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

विधिलिङ्

आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः	प्र०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः
आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात	म०	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम	उ०	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम

(६) तुदादि गण[1]

तुद्[2] (दुःख देना) उ०, अक०, अनिट्

१. इस गण में १५७ धातुयें हैं। इस गण की प्रमुख विशेषतायें हैं—(१) धातु और प्रत्यय के बीच में 'अ'(श) जुड़ता है। (२) भ्वादि की तरह धातु की उपधा के और अन्त के स्वर को गुण नहीं होता है। (३) धातु के अन्तिम इ, ई को 'इय्'; उ, ऊ को 'उव्'; ऋ को 'रिय्' और ऋ को 'इर्' हो जाता है। इस गण की कुछ धातुओं के लट् लकार के रूप—

मुच् (प०)	मुञ्चति	मुञ्चतः	मुञ्चन्ति	**क्षिप्** (प०)	क्षिपति	क्षिपतः	क्षिपन्ति
(छोड़ना)	मुञ्चसि	मुञ्चथः	मुञ्चथ	(फेंकना) (आ०)	क्षिपते	क्षिपेते	क्षिपन्ते
	मुञ्चामि	मुञ्चावः	मुञ्चामः	**मिल्** (प०)	मिलति	मिलतः	मिलन्ति
(आ०)	मुञ्चते	मुञ्चेते	मुञ्चन्ते	(मिलना) (आ०)	मिलते	मिलेते	मिलन्ते
	मुञ्चसे	मुञ्चेथे	मुञ्चध्वे	**लिप्** (प०)	लिम्पति	लिम्पतः	लिम्पन्ति
	मुञ्चे	मुञ्चावहे	मुञ्चामहे	(लीपना) (आ०)	लिम्पते	लिम्पेते	लिम्पन्ते

२. 'तुद्' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के दोनों पदों के रूप—

तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः	लिट्	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः	लुङ्	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः	लुट्	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः	आ०लिङ्	तुत्सीष्ट	तुत्सीयास्ताम्	तुत्सीरन्
अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्	अतोत्स्यन्	लृङ्	अतोत्स्यत	अतोत्स्येताम्	अतोत्स्यन्त

परस्मैपद			लट्	आत्मनेपद		
तुदति	तुदतः	तुदन्ति	प्र०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
तुदसि	तुदथः	तुदथ	म०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
तुदामि	तुदावः	तुदामः	उ०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे
			लङ्			
अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्	प्र०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
अतुदः	अतुदतम्	अतुदत	म०	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम	उ०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि
			लृट्			
तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति	प्र०	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
तोत्स्यसि	तोत्स्यथः	तोत्स्यथ	म०	तोत्स्यसे	तोत्स्येथे	तोत्स्यध्वे
तोत्स्यामि	तोत्स्यावः	तोत्स्यामः	उ०	तोत्स्ये	तोत्स्यावहे	तोत्स्यामहे
			लोट्			
तुदतु-तात्	तुदताम्	तुदन्तु	प्र०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
तुद-तात्	तुदतम्	तुदत	म०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
तुदानि	तुदाव	तुदाम	उ०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै
			विधिलिङ्			
तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः	प्र०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
तुदेः	तुदेतम्	तुदेत	म०	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
तुदेयम्	तुदेव	तुदेम	उ०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

षिच्>सिच्[1] (सींचना) उ०, सक०, अनिट्

परस्मैपद			लट्	आत्मनेपद		
सिञ्चति	सिञ्चतः	सिञ्चन्ति	प्र०	सिञ्चते	सिञ्चेते	सिञ्चन्ते
सिञ्चसि	सिञ्चथः	सिञ्चथ	म०	सिञ्चसे	सिञ्चेथे	सिञ्चध्वे
सिञ्चामि	सिञ्चावः	सिञ्चामः	उ०	सिञ्चे	सिञ्चावहे	सिञ्चामहे

१. 'षिच्' धातु के शेष लकारों में प्र० पु० के दोनों पदों के रूप—

सिषेच सिषिचतुः सिषिचुः **लिट्** सिषिचे सिषिचाते सिषिचिरे
असिचत् असिचताम् असिचन् **लुङ्** असिचत(असिक्त) असिचेताम् असिचन्त
सेक्ता सेक्तारौ सेक्तारः **लुट्** सेक्ता सेक्तारौ सेक्तारः
सिच्यात् सिच्यास्ताम् सिच्यासुः **आ०लिङ्** सिक्षीष्ट सिक्षीयास्ताम् सिक्षीरन्
असेक्ष्यत् असेक्ष्यताम् असेक्ष्यन् **लृङ्** असेक्ष्यत असेक्ष्येताम् असेक्ष्यन्त

			लङ्			
असिञ्चत्	असिञ्चताम्	असिञ्चन्	प्र०	असिञ्चत	असिञ्चेताम्	असिञ्चन्त
असिञ्चः	असिञ्चतम्	असिञ्चत	म०	असिञ्चथाः	असिञ्चेथाम्	असिञ्चध्वम्
असिञ्चम्	असिञ्चाव	असिञ्चाम	उ०	असिञ्चे	असिञ्चावहि	असिञ्चामहि
			लृट्			
सेक्ष्यति	सेक्ष्यतः	सेक्ष्यन्ति	प्र०	सेक्ष्यते	सेक्ष्येते	सेक्ष्यन्ते
सेक्ष्यसि	सेक्ष्यथः	सेक्ष्यथ	म०	सेक्ष्यसे	सेक्ष्येथे	सेक्ष्यध्वे
सेक्ष्यामि	सेक्ष्यावः	सेक्ष्यामः	उ०	सेक्ष्ये	सेक्ष्यावहे	सेक्ष्यामहे
			लोट्			
सिञ्चतु-तात्	सिञ्चताम्	सिञ्चन्तु	प्र०	सिञ्चताम्	सिञ्चेताम्	सिञ्चन्ताम्
सिञ्च-तात्	सिञ्चतम्	सिञ्चत	म०	सिञ्चस्व	सिञ्चेथाम्	सिञ्चध्वम्
सिञ्चानि	सिञ्चाव	सिञ्चाम	उ०	सिञ्चै	सिञ्चावहै	सिञ्चामहै
			विधिलिङ्			
सिञ्चेत्	सिञ्चेताम्	सिञ्चेयुः	प्र०	सिञ्चेत	सिञ्चेयाताम्	सिञ्चेरन्
सिञ्चेः	सिञ्चेतम्	सिञ्चेत	म०	सिञ्चेथाः	सिञ्चेयाथाम्	सिञ्चेध्वम्
सिञ्चेयम्	सिञ्चेव	सिञ्चेम	उ०	सिञ्चेय	सिञ्चेवहि	सिञ्चेमहि

लिख्[1] (लिखना) प०, सक०, सेट् **इष्**[1] (इच्छा करना) प०, अक०, सेट्

			लट्			
लिखति	लिखतः	लिखन्ति	प्र०	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
लिखसि	लिखथः	लिखथ	म०	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
लिखामि	लिखावः	लिखामः	उ०	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः
			लङ्			
अलिखत्	अलिखताम्	अलिखन्	प्र०	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
अलिखः	अलिखतम्	अलिखत	म०	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
अलिखम्	अलिखाव	अलिखाम	उ०	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

१. 'लिख्' और 'इष्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

लिलेख लिलिखतुः लिलिखुः **लिट्** इयेष ईषतुः ईषुः
अलेखीत् अलेखिष्टाम् अलेखिषुः **लुङ्** ऐषीत् ऐषिष्टाम् ऐषिषुः
लेखिता लेखितारौ लेखितारः **लुट्** एषिता,एष्टा एषितारौ,एष्टारौ एषितारः,एष्टारः
लिख्यात् लिख्यास्ताम् लिख्यासुः **आ० लिङ्** इष्यात् इष्यास्ताम् इष्यासुः
अलेखिष्यत् अलेखिष्यताम् अलेखिष्यन् **लृङ्** ऐषिष्यत् ऐषिष्यताम् ऐषिष्यन्

लृट्

लेखिष्यति	लेखिष्यतः	लेखिष्यन्ति	प्र०	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
लेखिष्यसि	लेखिष्यथः	लेखिष्यथ	म०	एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
लेखिष्यामि	लेखिष्यावः	लेखिष्यामः	उ०	एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः

लोट्

लिखतु	लिखताम्	लिखन्तु	प्र०	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
लिख	लिखतम्	लिखत	म०	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
लिखानि	लिखाव	लिखाम	उ०	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

विधिलिङ्

लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः	प्र०	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
लिखेः	लिखेतम्	लिखेत	म०	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
लिखेयम्	लिखेव	लिखेम	उ०	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

मृङ्[1] (मरना) आ०, अक०, अनिट् (लृट्, लिट्, लुट् और लृङ् में परस्मैपद)

प्रच्छ्[1] (पूछना) प०, सक०, अनिट् (सार्वधातुक में 'प्रच्छ्' को 'पृच्छ्')

लट्

म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते	प्र०	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे	म०	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे	उ०	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

लङ्

अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त	प्र०	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्	म०	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि	उ०	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

लृट्

मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति	प्र०	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
मरिष्यसि	मरिष्यथः	मरिष्यथ	म०	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
मरिष्यामि	मरिष्यावः	मरिष्यामः	उ०	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः

लोट्

म्रियेत	म्रियेताम्	म्रियेरन्	प्र०	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्	म०	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि	उ०	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

विधिलिङ्

म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्	प्र०	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्	म०	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै	उ०	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

(७) रुधादि गण[1]

रुधिर् > रुध्[2] (रोकना) उ०, द्विकर्मक, अनिट्

परस्मैपद			लट्	आत्मनेपद	
रुणद्धि	रुन्द्धः	रुन्धन्ति	प्र०	रुन्द्धे	रुन्धाते	रुन्धते
रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध	म०	रुत्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
रुणद्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः	उ०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

लङ्

अरुणत्-द्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्	प्र०	अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
अरुणः	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध	म०	अरुन्द्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्द्ध्वम्
अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	उ०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

लृट्

रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति	प्र०	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते

१. 'मृङ्'[1] और 'प्रच्छ्' धातुओं के शेष लकारों में प्र० पु० के रूप—

ममार	मम्रतुः	मम्रुः	लिट्	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
अमृत	अमृषाताम्	अमृषत	लुङ्	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः	लुट्	प्रष्टा	प्रष्टारौ	प्रष्टारः
मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	मृषीरन्	आ०लिङ्	पृच्छ्यात्	पृच्छ्यास्ताम्	पृच्छ्यासुः
अमरिष्यत्	अमरिष्यताम्	अमरिष्यन्	लृङ्	अप्रक्ष्यत्	अप्रक्ष्यताम्	अप्रक्ष्यन्

१. इस गण में २५ धातुयें हैं। इस गण की प्रमुख विशेषतायें हैं–(१) धातु के प्रथम स्वर के बाद 'न' या 'न्' (श्नम्) जुड़ता है। (२) सार्वधातुक लकारों में गुण नहीं होता है।

२. 'रुधिर्' धातु के शेष लकारों के दोनों पदों में प्र० पु० के रूप—

रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः	लिट्	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
अरुधत् (अरौत्सीत्)	अरुधताम्	अरुधन्	लुङ्	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः	लुट्	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः	आ०लिङ्	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	रुत्सीरन्
अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	अरोत्स्यन्	लृङ्	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त

रोत्स्यसि	रोत्स्यथः	रोत्स्यथ	म०	रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे
रोत्स्यामि	रोत्स्यावः	रोत्स्यामः	उ०	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे

लोट्

रुणद्धु,रुन्द्धात्	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु	प्र०	रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
रुन्द्धि,रुन्द्धात्	रुन्द्धम्	रुन्द्ध	म०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	उ०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

विधिलिङ्

रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	प्र०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	म०	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	उ०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

युजिर् > युज्[1] (मिलाना, लगना) उ०, सक०, अनिट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
			लट्			
युनक्ति	युङ्क्तः	युञ्जन्ति	प्र०	युङ्क्ते	युञ्जाते	युञ्जते
युनक्षि	युङ्क्थः	युङ्क्थ	म०	युङ्क्षे	युञ्जाथे	युङ्ग्ध्वे
युनज्मि	युञ्ज्वः	युञ्ज्मः	उ०	युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे
			लङ्			
अयुनक्	अयुङ्क्ताम्	अयुञ्जन्	प्र०	अयुङ्क्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत
अयुनक्	अयुङ्क्तम्	अयुङ्क्त	म०	अयुङ्क्थाः	अयुञ्जाथाम्	अयुङ्ग्ध्वम्
अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म	उ०	अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि
			लृट्			
योक्ष्यति	योक्ष्यतः	योक्ष्यन्ति	प्र०	योक्ष्यते	योक्ष्येते	योक्ष्यन्ते
योक्ष्यसि	योक्ष्यथः	योक्ष्यथ	म०	योक्ष्यसे	योक्ष्येथे	योक्ष्यध्वे
योक्ष्यामि	योक्ष्यावः	योक्ष्यामः	उ०	योक्ष्ये	योक्ष्यावहे	योक्ष्यामहे

१. 'युजिर्' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

युयोज	युयुजतुः	युयुजुः	लिट्	युयुजे	युयुजाते	युयुजिरे
अयौक्षीत्	अयौक्ताम्	अयौक्षुः	लुङ्	अयुक्त	अयुक्षाताम्	अयुक्षत
योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः	लुट्	योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः
युज्यात्	युज्यास्ताम्	युज्यासुः	आ० लिङ्	युक्षीष्ट	युक्षीयास्ताम्	युक्षीरन्
अयोक्ष्यत्	अयोक्ष्यताम्	अयोक्ष्यन्	लृङ्	अयोक्ष्यत	अयोक्ष्येताम्	अयोक्ष्यन्त

लोट्

युनक्तु	युङ्क्ताम्	युञ्जन्तु	प्र०	युङ्क्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्
युङ्ग्धि	युङ्क्तम्	युङ्क्त	म०	युङ्क्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ग्ध्वम्
युनजानि	युनजाव	युनजाम	उ०	युनजै	युनजावहै	युनजामहै

विधिलिङ्

युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्युः	प्र०	युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्
युञ्ज्याः	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात	म०	युञ्जीथाः	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्
युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम	उ०	युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि

भुज्[1] (पालन करना) प०, सक०, अनिट् **भुज्**[1] (भोजन करना) आ०, सक०, अ०

लट्

भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति	प्र०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ	म०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः	उ०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

लङ्

अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्	प्र०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त	म०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म	उ०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

लृट्

भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति	प्र०	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
भोक्ष्यसि	भोक्ष्यथः	भोक्ष्यथ	म०	भोक्ष्यसे	भोक्ष्येथे	भोक्ष्यध्वे
भोक्ष्यामि	भोक्ष्यावः	भोक्ष्यामः	उ०	भोक्ष्ये	भोक्ष्यावहे	भोक्ष्यामहे

लोट्

भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु	प्र०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त	म०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम	उ०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

१. 'भुज्' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः	लिट्	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः	लुङ्	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः	लुट्	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः	आ० लिङ्	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	भुक्षीरन्
अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	अभोक्ष्यन्	लृङ्	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	अभोक्ष्यन्त

विधिलिङ्

भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः	प्र०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात	म०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम	उ०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

(८) तनादि गण[1]

तनु[2] > तन् (फैलाना) उ०, सक०, सेट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
		लट्				
तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	प्र०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
तनोषि	तनुथः	तनुथ	म०	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
तनोमि	तनुवः-न्वः	तनुमः-न्मः	उ०	तन्वे	तनुवहे-न्वहे	तनुमहे-न्महे
		लङ्				
अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	प्र०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	म०	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
अतनवम्	अतनुव-न्व	अतनुम-न्म	उ०	अतन्वि	अतनुवहि-न्वहि	अतन्(नु)महि
		लृट्				
तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति	प्र०	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
तनिष्यसि	तनिष्यथः	तनिष्यथ	म०	तनिष्यसे	तनिष्येथे	तनिष्यध्वे
तनिष्यामि	तनिष्यावः	तनिष्यामः	उ०	तनिष्ये	तनिष्यावहे	तनिष्यामहे
		लोट्				
तनोतु,तनुतात्	तनुताम्	तन्वन्तु	प्र०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
तनु,तनुतात्	तनुतम्	तनुत	म०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
तनवानि	तनवाव	तनवाम	उ०	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

१. इस गण में १० धातुयें हैं। इसमें धातु और प्रत्यय के बीच में 'उ' होता है।

२. 'तनु' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

ततान तेनतुः तेनुः लिट् तेने तेनाते तेनिरे
अतानीत्(अतनीत्) अतानिष्टाम् अतानिषुः लुङ् अतत(अतनिष्ठ) अतनिषाताम् अतनिषत
तनिता तनितारौ तनितारः लुट् तनिता ,तनितारौ तनितारः
तन्यात् तन्यास्ताम् तन्यासुः आ० लिङ् तनिषीष्ट तनिषीयास्ताम् तनिषीरन्
अतनिष्यत् अतनिष्यताम् अतनिष्यन् लृङ् अतनिष्यत अतनिष्येताम् अतनिष्यन्त

विधिलिङ्

तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः	प्र०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात	म०	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	उ०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

कृ[1] (करना) उ०, सक०, सेट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
		लट्				
करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	प्र०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	म०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	उ०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे
		लङ्				
अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	प्र०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	म०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	उ०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि
		लृट्				
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	प्र०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ	म०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः	उ०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे
		लोट्				
करोतु,कुरुतात्	कुरुताम्	कुर्वन्तु	प्र०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
कुरु-तात्	कुरुतम्	कुरुत	म०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
करवाणि	करवाव	करवाम	उ०	करवै	करवावहै	करवामहै
		विधिलिङ्				
कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	प्र०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	म०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	उ०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

१. 'कृ' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

चकार चक्रतुः चक्रुः लिट् चक्रे चक्राते चक्रिरे
अकार्षीत् अकार्ष्टाम् अकार्षुः लुङ् अकृत अकृषाताम् अकृषत
कर्ता कर्तारौ कर्तारः लुट् कर्ता कर्तारौ कर्तारः
क्रियात् क्रियास्ताम् क्रियासुः आ०लिङ् कृषीष्ट कृषीयास्ताम् कृषीरन्
अकरिष्यत् अकरिष्यताम् अकरिष्यन् लृङ् अकरिष्यत अकरिष्येताम् अकरिष्यन्त

(९) क्र्यादि गण[1]

डुक्रीञ् > क्री[2] (खरीद-बिक्री करना) उ०, सक०, अनिट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
			लट्			
क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	प्र०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	म०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	उ०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे
			लङ्			
अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	प्र०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	म०	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	उ०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि
			लृट्			
क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति	प्र०	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
क्रेष्यसि	क्रेष्यथः	क्रेष्यथ	म०	क्रेष्यसे	क्रेष्येथे	क्रेष्यध्वे
क्रेष्यामि	क्रेष्यावः	क्रेष्यामः	उ०	क्रेष्ये	क्रेष्यावहे	क्रेष्यामहे
			लोट्			
क्रीणातु,क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	प्र०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
क्रीणीहि,क्रीणीतात्	क्रीणीतम्	क्रीणीत	म०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	उ०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै
			विधिलिङ्			
क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	प्र०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	म०	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	उ०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

१. इस गण में ६१ धातुयें हैं। इस गण की प्रमुख विशेषतायें हैं—(१) धातु और प्रत्यय के बीच में 'ना' (श्ना) जुड़ता है, जो कहीं 'नी' और कहीं 'न' हो जाता है। (२) उपधा में यदि अनुनासिक वर्ण हो तो उसका लोप हो जाता है। (३) व्यञ्जनान्त धातुओं के लोट् लकार के म० पु० एकवचन में 'हि' के स्थान पर 'आन' होता है।

२. 'क्री' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः	लिट्	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः	लुङ्	अक्रैष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः	लुट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासुः	आ०लिङ्	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	क्रेषीरन्
अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्	लृङ्	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

पूञ् > पू[1] (पवित्र करना) उ०, स०, सेट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
			लट्			
पुनाति	पुनीतः	पुनन्ति	प्र०	पुनीते	पुनाते	पुनते
पुनासि	पुनीथः	पुनीथ	म०	पुनीषे	पुनाथे	पुनीध्वे
पुनामि	पुनीवः	पुनीमः	उ०	पुने	पुनीवहे	पुनीमहे
			लङ्			
अपुनात्	अपुनीताम्	अपुनन्	प्र०	अपुनीत	अपुनाताम्	अपुनत
अपुनाः	अपुनीतम्	अपुनीत	म०	अपुनीथाः	अपुनाथाम्	अपुनीध्वम्
अपुनाम्	अपुनीव	अपुनीम	उ०	अपुनि	अपुनीवहि	अपुनीमहि
			लृट्			
पविष्यति	पविष्यतः	पविष्यन्ति	प्र०	पविष्यते	पविष्येते	पविष्यन्ते
पविष्यसि	पविष्यथः	पविष्यथ	म०	पविष्यसे	पविष्येथे	पविष्यध्वे
पविष्यामि	पविष्यावः	पविष्यामः	उ०	पविष्ये	पविष्यावहे	पविष्यामहे
			लोट्			
पुनातु,पुनीतात्	पुनीताम्	पुनन्तु	प्र०	पुनीताम्	पुनाताम्	पुनताम्
पुनीहि,पुनीतात्	पुनीतम्	पुनीत	म०	पुनीष्व	पुनाथाम्	पुनीध्वम्
पुनानि	पुनाव	पुनाम	उ०	पुनै	पुनावहै	पुनामहै
			विधिलिङ्			
पुनीयात्	पुनीयाताम्	पुनीयुः	प्र०	पुनीत	पुनीयाताम्	पुनीरन्
पुनीयाः	पुनीयातम्	पुनीयात	म०	पुनीथाः	पुनीयाथाम्	पुनीध्वम्
पुनीयाम्	पुनीयाव	पुनीयाम	उ०	पुनीय	पुनीवहि	पुनीमहि

१. 'पू' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

पुपाव	पुपुवतुः	पुपुवुः	लिट्	पुपुवे	पुपुवाते	पुपुविरे
अपावीत्	अपाविष्टाम्	अपविषुः	लुङ्	अपविष्ट	अपविषाताम्	अपविषत
पविता	पवितारौ	पवितारः	लुट्	पविता	पवितारौ	पवितारः
पूयात्	पूयास्ताम्	पूयासुः	आ०लिङ्	पविषीष्ट	पविषीयास्ताम्	पविषीरन्
अपविष्यत्	अपविष्यताम्	अपविष्यन्	लृङ्	अपविष्यत	अपविष्येताम्	अपविष्यन्त

ज्ञा[1] (जानना) उ०, सक०, अनिट् (सार्वधातुक में 'ज्ञा' को 'जा' आदेश)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्						
जानाति	जानीतः	जानन्ति	प्र०	जानीते	जानाते	जानते
जानासि	जानीथः	जानीथ	म०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
जानामि	जानीवः	जानीमः	उ०	जाने	जानीवहे	जानीमहे
लङ्						
अजानात्	अजानीताम्	अजानन्	प्र०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
अजानाः	अजानीतम्	अजानीत	म०	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
अजानाम्	अजानीव	अजानीम	उ०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि
लृट्						
ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति	प्र०	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ	म०	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः	उ०	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे
लोट्						
जानातु,जानीतात्	जानीताम्	जानन्तु	प्र०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
जानीहि,जानीतात्	जानीतम्	जानीत	म०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
जानानि	जानाव	जानाम	उ०	जानै	जानावहै	जानामहै
विधिलिङ्						
जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः	प्र०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात	म०	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम	उ०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

ग्रह्[2] (पकड़ना, लेना) उ०, सक०, सेट् । सार्वधातुक में 'ग्रह्' को 'गृह्')

१. 'ज्ञा' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—
जज्ञौ जज्ञतुः जज्ञुः **लिट्** जज्ञे जज्ञाते जज्ञिरे
अज्ञासीत् अज्ञासिष्टाम् अज्ञासिषुः **लुङ्** अज्ञास्त अज्ञासाताम् अज्ञासत
ज्ञाता ज्ञातारौ ज्ञातारः **लुट्** ज्ञाता ज्ञातारौ ज्ञातारः
ज्ञायात् (ज्ञेयात्) ज्ञायास्ताम् ज्ञायासुः **आ०लिङ्** ज्ञासीष्ट ज्ञासीयास्ताम् ज्ञासीरन्
अज्ञास्यत् अज्ञास्यताम् अज्ञास्यन् **लृङ्** अज्ञास्यत अज्ञास्येताम् अज्ञास्यन्त

२. 'ग्रह्' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—
जग्राह जगृहतुः जगृहुः **लिट्** जगृहे जगृहाते जगृहिरे
अग्रहीत् अग्रहीष्टाम् अग्रहीषुः **लुङ्** अग्रहीष्ट अग्रहीषाताम् अग्रहीषत

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्						
गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति	प्र०	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ	म०	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः	उ०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे
लङ्						
अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्	प्र०	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत	म०	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम	उ०	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि
लृट्						
ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति	प्र०	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
ग्रहीष्यसि	ग्रहीष्यथः	ग्रहीष्यथ	म०	ग्रहीष्यसे	ग्रहीष्येथे	ग्रहीष्यध्वे
ग्रहीष्यामि	ग्रहीष्यावः	ग्रहीष्यामः	उ०	ग्रहीष्ये	ग्रहीष्यावहे	ग्रहीष्यामहे
लोट्						
गृह्णातु,गृह्णीतात्	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु	प्र०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
गृहाण,गृह्णीतात्	गृह्णीतम्	गृह्णीत	म०	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम	उ०	गृह्णै	गृह्णावै	गृह्णामै
विधिलिङ्						
गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः	प्र०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात	म०	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम	उ०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

(१०) चुरादि गण[1]

ग्रहीता ग्रहीतारौ ग्रहीतारः **लुट्** ग्रहीता ग्रहीतारौ ग्रहीतारः
गृह्यात् गृह्यास्ताम् गृह्यासुः **आ०लिङ्** ग्रहीषीष्ट ग्रहीषीयास्ताम् ग्रहीषीरन्
अग्रहीष्यत् अग्रहीष्यताम् अग्रहीष्यन् **लृङ्** अग्रहीष्यत अग्रहीष्येताम् अग्रहीष्यन्त

१. इस गण में ४११ धातुयें हैं। इस गण की प्रमुख विशेषतायें हैं—(१) धातु और प्रत्यय के बीच में 'अय्' (णिच्) जुड़ता है। (२) धातु के अन्तिम स्वर (इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ) को वृद्धि। (३) कथ्, गण् रच् आदि कुछ धातुओं को छोड़कर अन्यत्र उपधा के स्वर (इ, उ, ऋ) को गुण (ए, ओ, अर्) हो जाता है। (४) यदि उपधा में 'अ' हो तो उसे गुण नहीं होगा अपितु वृद्धि होगी। (५) सभी धातुयें 'उभयपदी' तथा 'सेट्' होती हैं।

चुर्[1] (चुराना) उ०, सक०, सेट्

परस्मैपद				आत्मनेपद		
			लट्			
चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति	प्र०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ	म०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः	उ०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे
			लङ्			
अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	प्र०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत	म०	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	उ०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि
			लृट्			
चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति	प्र०	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	चोरयिष्यन्ते
चोरयिष्यसि	चोरयिष्यथः	चोरयिष्यथ	म०	चोरयिष्यसे	चोरयिष्येथे	चोरयिष्यध्वे
चोरयिष्यामि	चोरयिष्यावः	चोरयिष्यामः	उ०	चोरयिष्ये	चोरयिष्यावहे	चोरयिष्यामहे
			लोट्			
चोरयतु-तात्	चोरयताम्	चोरयन्तु	प्र०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
चोरय-तात्	चोरयतम्	चोरयत	म०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम	उ०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै
			विधिलिङ्			
चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः	प्र०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत	म०	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	उ०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

गण्[2] (गिनना) उ०, सक०, सेट्

---

१. 'चुर्' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

चोरयामास चोरयामासतुः चोरयामासुः लिट् चोरयाञ्चक्रे चोरयाञ्चक्राते चोरयाञ्चक्रि
अचूचुरत् अचूचुरताम् अचूचुरन् लुङ् अचूचुरत अचूचुरेताम् अचूचुरन्त
चोरयिता चोरयितारौ चोरयितारः लुट् चोरयिता चोरयितारौ चोरयितारः
चोर्यात् चोर्यास्ताम् चोर्यासुः आ० लिङ् चोरयिषीष्ट चोरयिषीयास्ताम् चोरयिषीरन्
अचोरयिष्यत् अचोरयिष्यताम् ०यिष्यन् लृङ् अचोरयिष्यत ०यिष्येताम् ०यिष्यन्त

२. 'गण्' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

गणयामास गणयामासतुः गणयामासुः लिट् गणयाञ्चक्रे (गणयाम्बभूव,गणयामास)
अजी(अज)गणत् अजीगणताम् अजीगणन् लुङ् अजीगणत(अजगणत) ०गणेताम् ०गणन्त

परस्मैपद				आत्मनेपद		
			लट्			
गणयति	गणयतः	गणयन्ति	प्र०	गणयते	गणयेते	गणयन्ते
गणयसि	गणयथः	गणयथ	म०	गणयसे	गणयेथे	गणयध्वे
गणयामि	गणयावः	गणयामः	उ०	गणये	गणयावहे	गणयामहे
			लङ्			
अगणयत्	अगणयताम्	अगणयन्	प्र०	अगणयत	अगणयेताम्	अगणयन्त
अगणयः	अगणयतम्	अगणयत	म०	अगणयथाः	अगणयेथाम्	अगणयध्वम्
अगणयम्	अगणयाव	अगणयाम	उ०	अगणये	अगणयावहि	अगणयामहि
			लृट्			
गणिष्यति	गणिष्यतः	गणिष्यन्ति	प्र०	गणयिष्यते	गणयिष्येते	गणयिष्यन्ते
गणिष्यसि	गणिष्यथः	गणिष्यथ	म०	गणयिष्यसे	गणयिष्येथे	गणयिष्यध्वे
गणिष्यामि	गणिष्यावः	गणिष्यामः	उ०	गणयिष्ये	गणयिष्यावहे	गणयिष्यामहे
			लोट्			
गणयतु-तात्	गणयताम्	गणयन्तु	प्र०	गणयताम्	गणयेताम्	गणयन्ताम्
गणय-तात्	गणयतम्	गणयत	म०	गणयस्व	गणयेथाम्	गणयध्वम्
गणयानि	गणयाव	गणयाम	उ०	गणयै	गणयावहै	गणयामहै
			विधिलिङ्			
गणयेत्	गणयेताम्	गणयेयुः	प्र०	गणयेत	गणयेयाताम्	गणयेरन्
गणयेः	गणयेतम्	गणयेत	म०	गणयेथाः	गणयेयाथाम्	गणयेध्वम्
गणयेयम्	गणयेव	गणयेम	उ०	गणयेय	गणयेवहि	गणयेमहि

कथ्[1] (कहना) उ०, सक०, सेट्

गणयिता गणयितारौ गणयितारः लुट् गणयिता गणयितारौ गणयितारः
गण्यात् गण्यास्ताम् गण्यासुः आ० लिङ् गणयिषीष्ट ०षीयास्ताम् ०यिषीरन्
अगणयिष्यत् ०यिष्यताम् अगण यिष्यन् लृङ् अगणयिष्यत ०यिष्येताम् अगणयिष्यन्त

१. 'कथ्' धातु के शेष लकारों में (दोनों पदों में) प्र० पु० के रूप—

कथयामास / कथयाञ्चकार / कथयाम्बभूव	कथयामासतुः / कथयाञ्चक्रतुः / कथयाम्बभूवतुः	कथयामासुः / कथयाञ्चक्रुः / कथयाम्बभूवुः	लिट्	कथयामास / कथयाञ्चक्रे / कथयाम्बभूव	०मासतुः ०मासुः / ०चक्राते ०चक्रिरे / ०बभूवतुः बभूवुः

विशेष—'अस्', 'कृ' और 'भू की तरह।

अचकथत् अचकथताम् अचकथन् लुङ् अचकथत अचकथेताम् अचकथन्त
कथयिता कथयितारौ कथयितारः लुट् कथयिता कथयितारौ कथयितारः
कथ्यात् कथ्यास्ताम् कथ्यासुः आ० लिङ् कथयिषीष्ट कथयिषीयास्ताम् कथयिषीरन्
अकथयिष्यत् अकथयिष्यताम् अकथयिष्यन् लृङ् अकथयिष्यत ०यि ेताम् अकथयिष्यन्त

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्						
कथयति	कथयतः	कथयन्ति	प्र०	कथयते	कथयेते	कथयन्ते
कथयसि	कथयथः	कथयथ	म०	कथयसे	कथयेथे	कथयध्वे
कथयामि	कथयावः	कथयामः	उ०	कथये	कथयावहे	कथयामहे
लङ्						
अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्	प्र०	अकथयत	अकथयेताम्	अकथयन्त
अकथयः	अकथयतम्	अकथयत	म०	अकथयथाः	अकथयेथाम्	अकथयध्वम्
अकथयम्	अकथयाव	अकथयाम	उ०	अकथये	अकथयावहि	अकथयामहि
लृट्						
कथयिष्यति	कथयिष्यतः	कथयिष्यन्ति	प्र०	कथयिष्यते	कथयिष्येते	कथयिष्यन्ते
कथयिष्यसि	कथयिष्यथः	कथयिष्यथ	म०	कथयिष्यसे	कथयिष्येथे	कथयिष्यध्वे
कथयिष्यामि	कथयिष्यावः	कथयिष्यामः	उ०	कथयिष्ये	कथयिष्यावहे	कथयिष्यामहे
लोट्						
कथयतु-तात्	कथयताम्	कथयन्तु	प्र०	कथयताम्	कथयेताम्	कथयन्ताम्
कथय-तात्	कथयतम्	कथयत	म०	कथयस्व	कथयेथाम्	कथयध्वम्
कथयानि	कथयाव	कथयाम	उ०	कथयै	कथयावहै	कथयामहै
विधिलिङ्						
कथयेत्	कथयेताम्	कथयेयुः	प्र०	कथयेत	कथयेयाताम्	कथयेरन्
कथयेः	कथयेतम्	कथयेत	म०	कथयेथाः	कथयेयाथाम्	कथयेध्वम्
कथयेयम्	कथयेव	कथयेम	उ०	कथयेय	कथयेवहि	कथयेमहि

भाग २ : अनुवाद[1] (Translation)

पाठ १ : सामान्य वर्तमान काल (Present Tense)

उदाहरण-वाक्य ['लट्' लकार का प्रयोग]—

(क) प्रथम पुरुष-पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
१. वह है = सः अस्ति ।	सा अस्ति ।	तद् अस्ति ।
२. वे दोनों हैं = तौ स्तः ।	ते स्तः ।	ते स्तः ।
३. वे सब हैं = ते सन्ति ।	ताः सन्ति ।	तानि सन्ति ।

(ख) मध्यम पुरुष (तीनों लिङ्गों में)	(ग) उत्तम पुरुष (तीनों लिङ्गों में)
४. तुम हो = त्वम् असि ।	७. मैं हूँ = अहम् अस्मि ।
५. तुम दोनों हो = युवां स्थः ।	८. हम दोनों हैं = आवां स्वः ।
६. तुम सब हो = यूयं स्थ ।	९. हम सब हैं = वयं स्मः ।

(घ) अन्य प्रयोग—

१०. सीता जाती है = सीता गच्छति ।
११. रमेश पढ़ता है = रमेशः पठति ।
१२. वे दोनों खेलते हैं = तौ क्रीडतः ।
१३. हम दोनों लिखते हैं = आवां लिखावः ।
१४. तुम हँसते हो = त्वं हससि ।
१५. तुम सब दौड़ते हो = यूयं धावथ ।

नियम—१. क्रिया कर्त्ता के पुरुष और वचन के अनुसार होती है ।
२. कर्त्ता के लिङ्ग का क्रिया पर असर नहीं पड़ता है ।
३. 'अस्मद्' और, युष्मद्' शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते हैं ।
४. सामान्य वर्तमानकाल में 'लट्' लकार की क्रिया होती है ।[2]

---

१. किसी भाषा के शब्दों एवं विचारों को भाषान्तर में बदलना अनुवाद है । भाव-हीन केवल शब्दानुवाद कभी-कभी हास्यास्पद हो जाता है । जैसे—वह मुँह देखी करता है = सः मुखं दृष्ट्वा करोति । इसके स्थान पर 'पक्षपातं करोति सः' ऐसा अनुवाद करें । अङ्ग-अङ्ग में जवानी भर गई = अङ्गेषु यौवनं सन्नद्धम् ।

२. 'लट्' लकार का प्रयोग शाश्वत सत्य या वस्तु के स्वभाव को सूचित करने के लिए (जैसे—किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या । नद्यः प्रवहन्ति) तथा

५. हमेशा 'सुबन्त' और 'तिङन्त' पदों का ही प्रयोग करें। 'सुप्' या 'तिङ्' प्रत्ययों का तथा 'सुप्' या 'तिङ्' से रहित शब्दों (प्रातिपदिकों या धातुओं) का भूलकर भी प्रयोग न करें।

६. पदान्त 'म्' के बाद यदि कोई व्यञ्जन वर्ण हो तो उसका अनुस्वार कर देना चाहिये, स्वर वर्ण के बाद में होने पर नहीं।

७. सभी संज्ञा पद प्र० पु० में होते हैं। अतः उनके साथ क्रिया भी प्र० पु० की ही होती है।।

अभ्यास १—पुस्तकें हैं। गीता खेलती है। मनुष्य हँसते हैं। वे दोनों पढ़ते हैं। तुम जाते हो। हम सब गाते हैं। मैं लिखता हूँ। वे सब गिरते हैं। सुरेश दौड़ता है। वे सब जाती हैं। हम सब सोते हैं। सीता है।

पाठ २ : सामान्य वर्तमानकाल (Present Indefinite Tense)

उदाहरण-वाक्य [विभक्तियों का सामान्य प्रयोग]—

१. सीता पुस्तक लिखती है = सीता पुस्तकं लिखति।
२. बालक गेंद से खेलते हैं = बालकाः कन्दुकेन क्रीडन्ति।
३. वह ब्राह्मण के लिए धन देता है = सः ब्राह्मणाय धनं ददाति।
४. मोहन पेड़ पर से गिरता है = मोहनो वृक्षात् पतति।
५. मैं राम की पुस्तक पढ़ता हूँ = अहं रामस्य पुस्तकं पठामि।
६. विश्वविद्यालय में छात्र पढ़ते हैं = विश्वविद्यालये छात्राः पठन्ति।
७. हे राम ! तुम कहाँ जाते हो = हे राम ! त्वम् कुत्र गच्छसि ?
८. क्या वह पुस्तकें ले जाता है = किं सः पुस्तकानि नयति ?
९. मैं पुस्तक नहीं पढ़ता हूँ = अहं पुस्तकं न पठामि।
१०. सीता पेड़ पर से नहीं गिरती है = सीता वृक्षात् न पतति।

नियम—८ [कर्तृवाच्य के] कर्त्ता में प्रथमा, [कर्तृवाच्य के] कर्म में द्वितीया, करण में तृतीया, सम्प्रदान में चतुर्थी, अपादान में पञ्चमी, सम्बन्ध में षष्ठी और अधिकरण (आधार) में सप्तमी विभक्ति होती है।

९. निषेधवाचक (Negative) और प्रश्नवाचक (Interrogative) वाक्य भी साधारण (Affirmative) वाक्यों की ही तरह होते हैं। उनमें प्रश्न का भाव कुत्र,

अभी-अभी समाप्त हुए अथवा निकट भविष्य में समाप्त होने वाले कार्यों को प्रकट करने के लिए (जैसे—त्वं कदा गमिष्यसि गृहम् ? एष गच्छामि = तुम कब घर जाओगे ? अभी जाता हूँ। त्वं कदा गृहाद् आगतः ? अयम् अहम् आगच्छामि = तुम कब घर से आये ? अभी मैं आ रहा हूँ।) भी होता है।

कदा, किम्, कस्मात्, कथम् आदि अव्ययों को जोड़कर प्रकट किया जाता है तथा वाक्य के अन्त में प्रश्नवाचक चिह्न भी लगाया जाता है। निषेध का भाव व्यक्त करने के लिए साधारणतः 'न' का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी व्यञ्जन से आरम्भ होने वाले शब्दों के आदि में 'अ' जोड़कर तथा स्वर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के आदि में 'अन्' जोड़कर भी निषेधात्मक वाक्य बनाये जाते हैं। जैसे—गमनम् >अगमनम्; आवश्यकम् >अनावश्यकम्।

अभ्यास २—हम दोनों गाँव को जाते हैं। क्या तुम आँखों से नहीं देखते हो ? क्या सीता आँगन में खेलती है ? छात्र विश्वविद्यालय में पढ़ते हैं। वाराणसी में संस्कृत के विद्वान् हैं। श्यामा डण्डे से सेवक को मारती है। बालक पेड़ पर से गिरता है। मैं निर्धनों को धन देता हूँ। क्या लड़के खेलते हैं ? तुम सब कलम से लिखते हो। वे दोनों दिल्ली जाते हैं।

पाठ ३ : सामान्य वर्तमानकाल (Present Indefinite Tense)

उदाहरण-वाक्य ['भवत्', 'च' और 'वा' शब्दों का प्रयोग]—

१. आप जाते हैं = भवान् गच्छति।
२. आप दोनों जाती हैं = भवत्यौ गच्छतः।
३. राम और मोहन पढ़ते हैं = रामः मोहनश्च पठतः।
४. राम, तुम और मैं (अर्थात् हम सब) पढ़ते हैं = रामः त्वम् अहञ्च (वयम्) पठामः।
५. हम दोनों और तुम सब लिखते हैं = आवां च यूयं च (वयम्) लिखामः।
६. तुम, राम और सीता खेलते हो = त्वं रामः सीता च क्रीडथ।
७. राम और लक्ष्मण बुद्धिमान् हैं = रामः लक्ष्मणश्च सुधियौ स्तः।
८. वह, तुम या मैं लिखता हूँ = सः त्वम् अहं वा लिखामि।
९. तुम दोनों अथवा वे सब जाते हैं = युवां ते वा गच्छन्ति।
१०. मैं या राम या कृष्ण या सीता पढ़ती है = अहं रामः कृष्णः सीता वा पठति।

नियम—१०. यदि सम्मानसूचक 'भवत्' (आप) शब्द का प्रयोग होता है तो क्रिया प्र० पु० की ही होती है। (१-२)

११. 'च' और 'वा' शब्दों का प्रयोग 'च' और 'वा' से जुड़े हुए शब्दों के बाद में अथवा जुड़े हुए शब्दों के दोनों तरफ करना चाहिए। (४-५, ९-१०)

१२. 'च' से जुड़े हुए कर्त्ता जब दो हों तो क्रिया द्विवचन में और जब दो से अधिक हों तो बहुवचन में होगी। (३-७)

१३. यदि किसी क्रिया के कर्त्ता भिन्न-भिन्न पुरुषों के हों और वे 'च' शब्द से जुड़े हों तो क्रिया का पुरुष प्राधान्य (उत्तम→मध्यम→प्रथम) के अनुसार होगा चाहे वे किसी भी क्रम से क्यों न उक्त हों। (३-७)

१४. यदि किसी क्रिया के कर्त्ता भिन्न-भिन्न पुरुषों के हों और वे 'वा' या 'अथवा' (विकल्प-वाचक) शब्द से जुड़े हों तो क्रिया का पुरुष और वचन अन्तिम कर्त्ता के पुरुष और वचन के अनुसार होगा। (९-१०)

अभ्यास ३—क्या गीता और मैं खेलता हूँ ? आँगन में आम के पेड़ से पत्ते गिरते हैं। आप दोनों कहाँ जाते हैं ? सीता, गीता और मोहन पढ़ते हैं। तुम, राम और मोहन रेल से कहाँ जाते हो ? आप विद्वान् हैं। सीता अथवा गीता कूदती है। महेश अथवा तुम दौड़ते हो। तुम, मैं और राम पढ़ते हैं। आप सब गाते हैं।

पाठ ४ : सामान्य भूतकाल और भविष्यत्काल

(Past and Future Indefinite Tenses)

उदाहरण-वाक्य ['लङ्' और 'लृट्' लकारों का प्रयोग]—

१. वह गाँव गया = सः ग्रामम् अगच्छत् = अगच्छत् सः ग्रामम्।
२. क्या मैंने अपना काम नहीं किया = किम् अहं स्वकार्यं न अकरवम् ?
३. लक्ष्मण ने राम की सेवा की = लक्ष्मणः रामस्य सेवाम् अकरोत्।
४. मैंने पुस्तक पढ़ी = अहं पुस्तकम् अपठम् = पुस्तकम् अपठमहम्।
५. सीता ने भात खाया = सीता ओदनम् अखादत्।
६. आज वह स्कूल जायेगा = अद्य सः विद्यालयं गमिष्यति।
७. क्या तुम उसका काम नहीं करोगे = किं त्वं तस्य कार्यं न करिष्यसि ?
८. मैं बगीचे में फूलों को देखूँगा = अहम् उद्याने पुष्पाणि द्रक्ष्यामि।
९. आप नगर के उद्यान में सीता को देखोगे = भवान् नगरस्य उद्याने सीतां द्रक्ष्यति।

नियम—१५. भूतकाल में 'लङ्' लकार का प्रयोग किया जाता है।[1]

१. (क). संस्कृत में भूतकाल के लिए तीन लकारों का प्रयोग प्रचलित है—लङ्, लिट् और लुङ्। लङ् का प्रयोग अनद्यतन भूत (जो आज की बात नहीं है) में (जैसे—अहं ह्यः ग्रामम् अगच्छम्), लिट् का प्रयोग परोक्षभूत (बहुत अधिक पुरानी घटना) में (जैसे—रामो राजा बभूव) और 'लुङ्' का सामान्य भूत (अद्यतनभूत—जो क्रिया आज ही हुई हो उस भूतकाल) में (जैसे—अद्य अहं ग्रामम् अगमम्) होता है। परन्तु आजकल सुगमता की दृष्टि से भूतकाल में 'लङ्' का प्रयोग अधिक प्रचलित हो रहा है।

१६. सामान्य भविष्यत् काल में 'लृट्' लकार का प्रयोग किया जाता है।[1]

१७. कर्त्ता, कर्म और क्रिया को किसी भी क्रम से रख सकते हैं। (१, ४)

अभ्यास ४—मैं अच्छोद सरोवर में स्नान के लिए आई थी। क्या सूर्य अस्त हो गया था ? कृष्ण ने कंस को मारा। आज शकुन्तला पति के घर जायेगी। आज तुम सब ईश्वर का भजन करोगे। मैं बी० ए० कक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करूंगा। हे कपिराज ! कल तुम अयोध्या में भरत का दर्शन करोगे। मेरे मित्र का विवाह पन्द्रह जून को होगा। क्या उसने कल गीत नहीं गाया ? रमेश साईकिल से गिरा। परसों से स्नातकोत्तर कक्षाओं की परीक्षायें प्रारम्भ होंगी। देश का प्रधान मंत्री कौन बनेगा ? राजा अशोक अहिंसा का पुजारी था।

पाठ ५ : सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण और अव्यय

उदाहरण-वाक्य [तीनों कालों का प्रयोग]—

१. क्या यह फल मधुर नहीं है = किम् इदं फलं मधुरम् नास्ति ?
२. क्या वह बीमार बालक शीघ्र चलता है = सः रुग्णः बालकः शीघ्रं चलति किम् ?
३. यह गीता रमेश की पत्नी है = एषा गीता रमेशस्य पत्नी अस्ति।
४. वह उस ब्राह्मण के लिए नीला वस्त्र और सफेद थाली देता है = सः तस्मै ब्राह्मणाय नीलं वस्त्रं श्वेतां स्थालीं च दास्यति।
५. इस बगीचे में दो वृक्ष, दो लतायें और दो पुष्प सुशोभित हैं = अस्मिन् उद्याने द्वौ वृक्षौ द्वे लते द्वे पुष्पे च शोभन्ते।

(ख). कभी-कभी 'लट्' लकार में 'स्म' जोड़कर भी भूतकाल का अर्थ प्रकट किया जाता है। यद्यपि 'स्म' का प्रयोग सभी पुरुषों और सभी वचनों में होता है परन्तु प्र० पु० में ही इसका प्रयोग अधिक देखा जाता है। 'स्म' को क्रिया से पृथक् ही लिखा जाता है, मिलाकर नहीं। जैसे—एकस्मिन् वने कोऽपि सिंहो वसति स्म (एक वन में कोई सिंह रहता था)। ते ग्रामं गच्छन्ति स्म (वे गाँव गये)।

(ग). 'कृत' प्रत्ययों (क्त और क्तवतु) का भी प्रयोग भूतकाल की क्रिया के रूप में होता है। जैसे—सीता वनं गतवती। सः गतः। रामः रावणं हतवान्। आजकल इनका प्रयोग बहुतायत से होता है। (देखिए, पाठ १०)

१. संस्कृत में भविष्यत्काल के लिए दो लकारों का प्रयोग होता है—लृट् और लुट्। सामान्य भविष्यत्काल में 'लृट्' और अनद्यतन भविष्यत् में 'लुट्'। जैसे—अहं ग्रामं गमिष्यामि (मैं गाँव जाऊँगा)। अहं श्वः ग्रामं गन्तास्मि (मैं कल गाँव जाऊँगा)।

६. पुत्री और पुत्र रक्षणीय हैं = पुत्री पुत्रश्च रक्षणीयौ ।

७. उस स्कूल में बहुत से छात्र थे परन्तु छात्रा एक ही थी = तस्मिन् विद्यालये बहवः छात्राः आसन् परन्तु छात्रा एका एव आसीत् ।

८. यहाँ समिति में आज अन्त में कैसे आपस में ठीक-ठीक समझौता हो गया = अत्र समितौ अद्य अन्ते (अन्ततोगत्वा) कथं मिथः यथायथं ऐकमत्यम् अभवत् ?

९. प्रमाद तन्द्रा और आलस्य वर्जनीय हैं = प्रमादः तन्द्रा आलस्यं च वर्जनीयं वर्जनीयानि वा ।

१०. सुशील बालक, मधुर फल और पुष्पित लतायें कब और कहाँ अच्छी नहीं लगतीं हैं = सुशीला बालकाः, मधुराणि फलानि, पुष्पिताः लताश्च कदा कुत्र च न प्रतिभान्ति ।

११. अरे ! गीता स्कूल जल्दी-जल्दी जाती है परन्तु वहाँ वह धीरे-धीरे पढ़ेगी = अरे ! गीता पाठशालां शीघ्रं गच्छति परन्तु तत्र सा शनैः शनैः पठिष्यति ।

१२. यहाँ तीन लड़के, चार बालिकायें, अठारह स्त्रियाँ और बीस पुरुष हैं जो प्रतिदिन प्रायः गाते हैं = अत्र त्रयः बालकाः चतस्रः बालिकाः अष्टादश स्त्रियः विंशतिः पुरुषाः च सन्ति ये प्रतिदिनं प्रायः गायन्ति ।

१३. हम सब दुखी हैं परन्तु गीता सुखी है = वयं दुःखिनः परन्तु गीता सुखिनी ।

नियम—१८. अव्यय सभी लिङ्गों, विभक्तियों और वचनों में अपरिवर्तित होते हैं ।

१९. हन्त, हे, अरे, भोः आदि आश्चर्य-सूचक अव्यय वाक्य के प्रारम्भ में रखे जाते हैं । परन्तु वा, च, तु, हि, चेत् आदि वाक्य के प्रारम्भ में नहीं रखे जाते ।

२०. विशेषण और क्रिया-विशेषण प्रायः अपने-अपने विशेष्य के पहले आते हैं । कभी-कभी विशेष्य के बाद में भी उनका प्रयोग होता है । जब विशेषण का विधेय (*Predicate*) के रूप में प्रयोग होगा तो विशेषण विशेष्य से प्रधान होगा । जैसे—नीलं कमलम् = कमलं नीलम् ।

२१. सर्वनाम (जो संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं) और विशेषण[1] (जो

---

१. (क) कुछ शब्द विशेष्य के अनुसार तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं । जैसे—मधुरः शब्दः, मधुरा वाणी, मधुरं वचनम् । तटः, तटी, तटम् आदि ।

(ख) कभी-कभी अर्थभेद से भी लिङ्ग बदल जाता है । जैसे—मित्रम् = दोस्त (नपुं०), मित्रः = सूर्य (पुं०) ।

(ग) कुछ शब्द अर्थभेद न होने पर भी भिन्न-भिन्न लिङ्गों में ही प्रयुक्त होते हैं । जैसे—'स्त्री' अर्थवाचक 'दाराः' (पुं०), 'स्त्री' (स्त्री०), 'कलत्रम्' (नपुं०) । 'नक्षत्र' वाचक 'पुष्यः' (पुं०), 'तारा' (स्त्री०), 'नक्षत्रम्, (नपुं०) ।

संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं) शब्दों के लिङ्ग, विभक्ति और वचन अपने-अपने विशेष्य के अनुसार होते हैं—

विशेष्यस्य हि यल्लिङ्गं विभक्तिवचने च ये ।
तानि सर्वाणि योज्यानि विशेषणपदेष्वपि ।।

२२. जब विशेष्य पुं० और स्त्री० दोनों हों तो विशेषण पुं० होगा । (६, १२)

२३. यदि एक भी विशेष्य नपुं० होगा तो विशेषण भी नपुं० का ही होगा । उसका वचन या तो एकवचन होगा या संख्या के अनुसार द्विवचन और बहुवचन भी ।

२४. क्रियाविशेषण सदा नपुं० एकवचन में होंगे । जैसे—मधुरं गायति ।

२५. 'वा', 'उत', 'अथवा' आदि विकल्पवाचक शब्दों से युक्त एकाधिक विशेष्यों का यदि एक ही विशेषण हो तो विशेषण का लिङ्ग और वचन बाद वाले विशेष्य के अनुसार होगा ।

२६. कभी-कभी 'अस्ति', 'भवति' आदि अस्तित्व-वाचक क्रियाओं का प्रयोग अनावश्यक भी होता है । (६)

(घ) कुछ शब्द नियत लिङ्ग और नियत वचन वाले होते हैं । वे विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर भी विशेष्य के अनुसार नहीं बदलते । जैसे—ज्ञानम् (नपुं०), प्रमाणम् (नपुं०) । वेदाः प्रमाणम् । गुणाः पूजास्थानम्, आदि । नियत लिङ्ग तथा नियत वचन वाले कुछ अन्य शब्द—(१) **नित्य पुं० बहुवचन**—दाराः (स्त्री), अक्षताः (चावल), लाजाः (लाई), असवः, प्राणाः (जीवन वाचक) । (२) **नित्य स्त्री० बहुवचन**—अप्सरसः (अप्सरायें), आपः (जल), वर्षाः (बरसात), सिकताः (बालू), सभाः (वर्ष), सुमनसः (फूल) । (३) **नित्य द्विवचन**—दम्पती (पति-पत्नी), पितरौ (माता-पिता), अश्विनौ (दो देव) । इसके साथ क्रिया द्विवचनान्त होती है । (४) **नित्य नपुं० एकवचन**—(क)द्वय, युगल, युग, मिथुन, द्वन्द्व ये 'दो' अर्थ के बोधक हैं तथा गण, वृन्द, कुल, समूह ये बहुत्व के बोधक हैं परन्तु जिनके साथ ये जुड़ते हैं वे एकवचनान्त होते हैं । जैसे—छात्रद्वयम् युगलं वा । (ख) पात्रम्, आस्पदम्, स्थानम्, पदम्, भाजनम्, प्रमाणम्, दुःखम्, भूषणम्, कारणम्, परमम्, बलम् आदि शब्द जब कर्म या विधेय के रूप में प्रयुक्त होते हैं तो नपुं० एकवचनान्त होते हैं (उद्देश्य के रूप में प्रयुक्त होने पर अन्य वचनों वाले भी होते हैं) । जैसे—गुणाः पूजास्थानं गुणिषु भवन्ति । यूयं मम स्नेहपात्रम् आस्पदम् वा । भवन्तः अत्र प्रमाणं सन्ति । आशा हि परमं दुःखम् । सा मम मित्रम् अस्ति । सतां सङ्गो हि भेषजम् । (५) संख्यावाचक शब्दों के लिए देखिए, पृ० १११, टि० १ ।

अभ्यास ५—क्या तुम मेरी सब प्रकार से सहायता नहीं करोगे ? मनीषा के स्कूल में चार बालिकायें, बीस बालक और तीन अध्यापिकायें हैं। प्राचार्य कल मेरी कक्षा का निरीक्षण करेंगे। उन्होंने कल आपका बहुत इन्तजार किया। आपके माता-पिता कहाँ रहते हैं ? यहाँ पाँच मीठे फल, तीन हरी लतायें, दो लाल घड़े और आठ सुन्दर फूल हैं। यद्यपि यह बालिका बहुत चतुर है परन्तु पढ़ती कभी-कभी ही है। आज इस स्कूल में अचानक उपद्रव कैसे हो गया ? वाराणसी नगरी बहुत सुन्दर है। तुम्हारा यह कार्य अनुकरणीय होगा। इस नगर का राजा उस गरीब ब्राह्मण को धन देता है। मनीषा अपनी कक्षा में प्रथम रहती है।

पाठ ६ : आज्ञा, चाहिए, संभावना और आशीर्वाद

उदाहरण-वाक्य ['लोट्' और 'विधिलिङ्' का प्रयोग]—

१. तुम पुस्तक पढ़ो = त्वं पुस्तकं पठ।

२. सत्य बोलो और गुरुओं की सेवा करो—सत्यं वद गुरून् च शुश्रूषस्व।

३. वह फूलों को देखे और तुम विद्वज्जनों की सेवा करो = सः पुष्पाणि पश्यतु त्वं च विद्वज्जनान् सेवस्व।

४. मुझे प्रत्युत्तर दो = प्रतिवचनं मे देहि।

५. हे देव ! प्रसन्न होओ और रक्षा करो ! = हे देव ! प्रसीद, पाहि च।

६. भगवान् सदा तुम्हारी रक्षा करें = भगवान् सदा त्वाम् अवतु।

७. तुम सौ वर्षों तक जियो = त्वं शरदां शतं जीव।

८. आप हरि का भजन करें और उसका फल प्राप्त करें = भवान् हरिं भजतु तस्य फलं च लभताम्।

९. उसे पढ़ना चाहिए तथा तुम्हें भोजन करना चाहिये (वह पढ़े और तुम भोजन करो) = सः पठेत् त्वं च भुञ्जीथाः।

१०. मैं देशभक्ति से यश प्राप्त करूं (मुझे देशभक्ति से यश प्राप्त करना चाहिये) = अहं देशभक्त्या यशः लभेय।

११. वह इस काम को करें और राजा प्रजा की रक्षा करे (उसे यह काम करना चाहिए और राजा को प्रजा की रक्षा करना चाहिए) = सः इदं कर्म कुर्यात् (करोतु) राजा च प्रजां रक्षेत् (रक्षतु)।

१२. शायद वह वाराणसी आये = कदाचित् सः वाराणसीमागच्छेत्।

नियम—२७. आज्ञा और आशीर्वाद अर्थ[1] में 'लोट्' लकार का प्रयोग प्रचलित है। आज्ञार्थक वाक्यों में प्रायः म० पु० का कर्त्ता छिपा रहता है। अतः कभी-कभी

१. यद्यपि आशीर्वाद अर्थ में प्रधान रूप से 'आशीर्लिङ्' का प्रयोग होता है परन्तु 'लोट्' लकार का भी प्रयोग बहुत प्रचलित है (आशिषि लिङ्लोटौ)।

उसका उल्लेख नहीं भी किया जाता है (जैसे—४,५)। उ० पु० के साथ 'लोट्' लकार का प्रयोग होने पर 'वितर्क' का भाव व्यक्त होता है। जैसे—क्या मैं यह काम करूं=किमहमिदं कर्म करवाणि ?

२८. विधि (कड़ा आदेश), चाहिये,[1] संभावना आदि अर्थों में 'विधिलिङ्' का प्रयोग होता है।

२९. कभी-कभी आदेश, आशीर्वाद आदि अनेक अर्थों में 'लोट्' और 'विधिलिङ्' दोनों का प्रयोग समानरूप से देखा जाता है।[2] (११)

---

१. (क) 'चाहिए' अर्थ में 'तव्यत्', 'अनीयर्' आदि प्रत्ययों का भी प्रयोग होता है। (देखिए—पाठ २०)। (ख) कभी-कभी 'अर्हति' (योग्य, समर्थ, उचित होना आदि अर्थ में) क्रिया का भी प्रयोग देखा जाता है। परन्तु ऐसे वाक्यों में अभीष्ट कार्य में 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे—न मां त्यक्तुमर्हसि त्वम्। न त्वं शोचितुमर्हसि।

२. 'लोट्' और 'विधिलिङ्' का निम्न अर्थों में भी प्रयोग होता है [विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्। लोट् च।]—

(क) **विधि** (कड़ा आदेश)—मधु मांसं च वर्जयेत् वर्जयतु वा विद्यार्थी (विद्यार्थी को मधु और मांस नहीं खाना चाहिए); सदा धर्मम् आचरतु आचरेत् वा (सदा धर्म का आचरण करना चाहिए)। (ख) **निमन्त्रण**—अद्य भवान् इह भुक्ताम् भुञ्जीत वा (आज आप यहाँ भोजन कीजिए)। (ग) **आमन्त्रण**—अत्र यथेच्छमागच्छतु आगच्छेत् वा (यहाँ इच्छानुसार आयें)। (घ) **अनुरोध**—माम् अध्यापयेद् अध्यापयतु वा भवान् (आप मुझे पढ़ाने का कष्ट करें)। (ङ) **जिज्ञासा**—किमहं गच्छानि गच्छेयं वा (क्या मैं जाऊँ)? (च) **प्रार्थना**—मयि दयां कुरु कुर्याः वा (मुझ पर दया करें); किं भोजनं लभेय लभै वा (क्या भोजन प्राप्त कर सकता हूँ) ? (छ) **आशीर्वाद**—आत्मसदृशं भर्तारं लभस्व लभेथाः वा (अपने अनुरूप पति को प्राप्त करो)। (ज) **आदर**—अत्र उपविशतु उपविशेत् वा श्रीमान् (श्रीमान् यहाँ बैठिए)। (झ) **इच्छा**—भवान् शीघ्रं नीरोगो भवेत् भवतु वा (आप शीघ्र स्वस्थ हो जायें)। (ञ) **उपदेश**—सत्यं ब्रूयात् ब्रवीतु वा, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् (सच बोलो मधुर बोलो, परन्तु अप्रिय-सत्य न बोलो)। (ट) **कामचारानुज्ञा**—अपि आस्स्व आसीथाः वा, अपि शेष्व शयीथाः वा (तुम चाहो तो बैठो, चाहो तो सोओ)। (ठ) **शपथ**—यो मां दुष्ट इति कथयति तस्य पुत्राः म्रियेरन् (जो मुझे दुष्ट कहता है उसके पुत्र मर जायें।

अभ्यास ६— शायद कल गुरुजी दिल्ली जायें। मुझ गरीब पर दया कीजिए। आप ही बतायें उसे कैसे प्रसन्न करूं? चञ्चला लक्ष्मी की उपासना मत करो। आप सब गुरुजनों को नमस्कार करें। शिव जी आप सब की रक्षा करें। किसी से द्वेष नहीं करना चाहिए। सज्जनों से कभी द्रोह मत करो। सुख अथवा दुःख की प्राप्ति में हर्ष अथवा विषाद नहीं करना चाहिए। जाओ, विजय प्राप्त करो। भगवान् राम की जय हो। हे राजन्। मैं आपका और क्या अभीष्ट करूं। आर्या जी, यह आसन है, आप इस पर बैठें। हमेशा सत्संगति करना चाहिए। सदाचारी शिष्यों को गुरुजन समस्त विद्याओं का रहस्य खोल दें। तुम घर जाओ और अध्ययन करो। हे पुत्री! तुम वीरपुत्र की जननी बनो। गुरुजन व्याकरण शास्त्र पढ़ायें।

पाठ ७ : अपूर्ण (वर्तमान-भूत-भविष्यत्) काल (Continuous Tenses)

उदाहरण-वाक्य ['शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. वह घर जा रहा है = सः गृहं गच्छन् अस्ति (गच्छति)।

२. वे सब लड़कियां पुस्तकें पढ़ रही हैं = ताः बालिकाः पुस्तकानि पठन्त्यः सन्ति (पठन्ति)।

३. क्या वह कांप रहा है और तुम सो रही हो = किं सः कम्पमानः अस्ति (कम्पते) त्वं च शयाना असि (शेषे)।

४. उन सब के चञ्चल नेत्र क्या देख रहे हैं = तेषां चञ्चलनेत्राणि किं पश्यन्ति सन्ति (पश्यन्ति) ?

५. रीता वहाँ सिंह को देख रही है और यहाँ तुम दोनों पढ़ रहे हो = रीता तत्र सिंहं पश्यन्ती अस्ति (पश्यति) युवां च अत्र पठन्तौ स्थः (पठथः)।

६. तुम कहाँ जा रहे थे = त्वं कुत्र गच्छन् आसीः (अगच्छः) ?

७. आप उस समय क्या देख रहे थे = भवान् तदानीं किं पश्यन् आसीत् (अपश्यत्) ?

८. लड़कियाँ नदी के किनारे जल पी रही थीं = बालिकाः नद्यास्तटे अपः पिबन्त्यः आसन् (अपिबन्)।

९. हम उस समय घर से आ रहे थे = वयं तदानीं गृहादागच्छन्तः आस्म (आगच्छाम)।

१०. हम दोनों सायंकाल खेल रहे होंगे = आवां सायं क्रीडन्तौ भविष्यावः (क्रीडिष्यावः)।

११. परिक्षार्थी उत्तर-पुस्तिकायें लिख रहे होंगे = परीक्षार्थिनः उत्तरपुस्तकानि लिखन्तः भविष्यन्ति (लिखिष्यन्ति)।

१२. बालिका पढ़ रही होगी और तुम देख रहे होगे = बालिका पठन्ती भविष्यति (पठिष्यति) त्वं च पश्यन् भविष्यसि (द्रक्ष्यसि)।

नियम—३०. 'पढ़ रहा', 'जा रहा' आदि अपूर्ण-कालिक क्रियाओं का अनुवाद सामान्य काल की ही तरह होता है (देखिए कोष्ठक क्रिया)। कभी-कभी अपूर्णकालिक क्रियाओं का अर्थ प्रकट करने के लिए तदर्थक धातुओं में 'शतृ' (अत्) और 'शानच्' (आन-मान) प्रत्ययों का भी प्रयोग किया जाता है। 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययान्त शब्द विशेषण होते हैं, अतः उनका लिङ्ग, विभक्ति और वचन अपने विशेष्य के अनुसार होते हैं। कर्त्ता के पुरुष का इन पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

३१. 'शतृ-शानच्' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ 'अस्' (सत्ता) धातु का भी प्रयोग (कर्त्ता के पुरुष और वचन के अनुसार) होता है। 'अस्' धातु वाली क्रिया ही मुख्य क्रिया होती है और उसका प्रयोग कालानुसार ही होता है।

अभ्यास ७—गोपाल स्कूल में पढ़ रहा है। तुम सब यह क्या कर रहे हो? आकाश में बादल गरज रहे हैं। वे दोनों लड़कियाँ मालायें बना रही थीं। गीता देख रही थी और सुशीला गाना गा रही थी। वह रामायण का पाठ कर रहा होगा। वृक्ष के पत्ते झड़ रहे थे। वे सब पत्र लिख रहे होंगे। तुम फल खा रहे थे। राधा सो रही होगी और कृष्णा रेडियो सुन रही होगी। छात्र कक्षा में अध्यापक की प्रतीक्षा कर रहे थे। राधा अथवा श्याम आ रहा होगा।

पाठ ८ : 'जाते हुए', 'सुनते हुए' आदि वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. राजमार्ग से जाते हुए सुन्दर राजकुमार को देखो = राजमार्गेण गच्छन्तं सुन्दरं राजकुमारं पश्य।

२. उपदेश देते हुए अध्यापक ने छात्रों को दण्ड दिया = उपदिशन् अध्यापकः छात्रानदण्डयत्।

३. वह मधुबाला को देखते हुए हँसता है = सः मधुबालां पश्यन् हसति।

४. कुछ समय में वह युवक हो जायेगा = गच्छता कालेन सः युवकः भविष्यति।

५. मैं देखते हुए और हँसते हुए सुनता हूँ = अहं पश्यन् हसन् च शृणोमि।

६. वह प्रतीक्षा करते हुए बैठी थी = सा प्रतीक्षमाणा अतिष्ठत्।

७. प्रतिदिन बढ़ता हुआ धन उसके ऐश्वर्य का कारण है=प्रतिदिनं वर्धमानं धनं तस्य ऐश्वर्यस्य कारणम्।

८. मेरे रहते हुए तुम कैसे दुःखी होओगी = मयि सति त्वं कथं दुःखिनी भविष्यसि।

९. सोते हुए भी विद्वज्जन सब कुछ देखते हैं = शयानाः अपि विद्वज्जनाः सर्वं पश्यन्ति ।

१०. शत्रु के कटु वचनों को सहन करते हुए हम कैसे रहेंगे = शत्रोः कटुवचनानि सहमानाः वयं कथं स्थास्यामः ?

नियम —३२. 'जाते हुए', 'सुनते हुए' आदि गौण क्रियाओं का अनुवाद 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययों के द्वारा किया जाता है ।

अभ्यास ८—गाड़ी चलाते हुए ड्राइवर से वार्तालाप करना उचित नहीं है । वन में रहते हुये भी राम ने रावण को मार डाला । मैंने कालेज जाते हुए मार्ग में सर्प को देखा । ज्ञान प्राप्त करते हुए वह धीरे-धीरे विद्वान् बन गया । कुछ समय बाद आप वृद्ध हो जायेंगे । बहुत प्रकार के कष्टों को सहते हुए भी सीता प्रसन्न है । ज्ञान-मार्ग में वर्तमान रहने पर भी वह भक्तिमार्ग का आश्रय लेगा । क्या सीता ने रावण के यहाँ राम के आगमन की प्रतीक्षा करते हुये समय बिताया ? खाना खाते समय बोलना हानिकारक है । कार्य करते हुए वह मेरे वचनों को सुनेगी ।

पाठ ९ : वाच्य-परिवर्तन (Change of Voice)

उदाहरण-वाक्य [कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य का प्रयोग]

१. देवदत्त गाँव जाता है = देवदत्तः ग्रामं गच्छति (कर्तृ०) ।
देवदत्तेन ग्रामो गम्यते (कर्म०) ।

२. मैं तुम दोनों को देखता हूँ = अहं युवां पश्यामि (कर्तृ०) ।
मया युवां दृश्येथे (कर्म०) ।

३. हम सब फल खाते हैं = वयं फलानि खादामः (कर्तृ०) ।
अस्माभिः फलानि खाद्यन्ते (कर्म०) ।

४. आप जो चाहते हैं, वह सब मैं करता हूँ = भवान् यदिच्छति तत् सर्वमहं करोमि (कर्तृ०) । भवता यदिष्यते तत् सर्वं मया क्रियते (कर्म०) ।

५. सीता पाठशाला में पुस्तक पढ़े = सीता पाठशालायां पुस्तकं पठेत् (कर्तृ०) ।
सीतया पाठशालायां पुस्तकं पठ्येत् (कर्म०) ।

६. तुम हँसते हो और वह जोर से रोती है = त्वं हससि, सा च उच्चैः रोदिति (कर्तृ०) । त्वया हस्यते तया च उच्चैः रुद्यते (भाव०) ।

७. हम सब पढ़ते हैं और वे सब सोते हैं = वयं पठामः ते च स्वपन्ति (कर्तृ०) ।
अस्माभिः पठ्यते तैः च सुप्यते (भाव०) ।

८. वह कूदता है और तुम काँपते हो = सः कूर्दते त्वं च कम्पसे (कर्तृ०) ।
तेन कूर्द्यते त्वया च कम्प्यते (भाव०) ।

९. महेश रोया था और रीता भी रोयेगी = महेशः अरोदीत्, रीता चापि

रोदिष्यति (कर्तृ०) । महेशेन अरुद्यत, रीतया चापि रोदिष्यते (भाव०) ।

नियम—३३. 'सकर्मक' धातुओं से कर्तृवाच्य (Active Voice) और कर्मवाच्य (*Passive Voice*) के वाक्य बनते हैं । 'अकर्मक' धातुओं से (देखिये, पृ० ७०, टि० १) कर्तृवाच्य और भाववाच्य (Impersonal Voice) के वाक्य बनते हैं । अकर्मक धातुयें कभी-कभी उपसर्ग के लगने पर सकर्मक भी हो जाती हैं । जैसे—सा लज्जामनुभवति ।

३४. कर्तृवाच्य में कर्त्ता प्रधान होता है । अतः (क) क्रिया के पुरुष, वचन आदि (कृदन्त क्रिया का लिङ्ग) कर्त्ता के अनुसार होते हैं । (ख) कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होती है । (ग) कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है । (घ) धातुओं के सभी मूल रूप कर्तृवाच्य में ही होते हैं । 'कर्तरि प्रत्यये जाते प्रथमा कर्तृकारके । द्वितीयान्तं च कर्म स्यात् कर्त्रधीनं क्रियापदम् ॥'

३५. कर्मवाच्य में कर्म प्रधान होता है । अतः (क) क्रिया के पुरुष, वचन आदि कर्म के अनुसार होते हैं । (ख) कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है । (ग) कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है (घ) शेष अन्य सभी कारक कर्तृवाच्य की ही तरह होते हैं । (ङ) कर्मवाच्य की क्रिया सार्वधातुक लकारों में 'य' प्रत्यय जोड़कर बनाई जाती है और उसके रूप केवल आत्मनेपद में ही चलते हैं । (जैसे—लिख् + य + ते = लिख्यते । 'कर्मणि प्रत्यये जाते तृतीया कर्तृकारके । प्रथमान्तं च कर्म स्यात् कर्माधीनं क्रियापदम् ॥'

३६. भाववाच्य में भाव प्रधान होता है । अतः (क) क्रिया प्र० पु० एकवचन में ही होती है । (ख) कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है । (ग) कर्म का अभाव रहता है । (घ) भाववाच्य की क्रिया बनाने की प्रक्रिया कर्मवाच्य की क्रिया की (प्रक्रिया की) तरह ही है (जैसे—भू + य + ते = भूयते) । 'कर्माभावः सदा भावे तृतीया चैव कर्तरि । प्रथमः पुरुषश्चैकवचनञ्च क्रियापदे ॥'

नोट—वाच्य-परिवर्तन में कर्त्ता, कर्म और क्रिया पर ही असर पड़ता है,[1] शेष वाक्यांश अपरिवर्तित रहता है ।

अभ्यास ९—वह ग्रन्थ पढ़ता है और राधा खेलती है । सीता अथवा गीता

१. क्रिया में जो 'तिप्' आदि प्रत्यय जुड़ते हैं वे कर्त्ता, कर्म या भाव में होते हैं । अतः जब क्रिया में प्रयुक्त 'तिप्' आदि प्रत्ययों के द्वारा कर्त्ता उक्त होता है तब कर्त्ता की प्रधानता होती है और वहाँ कर्त्ता में प्रातिपादिकार्थ से प्रथमा होती है । इसी प्रकार जब कर्म उक्त होता है तब कर्म प्रधान होता है और वहाँ कर्म में प्रातिपदिकार्थ से प्रथमा होती है । भाव उक्त होने पर भाव प्रधान होता है । इसी आधार पर वाच्य के तीन भेद किये जाते हैं ।

गाना गा रही है। पिता ने पुत्र से कहा ! मेरे द्वारा शत्रु जीते जाते हैं। राम ने रावण को मारा और सीता की रक्षा की। सूर्य से जगत् प्रकाशित होता है। ईश्वर ने इस संसार को रचा। उसके द्वारा पुस्तकें लाई जायें। अध्यापकों ने पुस्तकें पढ़ाईं। तुमने फल खाया। वे दोनों स्कूल जाते हैं। क्या तुमने पुस्तकें लिखी हैं ? गीता बाजार नहीं जा रही है। हम दोनों ने यह रेडियो बनाया है। आप जो चाहते हैं वह सब मैं करता हूँ। संदीप ने स्कूल में पुरस्कार प्राप्त किया।

पाठ १० : भूतकालिक वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['क्त' और 'क्तवतु' प्रत्ययों का प्रयोग]

१. वे सभी बालक घर गए = ते सर्वे बालकाः गृहम् अगच्छन् (कर्तृ०)। तैः सर्वैः बालकैः गृहमगम्यत (कर्म०)। ते सर्वे बालकाः गृहं गतवन्तः (कर्तृ०)। तैः सर्वैः बालकैः गृहं गतम् (कर्म०)। ते सर्वे बालकाः गृहं गच्छन्ति स्म (कर्तृ०)। तैः सर्वैः बालकैः गृहं गम्यते स्म (कर्म०)।

२. बालिकाओं ने फल खाया = बालिकाः फलमभुञ्जत (कर्तृ०)। बालिकाः फलं भुक्तवत्यः (कर्तृ०)। बालिकाभिः फलं भुक्तम् (कर्म०)।

३. मैंने पुस्तकें पढ़ीं = अहं पुस्तकानि अपठम्। मया पुस्तकानि अपठ्यन्त। अहं पुस्तकानि पठितवान्। मया पुस्तकानि पठितानि।

४. राजपुरुषों ने नगरी की रक्षा की = राजपुरुषाः नगरीम् अरक्षन्। राजपुरुषाः नगरीं रक्षितवन्तः। राजपुरुषैः नगरी रक्षिता।

५. कुम्भकार ने घड़ा बनाया = कुम्भकारः घटम् अरचयत्। कुम्भकारः घटं रचितवान्। कुम्भकारेण घटः रचितः।

६. मैं हँसा और वह सोया = अहम् अहसम्, सः च अस्वपीत् (स्वपिति स्म)। अहं हसितवान् सः च सुप्तवान्। मया हसितं तेन च सुप्तम्।

७. वन में गए हुए राम ने ऋषियों को प्रणाम किया = वनं गतः रामः ऋषीन् प्राणमत्। वनं गतः रामः ऋषीन् प्रणतवान्। वनं गतेन रामेण ऋषयः प्रणमिता।

८. पढ़ी हुई पुस्तकें लाओ = पठितानि पुस्तकानि आनय।

९. खाये हुए (खा लेने पर) उसने कार्य किया = भुक्तवता तेन कार्यं कृतम्।

१०. उसके खा लेने पर वह आया = भुक्तवति तस्मिन् सः आगतवान्।

नियम—३६. सामान्य भूतकाल के लिए कर्मवाच्य में 'क्त' और कर्तृवाच्य में 'क्तवतु' प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

३७. 'क्त' प्रत्ययान्त (कर्मवाच्य की) क्रियाओं का लिङ्ग और वचन कर्म के अनुसार तथा 'क्तवतु' प्रत्ययान्त (कर्तृवाच्य की) क्रियाओं का लिङ्ग और वचन कर्त्ता

के अनुसार होता है। भाववाच्य में 'क्त' प्रत्यय होने पर 'क्त' प्रत्ययान्त क्रिया नपुं० एकवचन में ही होगी। पुरुष का 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्ययान्त क्रियाओं पर कोई असर नहीं पड़ता है।

३८. 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्ययों का प्रयोग विशेषण के रूप में भी किया जाता है। ऐसी स्थिति में इनके लिङ्ग, विभक्ति और वचन अपने-अपने विशेष्य के अनुसार होते हैं। (७-१०)

३९. ऐसे वाक्यों में यदि एक क्रिया के होने पर दूसरी क्रिया का होना पाया जाये तो पहले होने वाली (कृदन्त) क्रिया में तथा कर्तृवाच्य के कर्त्ता अथवा कर्मवाच्य के कर्म में सप्तमी होती है। (१०)

अभ्यास १०— मोहन ने श्याम को बन्दूक से मारा। उन कन्याओं ने बगीचे के दो फूल तोड़े। राम, सीता और लक्ष्मण वन गये। क्या गीता ने पुस्तकें नहीं पढ़ीं ? लिखी हुई उत्तर-पुस्तिकायें ले जाओ। बालिका ने जल पिया और सो गई। श्याम ने पढ़ी हुई पुस्तकें पुनः पढ़ीं। लेखक के यहाँ से लाई हुई पुस्तकें पढ़ो। भोजन किए हुए बालक को दूध दो। मनीषा और रीता ने इनाम में प्राप्त सभी धन स्कूल को दान में दे दिया।

पाठ ११ : पूर्ण वर्तमान-भूत-भविष्यत् काल (Perfect Tenses)

उदाहरण-वाक्य ['क्त' और 'क्तवतु' प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. (क) वह पुस्तक पढ़ चुका है = सः पुस्तकं पठितवान् [अस्ति] (कर्तृ०)।
(ख) उसने पुस्तक पढ़ ली है = तेन पुस्तकं पठितम् [अस्ति] (कर्म०)।

२. मैं काम कर चुका हूँ = अहं कार्यं कृतवान् [अस्मि]।

३. सीता ने कथा सुन ली है = सीता कथां श्रुतवती [अस्ति]।

४. क्या तुम दोनों घर जा चुके हो = किं युवां गृहं गतवन्तौ [स्तः]।

५. मेरे पहुँचने के पूर्व ही चोर भाग गये थे = मम आगमनात् पूर्वमेव तस्कराः (चौराः) पलायितवन्तः [आसन्]।

६. अध्यापक के जाने के पहले ही बालिकायें जा चुकी थीं = अध्यापकस्य गमनात् पूर्वमेव बालिकाः गतवत्यः [आसन्]।

७. क्या पाँच बजने के पूर्व ही मैं जाग चुका था = किं पञ्चवादनात् प्रागेव अहं प्रबुद्धवान् [आसम्]।

८. रात होने से पहले ही बालिकाएँ घर पहुँच चुकी होंगी = रात्रेः प्रागेव बालिकाः गृहम् आगतवत्यः भविष्यन्ति।

९. क्या तुम्हारे जागने के पूर्व वह पुस्तक नहीं पढ़ चुकेगा = किं तव जागरणात् पूर्वं सः पुस्तकं न पठितवान् भविष्यति ।

१०. तुम्हारे स्टेशन पहुँचने से पहले रेलगाड़ी आ चुकी होगी = तव वाष्पयान-विरामस्थलमागमनात् प्राक् वाष्पयानम् आगतवत् भविष्यति ।

नियम—४०. 'कर चुका' आदि पूर्णकाल की क्रिया का अर्थ प्रकट करने के लिए कर्तृवाच्य में 'क्तवतु' प्रत्ययान्त गौण क्रिया का कर्त्ता के लिङ्ग और वचन के अनुसार प्रयोग होगा ।

४१. 'क्तवतु' प्रत्ययान्त क्रिया के साथ 'अस्' धातु वाली मुख्य-क्रिया का भी प्रयोग कर्त्ता के पुरुष और वचन के अनुसार होगा । ऐसे वाक्यों के प्रयोग में प्रायः 'अस्' धातुवाली क्रिया का प्रयोग नहीं भी होता है ।

४२. कर्मवाच्य में 'क्त' प्रत्ययान्त क्रिया होगी परन्तु 'अस्' धातु की क्रिया कर्तृवाच्य के समान ही होगी । (१)

अभ्यास ११— रमेश और नीलिमा ने अपना काम पूर्ण कर लिया है । आपने और मैंने तब तक काम पूरा कर लिया होगा । उसने ऐसा कार्य क्यों किया है ? क्या वह स्कूल बन्द हो चुका है ? मेरे पहुँचने के पहले श्याम खाना खा चुका था । तीन बजने के पूर्व रेलगाड़ी छूट चुकी थी । क्या मेरे आने से पहले तुम अपना कार्य समाप्त कर चुके होगे ? तुम्हारे कहने से पहले ही मेरा मित्र पत्रों को लिख चुका होगा । वर्षा होने से पहले तुम सब घर पहुँच चुके होगे । पुलिस के पहुँचने से बहुत पहले चोर भाग चुके होंगे । सूर्योदय से पहले ही वह स्नान कर चुकी होगी ।

पाठ १२ : पूर्णापूर्ण वर्तमान-भूत-भविष्यत् काल

(Perfect Continuous Tenses)

उदाहरण-वाक्य ['शतृ' और 'शानच्' प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. मैं गत दिन से यहाँ कार्य कर रहा हूँ = अहं विगतदिवसाद् अत्र कार्यं कुर्वन् अस्मि ।

२. तुम कितने समय से काँप रहे हो = त्वं कियत्कालात् कम्पमानः असि ?

३. वह बुधवार से खेल रही है = सा बुधवासरात् क्रीडन्ती अस्ति ।

४. मैं आठ बजे से यह सब सहन कर रहा हूँ = अहम् अष्टवादनसमयाद् इदं सर्वं सहमानः अस्मि ।

५. तुम कल सायंकाल दो घंटे तक पढ़ते रहे थे = त्वं ह्यः सायं घंटाद्वय-पर्यन्तं पठन् आसीः ।

६. मैं एक सप्ताह तक गीता पढ़ता रहा था = अहम् एकसप्ताहपर्यन्तं गीतां पठन् आसम् ।

७. बालिकाएँ चार दिन तक सेवा करती रही थीं = बालिकाः दिनचतुष्टय-पर्यन्तं सेवमानाः आसन् ।

८. क्या रीता और गीता गत दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा नहीं कर रही होंगी = किं रीतागीते गतदिवसात् तव प्रतीक्षां न कुर्वत्यौ भविष्यतः ।

९. तुम्हारा मित्र दो घंटे से और राम दो बजे से खेल रहे होंगे = तव मित्रं घंटाद्वयकालात् रामः द्विवादनकालाच्च क्रीडन्तौ भविष्यतः ।

नियम—४३. पूर्णापूर्ण (जब किसी समय से किसी काम का लगातार होता रहना पाया जाये) वर्तमान-भूत-भविष्यत् काल में अपूर्ण (वर्तमान-भूत-भविष्यत्) काल की तरह 'शतृ' अथवा 'शानच्' प्रत्ययों का तथा 'अस्' धातु की क्रिया का प्रयोग किया जाता है ।

४४. वर्तमान और भविष्यत् काल के समय-वाचक (जब से काम प्रारम्भ हो) शब्दों में पञ्चमी विभक्ति होती है ।

४५. भूतकाल के समयवाचक शब्दों में 'पर्यन्तम्' पद जोड़ दिया जाता है ।

अभ्यास १२—वह सुबह से क्या कर रही है ? मैं पाँच घंटे से पढ़ रहा हूँ । तुम इस विद्यालय में कितने समय से पढ़ा रहे हो ? वे दोपहर से आपका इन्तजार कर रहे हैं । इस वर्ष १५ जुलाई से लगातार वर्षा हो रही है । क्या वह तीन घण्टे से कोई कार्य नहीं कर रहा है ? तुम एक घंटे से इस कमरे में क्या कर रहे थे ? वह चार साल से कठिन परिश्रम कर रहा था । वे चार दिनों तक लगातार पढ़ती रही थीं । अध्यापक आठ घंटे से पढ़ा रहे होंगे । क्या आज छात्र कुलपति जी से दो बजे से बहस कर रहे होंगे ? वे दोनों सोमवार से यात्रा कर रहे होंगे ।

पाठ १३ : कर्तृ-कर्म कारक

उदाहरण-वाक्य [प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों का प्रयोग]—

१. मैं ग्रन्थ पढ़ता हूँ = ग्रन्थमहं पठामि (कर्तृ०) । ग्रन्थः मया पठ्यते (कर्म०) ।

२. वे वन में जाते हैं और वह पञ्चत्व को प्राप्त होता है = ते वनं गच्छन्ति सः च पञ्चत्वं याति ।

३. हे राम ! यहाँ आम और नारियल के फल हैं = हे राम ! अत्र आम्रफलानि नारिकेलफलानि च सन्ति ।

४. यह मेरा ग्रन्थ है, ऐसा समझो = अयं मम ग्रन्थ इति जानीहि ।

५. वह एक मास तक पढ़ता है और मैं एक कोश तक चलता हूँ = सः मासमेकं पठति अहं च क्रोशमेकं गच्छामि ।

६. वह गुरु को नमस्कार करता है = सः गुरुं नमति (सः गुरवे नमस्करोति) ।

७. हरि वैकुण्ठ में सोते हैं = हरिः वैकुण्ठमधिशेते (अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा) ।

८. घर के चारों ओर बालक खेलते हैं = गृहमभितः बालकाः क्रीडन्ति ।
९. राम के बिना जीवन को धिक्कार है = रामं विना जीवनं धिक् ।
१०. गोपाल गाय से दूध दुहता है और श्याम बकरी को गाँव ले जाता है = गोपालः गां पयः दोग्धि श्यामश्च अजां ग्रामं नयति (कर्तृ०) । गोपालेन गौः पयः दुह्यते श्यामेन च अजा ग्रामं नीयते (कर्म०) ।
११. मैं तुम्हें तिनके के भी बराबर नहीं मानता हूँ = अहं त्वां तृणं न मन्ये ।

नियम—४६. निम्नोक्त स्थलों में प्रथमा विभक्ति होती है (देखिए, पृ० ६५-६७)—(क) कर्तृवाच्य के कर्त्ता में । (ख) कर्मवाच्य के कर्म में । (ग) वस्तु, ग्रन्थादि का नामनिर्देश करने में । (घ) 'इति' शब्द के योग में । (ङ) सम्बोधन में ।

४७. निम्नोक्त स्थलों में द्वितीया विभक्ति होती है (देखिए, पृ० ६७-७२)—(क) कर्तृवाच्य के कर्म में । (ख) क्रिया के लगातार होने पर समय और दूरी वाचक शब्दों में । (ग) जब अनादर दिखाना हो तो 'मन्' धातु के कर्म में । (घ) अधि + शी, अधि + स्था, अधि + आस्, अभि + नि + विश्, उप + वस्, अनु + वस्, अधि + वस् और आ + वस् इन धातुओं के आधार में । (ङ) अभितः, परितः, सर्वतः, उभयतः, समया, निकषा, हा, प्रति, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः, अध्यधि, अन्तरा और अन्तरेण ये अव्यय जिसके साथ आयें, उसमें । (च) गमनार्थक धातुओं के योग होने पर गमन के उद्देश्य में । (छ) विना के योग में । (ज) [कर्तृवाच्य में] दुह्, याच् आदि द्विकर्मक धातुओं के योग होने पर मुख्य कर्म के साथ-साथ गौण कर्म में (यदि वक्ता की इच्छा हो) । (झ) [कर्मवाच्य में] दुहादि १२ धातुओं का गौण कर्म तथा 'नी' आदि ४ धातुओं का मुख्य कर्म प्रथमा में [तदितर द्वितीया में] होगा ।

अभ्यास १३—वह मन्दिर गया । आम, घड़ा और फूल यहाँ रखो । हे देवदत्त ! यहाँ गाँव के चारों ओर उपवन हैं । सिंह वन में रहता है और गुफा में सोता है । मुझे विद्यार्थी जानो । कृष्ण के चारों ओर भक्तगण हैं । वे सब वन में विचरण करते हैं । क्या राम की उपासना के बिना भी जीवन है ? वह तीन दिन से काम कर रहा है । मैं उसे राजा जानता हूँ । वे सब स्वर्ग गये । पाचक चावलों से भात पकाता है । गाँव के निकट विद्यालय है । राजा चोर को दण्ड देता है । ज्ञान के बिना सुख कहाँ ? आपके अलावा और कौन बदला ले सकता है ? विद्यार्थी अध्यापक के चारों ओर खड़े-खड़े बातें कर रहे थे । दीनों पर दया करो ।

पाठ १४ : करण कारक

उदाहरण-वाक्य [तृतीया विभक्ति का प्रयोग]—

१. वह बालकों के साथ रथ से आता है = सः रथेन बालकैः सह आगच्छति (कर्तृ०) तेन रथेन बालकैः सह आगम्यते (कर्म०) ।

२. आँख से काना और पैर से लँगड़ा देवदत्त गाँव जाता है = नेत्रेण काणः पादेन च खञ्जः देवदत्तः ग्रामं गच्छति (कर्तृ०) । नेत्रेण काणेन पादेन च खञ्जेन देवदत्तेन ग्रामो गम्यते (कर्म०) ।
३. वह होता है = सः भवति (कर्तृ०) । तेन भूयते (भाव०) ।
४. वह चक्षु से राम को देखता है = सः चक्षुषा रामं पश्यति ।
५. उसने एक मास में ग्रन्थ को पढ़ा = सः मासेन ग्रन्थम् अधीतवान् ।
६. राम स्वभाव से सज्जन है परन्तु वह कष्टपूर्वक जीता है = रामः प्रकृत्या साधुः परन्तु सः कष्टेन जीवति ।
७. तुम जटाओं से तपस्वी और शिखा से हिन्दू लगते हो = त्वं जटाभिः तापसः शिखया च हिन्दुः प्रतीयसे ।
८. वह अध्ययन के लिए काशी में रहती है = सा अध्ययनेन काश्यां वसति ।
९. बुद्धि विद्या से बढ़ती है = बुद्धिः विद्यया वर्धते ।
१०. ज्ञान के बिना सब कुछ शून्य है = ज्ञानेन (ज्ञानं) विना सर्वं शून्यम् ।
११. झगड़ा मत करो, दुर्जन से आपको क्या प्रयोजन = अलं विवादेन, दुर्जनेन भवता प्रयोजनं किम् ?
१२. वह ऐश्वर्य में देवताओं से बढ़कर है = सः ऐश्वर्येण देवान् अतिशेते ।
१३. महेश रूप में सीता के समान और गुणों में राम के समान है = महेशः रूपेण (आकृत्या) सीतया समः गुणैश्च रामेण सदृशः ।
१४. मैं अपने पुत्र की तथा अपने जीवन की कसम खाता हूँ = अहं स्वपुत्रेण स्वजीवितेन च शपामि ।
१५. यज्ञदत्त किस मार्ग से और किस दिशा से गया है = यज्ञदत्तः केन मार्गेण कया दिशा च गतः ?
१६. मूर्खों को उपदेश देना केवल उनका क्रोध बढ़ाना है, शान्ति के लिए नहीं = उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।

नियम ४८— निम्नोक्त स्थलों में तृतीया विभक्ति होती है (देखिए, पृ० ७२-७४)—(क) कर्म-वाच्य के कर्त्ता में । (ख) भाववाच्य के कर्त्ता में । (ग) करण (साधकतम कारण) में । (घ) सहार्थक (सह, सार्धम्, साकम्, समम्) शब्दों के योग में जिसका साथ बतलाया जाए, उसमें । (ङ) जिस विकृत अङ्ग से अङ्गी में विकार मालूम पड़े उस अङ्ग-वाचक शब्द में । (च) जब निश्चित समय में कार्य-सिद्धि

बतलाई जाये तो काल और दूरी-वाचक शब्दों में। (छ) प्रकृति आदि (नाम[1], गोत्र आदि) शब्दों में (यदि उनसे किसी के स्वभाव आदि का ज्ञान हो)। (ज) जिस चिह्न से किसी का बोध हो उस चिह्न में। (झ) कारण-बोधक शब्दों में यदि हेतु शब्द का प्रयोग न हो। (ञ) पृथक्, विना और तुल्यार्थक शब्दों के योग में (द्वितीया और पञ्चमी भी)। (ट) अलम् (बस, मत), कृतम् (निषेध), किम्, कार्यम्, अर्थः, प्रयोजनम् (प्रयोजन अर्थ होने पर) के योग में। (ठ) जिस गुण या दुर्गुण की दृष्टि से किसी को बढ़कर बतलाया जाये उसमें। (ड) जिसके सदृश बतलाया जाये उसमें। (ढ) शपथ खाने में (जिसकी शपथ खाई जाए)। (ण) जिस मार्ग या दिशा से जाना बतलाया जाए, उसमें।

अभ्यास १५— स्वर्णकार सोने से गहने बनाता है। कुली शिर पर सामान ढोता है। राम जानकी के साथ वन जाते हैं। गाय का दूध स्वभाव से मीठा और सुपाच्य होता है। व्यापार के निमित्त से मोहन प्रयाग में रहता है। क्या तुम शपथ खाकर कहते हो कि सुरेश ने चोरी की है? मूर्ख शिष्य से क्या प्रयोजन? तुम्हें सज्जनों के साथ रहना चाहिए, दुर्जनों के साथ कभी नहीं। अस्त्र पीड़ितों की रक्षा के लिए होता है, न कि निर्दोषों को पीड़ित करने के लिए। छात्र रेल से कानपुर गये। ऐसे पुत्र के उत्पन्न होने से क्या जो न विद्वान् हो और न धार्मिक ही। वेशभूषा से वह योद्धा प्रतीत होता है। वह आँख से अन्धा है, अतः गिर गया है। केवल मनोरथ से धन प्राप्त नहीं होता है, कुशलता से प्राप्त होता है।

पाठ १५ : सम्प्रदान कारक

उदाहरण-वाक्य [चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग]—

१. किस शिष्य के लिए ज्ञान देते हो = कस्मै शिष्याय ज्ञानं वितरसि?

२. राजा को नमस्कार हो = राज्ञे नमः।

३. देवी का स्वागत है, मेरा कुशल हो और प्रजा का कल्याण हो = स्वागतं देव्यै (देव्याः), मह्यं (मम) कुशलं भूयात्, प्रजाभ्यः च स्वस्ति।

४. तुम मूर्ख पर क्रोध करते हो और भोगों की स्पृहा = त्वं मूर्खाय क्रुध्यसि भोगेभ्यः स्पृहयसि च।

५. मुझे अध्ययन अच्छा लगता है = मह्यम् अध्ययनं रोचते।

६. हरि दैत्यों के लिये और आप शत्रुओं के लिए पर्याप्त हैं = हरिः दैत्येभ्यः अलम् (प्रभुः, समर्थः, शक्तः), भवान् शत्रुभ्यश्च।

१. 'नाम' शब्द के साथ अन्य प्रयोग—अस्ति वाराणसी नाम नगरम्। तत्र धनदत्तो नाम राजा। असौ रामनामा बालकः। तस्य भार्या मनोरमा नाम्नी।

७. संजय उसे रहस्य की बात कहता है और वह उसे धर्म का उपदेश देता है = संजयः तस्मै रहस्यं कथयति सः च तस्मै धर्मं शंसति उपदिशति वा।

८. देवदत्त राम के सौ रुपयों का ऋणी है = देवदत्तः रामाय शतं धारयति।

९. मैं देशरक्षा के लिए प्राणत्याग करूँगा = अहं देशरक्षायै प्राणत्यागं करिष्यामि।

१०. शिष्य गुरु को प्रणाम करके पढ़ने के लिए जाता है = शिष्यः गुरुं प्रणम्य पठनाय (पठितुं) याति।

११. वह गुरु से भोजन के लिए निवेदन करता है = सः गुरवे भोजनाय (भोजनार्थम्, भोजनस्य कृते) निवेदयति।

नियम—४९. निम्नोक्त स्थलों में चतुर्थी विभक्ति होती है (देखिए, पृ० ७४-७६)—

(क) सम्प्रदान कारक में। (ख) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् (पर्याप्त) और वषट् इन शब्दों के योग में (जिसे नमस्कार आदि किया जाये)। (ग) आयुष्य, मद्र (हर्ष), भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित शब्दों के योग में (यदि आशीर्वाद के अर्थ में इनका प्रयोग हो, तो) जिसे आशीर्वाद दिया जाए, उसमें। (घ) स्वागत शब्द के योग में जिसका स्वागत किया जाए, उसमें। (ङ) 'तुमुन्' का अर्थ छिपा रहने पर उसके कर्म में। (च) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाए, उसमें। (छ) निम्न धातुओं के योग में— (१) क्रुध्, द्रुह, ईर्ष्य् और असूय् (जिस पर क्रोधादि किया जाए); (२) स्पृह (जिसे चाहा जाए); (३) रुच् या रुच्यर्थक (जो प्रसन्न हो); (४) कथ्, ख्या, शंस्, चक्ष्, नि + विद् (णिजन्त) तथा तदर्थक (जिसको लक्ष्य करके कुछ कहा जाए); (५) [णिजन्त 'धृ'] धारि (जिससे ऋण लिया जाए) और (६) प्रणिपत्, प्रणम् (जिसे प्रणाम किया जाए, उसमें द्वितीया भी)।

५०. चतुर्थी के स्थान पर कभी-कभी 'अर्थम्' और 'कृते' का भी प्रयोग होता है। 'अर्थम्' शब्द समस्तरूप में प्रयुक्त होता है और 'कृते' के योग में षष्ठी होती है। (११)

अभ्यास १५—विष्णु को भक्ति अच्छी लगती है। विद्यार्थी परीक्षा पास करने के लिए पढ़ते हैं। यह समाचार गुरु जी से निवेदन कर दें। तुम मुझसे क्यों ईर्ष्या करते हो? तुम मेरे पच्चीस रुपयों के ऋणी हो। गुरु जी को प्रसन्न करने के लिए सोहन उन्हें द्रव्य देता है। बालक दूध के लिऐ रोता था। रोगी को दवा दे दो। सज्जनों का जीवन परोपकार के लिए होता है। मुझे धन की स्पृहा नहीं है, केवल ज्ञान प्राप्त करना मेरा लक्ष्य है।

पाठ १६ : अपादान कारक

उदाहरण-वाक्य [पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग]—

१. उस महल से बालक गिरा = तस्मात् प्रासादात् बालकः अपतत् ।

२. वह सिंह से बालक की रक्षा करती है = सा बालकं सिंहात् त्रायते ।

३. वह अपने पुत्र को पाप से हटाता है = सः स्वपुत्रं पापान्निवारयति ।

४. वह अध्यापक से पढ़ता है = सः अध्यापकात् पठति ।

५. हिमालय से गङ्गा निकलती है = हिमालयात् गङ्गा प्रभवति ।

६. श्याम से राम चतुर है = श्यामात् रामः पटुतरः ।

७. बाल्यावस्था से लेकर आज भी देवदत्त गाँव के बाहर उद्यान के पूर्व में रहता है = आशैशवात् देवदत्तः ग्रामाद्बहिरुद्यानात् पूर्वमधितिष्ठति ।

८. ज्ञान के विना मोक्ष नहीं मिलता है = ज्ञानाद् ऋते न मोक्षः ।

९. वह चोर से नहीं डरता है = सः चौराद् न बिभेति ।

१०. देवदत्त पाप से घृणा करता है = देवदत्तः पापाज्जुगुप्सते ।

११. वैश्य तिलों से उड़द को बदलता है = वैश्यः तिलेभ्यः माषान् प्रतियच्छति ।

१२. चोर शासक से छिपता है = चौरः शासकात् निलीयते ।

१३. यह छात्र अध्ययन से घबड़ाता है परन्तु शत्रुओं को हराता है = अयं छात्रः अध्ययनात् पराजयते परन्तु शत्रून् पराजयते ।

१४. पर्वत आग वाला है, धूमवाला होने से = पर्वतो वह्निमान् धूमात् ।

नियम ५१—निम्न स्थलों में पञ्चमी विभक्ति होती है (देखिए, पृ० ७६-७९)—

(क) अपादान कारक में । (ख) जिससे भय हो या रक्षा की जाए । (ग) जिससे किसी को हटाया जाए । (घ) जिससे नियमपूर्वक विद्या सीखी जाए । (ङ) जिससे या जहाँ से कोई वस्तु पैदा हो । (च) दो वस्तुओं की तुलना में जिससे तुलना की जाए । (छ) तर्क (अनुमान वाक्य) के हेतु में । (ज) जिससे जुगुप्सा (घृणा); विराम (रुकना), प्रमाद (किसी बात से हटना) हो । (झ) 'पराजयते' (असह्य अर्थ में) के योग में, जो असह्य हो । (ञ) 'आ' उपसर्ग (तक अर्थ में), प्रभृति, आरभ्य, बहिः, अनन्तरम्, परम्, ऊर्ध्वम्, अन्य, आरात् (दूर और समीप); इतर, ऋते, और दिशावाची (पूर्वः; उत्तरः आदि) शब्दों के साथ । (ट) छिपने की क्रिया में जिससे छिपा या बचा जाए । (ठ) 'प्रतियच्छति' (बदलना अर्थ में) के योग में, जिससे बदला जाए ।

अभ्यास १६—रमेश को इस स्कूल से पृथक् मत करो । हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक भारत का विस्तार है । एक समान होने पर भी गौ से गवय भिन्न है । क्या अध्यापक से छात्र छुपता है ? धन से ज्ञान श्रेष्ठ है । भारतवासी शत्रु से नहीं डरते हैं । सेवक बालक को आग से हटाता है । दुष्टों से हमें भय नहीं है । वह पुस्तक के बदले रुपया देता है । क्या तुम पेड़ से नहीं गिरे ? सच्चा मित्र वही है जो अपने मित्र को दुष्कर्म से हटाकर सत्कर्म में प्रवृत्त कराये । बीज से अङ्कुर पैदा होता है । पूर्व दिशा से सूर्य का उदय होता है ।

पाठ १७ : सम्बन्धार्थ

उदाहरण-वाक्य [षष्ठी विभक्ति का प्रयोग]—

१. यह राम की पुस्तक है और यह उसका विचार है = रामस्य पुस्तकमिदम् अयञ्च तस्य विचारः ।

२. क्या राम धन के निमित्त से काशी में रहता है = किं धनस्य हेतोः काश्यां वसति रामः ?

३. वह किस निमित्त से पढ़ता है = कस्य हेतोः सः पठति ?

४. कवियों में कालिदास श्रेष्ठ है = कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः ।

५. तुम्हारे और मेरे में यही अन्तर है = अयमेव आवयोर्विशेषः ।

६. मुझे भी पुण्य करना चाहिए = ममापि (मयापि) पुण्यं कर्तव्यम् ।

७. गीता आयुष्मती हो = गीतायाः आयुष्यं भूयात् ।

८. अध्ययन के पश्चात् वह पिता के सामने वृक्ष के नीचे बैठा है = पितुः पुरः सः वृक्षस्याधोऽध्ययनानन्तरं तिष्ठति ।

९. गाँव से दूर अथवा वृक्ष के समीप जाओ = ग्रामस्य दूरं (दूरे) वृक्षस्य निकटं वा गच्छ ।

१०. वह माता को (दुःखपूर्वक) स्मरण करता है = मातुः स्मरति सः ।

११. वह दिन में तीन बार खाता है = सः दिवसस्य त्रिर्भुङ्क्ते ।

१२. तुम्हारे लिए मैं सब प्रकार का कष्ट सहने को तैयार हूँ = तव कृते सर्वविधं कष्टं सोढुमुद्यतोऽस्मि ।

१३. मेरे सामने ही उसने उसे पीटा = मम समक्षमेव तेन सः ताडितः ।

१४. संजय देवदत्त के तुल्य है परन्तु अभिषेक की उपमा नहीं है = संजयः देवदत्तस्य (देवदत्तेन) तुल्यः (समः) परन्तु नास्ति उपमा अभिषेकस्य ।

१५. शिष्य गुरु का अनुकरण करता है = गुरोः (गुरुम्) अनुकरोति शिष्यः ।

१६. उसे इस नगर से गये हुए आज तीसरा महीना है = अस्मात् नगराद् गतस्य तस्य इदानीं तृतीयो मासः ।

१७. संदीप के पाण्डित्य से तुम अनभिज्ञ हो=संदीपस्य पाण्डित्यस्य (पाण्डित्ये) अनभिज्ञोऽसि त्वम् ।

१८. जगत् का कर्त्ता ब्रह्मा है = अस्ति जगतः कर्त्ता ब्रह्मा ।

१९. यह कृष्ण की कृति है = कृष्णस्य कृतिरियम् ।

२०. मेरा सोना और राम का जाना आकस्मिक है = मम शयनं रामस्य च गमनमाकस्मिकम् ।

नियम ५२—निम्न स्थलों में षष्ठी विभक्ति होती है (देखिए, पृ० ७६-८१)—(क) जिससे सम्बन्ध बतलाया जाए । (ख) हेतु, कारण आदि शब्दों के प्रयोग होने पर हेतु और हेत्वर्थ में । (ग) जिनसे बहुतों में से छांटा जाए । (घ) जिन दो चीजों में भेद (विशेष, अन्तर आदि शब्दों के द्वारा) सूचित किया जाए । (ङ) 'तव्यत्' आदि 'कृत्य' प्रत्ययों के प्रयोग होने पर कर्त्ता में । (च) आयुष्य, मद्र (हर्ष), भद्र, कुशल आदि शब्दों से जिसे आशीर्वाद दिया जाए । (छ) दक्षिणतः, उत्तरतः, उपरि, अधः, पुरः, पश्चात्, अग्रे, पुरस्तात् आदि शब्दों का प्रयोग होने पर उनका जिससे सम्बन्ध हो । (ज) दूर और समीप अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग होने पर उनका जिससे सम्बन्ध हो । (झ) दुःख-पूर्वक स्मरण करने के अर्थ में तदर्थक धातुओं से, जिसे स्मृत किया जाए । (ञ) दो बार (द्विः), तीन बार (त्रिः), सौ बार (शतकृत्वः) आदि जिससे संबन्धित हों । (ट) कृते (के लिए) और समक्षं (सामने) अव्ययों का जिससे सम्बन्ध हो । (ठ) तुल्य, सदृश, सम, संकाश (सदृश), तुला, उपमा आदि समानता सूचक शब्दों का प्रयोग होने पर उपमान में । (ड) जिसका अनुकरण (अनु+कृ), किया जाए । (ढ) किसी घटना के समय से लेकर अवधि बतलाने पर घटना के पात्र तथा घटना-सूचक कृदन्त में । (ण) अभिज्ञ (ज्ञाता), अनभिज्ञ आदि विशेषणों के कर्म में । (त) 'कृत्' प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग होने पर कर्म में और कर्म के न होने पर कर्त्ता में ।

अभ्यास—१७. बनारस के पास सारनाथ है । गीता का पुत्र राजा का स्मरण (दुःखपूर्वक) करता है । पिता के बार-बार मना करने पर भी उसके पुत्र ने अध्ययन छोड़ दिया । क्या तुम दिन में सौ बार गाली देते हो ? तुम्हारे सामने ही उसने बी. ए. की परीक्षा पास कर ली है । वह सभी शास्त्रों में पण्डित है परन्तु व्यवहार से अनभिज्ञ है । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सभी विश्वविद्यालयों में श्रेष्ठ है । विद्वानों

के लिए कौन सा विदेश है और प्रियवादियों के लिए कौन पराया है ? जिसके पास स्वयं बुद्धि नहीं है उसे कैसे ज्ञान दें ? मित्र मनीष ! यह तुम्हारे योग्य नहीं है । मोर का नृत्य किसे प्रिय नहीं है ? गुरुजनों के सामने छात्रों को मिथ्या नहीं बोलना चाहिए । गुरु और शिष्य में उतना ही अन्तर है जितना भगवान् और भक्त में । नदी के पुल के ऊपर और नीचे जल ही जल है ।

पाठ १८ : अधिकरण कारक

उदाहरण-वाक्य [सप्तमी विभक्ति का प्रयोग]-

१. देवदत्त मञ्च पर खेलता है = मञ्चे क्रीडति देवदत्तः ।

२. मोहन वृद्धावस्था में भी प्रातः पढ़ता है = वृद्धावस्थायामपि प्रातःकाले (प्रातः) पठति मोहनः ।

३. छात्रों में रमेश पटुतम है = छात्रेषु (छात्राणां) रमेशः पटुतमः ।

४. उसका मुझ पर स्नेह है = तस्य मयि स्नेहः ।

५. पुत्रवत्सल तुम्हारे में ऐसी कठोरता उचित नहीं है = पुत्रवत्सले त्वयि (पुत्रवत्सलस्य तव) ईदृशी कठोरता न उपयुज्यते ।

६. वह देश-सेवा और अध्ययन में लगा है = देशसेवायामध्ययने च व्यापृतः सः ।

७. तुम्हारे द्वारा वैसा करने पर और मेरे रक्षक होते हुए धर्म कार्य में विघ्न कहाँ = त्वया तथाऽनुष्ठिते मयि च रक्षितरि धर्मकार्ये विघ्नः कुतः ?

८. सूर्य के अस्त होने पर वे घर आये = सूर्येऽस्तङ्गते सति गृहं समायातास्ते ।

९. पुत्रों के रोते रहने पर भी वह सन्यासी हो गया = पुत्रेषु रुदत्सु (पुत्राणां रुदतां) सः संन्यस्तवान् ।

१०. राम के वन चले जाने पर भरत आये = रामे वनं गते आगतवान् भरतः (कर्तृ०) । रामेण वने गते आगतो भरतः (कर्म०) ।

११. गायों के (भविष्य में) दुहे जाते समय वह जायेगी = गोषु धोक्ष्यमाणासु सा गमिष्यति ।

१२. गायों के (अतीत काल में) दुहे जाते समय वह गया था = गोषु दुग्धासु सः गतः ।

१३. ज्यों ही आप आए त्यों ही घड़ा गिरा = प्रविष्टमात्रे एव भवति घटोऽपतत् ।

१४. वह चमड़े के लिए हाथी को मारता है = चर्मणि द्वीपिनं हन्ति सः ।

१५. उसने अपने शत्रु पर बाण फेंके = तेन स्वशत्रौ शराः क्षिप्ताः ।

नियम—५३ निम्न स्थलों में सप्तमी विभक्ति होती है (देखिये, पृ० ८१-८२)—(क) अधिकरण कारक में। (ख) समयबोधक शब्दों में। (ग) जिस समुदाय से छांटा जाए। (घ) स्निह, अभिलष्, अनुरञ्ज् (अनुरक्त होना) आदि प्रेम, आसक्ति विश्वास एवं आदरसूचक क्रियाओं के विषय में। (ङ) योग्यता अथवा उपयुक्तता आदि अर्थों वाले शब्दों के आधार में। (च) व्यापृत (किसी काम में लगा हुआ), आसक्त, व्यग्र (उतावला), तत्पर, कुशल, निपुण, साधु, प्रवीण, पटु, दक्ष आदि के विषय में। (छ) 'रहते हुए', 'होने पर', 'करने पर' इन अर्थों में। (ज) एक क्रिया के हो जाने पर जब दूसरी क्रिया का होना बतलाया जाये तो पहले प्रारम्भ होने वाली क्रिया (कृदन्त क्रिया) और कर्तृवाच्य के कर्त्ता में या कर्मवाच्य के कर्म में (यदि ऐसे वाक्यों से अनादर का भाव व्यक्त हो तो षष्ठी भी। जैसे—वाक्य नं०–९)। (झ) ज्यों ही, इतने ही में, उसी क्षण इन अर्थों में। (ञ) जिस फल के लिए कोई काम किया जाए (यदि प्रयोजन उस क्रिया के कर्म से युक्त हो)। (ट) जिसे लक्ष्य करके क्षिप् (फैंकना), अस् (फैंकना), मुच् (छोड़ना) आदि क्रियाओं का प्रयोग हो।

अभ्यास १८—कुमुद गृह-कला में चतुर है परन्तु पढ़ने में कमजोर है। मनोरमा सभी छात्राओं में दक्ष है। छात्र पुस्तकों में अनुरक्त होंगे। मेरे भोजन करते समय वर्षा हुई। जैसे ही पानी गिरा मैं घर पहुँचा। क्या आपकी मुझ पर पूर्ववत् कृपादृष्टि रहेगी? जिसने बाल्यावस्था में नहीं पढ़ा वह वृद्धावस्था में क्या पढ़ेगा? जो अध्ययन में निपुण हैं उनका सर्वत्र सत्कार होता है। आप मेरी बीमारी के विषय में चिन्ता न कीजिये। चमड़े के लिए मृग को मारना क्या हिंसा नहीं है? मैं नहीं जानता क्यों मेरे हृदय में तुम्हारे ऊपर विश्वास है। क्या किरण स्कूल में पढ़ती है?

पाठ १९ : पूर्वकालिक ('कर' या 'करके') वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. हम पुस्तकें पढ़कर चलेंगे = वयं पुस्तकानि पठित्वा चलिष्यामः।

२. वह स्नान करके जाती है = सा स्नानं कृत्वा (स्नात्वा) गच्छति।

३. राम फल खाकर गया—रामः फलं भुक्त्वा गच्छति स्म।

४. योद्धा शत्रुओं को जीतकर और बहुत से उपहार पाकर वापस आता है = योद्धा शत्रून् विजित्य (जित्वा) बहूनुपहारान् लब्ध्वा च निवर्तते।

५. वे तलवार लेकर युद्धस्थल में गए = ते खड्गानादाय युद्धभूमिमगच्छन्।

नियम—५४. पूर्वकालिक वाक्यों में एक क्रिया के होने पर दूसरी क्रिया का होना पाया जाता है। ऐसे वाक्यों में यदि दोनों क्रियाओं का कर्त्ता एक ही हो और

पूर्वकालिक क्रिया से 'कर' या 'करके' अर्थ निकलता हो तो पूर्वकालिक क्रिया ('कर' या 'करके') में 'क्त्वा' (त्वा) या 'ल्यप्' (य) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है।

अभ्यास—१९. कौत्स ने अध्ययन समाप्त कर गुरु से दक्षिणा लेने का आग्रह किया। सुरेश बी० ए० परीक्षा पास करके बम्बई में नौकरी करेगा। छात्र गुरु को प्रणाम करके परीक्षा देने जायेंगे। कौआ पानी पीकर उड़ गया। चोरों ने घर में घुसकर चोरी की परन्तु पुलिस ने उन्हें दौड़ाकर पकड़ लिया। राक्षसों को जीतकर श्रीराम सीता के साथ अयोध्या लौटे। प्रतिज्ञा करके कहो कि मैं सत्य बोलूँगा। क्या रमेश का पड़ोसी घर के सभी सदस्यों को रोता हुआ छोड़कर सन्यासी हो गया?

पाठ २० : विध्यर्थक ('चाहिए' आदि) वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['तव्यत्', 'अनीयर्' और 'यत्' प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. शिष्य को गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए (शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करे) = शिष्यः गुरोः आज्ञां पालयेत् (कर्तृ०)।
शिष्येण गुरोः आज्ञा पालनीया (कर्म०)।

२. उसे ऐसा वाक्य नहीं बोलना चाहिए = सः एतादृशं वाक्यं न वदेत् (कर्तृ०)।
तेन एतादृशं वाक्यं न वाच्यम् (कर्म०)।

३. मुझे गाँव जाना चाहिए = अहं ग्रामं गच्छेयम्। मया ग्रामः गन्तव्यः।

४. मुझे होना चाहिए = अहं भवेयम् (कर्तृ०)। मया भवितव्यम् (भाव०)।

५. सदा सत्कर्म करना चाहिए = सदा सत्कर्माणि कर्तव्यानि (करणीयानि)।

६. हमें निर्बलों की रक्षा करना चाहिए = अस्माभिः निर्बलाः रक्षणीयाः।

७. तुम्हें व्याख्यान देना होगा = त्वया व्याख्यातव्यं भविष्यति।

८. हमारे कर्त्तव्य कर्म बहुत हैं = अस्माकं कर्त्तव्यकर्माणि बहूनि सन्ति।

९. मुझे आज आपको क्या देना चाहिए = भवते मया अद्य किं देयम्।

१०. यह राजा स्तुति का विषय है = स्तुत्यः खलु असौ राजा।

नियम—५५. 'चाहिए' अर्थ में कर्तृवाच्य में 'विधिलिङ्' का, कर्मवाच्य और भाववाच्य में 'तव्यत्', 'अनीयर्' और 'यत्' प्रत्ययान्त क्रियाओं का प्रयोग होता है।

५६. कभी-कभी इनका प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है। (८)

५७. 'तव्यत्', 'अनीयर्' और 'यत्' प्रत्ययान्त क्रियाओं का लिङ्ग और वचन कर्मवाच्य में कर्म के अनुसार तथा भाववाच्य में सदा नपुं० एकवचन में होता है।

अभ्यास—२०. सभी को अपना काम समय पर पूरा कर लेना चाहिए। उसे हँसना चाहिए। गुरु के चरण पूजनीय हैं। उन्हें अपना पाठ पढ़ना चाहिए। हम सब देश की रक्षा करें। पूजनीय गुरु जी कहाँ जा रहे हैं? यह अवश्य करणीय कार्य कल अवश्य होना चाहिए। तृण की भी उपेक्षा नहीं करना चाहिए। क्या हमारे कुलपति प्रशंसा के योग्य हैं? उन दोनों को परीक्षा देना होगी। परीक्षा में प्रष्टव्य प्रश्न बहुत हैं, अतः हमें सभी प्रश्नों के उत्तर याद करना चाहिए।

पाठ २१ : तुलनात्मक (Degree) वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['तरप्' और 'तमप्' प्रत्ययों का प्रयोग]--

१. क. श्याम चतुर है = श्यामः पटुः अस्ति।

ख. श्याम से रमेश अधिक चतुर है = श्यामाद् रमेशः पटुतरः।

ग. राम सबसे अधिक चतुर है = सर्वेषु (सर्वेषां) रामः पटुतमः।

२. क. देवदत्त सुस्त था = देवदत्तः मन्दः आसीत्।

ख. देवदत्त से यज्ञदत्त सुस्त था = देवदत्तात् यज्ञदत्तः मन्दतरः आसीत्।

ग. सुरेश सबसे अधिक सुस्त था = सुरेशः सर्वेषु (सर्वेषां) मन्दतमः आसीत्।

३. रमेश से श्याम अधिक दुष्ट नहीं है = रमेशात् श्यामः दुष्टतरः नास्ति।

४. राम और सीता में सीता ही मृदु है = सीतारामयोः सीता एव मृदुतरा।

५. इन दोनों में कौन अधिक साधु है = अनयोः कः साधुतरः?

६. सभी छात्राओं में सीता सबसे अधिक योग्य है = सर्वासु छात्रासु (सर्वासां छात्राणाम्) सीता योग्यतमा अस्ति।

७. श्याम सबसे अधिक भारी, बुद्धिमान्, योग्य और चतुर है = सर्वेषु श्यामः गुरुतमः, बुद्धिमत्तमः, योग्यतमः, पटुतमः च अस्ति।

८. परीक्षा में पहले सरल प्रश्नों को ही हल करना चाहिए पश्चात् दूसरे प्रश्नों को = परीक्षायां पूर्वं सरलतमाः एव प्रश्नाः समाधेयाः तदनु अन्ये प्रश्नाः।

९. सभी देवों में राम को ही सर्वाधिक प्रशस्य जानो = सर्वेषु देवेषु राममेव प्रशस्यतमं जानीहि।

१०. आज सर्वाधिक बलवान् का ही राज्य है = अद्य प्रबलतमस्यैव राज्यम्।

नियम—५८. जब दो की तुलना में एक का अतिशय (उत्कृष्टता अथवा ह्रास) बतलाया जाता है, तो—(क) अतिशय-वाचक विशेषण में 'तरप्' (तर) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। (ख) जिसकी अपेक्षा अतिशय बतलाया जाता है उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। (ग) जब तुलनीय दोनों वस्तुओं का द्वन्द्व-समास हो तो उनमें सप्तमी का

द्विवचन होता है (४-५)। (घ) 'तरप्' प्रत्ययान्त विशेषण के लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं

५९. जब दो से अधिक की तुलना में एक का अतिशय बतलाया जाता है तो अतिशय-वाचक विशेषण में 'तमप्' (तम) प्रत्यय जोड़ा जाता है। (ख) जिनकी अपेक्षा अतिशय बतलाया जाता है उनमें 'षष्ठी' या 'सप्तमी' विभक्ति होती है। (ग) 'तमप्' प्रत्ययान्त विशेषण के लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं।

अभ्यास २१— सभी आम्रफलों में बनारसी आम मीठा होता है। भारतवर्ष सभी देशों में श्रेष्ठ है। मोहन श्याम से अधिक चतुर नहीं है। इन दोनों में कौन अधिक बुद्धिमान् है? राजा दशरथ की पत्नियों में कौशल्या सबसे बड़ी थी। सुरेश महेश से अधिक सरल स्वभावी है परन्तु पढ़ने में मृदु है। दमयन्ती सब स्त्रियों में सुन्दर होगी। गङ्गा और यमुना में गङ्गा का महत्त्व अधिक है। फूलों में शिरीष फूल अधिक कोमल होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी सभी व्याकरण के ग्रन्थों में प्रशस्य है। सुमन सभी छात्राओं में अधिक सुशील है।

पाठ २२ : प्रेरणात्मक (Causative) वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['णिच्' प्रत्यय का प्रयोग]--

१. (क) छात्र लेख लिखता है = छात्रः लेखं लिखति।

(ख) अध्यापक छात्र से लेख लिखवाता है = अध्यापकः छात्रेण लेखं लेखयति।

२. (क) राम कार्य करता है और पाचक भात पकाता है = रामः कार्यं करोति पाचकः च ओदनं पचति।

(ख) मैं राम से कार्य करवाता हूँ और पाचक से भात पकवाता हूँ = अहं रामेण (रामं) कार्यं कारयामि पाचकेन च ओदनं पाचयामि।

३. (क) देवदत्त गाँव जाता है = देवदत्तः ग्रामं गच्छति।

(ख) राम देवदत्त को गाँव भेजता है = रामः देवदत्तं ग्रामं गमयति।

४. (क) वह बैठता है = सः आस्ते।

(ख) तुम उसे बैठाते हो = त्वं तम् आसयसि।

५. वह श्याम को भात खिलाता है और मनीषा को रामायण पढ़ाता है = सः श्यामम् ओदनं भोजयति मनीषाञ्च रामायणं पाठयति।

६. श्याम छात्र के द्वारा गीता को गाँव भेजता है और स्वयं सोता है = श्यामः छात्रेण गीतां ग्रामं गमयति स्वयञ्च स्वपिति।

७. मैंने नौकर से बोझा ढुलवाया = अहं भृत्येन भारमवाहयम्।

८. दशरथ ने अपने पुत्र राम को वन भेजा=दशरथः स्वपुत्रं रामं वनमगमयत् ।

९. मित्र को घर में प्रवेश कराओ = मित्रं गृहं प्रवेशय ।

१०. गुरु छात्रों को वेद पढ़ायें = गुरुः छात्रान् वेदमध्यापयतु ।

११. तुम इसे क्यों नहीं पढ़ाते हो = त्वमिमं किमर्थं न पाठयसि ?

नियम—६०. प्रेरणात्मक वाक्यों में णिजन्त-क्रिया (देखिए, परिशिष्ट ३ तथा पृ० ७०) का प्रयोग होता है ।

णिजन्त क्रिया का प्रयोग करते समय कर्तृवाच्य में—(क) सामान्य रूप से प्रयोज्य-कर्त्ता (अणिजन्त क्रिया का कर्त्ता) में तृतीया, प्रयोजक-कर्त्ता (णिजन्त क्रिया का कर्त्ता) में प्रथमा, कर्म में द्वितीया और क्रिया प्रयोजक-कर्त्ता के अनुसार होगी । (ख) अकर्मक, गत्यर्थक, ज्ञानार्थक, भक्षणार्थक, शब्दकर्मक, परस्मैपदी 'दृश्' आदि कुछ धातुओं के होने पर प्रयोज्य-कर्त्ता में द्वितीया होगी । (ग) 'हृ' और 'कृ' धातुओं (आत्मनेपदी 'दृश्' भी) के होने पर प्रयोज्य-कर्त्ता में द्वितीया अथवा तृतीया दोनों विकल्प से हो सकती हैं । (घ) यदि कोई प्रयोजक-कर्त्ता किसी दूसरे प्रयोजक-कर्त्ता से प्रेरित होकर (प्रयोज्य-कर्त्ता से) कार्य कराता है तो द्वितीय प्रयोजक-कर्त्ता में द्वितीया न होकर (गत्यर्थक धातुओं के होने पर भी) तृतीया ही होगी ।

अभ्यास २२—मारीच रावण से सीता का अपहरण करवाता है । भगवान् सबको सुख देते हैं । मैंने अपने मित्र का विश्वविद्यालय में प्रवेश करवाया । शेर बालक को डराता है । तपस्वी तृणों से मृगों के बच्चों को तृप्त करते हैं । मन्त्री राजा से उसे धन दिलाता है । सुमन्त्र के द्वारा राम वन ले जाये जाते हैं । कौरव पाण्डवों को वन में भेजते हैं । माता बालक को चन्द्रमा दिखाती है । गुरु छात्र को शास्त्र पढ़ाता है । सूर्य कमलों को विकसित करता है । विश्वामित्र ने जनक की पुत्री के साथ राम का विवाह करवाया । पण्डित ग्रामवासियों को कथा सुनाता है । साधु सादगी से जीवन का निर्वाह करते हैं । क्या अध्यापक ने छात्र से कार्य करवाया ?

पाठ २३ : निमित्तार्थक वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग]—

१. क्या वे शत्रु को मारने के लिए शिव की उपासना करते हैं = किं ते शत्रुं हन्तुं (हननाय) शिवमुपासन्ते ।

२. गीता भोजन के लिए प्रयत्न करती है = गीता भोक्तुं (भोजनाय) यतते ।

३. तुम यह कार्य नहीं कर सकते हो = त्वमिदं कार्यं कर्तुं न शक्नोषि ।

४. मैं विद्याभ्यास के लिए काशी जाऊँगा परन्तु भाग्य में लिखे हुए को कौन मिटा सकता है = अहं विद्याभ्यासं कर्तुं (करणाय) काशीं गमिष्यामि परन्तु ललाटे लिखितं प्रोञ्छितुं कः समर्थः ?

५. वन जाने की इच्छा है = वनं गन्तुम् (गमनाय) इच्छास्ति ।

६. यह जाने का समय है = गन्तुं (गमनाय) वेला इयमस्ति ।

७. वह बोलने का इच्छुक है = सः वक्तुकामः अस्ति ।

८. मैं जीतने के लिए पर्याप्त हूँ = अहं जेतुं पर्याप्तः (अलम्) अस्मि ।

नियम—६१. निम्न स्थलों में धातुओं से 'तुमुन्' (तुम्) प्रत्यय जुड़ता है—(क) निमित्तार्थक 'को' या 'के लिए' अर्थ प्रकट होने पर । (ख) 'जाने वाला है' या 'जाने को है' इस अर्थ के होने पर । (ग) काल-वाचक (समय, वेला आदि) शब्दों के होने पर । (घ) पर्याप्त, समर्थ, अलम् आदि शब्दों के होने पर ।

नोट—'तुमन्' प्रत्ययान्त अव्यय और मुख्य क्रिया का कर्त्ता एक ही होता है ।

अभ्यास—२३ पुत्र की रक्षा करने के लिए वह युद्ध-स्थल में गया । तुम यह कार्य नहीं कर सकते हो । वे जल में स्नान करने नदी के किनारे गये । मैं कालेज जाने को तैयार हूँ । छात्र पुस्तकें खरीदने के लिए बाजार जाते हैं । यह समय पढ़ने का है, खेलने का नहीं । शायद आप और कुछ कहना चाहते हैं । पिता जी कुम्भ-स्नान के लिए प्रयाग गये । तुम गाने के लिए कहाँ जाओगे ? वैज्ञानिक शस्त्र समस्त संसार को नष्ट करने में समर्थ हैं । क्या कल तुम्हारा नौकर काम करने के लिए नहीं आया ? मैं जानना चाहता हूँ कि यह पत्र किसने लिखा है ? क्या तुम व्याकरण पढ़ना चाहते हो ? पसीने से नहाई हुई भी वह नहाने के लिए तालाब में उतरी ।

पाठ २४ : हेतुहेतुमद्भावात्मक (Conditional) वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['यदि', 'चेत्' और 'तर्हि' का प्रयोग]—

१. यदि तुम मेरी बात सुनोगे तो जीवन में सुखी रहोगे = यदि मम वचनं शृणोसि त्वं तर्हि जीवने सुखी भविष्यसि ।

२. यदि वह यज्ञ करेगा तो अनर्थों का विनाश अवश्य होगा = यदि यज्ञं करोति सः तर्हि अनर्थानां विनाशो भविष्यति ।

३. यदि मैं वहाँ जाऊँगा तो वहाँ उस कन्या को देखूँगा = यदि तत्र गच्छाम्यहं तर्हि तत्र तां कन्यकां द्रक्ष्यामि ।

४. यदि वह तुम्हारा मित्र है तो तुम्हारा काम अवश्य करेगा = यदि सः तव मित्रमस्ति तर्हि तव कार्यम् अवश्यं करिष्यति ।

५. यदि तुम वहाँ रहते हो तो वहाँ के विश्वविद्यालय की स्थिति का वर्णन करो = यदि त्वं तत्राधिवससि तर्हि तत्रत्यस्य विश्वविद्यालयस्य स्थितिं वर्णयस्व ।

६. यदि ऐसी बात है तो तुम जाओ = एतादृशी वार्ता चेत्तर्हि गच्छ ।

७. यदि तुम यहाँ आते तो मैं तुम्हारे साथ चलता = यदि त्वम् अत्र आगच्छः तर्हि अहं त्वया सह व्रजेयम् ।

८. यदि राम परिश्रम करता तो परीक्षा में पास होता = यदि रामः परिश्रमम् अकरोत् तर्हि परीक्षायां सफलतामलभत (लभेत) ।

नियम ६२—हेतुहेतुमद्भाव वाले वाक्यों में निम्न नियम याद रखें—(क) पूर्वार्द्ध में 'यदि' अथवा 'चेत्' का और उत्तरार्ध में तर्हि शब्द का प्रयोग । (ख) दोनों वाक्यों से भविष्यत्काल का अथवा पूर्वार्द्ध से वर्तमान काल का और उत्तरार्ध से भविष्यत् काल का बोध हो तो पूर्वार्ध में वर्तमान काल की क्रिया का और उत्तरार्ध में भविष्यत् काल की क्रिया का प्रयोग । कभी-कभी दोनों में भविष्यत् काल की क्रिया भी होती है ।[1] (ग) यदि दोनों वाक्यों से वर्तमान काल का बोध हो तो दोनों में वर्तमान काल की क्रिया का प्रयोग । (घ) यदि पूर्वार्द्ध से वर्तमान काल का और उत्तरार्ध से अथवा दोनों वाक्यों से 'आज्ञा' आदि का बोध हो तो पूर्वार्द्ध में वर्तमानकाल की क्रिया का और उत्तरार्ध में लोट् या विधिलिङ् का प्रयोग । (ङ) यदि दोनों वाक्यों में भूतकाल का बोध हो तो दोनों में भूतकाल की क्रिया का प्रयोग ।

अभ्यास २४—यदि तुम प्रातः पुस्तक पढ़ोगे तो परीक्षा में अवश्य पास होगे । यदि वह आता है तो मैं जाऊँगा । यदि सूर्योदय होने पर तुम भगवान् का स्मरण करोगे तो जीवन में सुखी रहोगे । यदि ऐसी बात है तो तुम अपना काम करो । यदि श्याम अध्ययन करता तो परीक्षा में प्रथम श्रेणी से पास होता । मनोज यदि वहाँ जाये तो मेरा भी सामान लेता जाये । यदि तुम प्रतिदिन समाचार पत्र पढ़ोगे तो संसार की खबरें जान लोगे । यदि तुम आओगे तो मुझे अवश्य यहाँ देखोगे । मैं गर्मी की छुट्टियों में यदि पहाड़ की यात्रा पर जाता तो स्वास्थ्य-लाभ करता ।

पाठ २५ : 'करने वाला' अर्थवाचक शब्द

उदाहरण-वाक्य ['ण्वुल्' और 'तृच्' प्रत्ययों का प्रयोग]—

१. इस गाँव में एक उपासक रहता है = ग्रामेऽस्मिन्नेकः उपासको निवसति ।

१. वस्तुतः ऐसे वाक्यों में 'लृङ्' लकार के प्रयोग का विधान है । जैसे—सुवृष्टिरचेदभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत् । यदि सः आगमिष्यत्तर्हि तेन सह अगमिष्यम् ।

२. लेखक और लेखिका सेवक के साथ जाते हैं = लेखकः लेखिका च (लेखकौ) सेवकेन सह गच्छतः ।

३. शत्रु प्राणों के घातक हैं = शत्रवः प्राणानां घातकास्सन्ति ।

४. जगत् का कर्त्ता, धर्ता और संहर्ता ईश्वर है = जगतः कर्त्ता, धर्ता, संहर्ता च ईश्वरोऽस्ति ।

५. क्या दाता ज्ञाता को धन देता है = दाता ज्ञात्रे धनं ददाति किम् ?

६. धन का हर्ता जाता है = गच्छति धनस्य हर्ता ।

नियम ६३—'करने वाला' अथवा 'वाला' अर्थ में 'ण्वुल्' (अक) अथवा 'तृच्' (तृ) प्रत्ययों का प्रयोग होता है । (कभी-कभी 'ण्वुल्' का प्रयोग 'तुमुन्' की तरह क्रिया के रूप में भी होता है । जैसे—रामं दर्शको द्रष्टुं वा याति) । इनके लिङ्ग, विभक्ति और वचन विशेष्य के अनुसार होते हैं तथा इनके कर्म में षष्ठी होती है ।

अभ्यास २५—पाठिकायें स्कूल में छात्राओं को व्याकरण पढ़ा रही हैं । रसोईया खाना पका रहा है और भोजन करने वाले भोजन कर रहे हैं । इस मुहल्ले में पुस्तकों के विक्रेता अधिक हैं परन्तु खरीदने वाले कम । वे सभी गायक के साथ गाना गायेंगे । आजकल देश के नियामक पथभ्रष्ट हो रहे हैं । इस विश्वविद्यालय के छात्र खूब अध्ययन करने वाले हैं । धन का हरण करने वाला चोर भाग गया । वेद पापों को नाश करने वाला है । क्या इस नगर में कोई अच्छा गवैया नहीं है ?

पाठ २६ : भाव-वाचक संज्ञायें

उदाहरण-वाक्य ('ल्युट्', 'घञ्' और 'क्तिन्' प्रत्ययों का प्रयोग)—

१. तुम्हारा कहना सत्य है = तव कथनं सत्यमस्ति ।

२. उस सभा में भाषण दो = तस्यां सभायां भाषणं कुरु ।

३. मेरा उस समय जाना और उसका उस समय रोना आवश्यक था = तदा मम गमनं तस्य तदा रोदनं चावश्यकमासीत् ।

४. क्या अधिक पढ़ना और अधिक खेलना ठीक नहीं है = अधिकं पठनम् अतिक्रीडनञ्च वरं नास्ति किम् ?

५. सदाचार ही परम धर्म है = सदाचार एव परमो धर्मः ।

६. त्याग की महिमा अचिन्त्य है = त्यागस्य महिमा अचिन्त्यः ।

७. सर्वत्र सोत्साह प्रवृत्त होना चाहिये = सर्वत्र सोत्साहेन प्रवर्तितव्यम् ।

८. इस राजा की कीर्ति दिगन्तव्यापिनी है = अस्य राज्ञो दिगन्तव्यापिनी कीर्तिः ।

९. मेरी धर्म में बुद्धि और कर्म में प्रवृत्ति है = अस्ति बुद्धिः धर्मे प्रवृत्तिश्च कर्मणि मम ।

नियम ६४—भाव-वाचक संज्ञायें बनाने के लिए 'ल्युट्' (अन), 'घञ्' (अ) और 'क्तिन्' (ति) प्रत्यय धातु में जुड़ते हैं । 'ल्युट्' प्रत्ययान्त शब्द नपुं०, 'घञ्' प्रत्ययान्त शब्द पुं० और 'क्तिन्' प्रत्ययान्त शब्द स्त्री० में हमेशा होते हैं । इन शब्दों के साथ कर्म में षष्ठी होती है ।

अभ्यास २६—संसार से मुक्ति मिलना कठिन है । क्या आज आपका भाषण होगा ? सुरेश की कीर्ति और रीता की धर्म में बुद्धि एक साथ हुई । यहाँ सबका प्रवेश संभव नहीं है । सुख और दुःख में समभाव रखना चाहिए । भगवान् का भजन करो और बच्चों का भरण पोषण । बुद्धि से धन और धन से सुख प्राप्त होता है । सभी जीवों का मरण अवश्यंभावी है । आज सभा में कौन सा प्रस्ताव रखा जायेगा ? इस विषय में पुनःविचार अपेक्षित है । मनीषा दूध का पान करती है और उसकी बुद्धि निर्मल है ।

पाठ २७ : सर्वनाम और विशेषण

उदाहरण-वाक्य [एक, द्वि, और बहुवचन का विशेष प्रयोग]—

१. वह प्रभु तुम दोनों की रक्षा करे = सः प्रभुः वाम् (युवाम्) पातु ।

२. तुम यह पुस्तक लो और राम यह साड़ी ले = गृहाण त्वमेतद् पुस्तकं, गृह्णातु रामश्चेमां शाटिकाम् ।

३. जब तक सीता वह तैल-चित्र लाती है तब तक तुम वह मकान देखो = तावत्त्वम् अदः गृहं पश्य यावत् सीता तत्तैलचित्रमानयति ।

४. इस कक्षा में कितने छात्र हैं = कति छात्रास्सन्ति कक्षायामस्याम् ?

५. सुनीता कहती है कि जो जाता है वह पुनः लौटकर नहीं आता है = सुनीता कथयति यद् यो गच्छति न पुनरागच्छति सः ।

६. क्या यह छात्रयुगल पुस्तक पढ़ता है = किमिदं छात्रयुगलं पुस्तकं पठति ?

७. पति-पत्नी अथवा माता-पिता जाते हैं = दम्पती पितरौ वा गच्छतः ।

८. दोनों बालक खेलते हैं = उभौ बालकौ क्रीडतः ।

९. हम सब दो नेत्रों से देखते हैं = वयं नेत्रद्वयेन (नेत्राभ्याम्) पश्यामः ।

१०. पूज्य गुरुदेव जाते हैं = गच्छन्ति पूज्याः गुरवः ।

११. मैं मगध देश गया, अङ्ग देश नहीं = अहं मगधानगच्छम्, नाङ्गदेशम् ।

१२. ब्राह्मण पूज्य हैं, शूद्र नहीं = ब्राह्मणाः पूज्याः, न शूद्राः ।

१३. उस दारा (स्त्री) को यह अक्षत दो = तेभ्यो दारेभ्यः इमानक्षतान् देहि ।

१४. यहाँ चार कन्यायें और बीस बालक हैं = सन्ति चतस्रः कन्याः, विंशतिः बालकाश्चात्र ।

१५. घड़ा द्रव्य है और शब्द प्रमाण = घटो द्रव्यम्, शब्दश्च प्रमाणम् ।

१६. कोई भी पुरुष अथवा कोई भी स्त्री कुछ भी पढ़े = कश्चित् (कश्चन, कोऽपि वा) पुरुषः काचित् (काचन, कापि वा) स्त्री वा किञ्चिदपि (किञ्चन; किमपि वा) पठतु ।

नियम—६५. अस्मद् और युष्मद् शब्दों के वैकल्पिक रूपों (मा, नौ, नः, मे तथा त्वा, वाम्, वः, ते) का प्रयोग वाक्य के आरम्भ में, छन्द के चरण के प्रारम्भ में; च, वा, ह, अह, एव आदि अव्ययों के साथ में तथा सम्बोधन के तुरन्त बाद में नहीं होता है ।

६६. इदम् और एतद् से 'यह' का अर्थ-बोध होता है परन्तु 'एतद्' शब्द का प्रयोग अत्यन्त निकटवर्ती के लिए होता है ।

६७. तद् और अदस् से 'वह' का अर्थ-बोध होता है परन्तु 'तद्' शब्द का प्रयोग अत्यन्त दूरवर्ती (परोक्ष) के लिए होता है ।

६८. 'यत्' शब्द का प्रयोग जब 'कि' के अर्थ में किया जाता है तो वह नपुं० एकवचन में ही होता है ।

६९. जब 'यत्' और 'तत्' शब्द का सापेक्ष सर्वनाम के रूप में प्रयोग होता है तो 'यत्' और 'तत्' के लिङ्ग, विभक्ति और वचन एक जैसे होते हैं ।

७०. नेत्र, पैर, हाथ आदि जोड़े वाले शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से द्विवचन में होता है ।

७१. आदर अर्थ में 'एक' व्यक्ति के लिए भी बहुवचन का प्रयोग होता है ।

७२. राज्य, देश, जनपद आदि के वाचक शब्दों में बहुवचन का प्रयोग होता है; यदि 'नगर' या 'देश' शब्द अन्त में हो तो एकवचन ।

७३. जाति-बोधक शब्दों से यदि जाति का ही अर्थ बतलाना अभीष्ट हो तो बहुवचन अथवा एकवचन दोनों का प्रयोग होगा ।

७४. युगल आदि के साथ एकवचन होता है ।

अभ्यास २७—यह लेखनी किसकी है ? वह कन्या और वह बालक कहाँ गये ? इस स्कूल में अध्यापकों की और छात्रों की संख्या कितनी है ? क्या छात्र-युगल खेलते हैं ? कौन माता-पिता अपने बच्चों से प्रेम नहीं करते हैं ? यह स्त्री किसकी पत्नी है ? इस नगर में बीस विद्यालय तथा पाँच महाविद्यालय हैं । कौन

भी पुस्तक लाओ और कोई सा भी पाठ पढ़कर सुनाओ। वर्षा में नदियाँ बालू बहाकर ले गईं। अश्विनीकुमार ज्ञान देते हैं। इन फूलों को देखो। सुशीला न तो पैरों से चलती है और न कानों से सुनती है। ये कन्यायें अप्सराओं के तुल्य हैं। कितने वर्षों तक वह जीवित रहा? आप ही इस विषय में प्रमाण हैं। जो स्त्री आती है वही यहाँ काम करती है।

पाठ २८ : 'होने पर' अर्थ वाले वाक्य

उदाहरण-वाक्य ['कृत्' प्रत्यय एवं 'सप्तमी-विभक्ति' का प्रयोग]—

१. राम के वन चले जाने पर दशरथ ने प्राण छोड़े = रामे वनं गते दशरथः प्राणान् त्यक्तवान् (कर्तृ०)। रामेण वने गते दशरथेन प्राणाः त्यक्ताः (कर्म०)।

२. सूर्य के अस्त हो जाने पर छात्र घर गये = सूर्ये अस्तङ्गते छात्राः गृहम् अगच्छन्।

३. हम स्त्रियों के पुस्तकें पढ़ लेने पर वह आया = अस्मासु स्त्रीषु पुस्तकानि पठितवतीषु आगतः सः।

४. क्या मेरे द्वारा गीता पढ़ लेने पर और उसके द्वारा उपनिषदें पढ़ लेने पर पिता जी आए = किं मया गीतायां पठितायां तेन च उपनिषत्सु पठितासु पिता आगतः?

५. उन स्त्रियों के प्रस्थान कर जाने पर मैं बोला = प्रस्थितासु तासु स्त्रीषु उक्तवानहम्।

६. भोजन करके घर की ओर हमारे आते हुए होने पर छात्र दिखाई दिये = भोजनं कृत्वा अस्मासु गृहं प्रति आगच्छत्सु सत्सु दृष्टाः छात्राः।

७. मेरे सेवा करने पर सभी प्रसन्न हुए = मयि सेवमानायां सर्वे प्रहृष्टाः।

८. आए हुए देवदत्त ने अध्ययन प्रारम्भ किया = आगतेन देवदत्तेन अध्ययनं प्रारब्धम्।

नियम—७५. (क) जब पूर्वकालिक वाक्य तथा उत्तरकालिक वाक्य के कर्त्ता भिन्न-भिन्न हों और पूर्वकालिक क्रिया से 'हो जाने पर' या 'हो चुकने पर' अर्थ निकलता हो तो पूर्वकालिक क्रिया में 'क्त'-'क्तवतु', 'शतृ'-'शानच्' आदि प्रत्ययों का प्रयोग होगा [देखिए, पाठ १८-१६]। (ख) यदि ऐसे वाक्यों में एक ही कर्त्ता का दो बार उल्लेख किया गया हो तो पूर्वकालिक वाक्य का भाव कर्त्ता के विशेषण

के रूप में प्रयुक्त होगा और तब उत्तरवाक्य के कर्तृवाच्य होने पर दोनों में प्रथमा होगी। कर्मवाच्य होने पर दोनों में तृतीया होगी, सप्तमी नहीं। (८)

अभ्यास २८—अनीता के पढ़ लेने पर गीता आई। उन स्त्रियों के सो जाने पर चोर आये। खेत में किसानों द्वारा कार्य कर लेने पर उसका मालिक आया। अध्यापक द्वारा कक्षा में पाठ पढ़ा लेने पर रमेश घर गया। विश्वविद्यालय में मेरे द्वारा पुरस्कार प्राप्त करने पर सभी छात्र प्रसन्न हुए। मेरे द्वारा उत्तर-पुस्तिकायें लिख लेने पर निरीक्षक महोदय गये। गाती हुई छात्राओं ने नाचना प्रारम्भ किया। खेलकर जाते हुए मुझे अध्यापक ने बुलाया। क्या सिनेमा की सभी टिकटें बिक जाने पर मैं खिड़की पर पहुँचा?

भाग : ३ : निबन्ध[1] (Composition)

(१) काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयः

अस्माकं देशे अनेके महाविद्यालयाः विश्वविद्यालयाश्च सन्ति परं काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयः सर्वान् अतिशेते। अयं विश्वविद्यालयः न केवलं भारतस्य अपितु समस्तसंसारस्य प्रख्याततमेषु विश्वविद्यालयेषु एकः। अत्र कला-विज्ञान-वाणिज्य-संगीत-

---

१. 'नि + बन्ध् = निबन्ध' (अच्छी तरह से बाँधना)। किसी विषय पर परिमार्जित भाषा में स्वतः परिपूर्ण क्रमबद्ध विचारों के लेखन को 'निबन्ध' कहते हैं। अतः—(१) वर्णित विषय की पूर्णता, (२) विचारों की क्रमबद्धता तथा (३) भाषा की परिमार्जितता—ये तीन मुख्य बातें निबन्ध में होती हैं। इसके लिए जरूरी है कि—(क) भाषा-शैली सरल, सरस, अर्थ-गम्भीर, भावानुरूप, स्वाभाविक, व्याकरण से शुद्ध, प्रवाहपूर्ण, सुभाषित-लोकोक्ति-अलङ्कार आदि से अलङ्कृत, तथा पुनरुक्ति-क्लिष्टता-संदिग्धता-अनावश्यक विस्तार आदि दोषों से रहित हो। (ख) निबन्ध के प्रारम्भ में प्रभावोत्पादक संक्षिप्त प्रस्तावना (इसमें विषय-निर्देश किया जाता है। प्रस्तावना प्रारम्भ करने के कई ढङ्ग हैं। जैसे—विषय की परिभाषा से, उपयोगिता से, सूक्ति या कहावत से, दृश्यवर्णन से, घटना-विशेष से, आदि) हो। (ग) अन्त में सारगर्भित संक्षिप्त उपसंहार तथा मध्यभाग में विषय के विविध पहलुओं का विस्तृत विवेचन हो। निबन्धों को विषय-तत्व की दृष्टि से सामान्यतः निम्न तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **वर्णनात्मक** (Descriptive)—इसमें मुख्यतः वर्णनीय विषय (प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक वस्तुओं) के बाह्य स्वरूप का स्थूल वर्णन किया जाता है। जैसे—गङ्गा, वाराणसी, गौ, दीपावली, विद्यालयः आदि। (२) **विवरणात्मक** (Narrative)—इसमें ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक घटनाओं, जीवन-चरित एवम् आत्मकथा आदि का क्रमिक विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इसमें वर्णन की अपेक्षा क्रमिक-विकास पर विशेष ध्यान रखा जाता है। जैसे—नौका-विहारः, महात्मागान्धी, पुस्तकस्य आत्मकथा, आदि। (३) **विचारात्मक** (Reflective)—इसमें तर्क एवं युक्तियों के द्वारा प्रतिपाद्य विषय की उपयोगिता और अनुपयोगिता का विचार किया जाता है। इसमें विचारों की मुख्यता होती है। विचारात्मक निबन्ध कई प्रकार के होते हैं। जैसे—**भावात्मक** (सत्यम्, अहिंसा, धैर्यम् आदि), **समीक्षात्मक** (गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति, उपमा कालिदासस्य) आदि।

प्राच्यविद्याविज्ञान-समाजविज्ञान-कृषि-चिकित्सा-विधि-प्रोद्योगादयः बहवः संकायाः विद्यन्ते येषु विभिन्नविद्याः पाठयितुं महीयांसः लब्धप्रतिष्ठाः श्रेष्ठविद्वांसः सन्ति। कलासंकाये महिलामहाविद्यालये प्राच्यविद्याविज्ञान-संकाये च संस्कृतस्य अध्यापनं भवति। महामनसा मदनमोहनमालवीयेन प्रचलितशिक्षाप्रणालीं दूषितां दृष्ट्वा उत्तमशिक्षाप्रसाराय काश्याम् अयं हिन्दू-विश्वविद्यालयः संस्थापितः।

अस्य शिलान्यासः १९१६ ईसवीयवत्सरे लार्ड-हार्डिङ्गमहोदयस्य करकमलाभ्यां सम्पन्नः। डा० सरसुन्दरलालः आप्रारम्भात् १९१८ ईसवीयपर्यन्तं, ततः डा० पी० एस० शिवस्वामी-अय्यरः १९१९ ईसवीयपर्यन्तं, ततश्च महामना मदनमोहनमालवीयाः १९३९ ईसवीयपर्यन्तं कुलपतिपदम् अलंकृतवान्। तदनन्तरं अन्ये विश्वविश्रुताः महोदयाः (डा० राधाकृष्णन् सर्वपल्ली, आ० नरेन्द्रदेवप्रभृतयः) विश्वविद्यालयस्य कुलपतिपदं विभूषितवन्तः। सम्प्रति·····महोदयः कुलपतिपदं प्रसाधयति।

अयं राष्ट्रियः विश्वविद्यालयः नगराद् बहिः विशालया परिखया परिवेष्टितः वर्तते। अस्मिन् विश्वविद्यालये बहवः अवान्तर-महाविद्यालयाः सन्ति यत्र विविधविद्याप्रवीणाः अध्यापनकलानिपुणाश्च द्विसहस्राधिकाः अध्यापकाः अध्यापयन्ति। अत्रत्यया मनोरमया वैज्ञानिक-शिक्षापद्धत्या सुव्यवस्थितनिवासादिव्यवस्थया च आकृष्टाः छात्राः दूरदेशतोऽपि आगत्य पठन्ति, विविधोपाधीन् लभन्ते च। अत्र छात्राणां संख्या पञ्चविंशतिसहस्राधिका वर्तते। अत्र बृहत्पुस्तकालयः, क्रीडाङ्गणानि, छात्रावासाः, शिवाजी-हालनामक-मल्लशाला, औषधालयाश्च सन्ति। अत्र न केवलमध्यापनस्यैव अपितु देशभक्तेः, समाजसेवायाः, सैनिकशिक्षायाः, सदाचारस्य, व्याख्यानकलायाः, मल्लविद्यायाः च शिक्षायाः समुचितः शोभनश्च प्रबन्धो वर्तते। प्रतिरविवासरं मालवीयभवने प्रातः गीतोपदेशोऽपि प्रकाण्डविद्वद्भिः दीयते। प्रायः सर्वे छात्राः हृष्टपुष्टाः विकसितवदनाः भद्रवेषाः सदाचारपरायणाश्च सन्ति।

विश्वविद्यालयस्य प्रधानद्वाराद्बहिः महामनसो मालवीयस्य खड्गासना एका सुरम्या मूर्तिः विराजते। अत्र यत्र-तत्र बहूनि सुपुष्पितानि उद्यानानि, आकर्षकाणि सुरम्यविशालभवनानि च विलसन्ति। सुप्रसिद्धं बिड़लामंदिरं वर्तते यत्र विश्वनाथस्य शोभना मूर्तिः शोभते। अस्य मंदिरस्य दर्शनाय देशस्य सर्वभागेभ्यः जनाः समायान्ति। बालिकानां कृते स्नातक-परीक्षां यावत् पृथक् महाविद्यालयः आवासाश्च वर्तन्ते। स्नातकोत्तरकक्षायां तु प्रायः सर्वेषां सहैव शिक्षा-प्रबन्धो विद्यते।

इत्थं प्राच्य-पाश्चात्यविद्याकेन्द्रं काशी-हिन्दूविश्वविद्यालयः चतुर्दिक्षु विख्यातः। अत्र पठन्तः छात्राः गौरवमनुभवन्ति, उपाधिं लब्ध्वा निर्गताः स्नातकाश्च स्वस्वकार्येषु सफलतया व्यापृताः भवन्ति। अतः अस्य उत्तरोत्तरविकासाय मर्यादापरिरक्षणाय च साहाय्यं सर्वेषां पवित्रं कर्त्तव्यमस्ति।

(२) गङ्गा (भागीरथी)

भगवती गङ्गा (गम् + गन् + टाप्) भारतदेशस्य पुण्यतमा पतितपावनी एका दिव्या नदी। इयं हिमालयपर्वतस्य 'गंगोत्तरी' नामकस्थानात् प्रभवति। ततः प्रयागे यमुना-सरस्वतीभ्यां सम्मिलिता सती तस्मिन्-तस्मिन् स्थाने अनेकनदीभिश्च मिलित्वा प्रवहन्ती कलकत्तासमीपे गंगासागरसंगमे समुद्रे निमज्जति।

इयं गङ्गा त्रिधात्मना स्वर्गं, पातालं मर्त्यलोकञ्च व्याप्नोति तस्मात् **'त्रिपथगा'**; स्वर्गादवतरन्ती इयं शिवजटासु कञ्चित्कालमवरुद्धा पुनश्च भगीरथप्रार्थनया सगरसन्ततिसमुद्धाराय ततोऽवतरन्ती पृथ्वीलोके **'भागीरथी'**; हिमवतः प्रभूतत्वात् **'हैमवती'** इति चोच्यते। जह्नोः आश्रमस्य मध्यादधस्तादपसरन्ती इयं **'जाह्नवी'** इत्यपि व्यपदिश्यते। हिमवतः ज्येष्ठपुत्री गङ्गा आसीत्। सा ब्रह्मणः शापवशात् पृथिव्यामापतिता। तत्र शांतनुराज्ञः पत्नी जाता। तया तत्र अष्टौ पुत्राः जाताः, तेषु भीष्मः एकः। इत्थमियं गङ्गादेव्याः मूर्तरूपत्वात् 'गङ्गा' इति। एवमेव अन्यान्यपि बहूनि नामानि पुराणेषु शास्त्रान्तरेषु च समुपलभ्यन्ते।

अस्याः तीरे भूयांसि महानगराणि सन्ति। तेषु हरिद्वारम्, प्रयागः, वाराणसी, पाटलिपुत्रम् ('पटना' इति), भागलपुरम्, कलिकाता ('कलकत्ता' इति) विशेषतः उल्लेखनीयानि। हरिद्वारे वाराणस्याञ्च अस्याः सौन्दर्यं वाचामगोचरतां याति। क्षेत्रादिसेचने विद्युदादिसमुत्पादने च गङ्गा अस्माकं भूयांसमुपकारं करोति। अस्याः जलम् अतिपवित्रम्, निर्मलं स्वास्थ्यकरं च। इदं चिराय रक्षितमपि कीटादिना विकृतिं न प्राप्नोति। अस्याः तीरे निवासेन, जलपानेन, स्नानेन, वायुसंस्पर्शेन च महान् स्वास्थ्यलाभो भवति, पापानि च नश्यन्ति। अतः प्रतिवर्षम् असंख्याः धार्मिकजनाः हरिद्वार-प्रयाग-काशी-प्रभृतीनिगङ्गातीर्थस्थानानि स्नानाय गच्छन्ति। अस्याः प्रमुखतीर्थस्थानस्थतटभागेषु बहवः मनोहराः घट्टाः सन्ति यत्र मनोरञ्जनप्रियाः बहवः जनाः नौकाविहारादिकं कुर्वन्ति, तटस्थं रमणीयतां च पश्यन्ति। समये-समये अस्याः तटेषु बहूत्र महान्तः उत्सवाः आयोज्यन्ते।

एवम्प्रकारेण गङ्गानदी इहलोके परलोके च उभयत्र हितावहा। अतः समुचितमेवोक्तं देवीभागवते—

> गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
> मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

(३) वाराणसी (काशी)

भारतदेशस्य उत्तरप्रदेशे वाराणसी नगरी प्राचीनतमं तीर्थस्थानम्। केचन असी-(अस्सी) वरुणानद्योर्मध्ये स्थितत्वात अस्याः नाम **'वाराणसी'** ति व्यवहरन्ति। इयं

नगरी **'काशी'** नाम्ना अपि प्रसिद्धा वर्तते। लोकभाषायाम् अस्याः नाम **'बनारस'** इत्यप्यस्ति। अनेकेषु प्राचीनग्रन्थेषु अस्याः महिमा उपलभ्यते। इयं गङ्गायाः वामतटे धनुषाकारेण विराजते।

इयं नगरी कदा स्थापिताऽभूत् इति निश्चेतुं न शक्यते। पुराणानुसारेण इयं भगवता शंकरेण स्वनिवासाय निवसतां च मुक्तिप्रदानाय त्रिशूलस्योपरि स्वयं स्थापिता। जनता अद्यापि विश्वसिति यद् भगवान् शंकरः अत्रैव निवसति। अतः योऽत्र पार्थिवं शरीरं त्यजति सः भगवतः कृपया तारकमंत्रबलेन च सद्यः मुक्तिं प्राप्नोति। 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' इति सिद्धान्तस्तु अस्याः आध्यात्मिकं महत्त्वं प्रतिपादयति।

अत्र जगत्प्रसिद्धं विश्वनाथस्य सुवर्णमयं मन्दिरम्, अन्नपूर्णादेव्या मन्दिरम्, संकटमोचननामकं हनुमतो मन्दिरम्, हिन्दूविश्वविद्यालये नवीनं विश्वनाथमन्दिरम्, संकटामन्दिरम्, नवदुर्गाणां मन्दिराणि, कालभैरवमन्दिरम्, पार्श्वनाथजैनमन्दिरम्, निकटवर्तिनि सारनाथे जैन-बौद्ध-हिन्दुमन्दिराणि च प्रसिद्धतमानि सन्ति। उक्तमन्दिरातिरिक्तानि अन्यानि अपि विशालमन्दिराणि संतिष्ठन्ते, लघुमन्दिराणां का गणना। भगवती विन्ध्यवासिनी अष्टभुजी देवी समीपस्थे विन्ध्याचले विराजते। इत्थं नगरी इयं समस्तधर्माणामेव केन्द्रीभूता दृश्यते। पतितपावनी मोक्षप्रदायिनी च गङ्गा अत्र भक्तानां श्रेयसे प्रवहति।

गङ्गायाः वामतटे बहवः मनोहराः घट्टाः सन्ति। तेषु च पंचगङ्गा-मणिकर्णिका-दशाश्वमेध-हरिश्चन्द्र-तुलसीघट्टाः प्रसिद्धतमाः। दशाश्वमेधघट्टे तु सर्वदा यात्रिकाणां समवायो दृश्यते, यत्र अनेके स्त्रीपुरुषाः प्रतिदिनमागत्य प्रातः स्नानपूजादिकं सायं च कथा-कीर्तनादिश्रवणं कुर्वन्ति। मणिकर्णिका-हरिश्चन्द्रघट्टयोः दाहसंस्कारः काशीलाभाय (मुक्तिलाभाय) सर्वदैव प्रचलति। पंचगङ्गायां कार्तिकमासे, दशाश्वमेधे माघमासे, अस्सीघट्टे च वैशाखमासे, गङ्गास्नानं विशेषफलदायकम्। तुलसीदासस्य निवासस्थानत्वात् तुलसीघट्टस्यापि महत्त्वं सर्वजनप्रसिद्धम्। श्रूयते अत्र तुलसीघट्टे श्रीरामचरितमानसस्य रचना अभवत्। इमां नगरीं परितः पञ्चक्रोशी परिक्रमार्थं सुप्रसिद्धा[1]।

वाराणसी भारतस्य सुप्रसिद्धं पुरातनं विद्यापीठमासीत्। इदानीमपि अत्र काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः काशीविद्यापीठश्च इमे विश्वविद्यानां केन्द्ररूपेण त्रयो विश्वविद्यालयाः विलसन्ति। अन्येऽपि संस्कृतस्य आङ्ग्लभाषायाश्च बहवः विद्यालयाः महाविद्यालयाश्च सन्ति। अत्रत्यानां पण्डितानां देशे विदेशे च सर्वत्र ख्यातिरस्ति। इत्थमस्याः शैक्षिकगौरवमपि न न्यूनम्—

संक्षेपेण इयं नगरी भारतीय-संस्कृतिकेन्द्रभूता, यतोऽत्र सर्वधर्म-सम्प्रदायादीनां संस्थानानि यत्र तत्र समवलोक्यन्ते । अस्या गौरवं सौष्ठवं च वैदेशिकानामपि हृदयम् आवर्जयति । अतो धन्या इयं विरञ्चिरचना काशी । शङ्कराचार्येण उक्तम्—

काशी धन्यतमा विमुक्तिनगरी सालङ्कृता गङ्गका
तत्रेयं मणिकर्णिका सुखकरी मुक्तिर्हि तत् किङ्करी ।
स्वर्लोकस्तुलितः सदैव बिबुधैः काश्या समं ब्रह्मणा
काशी क्षोणितलेस्थिता गुरुतरा स्वर्गो लघुः खे गतः ॥

(४) भगवान् बुद्धः

संसारे भगवतो बुद्धस्य नाम को न जानाति । परमात्मनः दशावतारेषु भगवतो बुद्धस्य नवमं स्थानम् । सार्ध-द्विसहस्रसंवत्सरपूर्वं भारतस्योत्तरकोशलेषु कपिलवस्तु-नाम्न्यां नगर्यां लुम्बिनीवने वैशाखपूर्णिमायां भगवान् बुद्धः स्वजन्मना भारतभुवमलं-कृतवान् । अस्य माता 'मायादेवी' पिता च गणानामधिपतिः शाक्यवंशीयो महा-राजः 'शुद्धोदनः' । अस्य माता प्रसवात् सप्तमे दिने स्वर्गं गता । अतोऽस्य पालनं विमाता 'प्रजावती' अकरोत् । अस्य नाम सर्वार्थसिद्धिकरः 'सिद्धार्थः' आसीत्, परन्तु बोधिज्ञानप्राप्त्यनन्तरं 'बुद्ध' नाम्ना विख्यातोऽभवत् ।

अस्य जन्मकाले एव ज्योतिर्विद्भिः फलादेशः कृतः यदयं महापुरुषः राज्यादिसुखं परित्यज्य वने तपश्चरित्वा च स्वधर्मं समस्ते भूमण्डले प्रसारयिष्यति । अतः दैवज्ञ-प्रबोधितो राजा पुत्रवियोगभिया संसारस्य सर्वान् रमणीयान् पदार्थान् आनाय्य तं तथा अरञ्जयत् यथा सः 'किं दुःखम्' इति ज्ञातुं न शक्नुयात् । अल्पे एव वयसि सः सर्वासु विद्यासु पारङ्गतोऽभवत् । समस्तसुखसाधनैः परिवृतमपि तं राजकुमारं संसारात् विरक्तं वीक्ष्य पिता तस्य परिणयम् अन्वर्थनाम्न्या राजकुमार्या यशोधरया सह अकरोत् । सा अचिरेणैव कालेन 'राहुल' नामानं पुत्रमजनयत् ।

दैवप्रेरणया परिभ्रमणकाले सिद्धार्थः जराजर्जरितसर्वाङ्गं वृद्धम्, रोगाक्रान्तगात्रं रुग्णम्, श्मशानं नीयमानं मृतपुरुषम्, प्रशान्तचित्तं सौम्यमूर्तिं सन्यासिनं च दृष्ट्वा नितान्तदीर्णवैराग्यः अभवत् । सः एकदा स्वनिश्चयानुसारम् अर्धरात्रौ स्तनन्धयं पुत्रं मनोरमां पत्नीं च सुषुप्त्यवस्थायां परित्यज्य सारथिना सह 'कन्थक'नामकम् अश्वमारुह्य महाभिनिष्क्रमणमकरोत् । मार्गे सारथये स्वाभरणादीनि दत्त्वा स्वाभि-प्रायं च प्रकटीकृत्य प्रत्यावर्तयत । अथ वनाद्वनं परिभ्रमन् घोरं तपः अतपत् । पश्चात् 'गया' नगर्यां वटमूले चिरं तपस्यन् दिव्यज्योतिः अलभत । ततः परं सः 'बुद्ध' इति नाम्ना सः वटवृक्षश्च 'बोधिवृक्ष' नाम्ना प्रख्यातोऽभवत् ।

अथ लब्ध-ज्ञानज्योतिः सः विश्वकल्याणाय सर्वप्रथमं सारनाथे (वाराणसीसमीपे)

धर्मचक्रप्रवर्तनमकरोत् । पश्चात् ग्रामाद् ग्रामं परिभ्रमन् धर्मं चोपदिशन् अने-कान् भिक्षुसंघान् विहारांश्च आस्थापयत् । पञ्चचत्वारिंशत् वर्षाणि तथा कुर्वन् 'देवरिया' जनपदस्य 'कुशीनगरे' अशीतिवयस्कः सः महापरिनिर्वाणं प्राप्नोत् । भारत-वर्मा-चीन-लंका-जापान-नेपालप्रभृतिदेशेषु अद्यापि तेनोपदिष्टधर्मस्य प्रभावः प्रसारश्च दृश्येते । अद्य बौद्धधर्मः अन्ताराष्ट्रियतां प्राप्तः । अस्य मुख्योपदेशाः पञ्चशीलादि-पदेन व्यपदिश्यन्ते । 'अहिंसा, सत्यम्, अचौर्यम्, ब्रह्मचर्यम्, मद्यमांसादित्यागः इति **पंचशीलाः** । दुःखम्, दुःखसमुदयः, दुःखनिरोधः, दुःखनिरोधमार्गः, इति **'चत्वारि आर्यसत्यानि'** ।

(५) महामना मदनमोहनमालवीयः

श्रीमद्भगवद्गीतानुसारेण ये केचन अलौकिकशक्तिसम्पन्नाः महापुरुषाः महीतले समवतरन्ति ते ईश्वरस्यैव अंशभूता भवन्ति । एतादृशाः जगद्वन्दनीयाः महापुरुषाः सर्वेष्वेव देशेषु समये-समये प्रादुर्भवन्ति । एवंविधेषु आधुनिकेषु महापुरुषेषु भारतीय-संस्कृतेः समुपासकस्य हिन्दुधर्मैकजीवनस्य महामनसो मदनमोहनमालवीयस्य स्थानं परममहत्त्वपूर्णम् अनुकरणीयञ्च ।

अस्य जन्म १८६१ ईसवीये दिसम्बरमासस्य २५ तारिकायां प्रयागसमीपवर्तिनि ग्रामे ब्राह्मणकुले अभवत् । अस्य पूर्वजानां राजस्थानान्तर्गत-मालवदेशनिवासित्वाद् अयं 'मालवीयः' इति उपाख्यातः । अस्य पिता पं० 'ब्रजनाथमालवीयः' विद्वान् सरसकथावाचकश्च आसीत् । अस्य विवाहः मिर्जापुरवासिन्या कुन्दनदेव्या सह जातः । मालवीयेन प्रारम्भिकशिक्षा पितृपादमूले गृहे एव प्राप्ता । अग्रे कलकत्ता-विश्व-विद्यालयात् १८८४ ईसवीये बी० ए० परीक्षा समुत्तीर्णा । निर्धनताकारणा-दस्याध्ययनकाले बहुविघ्नानि समायातानि । अर्थाभावात् १८८४ ईसवीयादारभ्य १८८७ पर्यन्तं राजकीयोच्चविद्यालयेऽयं शिक्षकपदं स्वीकृतवान् । पश्चात् १८९१ ईसवीये सः विधिपरीक्षां (वकालत = L. L. B.) समुत्तीर्य प्राड्विवाक-कार्यं (वकालत) प्रयागे प्रारभत । परन्तु देशसेवायै वाक्कीलव्यवसायं परि-त्यक्तवान् । मालवीयः प्रतिदिनं श्रीमद्भागवतस्य भगवद्गीतायाश्च स्वाध्याय-मकरोत् ।

कालाकाङ्करस्य राज्ञः अनुरोधेन 'दैनिक-हिन्दुस्तान' नामकं समाचारपत्रं सम्पादितवान् । किञ्चित्कालानन्तरम् अयं बह्वीः पत्र-पत्रिकाः तत्तत्काले नैपुण्येन समपादयत्; यथा—'इण्डियन-यूनियनपत्रम्', 'हिन्दी-साप्ताहिकपत्रम्', 'अभ्युदयपत्रम्', दैनिकं 'लीडर' नामकं आङ्ग्लपत्रम्, मासिकपत्रिका 'मर्यादा' च । १९०२ ईसवीये उत्तरप्रदेशीयविधानसमितेः तदनु १९०९ ईसवीये केन्द्रीयविधानसमितेश्च सदस्य-

त्वरूपेण शासनेन सम्मानितः। तदानीं पदमिदं प्रायः आङ्गलदेशवासिनां कृते एव सुरक्षितमासीत्, सदस्यानां कार्यं च परामर्शप्रदानमात्रमासीत्। परं तत्पदासीनः मालवीयः शासननीतिसमालोचनमपि यथावसरं निर्भयमकरोत्। १९०९ ईसवीये लाहोरकांग्रेससभायाः तथा १९१२ ईसवीये दिल्ली-कांग्रेसाधिवेशनस्य च सभापतिपदमभूषयत्। १९१९ ईसवीये 'रोलट-एक्ट' इत्यस्य विरोधं गान्धिमहोदयेन सह कृतवान्। देशसेवापरायणः अयं द्वि-त्रिवारं कारागारवासमपि असहत। अयं हिन्दू-महासभा-गोसेवासंघ-सनातनधर्म-महासभादिधार्मिक-सामाजिक-संस्थानां संस्थापकः संचालकश्च आसीत्। एवं कालक्रमेण अस्य कीर्तिः सर्वासु दिक्षु प्रासरत्।

अस्य महानुभावस्य नीतिः प्राधान्येन पक्षपातरहिता, देशभक्तिप्रधाना, विदेशवस्तुपरित्यागात्मिका, भारतीयसंस्कृतिसम्पोषिका, स्वतन्त्रताप्रवणा, प्राचीनपरम्परानुसारं शिक्षाप्रादानोन्मुखी चासीत्। प्रचलितशिक्षाप्रणालीं दास्यमनोवृत्तिवर्धिनीं विचिन्त्य प्राचीन-संस्कृतिसंवर्धनाय राष्ट्रियभावनासमुद्बोधनाय च काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयं १९१६ ईसवीये फरवरीमासस्य चतुर्थतारिकायां शुभमूहूर्ते संस्थापितवान्। देशनायकः अयं १९४६ ईसवीये नवम्बरमासस्य द्वादशतारिकायां भौतिकं शरीरम् अत्यजत्, न यशःशरीरम्।

एवं महामना यावज्जीवनं सततं सामाजिकक्षेत्रे, धार्मिकक्षेत्रे, राजनीतिक्षेत्रे शिक्षाक्षेत्रे च चिरस्मरणीयां सेवामकरोत्। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयः तु अस्य एकः कीर्तिस्तम्भ एव, अन्येऽपि बहवः आसन् किन्तु विस्तरभिया तदुल्लेखः परित्यज्यते। किं बहुना, मालवीयः महान् राजनीतिज्ञः, समाजसेवकः, देशभक्तः, शिक्षाप्रसारकः, आध्यात्मपरायणः निर्भयश्चासीत्। अस्य कीर्तिकौमुदी दिग्दिगन्तव्यापिनी।

(६) महात्मागान्धिः

को हि भारतीयो न जानाति महात्मानं गान्धिमहोदयम्। एतेन भारतीयानां स्वतन्त्रतायै समुन्नतये च महान्ति अद्भुतानि च कार्याणि कृतानि। सर्वेषु अभूतपूर्वा सफलता च प्राप्ता। अस्य स्मरणं राम-कृष्ण-बुद्धादीनामिव क्रियते।

गान्धिमहोदयस्य जन्म १८६९ ईसवीयवर्षस्य अक्टूबरमासस्य द्वितीयतारिकायां गुर्जरप्रदेशे (गुजरातप्रान्ते) पोरबन्दरनगरे अभवत्। अस्य पितुर्नाम 'श्रीकाबागान्धिः', परमधर्मिष्ठायाः मातुश्च 'पुत्तलीबाई' इति। अस्य पिता राजकोटराज्यस्य प्रधानमन्त्री आसीत्। एतेन धार्मिकशिक्षा स्वमातुरेव प्राप्ता। प्राचीनपरम्परानुसारम् अस्य विवाहः बाल्यकाले त्रयोदशवर्षीये वयसि श्रीमत्या कस्तूरबया सह समपद्यत। विवाहानन्तरं सः मैट्रिकुलेशनपरीक्षामुत्तीर्य विधि (Law)-शिक्षायै आङ्गलदेशं गतः। तत्र चतुर्षु वर्षेषु तां शिक्षां समाप्य तदुपाधिं (Bar-at-Law = L. L. B.)

लब्ध्वा च सः स्वदेशं प्रत्यागतः। अत्र आगत्य प्राड्विवाककार्यं (वकालत) प्रारभत सः, किन्तु तद्व्यवसायं छलकपटमयमनुभूय तस्माद् उपारमत। एकदा सः दक्षिण-अफ्रीकादेशे गतः। तत्र भारतीयानां कष्टबहुलां शोचनीयां दशां विलोक्य तेषां समुद्धाराय महद् आन्दोलनं समचालयत्। अयं खलु गान्धिमहोदयस्य राजनीतौ प्रवेशस्य प्रथमोऽवसरः। तत्र सफलतां प्राप्य सः प्रायः विंशतिवर्षानन्तरं १९१४ तमे वर्षे पुनः स्वदेशं प्रत्यागतः। अत्रागत्यैव अयं मोतीहारीमण्डले निवसतां नीलव्यवसायिनां गौराङ्गानाम् अत्याचारेभ्यः पीडितां जनतां समुद्धर्तुं सर्वप्रथममान्दोलनं समचालयत्। ततश्च अमृतसरे 'जलियांवालाबाग' नामकस्थानस्य दारुणनरसंहारघटनातः अतिद्रवितचित्तः सः शासनविरोधे 'असहयोगान्दोलनं' प्रारभत। तदा सः शासनेन सहयोगिभिः सह कारागारवासं दण्डितः।

१९३० ईसवीये लवणसत्याग्रहे सः पुनः सहयोगिभिः सह कारागारवासं प्रापितः। १९३१ ईसवीये सः लण्डने आयोजितायां गोलमेज-परिषदि (Second Round Table Conference) कांग्रेसप्रतिनिधिरूपेण गतः, परन्तु सफलतां न अवाप्नोत्। १९३७ ईसवीये अस्य प्रेरणया राष्ट्रियमन्त्रिमण्डलैः खादीप्रोत्साहनम्, ग्रामसुधारः, मादकद्रव्याणां प्रतिषेधः, भारतीयशिक्षापद्धतेः प्रसारः, हरिजनेभ्यः विविधसुविधाप्रदानम् इत्यादीनि कार्याणि साधितानि। १९४२ ईसवीये 'भारतं त्यजत' (Quit India) इति प्रसिद्धं महत्त्वपूर्णञ्च अन्तिमम् आन्दोलनं प्रारब्धम्। पुनरपि सः सहयोगिभिः सह कारागारे निक्षिप्तः। अन्ततः १९४७ तमे वर्षे अगस्तमासस्य पञ्चदशतारिकायां पूर्णस्वतन्त्रतां प्रदाय वैदेशिकघोषणया वैदेशिकशासनं समाप्तिमगच्छत् देशश्च स्वतन्त्रोऽभवत्। किन्तु तदानीं दुर्भाग्येन देशस्य हिन्दुस्तान-पाकिस्तानरूपेण द्विधा विभाजनं जातम्। दैवदुर्विपाकादेव १९४८ तमे वर्षे जनवरीमासस्य त्रिंशत्तारिकायां यवनपक्षपातदुष्टेन 'नाथूरामगोडसे' नामकेन यूना विडलाभवने पञ्चवादनकाले प्रार्थनावसरे सः गुलिकया हतः। एवं भारतभाग्यभानुः अकाले एव अस्तं गतः। महात्मनो गान्धिनः स्थानस्य पूर्तिरसम्भवैव सर्वथा।

गान्धिमहोदयेन सञ्चालितस्य स्वतन्त्रतासंग्रामस्य सफलतायाः मूलमंत्रः सत्य-अहिंसात्मकास्त्रप्रयोग एव। अयं मानवेतिहासे असाधारणः सफलः अभूतपूर्वः प्रयोगः आसीत्। यतः दुर्दान्तैः प्रबलारिभिः सह अस्त्रविहीन-देशस्य कृते नान्या गतिरासीत्। अतः एवंविधः सफलः प्रयोगः अस्य देवत्वम् असंशयं प्रकटयति। ततः प्रभृति भारतीयाः परमप्रेम्णा एनं 'बापू', 'राष्ट्रपिता' चेति पदद्वयेन सम्मानयन्ति। वस्तुतः शरीरेण विरहितोऽपि सः अहिंसादिसिद्धान्तैः अमरत्वं प्राप्तः। तस्य यशःशरीरं न केवलं भारतवर्षे एव अपितु समस्तेऽपि विश्वे अभिव्याप्तमस्ति।

(७) महाकविः कालिदासः

कविकुलगुरुः कालिदासः न केवलं भारतस्य अपितु समस्तविश्वस्य महाकविषु मूर्धन्यतया परिगण्यते। संस्कृतसाहित्ये अस्य प्रतिभा सर्वातिशायिनी। पाश्चात्य-समालोचकाः अपि एनं शेक्सपीयरोपमं स्वीकृत्य सम्मानयन्ति। यथा चोक्तम्—

'पुरा कवीनां गणना-प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

कालिदासस्य जन्मस्थानमधिकृत्य त्रीणि मतानि सन्ति—(१) केचिदेनं बङ्गदेशीयं मन्यन्ते यतः अस्य 'कालिदास' इति नामैव अभिव्यनक्ति यदयं 'कालि' समाराधनेन कविप्रतिभां लब्धवान्। बङ्गेषु देवी-काली प्राधान्येन पूज्यते। अद्यापि आषाढस्य प्रतिपदि कालिदासोत्सवः महतायोजनेन सम्पाद्यते। (२) अपरे तु एनं काश्मीरवासिनं मन्यन्ते। अत्र कुमारसंभवे हिमालयवर्णनम्, मेघदूते अलकापुर्यादिवर्णनम्, अभिज्ञानशाकुन्तले मारीच्याश्रमोपकण्ठे काश्मीरप्रदेशानुहारि उपत्यकावर्णनं चैव प्रमाणम्। (३) अन्ये तु एनं उज्जयिनीनिवासिनं मन्यन्ते। एतन्मतसाधकं मेघदूते अवन्तिदेशस्थोज्जयिन्याः, तत्समीपस्थप्रदेशानां (दशार्ण-मन्दसौर-विदिशा-भेलसादीनां), क्षिप्रायाः भगवतो महाकालस्य च वर्णनम्। अन्यच्च पण्डितसमाजे एतदपि प्रचलितं यत् कालिदासः स्वजन्मना काश्मीरभुवमलङ्कृत्य प्रौढे वयसि उज्जयिनीमागतः।

एवमेव कालिदासस्य समयोऽपि विवादग्रस्तः। अत्रापि चत्वारि मतानि प्राधान्येन प्रचलितानि सन्ति—(१) 'मालविकाग्निमित्र' नाटकस्य अनुरोधेन शुङ्गवंशीयस्य राज्ञः अग्निमित्रस्य कालः (ईसापूर्वद्वितीयशताब्द्याम् अर्धशतकम्) उपरितना सीमा, तथा सम्राजः हर्षस्य आश्रितेन बाणेन सबहुमानं कालिदासनाम वर्णितम्, तदनुसारेण सप्तमशताब्दीतः प्राक् षष्ठशताब्दी अधस्तना सीमा पर्यवस्यति। एतदभ्यन्तरे एव केचन कालिदाससमयं ईसापूर्वद्वितीयशताब्दीं मन्यन्ते। (२) अपरे जनश्रुतिमनुसृत्य राज्ञः विक्रमादित्यस्य नवरत्नेषु अन्यत अमिमं विक्रमसंवत्सरारम्भे वर्तमानं कालिदासं प्रथमशताब्द्याम् स्थापयन्ति। (३) अन्ये तु सम्राजः विक्रमादित्यापरनामकस्य द्वितीयचन्द्रगुप्तस्य समकालिकस्य कालिदासस्य समयं चतुर्थशताब्दीं स्वीकुर्वन्ति। अत्र युक्तिरियमुपस्थाप्यते यत् कलिदासस्य काव्ये यत् वर्णनमुपलभ्यते तत् प्रायो अस्मिन्नेव राज्ञि संगच्छते। (४) मेक्समूलरप्रभृतिभिः कालिदासस्य कालः षष्ठशताब्दी निर्णीयते।

अस्य प्रारम्भिकजीवने एका किंवदन्ती बद्धमूला प्रचलति। अयं साधारणब्राह्मणकुलोत्पन्नः अल्पे एव वयसि पितृविहीनः परगृहे पालितोऽभवत्। अशिक्षितः अयमेकदा यस्य वृक्षस्य यस्याः शाखायाः अग्रभागं अधिरुढः आसीत् तामेव छेत्तुं प्रारभत। तं तथा दृष्ट्वा 'महामूर्ख' इति च मत्वा शास्त्रार्थे कयाचित् विद्योत्तमया राज-

कुमार्या तिरस्कृताः विद्वांसः तं तस्याः प्रासादं प्रतीकारभावनया नीतवन्तः। तत्र प्रवृत्ते च शास्त्रार्थे छलेन पराजितायाः तस्याः तत्प्रतिज्ञानुसारम् एतेन सह परिणयं कारितवन्तः। पश्चात् प्रथमसमागमे एव उष्ट्रस्थाने 'उट्र' शब्दं प्रयुञ्जानं तं महामूर्खं मत्वा सा तं गृहात् निस्सारितवती। एवं स्त्रिया पराभूतः कालिदासः कालान्तरे महाकालीप्रसादेन सिद्धिं कविप्रतिभां च लब्ध्वा स्वगृहमागतः। यदा सः पत्नीं द्वारकपाटमुद्घाटयितुं सम्बोधितवान् तदा सा अन्तःस्थिता एव प्रत्यवदत् **'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः'** ततः सः तद्वाक्यस्य प्रतिपदमधिकृत्य क्रमशः **कुमारसंभवम्** (अस्त्युत्तरस्यामित्यादि), **मेघदूतम्** (कश्चित् कान्ताविरहेत्यादि) **रघुवंशम्** (वागर्थाविवेत्यादि) चेति त्रीणि काव्यानि अरचयत्। अन्यान् अपि ग्रन्थान् निर्मितवान्। यथा—**अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् मालविकाग्निमित्रम्** चेति त्रीणि नाटकानि तथा **ऋतुसंहारनामकमेकं** मुक्तककाव्यम् च। तत्र काव्येषु रघुवंशमहाकाव्यम्, नाटकेषु अभिज्ञानशाकुन्तलम्, खण्डकाव्येषु (Lyrics) मेघदूतं सुविख्यातम्।

अस्य रचनासु—(१) ध्वनिप्राधान्यं तत्प्रयुक्तं चार्थगाम्भीर्यम्; (२) अलङ्कारविषयाणां सर्वसाधारणानुभवगोचरता तत्प्रयुक्तमुपमादिवैशिष्ट्यम्, यथोक्तम्—**'उपमा कालिदासस्य'**; (३) प्रसाद-माधुर्यवैशद्यम्; (४) शब्दस्य अर्थानुरूपता; (५) वैदर्भी-रीति-रस-विषयानुकूलछन्दसां प्रयोग; (६) भावप्रवणता; (७) कला-कौशलम्; (८) प्रकृतिवर्णन-चरित्रचित्रणनैपुण्यम्; (९) सहजसौन्दर्यनिरूपणम्; (१०) भारतीय-संस्कृतिसम्पोषकत्वञ्च बाहुल्येन दृश्यते। अन्येऽपि बहवो विशेषाः सन्ति किन्तु निबन्धविस्तरभिया नोल्लिख्यते। किं बहुना, यादृशं चारुत्वं रचना-चमत्कृतिर्वा अस्य ग्रन्थेषु उपलभ्यते तत् प्रायो अन्यत्र दुर्लभम्। उदाहरणार्थं त्रीणि पद्यानि प्रस्तूयन्ते—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥ रघुवंशः॥

इदं किल व्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं च इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां क्षेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥ शाकुन्तलम्॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नुदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य॥ मेघदूतम्॥

किं बहुना, कवेरप्रतिमं वैदुष्यं विचार्य श्रीकृष्णेन कविना सम्यगेवोक्तम्—

अस्पष्टदोषा नलिनीव हृद्या हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः।
प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी॥

(८) सत्सङ्गतिः

(सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् = सतां तु सङ्गः सकलं प्रसूते)

'सतां = सज्जनानां सङ्गतिः = संपर्कः (सम्बन्धः) 'सत्सङ्गतिः'। यो यादृशैः पुरुषैः सह सङ्गतिं करोति सः तादृशेव भवति। सज्जनानां सङ्गत्या जनः सज्जनो विनम्रश्च भवति, असज्जनानां च सङ्गत्या सः दुष्टः उद्धतश्च भवति। यथा स्पर्शमणेः संसर्गात् लौहमपि स्वर्णायते तथैव सज्जनसंसर्गात् निर्गुणोऽपि सकलगुणोपेतः सज्जनश्च जायते। यथोक्तम्—

काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्॥

अपि च—**'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति'**। तथा च—**'कीटोऽपि सुमनः संगाद् आरोहति सतां शिरः'**। तस्मात् सतामेव सङ्गतिर्विधेया न कदाप्यसताम्। सतां संगत्या बुद्धिर्निर्मला भवति। असत्संपर्केण तु मलिनीभवति। निर्मलायां बुद्धौ कार्याकार्यविवेकः प्रस्फुटति, मलिनायां तु सोऽपगच्छति। अतः उक्तम्—

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह। न दुष्टजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥

अस्मिन् जगति न कोऽपि एकाकी संसरति। अनेकैः परिचितापरिचितैः सह मिलित्वैव व्यवहरन्ति जनाः। संसारयात्रायां विविधक्रियाकलापेषु परसङ्गतिरनिवार्या। मनुष्यः सामाजिकः प्राणी। तस्मात् परसंपर्कं विना सः जीवनयात्रां न कर्तुं शक्नोति। सर्वस्यैव मित्राणि शत्रवश्च भवन्ति। एवं स्थिते यदि सः सद्भिः संपर्कं करोति तर्हि तस्य जीवनं सुन्दरं सफलं च भवति। अन्यथा महान्ति कृच्छ्राणि आयान्ति, अकीर्तिश्च प्रसरति। इत्थं च मानवस्योपरि सङ्गतेरनिवार्यः प्रभावः। बालकस्योपरि तु विशेषरूपेण, तस्य कोमलस्वभावत्वात् बुद्धेरपरिपाकाच्च। सः यादृशैः सह पठिष्यति, गमिष्यति, क्रीडिष्यति, खादिष्यति, वर्त्स्यति येभ्यश्च शिक्षां ग्रहीष्यति तादृशेव भविष्यति। यथोक्तं [illegible]—**"यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।"** तत्र दुर्जनानां संसर्गेण अवर्णनीयाः ज्ञाताः अज्ञाताः वा हानयः भवन्ति। यथा—बुद्धिभ्रंशः, सच्चरित्रतानाशः, सुहृज्जनवियोगः, सम्पत्तिह्रासः, सद्गुणोच्छेदः, कुलमालिन्यम्, सर्वत्राकीर्तिप्रसारः, सर्वानादरभाजनता इत्यादयः। सत्यमेव कथितम्—

दुर्जनः परिहर्त्तव्यः विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्।
मणिनः भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥

अपि च—हीयते हि मतिस्तात! हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥

तथा च—**'असतां सङ्गदोषेण को न याति रसातलम्।'** अतः सज्जनैः सह

एव मैत्रीम्, विचारविमर्शम्, आहारादिव्यवहारं च कुर्यात्, न जातु असज्जनैः सह। उक्तञ्च भवभूतिना सत्सङ्गतिमाहात्म्ये—'सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।' किन्नाम तद् हितं यत्सङ्गतिर्न वितनुते। भर्तृहरिणा नीतिशतके अभिहितम्—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्, मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं, सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

अपि च—

पापन्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्॥

अतः समुन्नतिम् इच्छता जनेन सदा सतामेव सङ्गतिर्विधेया न कदाप्यसताम्। उक्तमपि—

सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीञ्च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्॥

किमधिकम्, सत्सङ्गतिः सर्वान् कामान् पूरयति; यथाहि—

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते स कामधुक् कामितमेव दोग्धि।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेवधत्ते सतां तु सङ्गः सकलं प्रसूते॥

(९) सदाचारः

(आचारः परमो धर्मः = शीलं परं भूषणम् = आचारहीनान्न पुनन्ति वेदाः)

सतां=सज्जनानाम् आचारः 'सदाचारः' अथवा सत्=सम्यक् आचारः 'सदाचारः'। मानवस्य उन्नतिसाधकेषु गुणेषु सदाचारस्य प्रथमं स्थानम्। तस्य सम्पूर्णमहिमा शब्दैर्वर्णयितुं न शक्यते। यत्र सदाचारः तत्र सत्यवादिता, विनम्रता, धार्मिकता, जितेन्द्रियता, अलोलुपता, निष्कपटता अन्ये च सर्वे सद्गुणाः मित्रभावेन निवसन्ति। **'सदाचारश्च परमो धर्मः'**। आहारनिद्रादयः प्राणिमात्रसाधारणाः भावाः किन्तु सदाचारधर्म एव विशिनष्टि मानवम् अन्येभ्यः प्राणिभ्यः। यथोक्तम्—

आहारनिद्राभयमैथुनं च समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

सदाचारिणः समाजं देशं विश्वं च समुन्नेतुं पारयन्ति। ते केनापि प्रलोभनेन न्यायात् पथः न विचलन्ति अपितु सर्वदैव सर्वेषां कल्याणं निस्स्वार्थं कर्तुं प्रयतन्ते। एतादृशानां महापुरुषाणां समाजे महान् प्रभावो भवति, सर्वत्र सर्वदा च विपुलः समादरः। सदाचारिणः जनानां मूर्धनि तिष्ठन्ति, न कुत्रापि कदापि वा उपहासास्पदानि निन्दाभाजनानि वा भवन्ति। अतएवोक्तम्—**'शीलं परं भूषणम्।'** तथा

दुष्प्रवृत्तयः सदाचाराभावमूलाः, सर्वे गुणाः सदाचारमूलाश्च । सत्स्वपि अर्थबलादिषु सदाचारेण विना तस्य सर्वं शून्यं भवति । यथोक्तम्—'वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च । अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः ।' अपि चाङ्गल-भाषायाम्—

'If health is lost, something is lost.
If wealth is lost nothing is lost.
If character is lost everything is lost.'

सदाचारविहीनाः निरर्गलं (स्वच्छन्दम्) कुमार्गे विचरन्तः इहलोके परलोके च दुःखभाजः भवन्ति । यथा सर्वशास्त्रनिष्णातो महाबलवान् रावणः सवंशः काल-कवलितः, स्वर्गं गतोऽपि राजा नहुषः अधः निपातितः । यदि कोऽपि धन-विद्यादिबलात् आत्मनो दुश्चरित्राणि गोपयित्वा प्रतिष्ठां प्राप्नुयात् परं सोऽपि दुष्कर्मणां भाण्डस्फोटे परमनिन्दनीयां दुर्दशां प्राप्नोति । सच्चरित्रतायाः कोऽपि अनिर्वचनीयः लोकोत्तरः प्रभावो भवति येन तस्य पुरस्तात् महान्तोऽपि जनाः निष्प्रभा भवन्ति । मर्यादापुरुषोत्तमराम-महावीर-बुद्धप्रभृतयः महापुरुषाः सदाचारबलेनैव पूजनीयाः । चिरं देशोऽयं सदाचारे विख्यातः आसीत् किन्तु इदानीं महतः 'खेदस्य विषयः यद् केचन परोपदेशकुशलाः नेतारः सदाचाराद् दूरं गताः । अतएव अस्मद्देशे प्रशस्तसिद्धान्तेषु सत्सु अपि सुखस्य शान्तेश्च ह्रासः सञ्जातः, विदेशेषु च अस्य प्राचीनं गौरवम् अपाचिनोत् । वस्तुतः सदाचाराभावे प्रशस्तसिद्धान्तानां मूल्यवत्ता शून्यैव यथा सुविचारितमपि औषधं नाम-स्मरणमात्रेण आरोग्य-जनकत्वाभावात् निष्फलम् । उक्तमेव सत्यम्—

शास्त्राण्यधीत्यपि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावान् पुरुषः स एव ।
सुचिन्तितञ्चौषधमातुराणां न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ॥

ये जनाः धनविद्यादिगुणसम्पन्नाः परन्तु आचारहीनाः सन्ति तान् वेदाः अपि न पुनन्ति । अतः प्रसिद्धा उक्तिरियम्—'आचारहीनान्न पुनन्ति वेदाः ।' ये च सदाचारपरायणाः तेषां प्रतिष्ठा सार्वकालिकी भवति ।

सन्ततेः चरित्रनिर्माणाय गुरुजनैः सदाचारिभिर्भाव्यम् । सदाचारबलेनैव श्रीस्वामीरामकृष्णपरमहंस-मदनमोहनमालवीयप्रभृतयः समाजसुधारकाः दिगन्तविश्रान्तकीर्तयः देशसमुन्नायकाश्च अभवन् । किं बहुना, सदाचारं विना सर्वं व्यर्थम् ; इहलोके सुखस्य, परलोके च चरमपुरुषार्थस्य मोक्षस्य साधनं सदाचार एव । यथोक्तम्—

सदाचाराद्यशो लोके सदाचारात्सुखं दिवि ।
सदाचाराद् भवेन्मोक्षः 'सदाचारो हि कामधुक्' ॥

एवं स्वेषां परेषाञ्च कल्याणसम्पादनाय सदाचारस्यैवापेक्षा न तूपदेशमात्रस्य । श्रीमद्गीतायां लिखितम्—'लोकयेत सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्' ।

(१०) परोपकारः (परोपकाराय सतां विभूतयः)

परेषामुपकारः 'परोपकारः' । अन्येषां हिताय यदपि क्रियते तत् सर्वं 'परोपकार' इति कथ्यते । मानवजीवनस्य साफल्यं परोपकारे एव । शास्त्रेषु यावन्तोऽपि धर्माः वर्णिताः सन्ति तेषां सर्वेषां परोपकारः मूर्धनि तिष्ठति । यथोक्तं महर्षिणा व्यासेन—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

परोपकारस्य भावना अन्तःकरणं पवित्रतामुत्पादयति, ईर्ष्या-द्वेषादिकालुष्यं विनाशयति, प्राणिमात्रे च भ्रातृभावं संवर्धयति । परोपकारिणः अन्येषां दुःखानि आत्मगतानि मन्यन्ते तानि दूरीकर्तुं सततं प्रयतन्ते च । ते परोपकरणे स्वकीयं दुःखं न गणयन्ति । ते निर्धनेभ्यः धनम्, वस्त्रहीनेभ्यः वस्त्राणि, बुभुक्षितेभ्यो अन्नम्, पिपासितेभ्यो जलम्, अशिक्षितेभ्यः शिक्षाम्, असहायेभ्यः साहाय्यं ददति । ते एव देशसेवां समाजसेवां विश्वकल्याणं च कर्तुं प्रभवन्ति । तेषां सर्वस्वं परार्थमेव भवति, न क्षुद्रस्वार्थाय । प्रकृतिरपि सदा परोपकारे निरता अस्मभ्यं तस्यैव शिक्षां ददाति । विमृश्यतां किमर्थं रात्रिदिवं गन्धवहः प्रयाति, सूर्यचन्द्रमसौ नक्षत्राणि च प्रकाशन्ते, नद्यः अविरलं प्रवहन्ति, तरवः सुस्वादुफलानि फलन्ति, कुसुमानि सौरभं विकिरन्ति, मेघाश्च वर्षन्ति । एतेषां सर्वेषामेकमेव समाधानं 'परोपकार' इति । यथोक्तम्—

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः, परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

'परोपकारार्थमिदं शरीरम्' इति मन्यमानानां परोपकारिणां स्वभावः कथं भवति ? अभ्योक्तम्—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः, नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः, स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥

अस्मद्देशे अनेके महापुरुषाः परहितमाचरन्तः अशेषजीवनम् अयापयन् । परोपकारभावनया महाराजः शिविः शरणागतस्य कपोतस्य रक्षणाय स्वमांसं श्येनाय प्रायच्छत् । महाराजो दधीचिः देवानां हिताय स्वकीयानि अस्थीनि दत्तवान् । महाराजो मयूरध्वजः अन्यस्य शुभानिवारणाय स्वकीयं पुत्रं समर्पितवान् ।

एतादृशाः एव अनेके परोपकारपरायणाः श्रीराम-कृष्ण-महावीर-बुद्ध-गान्धि-मालवीय-प्रभृतयः महापुरुषाः संजाताः येषां सुकृत्यैः देशः समुन्नतः अभवत् । एतेषां सर्वेषां यशांसि चिरस्थायीनि । उक्तञ्च—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः खलु सज्जनानां, परोपकारेण न चन्दनेन ।।

'परोपकारपरायणानां सर्वदा सर्वत्र च सम्मानः अवश्यम्भावी' इति मत्वा सर्वैरपि क्षुद्रं स्वार्थं परित्यज्य परोपकाराय यतनीयम् । यदि मानवानां हृदयेषु परोपकारस्य अल्पा अपि भावना समुदिता भवेत्तर्हि संसारस्य बह्वीनां जटिलसमस्यानाम् अनायासमेव समाधानं सम्पद्येत, शान्तिश्च स्थाप्येत । 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' इत्यादिसिद्धान्तवन्तः परोपकारिणः भवन्ति । अन्येषाम् उपकर्तुः आत्मनोऽपि हितानि भवन्ति, विभूतयश्च पदे-पदे आयान्ति । यथोक्तम्—

'परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् । नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदस्तु पदे पदे ।।'

अपि च; परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि। परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि।।

(११) संस्कृतभाषायाः महत्त्वम् वैशिष्ट्यञ्च

संसारेऽस्मिन् विभिन्नदेशेषु विभिन्नाः भाषाः प्रचलिताः सन्ति । न कोऽपि ताः परिगणयितुं समर्थः । संस्कृतभाषायाः इदं वैशिष्ट्यं यदियमेव 'दैवीवाक्', 'सुरभारती', 'गीर्वाणवाणी' इत्यादिपदैरभिधीयते, नान्या कापि भाषा । अन्यच्च, अन्याः सर्वाः भाषाः मानवव्यवहारमात्रसाधनभूताः किन्तु संस्कृतभाषा कर्मविद्या-ब्रह्मविद्योभयप्रतिपादिका अपि अस्ति । इयं संस्कृतभाषा प्राचीनतमा, सुप्रसिद्धा, प्रायः सर्वासामपि भारतीयभाषाणां जननी च । प्राकृत-पालि-अपभ्रंशादिप्रणाल्या अधुना प्रचलिताः हिन्दी-बंगला-मराठी-गुजराती-प्रभृतयः सर्वाः अपि भाषाः एतस्याः एव समुद्भूताः इति पुत्री-पौत्रीस्थानापन्नाः । अस्याः व्याकरणं सर्वतोभावेन वैज्ञानिकं सर्वविधदोषरहितं सुव्यवस्थितं च । अतएव मैकडानल-कीलहार्न-मैक्समूलर-कीथप्रभृतयः वैदेशिकाः विद्वांसः अपि अस्याः प्रशंसां मुक्तकण्ठेन अकुर्वन् ।

'सम्' पूर्वकात् 'कृ' धातोर्निष्पन्नः 'संस्कृत' शब्दः । भाष्यते = जनैः दैनन्दिनव्यवहारे प्रयुज्यते इति भाषा । अनया व्युत्पत्त्या अनुमातुं शक्यते यत् कदाचिद् इयमपि जनसाधारणैः प्रयुज्यमाना आसीत् । श्रूयते यदियं भाषा पूर्वम् अव्याकृता (प्रकृति-प्रत्ययसंस्काररहिता, अखण्डरूपा च) आसीत्, प्रयोक्तृदोषेण कालक्रमेण किञ्चिद् अपभ्रष्टा च अभवत् । पश्चात् देवतानुरोधेन इन्द्रः व्याकरणशास्त्रं निर्माय इमां व्याकृताम् (प्रकृति-प्रत्ययसंस्कारसहिताम्) अकरोत् । अतएव 'संस्कृतम्' इयं

संज्ञा प्रचलिता अभवत् । एवम् अस्याः भाषायाः प्रथमं व्याकरणम् 'ऐन्द्रम्' (इन्द्रप्रणीतम्) आसीत् । अधुना 'पाणिनिव्याकरणम्' (पाणिनिप्रणीतम्) पठन-पाठने प्रचलितम् । प्रकृति-प्रत्ययसंस्कारयुक्ता इयं संस्कृतभाषा साधुशब्दवती इति । साधुशब्दप्रयोगेन धर्मो भवति, असाधुशब्दप्रयोगेन तु अधर्मः । यथोक्तम्—

'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति' ।

अस्याः भाषायाः द्विविधं रूपम्—वैदिकं लौकिकं च । वेदस्य चत्वारो भागाः—मंत्र-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषदः । तत्र भवं संस्कृतं वैदिकमिति कथ्यते । तदुत्तरम् अन्यग्रन्थेषु भवं संस्कृतं लौकिकम् इति निगद्यते । अस्याः भाषायाः शब्दकोषः (Vocabulary) बृहत्तमः, नवीनशब्दनिर्माणसामर्थ्यमपि प्रभूतम् । एतस्याः साहाय्येनैव हिन्दीप्रभृतिभाषान्तरेषु विज्ञानादिपारिभाषिकशब्दाः निर्मातुं शक्यन्ते ।

अस्माकं सर्वाः प्राचीनविद्याः कलाश्च अस्यामेव भाषायाम् उपनिबद्धाः । अतः तस्मिन्-तस्मिन् विषये प्राचीनसाहित्यज्ञानलाभाय नवीनसाहित्यसर्जनाय च संस्कृतस्य अध्ययनमनिवार्यम् । संस्कृतभाषायाः ज्ञानं विना भारतीयाः आत्मनः पुरातनमितिहासं, प्राचीनपरम्पराः, संस्कृतिम्, ज्ञान-विज्ञानादिकं च सम्यग् अधिगन्तुं न प्रभवन्ति । भाषाविज्ञानस्यापि दृष्ट्या अस्याः महत्त्वं निर्विवादम् । एतत्साहाय्येन भारोपीय-अवेस्ता-लैटिनप्रभृतीनामपि भाषाणां ज्ञानं सुगमं भवति । इत्थं च संस्कृतज्ञाने सति स्वल्पप्रयासेनैव बह्वीनां भाषाणां ज्ञानं लब्धुं शक्यते । विश्वसाहित्यस्य सर्वप्राचीनग्रन्थाः वेदाः संस्कृतभाषायामेव उपनिबद्धाः । वाल्मीकि-व्यास-कालिदास-भवभूति-बाणप्रभृतयः महाकवयः अस्यामेव ग्रन्थान् लिखितवन्तः ।

समयानुरोधेन संस्कृतभाषा इदानीं बहुधा आक्षिप्यते । केचन इमां मृतां वर्तमानकालानुपयोगिनीं च मन्यन्ते । अपरे इमाम् अतीवकठिनां मत्वा एतदध्ययनात् पराजयन्ते । अन्ये तु इमाम् अर्थोपार्जनाक्षमाम्, व्यर्थाम्, कूपमण्डूकतासाधिकाम्, व्यवहाराद् दूरापेतां च गणयन्ति । इमे सर्वेऽपि अधिक्षेपाः भ्रान्तिमूलकाः; यतः—

१. यावत् कस्यामपि भाषायाम् अध्ययनचिन्तनादिकम् अनुवर्तते, नवीनग्रन्थनिर्माणं च प्रचलति तावत् सा मृतेति कथयितुं न शक्यते । इदानीमपि अस्याम् उभयम् उपलभ्यते । तस्मान्न जातु मृता इति वक्तव्यम् ।

२. संस्कृतभाषा साम्प्रतमपि नानुपयोगिनी, नापि व्यर्था । प्रयोगाभावेन अनुपयोगिता न सिद्ध्यति । यथा पार्श्वस्थितम् उपनेत्रम् धारकेण अप्रयुक्तमपि नानुपयोगि भवति, तस्य प्रकाशनस्वरूपयोग्यतायाः तदानीमपि सद्भावात् । ज्ञान-विज्ञानानुपि-लाभः यथा संस्कृतभाषया संभवति न तथा अन्यया भाषया । सा[illegible] क्षमः, योग्यः, समर्थोऽपि नोपयुज्यते, न वा तेन तस्यानुपयोगिता सिद्ध्यति ।

३. काठिन्यं न खलु संस्कृतस्य दोषः किन्तु तदध्यापनप्रणाल्याः। यतः इदानीमपि सुगमतमरीत्या संस्कृतम् अनायासं पाठयितुं शक्यते।

४. संस्कृताध्येतॄणां कूपमण्डूकता नाध्ययनजन्या किन्तु वातावरणप्रयुक्ता, स्वमस्तिष्कप्रयुक्ता च, तेष्वपि यस्मिन् कस्मिन् दूरदर्शितायाः आधुनिकतायाश्चोपलम्भात्। इतिहासपर्यालोचनेन इदं सुस्पष्टं यद् अतीते समये संस्कृतज्ञाः एव महर्षयः राजनीतिज्ञाः, शास्त्रकोविदाः, व्यवहारकुशलाः, देशसमुद्धारकाश्च अभवन्।

५. भाषाज्ञानस्य ज्ञानमेव फलं, न तु अर्थोपार्जनम्। यथोक्तम्-'गुणाः खलु गुणाः एव, न गुणाः भूतिहेतवः।' धनसञ्चयकर्तृणि भाग्यानि पृथगेव हि। अन्यच्च नेदं तथ्यं यत् संस्कृताध्ययनात् धनागमो न भवति, व्यापकविरुद्धोपलब्धेः।

एवं धर्मसंस्कृतिपरम्परादिविज्ञानाय ऐक्यसंरक्षणाय च संस्कृतस्य महती उपयोगिता। इयमेव भाषा समस्तदेशम् एकतासूत्रे बध्नाति। इयमेव भारतस्य प्राणभूता भाषाऽस्ति। अस्याः गुणगणस्य वर्णने महाविद्वांसोऽपि असमर्थाः सन्ति। वेदाः, भगवद्गीता, पुराणानि, धर्मशास्त्राणि, काव्यानि च अस्याः माहात्म्यमेवोद्घोषयन्ति। अतः अस्याः संरक्षणाय, संवर्धनाय, प्रचाराय च सर्वैरपि सततं प्रयतनीयम्। इयं देशस्य निधिः, अनुपमं वैशिष्ट्यम्, अनन्यलभ्या विभूतिश्च।

(१२) मातृभक्तिः देशभक्तिश्च (जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी)

भगवता रामचन्द्रेण कनकमय्याः लङ्कायाः सुखानि तिरस्कृत्य मातुः (जनन्याः) मातृभूमेः (स्वदेशस्य) च महत्त्वमङ्गीकृतम्—

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण! रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

यो नरः यस्याः कुक्षौ जन्म लभते सा तस्य जननी माता वा, तथा यो यस्मिन् प्रदेशे जन्म लब्ध्वा वर्धते जीवनं च यापयति सः तस्य जन्मभूमिः स्वदेशः मातृभूमिर्वा। यथा जनन्याः स्वसुतं प्रति नैसर्गिकं प्रेम भवति तथैव नराणां जननीं जन्मभूमिं च प्रति नैसर्गिकी भक्तिः, तयोः प्राणादपि संरक्षणं मातृभक्तिः देशभक्तिश्च कथ्येते। मातृकुक्षौ मातृभूमौ च नरैर्यादृशं सारल्यपूर्णं निष्कपटं स्वाभाविकञ्च सुखं समनुभूयते तादृशं स्वर्गेऽपि न सम्भवतीति।

बालकस्य कृते मातैव सर्वस्वमस्ति। सा तदर्थं स्वीयं कष्टजातं अगणयित्वा बालं प्राणादपि रक्षति। सा स्वयमपीत्वा पुत्रं पाययति, स्वयमनश्नन्ती स्वसुतस्योदरं भरति, बालकस्य सुखचिन्तैव सदा तस्याः समक्षं भवति। पुत्रं कष्टान्वितमवलोक्य तस्याः हृदयमतिशयेन द्रवति। सा स्वकीयेन अलौकिकेन स्नेहेन स्वयं करकवर्षं सहमानापि स्वजातं स्वाङ्के पालयति लालयति च। किं बहुना, किमस्ति तद् यद् अलौकिकेन

मातुःस्नेहेन नहि पूर्यते। उक्तञ्च 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'। अतः उपनिषत्सु आदिश्यते—'मातृदेवो भव'। नरः कदाचिदपि मातुरनृणतां प्राप्तुं न शक्नोति। मनुनाऽप्युक्तम्—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

एतादृशगुणसम्पन्ना जननी स्वर्गादप्यधिका कथञ्च स्यात्। अतः पुत्रैरपि तस्याः सेवा अवश्यकरणीया। प्राचीनकाले श्रवणदिभिः मातृ-पितृसेवा प्रदर्शिता। अस्माभिरपि सर्वदा प्राणपणेन जननीसेवार्थं प्रयतितव्यम्।

स्वदेशं प्रति मानवानां नैसर्गिकं प्रेम 'देशभक्तिः' अथवा स्वदेशस्य समुन्नतये या सर्वपरित्यागरूपा भावना सा 'देशभक्तिः'। स्वदेशस्यार्थे स्वजीवनमपि तृणाय मन्यन्ते देशभक्ताः। न कोऽपि देशः तावत् समुन्नतो भवति यावत् तत्र देशभक्ताः न स्युः। अतो मानवानां कृते देशभक्तिः प्रधानं कर्तव्यम्। तां विना ते भारभूताः शवकल्पाश्च। ये जनाः देशस्य रक्षायै सदा प्रयतन्ते तथा अवसरे सति स्वशरीरार्पणमपि कुर्वन्ति तेषामेव जीवनं जीवनम्, तद्विपरीतानां तु जीवनं सर्वथा व्यर्थम्। यथोक्तम्—

स्वदेशे परमा प्रीतिः यस्य नास्ति च गौरवम्।
धन-धान्ययुतस्यापि व्यर्थं तस्य हि जीवनम्॥

जन्मभूमेः क्षेत्रं विस्तृतं वर्तते। सा सर्वदा अतिशयानन्दप्रदायिनी; अतः यदा दूरस्थः जनः स्वकीयां जन्मभूमिमागच्छति तदा स्वमातुरभावेऽपि हर्षातिशयमनुभवति। इत्थमस्ति तत्र कश्चिदद्भुतानन्दस्य उत्सः।

देशभक्ताः स्वल्पेनैव कालेन अवनतमपि स्वदेशं समुन्नतेः शिखरं प्रापयन्ति। यथा—महात्मागान्धि-लोकमान्यबालगंगाधरतिलक-सुभाषचन्द्रबोस-सरदारभगतसिंहप्रभृतयः। एतैः पुण्यश्लोकैः महानुभावैः देशहिताय स्वशरीरम् अर्पितम्, बहूनि दुःखानि च सोढानि। देशद्रोहिणः तथैव समुन्नतमपि देशं स्वल्पेनैव कालेन अवनतेः गर्तं प्रापयन्ति। यथा—जयचन्द्र-मीरजाफरप्रभृतयः। एतैः जघन्यैः देशद्रोहिभिः स्वार्थसाधनाय तथा कृतं येन देशस्य महती हानिरापतिता, तेषां स्वार्थोऽपि च नष्टः।

देशभक्तेः बहूनि अङ्गानि भवन्ति। यथा अशान्तिसमये राजनीतिकान्दोलने योगदानम्, युद्धकाले शत्रुनाशाय विविधाः प्रयत्नाः तथैव शान्तिकालेऽपि देशानुरागवर्धकं नवीनसाहित्यसर्जनम्, आवश्यकतानुसारं सर्वतोमुखानि नूतननिर्माणानि, विज्ञानकलादिविकासश्च। देशहिते साधिते वैयक्तिकलाभोऽपि संभवति। यतः विनष्टे राष्ट्रे कुतः कल्याणम्।

देशभक्तिः तदैव विकसिता प्रतिष्ठिता च भवति यदा बालकेभ्यः प्रारभ्यतः एव तस्याः शिक्षा प्रदीयते। तदनुकूलं विपुलसाहित्यसर्जनमपि संभवेत्। स्वतन्त्र-

तालाभेऽपि देशेऽस्मिन् अस्याः महती आवश्यकता। यतः एनां विना आर्थिकविकासः संरक्षणं च न संभवति। इति विचार्य भारतीयाः प्रातः शयनतलादुत्थायैव जन्मवसुन्धरां नमस्कुर्वन्ति—

वसुन्धरे नमस्तुभ्यं भूतधात्रि नमोऽस्तु ते।
रत्नगर्भे नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

अपि च—'क्षोणोऽपि देहमिव कस्त्यजति स्वदेशम्॥'

मनीषिभिः मातृभूमिरपि मातैव मन्यते 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'। अतः सर्वैरपि मातृसेवां देशसेवां च प्रति दृढप्रतिज्ञैर्भाव्यमिति।

(१३) अनुशासनम् (सङ्घे शक्तिः कलौ युगे = एकता)

'अनु' उपसर्गपूर्वकात् 'शास्' धातोः निष्पन्नोऽयम् 'अनुशासन' शब्दः। तैत्तिरीयोपनिषदः शांकरभाष्ये अस्य व्याख्यानम् ईश्वरवचनरूपेण कृतम्। गुरुवचनं शासकवचनं वा ईश्वरवचने अन्तर्भूतम्। प्रकारान्तरेणापि इदं व्याख्यातुं शक्यते—अनु = पश्चात् = गुरूपगमनानन्तरं तदीयशासनम् = हिताहितकरणपरिहाररूपवचनम् 'अनुशासनम्'। अग्रे एतदेव सामान्यरूपेण कस्यापि शासकस्य वचनानुसरणे तदादेशपालने वा परिणतम्; फलतः अस्य शब्दस्य अयमर्थः अस्ति यत् कस्यापि व्यवस्थितनियमसमुदायस्य विधिवाक्यवत् (क्षोद-क्षेमं विनैव) पालनमेव अनुशासनम्।

अनुशासनम् द्विविधम्—स्वाभाविकं बलादारोपितं च। पूर्वं तु विनम्रता-आत्मसंयमादिसहितम्, व्यवस्थित-नियम-सदादर्शप्रभवम्, स्वेच्छया परिगृहीतं च भवति। अपरं तु दुःखदैन्यादिसंवलितम्, दण्डभीतिजन्यम्, अनिच्छया पालितं च। दासत्वभावनाविकासप्रतिबन्ध-स्वतन्त्रचिन्तनाभावादिदोषाः द्वितीये एव अनुशासने संभवन्ति, न तु प्रथमे।

जीवनस्य प्रत्येकक्षेत्रे अनुशासनस्य महती आवश्यकता भवति। एतद् विना कुत्रापि कदापि कस्यापि सफलता न संभवति। अनुशासनमन्तरेण कापि सुव्यवस्था न प्रचलितुं शक्नोति। स एव देशः समाजश्च समुन्नतो भवति यस्मिन् प्रजाः शासकाश्च अनुशासनपालकाः। अतः गृहे आशैशवाद् अनुशासनस्य शिक्षा पितृभिः शिक्षासंस्थासु च तदधिकारिभिः प्रदेया। अन्यान् स्वप्रभावेण, न तु दण्डभयेन अनुशासयितुम् अधिकारिभिरपि स्वयं सदाचारिभिः कर्त्तव्यपरायणैः अनुशासनप्रणयिभिश्च भाव्यम्। नहि स्वयं सदाचारविरहिताः कर्त्तव्यपराङ्मुखाः अनुशासनविहीनाः अन्यान् अनुशासने स्थापयितुं प्रभवन्ति। अनुशासनं न केवलं सैनिकानां कृते आवश्यकं किन्तु सर्वेभ्यः, विशेषतश्च छात्रेभ्यः यतः देशस्य छात्राः भाविनः कर्णधाराः

भाग्यविधातारश्च सन्ति। अतः तेषाम् आत्महिताय, देशकल्याणाय, आगामिन्याः सन्ततेः पुरः समुचितादर्शसंस्थापनाय च अनुशासनमपरिहार्यम्।

साम्प्रतं परितः दृश्यमाना स्वेच्छाचारिता अनुशासनस्य बाधिका। स्वेच्छाचारितया अध्ययनानुरागिणः छात्राः, अभिभावकाः, शिक्षासंस्थाधिकारिणः अन्ये सर्वेऽपि चिन्तिताः उद्विग्नाश्च। छात्रेषु अनुशासनशिथिलतायाः चरित्रहीनतायाः स्वेच्छाचारितायाश्च प्रधानं कारणम्—समुचितादर्शानुपलम्भः। यस्मिन् गृहे अनुशासनं नास्ति तत्र कुटुम्बिनः गुरोः अनादरं कुर्वन्तः, यथेच्छं व्यवहरन्तः, परस्परं पदे पदे विवदमानाः न जातु शान्तिं सुखं च लभन्ते। इयमेव स्थितिः अनुशासनापेतस्य समाजस्य देशस्य च। अत्र इतिहास एव प्रमाणम्।

निर्विवादमेतत् यद् अल्पसंख्याकेन संघटितेन अनुशासितेन सैन्येन विपुला अपि अनुशासनविहीना विघटमाना सेना पराजीयते। यतः 'संघे शक्तिः कलौ युगे' यदा भारतीयेषु एकता-भावनायाः आगतिरभूत् तदा ते स्वाधीनाः अभवन्। एकमुद्देश्यं लक्ष्यीकृत्य बहूनां नराणाम् एकत्वभावनया कार्यकरणम् 'एकता' इत्युच्यते। एकता अनुशासनं विना न सम्भवति। यतः अनुशासनाधीना संहतिः, संहतिनियता एकता, एकता-निबन्धना शक्तिः, शक्तिमूलको अभ्युदयः, अभ्युदयापेक्षं च सुखम्। अतएवोक्तम्—

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः॥

ऋग्वेदेऽपि अनुशासित-एकतायाः आवश्यकता प्रतिपादिता—

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्॥

प्रकृतिरपि अनुशासनप्रवणा, यतः निश्चिते काले एव फलन्ति वृक्षाः, पुष्पाणि विकसन्ति, ऋतवः आयान्ति गच्छन्ति च। नात्र संदेहलेशोऽपि यद् अनुशासनाभावे सर्वमपि अव्यवस्थितम्, अकिञ्चित्करम्, कष्टबहुलम्, विनाशोन्मुखं च। देशस्य स्वतन्त्रताप्राप्तिः, तद्रक्षणम्, समष्टिरूपेण व्यष्टिरूपेण वा उत्थानम्, एवंविधाः संख्यातीताः अनेके भावाः अनुशासनस्य अमितमहत्त्वं प्रकटयन्ति। यथोक्तम्—

'लालने बहवो दोषाः शासने बहवो गुणाः।'

तस्माद् जीवनस्य सर्वेषु अपि क्षेत्रेषु अनुशासनं पालनीयम्। सफलतायाः मूलमन्त्रः अनुशासनमेव।

(१४) विद्यार्थिकर्त्तव्यम्

विद्यायाः अर्थिनः = अभिलाषिणः 'विद्यार्थिनः' तेषां कर्त्तव्यम् = करणीयकार्यकलापः 'विद्यार्थिकर्त्तव्यम्'। मानवजीवने चतुर्षु कालेषु भिन्नरूपेण विद्या

उपयुज्यते। तत्र प्रथमः आगमकालः (अध्ययनकालः), द्वितीयः स्वाध्यायकालः (बोधकालः), तृतीयः प्रवचनकालः (अध्यापनकालः), चतुर्थः व्यवहारकालः (प्रयोगकालः) च। इमे एव चत्वारः कालाः ब्रह्मचर्याद्याश्रमपदैरपि व्यपदिश्यन्ते। तेषु अधीयानानां (अध्ययनकालमापन्नानाम्) छात्राणां कर्त्तव्यानि अधो निरूप्यन्ते—

पूर्वम् अन्तेवासिनः ब्रह्मचर्याश्रमधर्मान् पालयन्तः अध्ययनसमाप्तिपर्यन्तम् अजस्रं गुरुकुले न्यवसन्। तेषां ब्रह्मचारिणां धर्माः धर्मशास्त्रादिग्रन्थेषु विशेषतो वर्णिताः किन्तु इदानीन्तने शिक्षासंदर्भे विद्यार्थिनः कर्त्तव्यानि प्रधानतया सप्त परमावश्यकानि। तानि—(१) विद्योपार्जनम्, (२) शारीरिकशक्तिसंचयः, (३) नियमितता, (४) समयस्य सदुपयोगः, (५) अनुशासनपालनम्, (६) गुरुभक्तिः, (७) चरित्रनिर्माणञ्च। क्रमेण यथा—

१. **विद्योपार्जनम्**—छात्राणाम् अध्ययनं वाग्देव्याः उपासना तपः च। विद्या सदभ्यासबलेन लभ्या भवति। विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्। विद्यया च अमृतमश्नुते। अतः नियमितरूपेण यथाशक्ति विद्याभ्यासः करणीयः। विद्याग्रहस्य द्वे स्थाने—(१) अध्यापकः (२) पुस्तकालयश्च। अतः पुस्तकालयस्यापि सम्यग् उपयोगः छात्रैः कार्यः। अवकाशदिनेषु पाठ्यपुस्तकसहायकानि पुस्तकान्तराणि अपि अध्येतव्यानि। अध्ययनकाले आलस्यम्, दीर्घसूत्रतां, चञ्चलतां, अन्यमनस्कतां च परिहरेत्। वक्तृत्वकलायाम्, सुन्दरलेखने, भाषणे च योग्यता सम्पादनीया।

२. **शारीरिकशक्तिसञ्चयः**—यदा शरीरं सबलं स्वस्थञ्च भवति तदैव पठनम्, लेखनम्, चिन्तनम्, कवित्वञ्च सर्वमपि सम्यग् भवितुमर्हति। वेदव्यासेन महाभारते कथितम्—'सर्वं बलवतां साध्यम्।' अतः छात्रैः नियमेन व्यायामः सेवनीयः। व्यायामश्च बहुविधः। यथा—क्रीडा (Games and Sports), सैनिकशिक्षा (N. C. C.), दण्ड-बैठकादिसंज्ञकः प्राचीनभारतीयव्यायामः योगासनादिर्वा। एतैः शारीरिकशक्तिसंवर्धनं छात्राणां कृते नितान्तमावश्यकम्।

३. **नियमितता**—प्रातरुत्थानादारभ्य रात्रौ शयनपर्यन्तं बहूनि कार्याणि भवन्ति। यस्य कार्यस्य यः समयो भवेत् तस्य तदैव अनुष्ठानं नियमितता। अस्याः परिपालनेन विद्यार्थिनां पूर्णविकासो भवति कार्याणि च यथासमयं सम्पद्यन्ते।

४. **समयस्य सदुपयोगः**—व्यतीतः समयः न कथमपि पुनरायाति। यथोक्तम् वाल्मीकिना—'यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः शीघ्रमपामिव।' अतः सर्वैः तथा प्रयतनीयं यथा क्षणमपि निरर्थकं न गच्छेत्। ये समयस्य सदुपयोगं न कुर्वन्ति ते आत्मनः एव हानिं कुर्वन्ति, अन्ते च पश्चात्तापमनुभवन्ति।

५. **अनुशासनपालनम्**—यौवने अनुशासनस्य महती आवश्यकता। तद् विना कस्मिन्नपि क्षेत्रे साफल्यं दुराशामात्रमेव। विद्यार्थिनां कृते तु इदमनिवार्यमेव, यतः

अनुशासनहीनाश्छात्राः अध्ययनपराङ्मुखाः भवन्ति। अध्ययनाध्यापनादिव्यवस्थां च विनश्यन्ति।

६. **गुरुभक्तिः**—पिता माता आचार्यश्च एते त्रयोऽपि गुरवः। तेषां = शुश्रूषा छात्राणां कर्त्तव्यम्। विद्यालाभस्य त्रयः एव उपायाः, तेषु गुरुशुश्रूषा प्रधानतमा। यथोक्तम्—

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थी नोपपद्यते॥

भगवत्प्राप्तिहेतुत्वाद् गुरवः देवकल्पाः भवन्ति। उपदिष्टं च तैत्तरीयोपनिषदः शिक्षावल्याम्—'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' इति।

७. **चरित्रनिर्माणम्**—पूर्वं गुरुकुले न केवलं विद्यालाभः, चरित्रनिर्माणमपि शिक्षायाः उद्देश्यमासीत्। इन्द्रियसंयमः, मान्यजनानां सम्मानः, विनयः, सुशीलता, अलोलुपता, शिष्टाचारपालनम्, विहितनिषेवणम्, प्रतिषिद्धपरिवर्जनम् इत्यादिभिः गुणगणैः चरित्रनिर्माणं भवति। विद्याध्ययनस्य न ज्ञानमात्रं फलं किन्तु सच्चरित्रनिर्माणमपि। विद्वांसः निसर्गतः निर्मलचरिताः भवन्ति। चरित्रदोषे विद्या गर्हिता भवति। तस्मादुदात्तचरित्रोपार्जनाय छात्रैः सततं प्रयतितव्यम्।

विद्यार्थिनः देशस्य संसारस्य च भाविनः कर्णधारास्सन्ति। यदि ते स्वकर्त्तव्यपालनं सम्यग्रूपेण न कुर्युः तर्हि समाजस्य देशस्य स्वस्य च कापि उन्नतिः असंभवप्राया। यतः ते एव अग्रे अध्यापकाः, न्यायाधीशाः, शासकाः, विविधपदभाजश्च भविष्यन्ति। स्वकर्त्तव्यच्युताः विद्यार्थिनः यदि तत्र स्थिताः सन्तः सम्यक् न अध्यापयेयुः, सम्यक् न्यायं न कुर्युः, सम्यक् न अनुशासयेयुः, स्व-स्वपदोचितकार्यजातं च न सम्पादयेयुः तर्हि देशः समाजश्च विनाशगर्ते निपतेताम्। तस्मात् छात्रैः निर्दिष्टकर्त्तव्यपरायणैर्भव्यम्।

(१५) आधुनिकं विज्ञानम् (विज्ञानं वरदानरूपम् अभिशापरूपं वा)

भूतभौतिकपदार्थानां विश्लेषणात्मकं ज्ञानम् आधुनिकं विज्ञानम्। अद्य अस्यैव डिण्डिमघोषः सर्वत्र संसारे श्रूयते यतः साम्प्रतं मानवाः प्रायः आध्यात्मिकज्ञानविमुखाः लौकिकसुखसाधनपरायणाश्च। तदर्थं कृतान् तान् सर्वान् विश्वविस्मयकरान् नवनवान् आविष्कारान् लोको बहु मन्यते। अतएव अस्मिन् विज्ञानयुगे मानवाः बाल्यकालादारभ्य मृत्युपर्यन्तं विज्ञानक्रोडे खेलन्तः दृश्यन्ते, प्रकृतिश्च विज्ञानस्य अनुचरीव प्रतीयते। अधुना विज्ञानं प्रकृतेः अनन्तशक्तीनां रहस्यानि उद्घाटयत् तस्यां सर्वथा प्रभवितुमपि प्रयतमानमिव परिदृश्यते। विज्ञानेन मानवसभ्यतायाः स्वरूपमेव परिवर्तितम्। सर्वत्र जीवनस्य प्रत्येकक्षेत्रे मानवजातिः वैज्ञानिकशक्त्या प्रभाविता दृश्यते।

मानवोऽपि विज्ञानमयः संवृत्तः। विज्ञानप्रभावादेव इदानीम् अगम्यमपि सुगमम्, असाध्यमपि सुसाध्यम्, अदृश्यमपि सुदर्शनम्, अलभ्यमपि सुलभं जातम्।

वैज्ञानिकाविष्काराः संक्षेपेण चतुर्षु प्रकारेषु विभाजयितुं शक्यन्ते—(१) दैनन्दिनोपयोगिनः, (२) आधि-व्याधिहराः, (३) मनोरञ्जकाः, (४) विध्वंसकाश्च। तत्र आद्याः त्रयः जनहितसाधकाः इति वरदानरूपाः, अन्तिमश्च हानिकरः इति अभिशापरूपः, परं शत्रोराक्रमणकाले स्वरक्षासंपादनेन चतुर्थोऽपि वरदानरूपः।

(१) **दैनन्दिनोपयोगिनः**—अत्र परिगणनीयाः आविष्काराः अधोलिखिताः स्सन्ति—

(क) **यानानि**—ट्रेन (वाष्पयान)-मोटर (मृत्तरः)-स्कूटर-साईकिल (द्विचक्रयान)-प्रभृतीनि स्थलयानानि; एरोप्लेन-हेलिकाप्टर-अपोलो-लूना-प्रभृतीनि वायुयानानि; शिप-स्टीमर (वाष्पनौका)-पनडुब्बी (जलान्तर्वर्ति-नौका)-प्रभृतीनि जलयानानि सन्ति। एतैः यानैः कष्टबहुला चिरकालिकाऽपि यात्रा सुखेन स्वल्पेन च समयेन सम्पाद्यते। स्थले, भूगर्भे, दुर्गमप्रदेशे, जले, अन्तरिक्षे च सर्वत्र मानवानाम् अप्रतिहता गतिः संजाता। अधुना अपोलो-लूना-संज्ञकैः वायुयानैः चन्द्रलोकयात्रा सफलीभूता। अन्येष्वपि ग्रहेषु तल्लोकेषु वा यात्रायै सततं प्रयत्नाः विधीयन्ते।

(ख) **विद्युत्, तन्निबन्धनानि यन्त्राणि उपकरणानि च**—विद्युतः प्रधानं कार्यं प्रकाशः। एषः प्रकाशः अतिनिविडेऽन्धकारे सौरप्रकाशम् अतिशयान इव प्रतीयते। विद्युद्बलेन वायुसञ्चारः, शीततापनिवारणम्, विविधयानयन्त्रादिसञ्चालनम्, अन्येषां दुष्करकार्याणां च सम्पादनम् पूर्वमशक्यमपि इदानीं सम्भवति। किं बहुना, प्रायः सर्वेषामपि वैज्ञानिकाविष्काराणाम् इयं आधारशिला।

(ग) **प्रसार-सूचनायन्त्राणि**—टेलीग्राम-टेलीफोन (शब्दसंवादयन्त्रम्)-रेडियो (ध्वनिविक्षेपकयन्त्रम्)—केबुल-लाउडस्पीकर-टेलीप्रिंटर-टिलेक्स-टेलीविजन-राडार-वायरलेस-घटीयन्त्रप्रभृतीनि प्रमुखानि यन्त्राणि। एतैः गृहस्थितेनापि अतिविप्रकृष्टैः सह वार्ता, अतिदूरस्थ-संगीत-समाचारादिश्रवणम्, अन्यत्रभाविनां वृत्तान्तानां तात्कालिकाधिगमः, देशान्तरस्थपुरुषादीनां रूपसाक्षात्कारः, आरात् स्थले जले नभसि वा प्रचलतां वायुयानानां नक्षत्रादीनां सूचनोपलम्भः, घण्टादिविभागेन समयपरिज्ञानं च सम्भवति। किं बहुना, एतद्बलेन त्वरितगतिः सर्वंचरो वायुरपि पराजितः। अतिविस्तृतमपि इदं जगत् स्वाङ्गणस्थमिव जातम्।

(घ) **प्रेक्षायन्त्राणि**—टेलिस्कोप (दूर-सूक्ष्मवीक्षकयन्त्रम्)-कैमरा-उपनेत्र-(चश्मा) प्रभृतीनि प्रेक्षायन्त्राणि विशेषतः उल्लेखयानि। टेलिस्कोपयन्त्रेण लौकिकप्रत्यक्षातिगमः अपि अतिसूक्ष्म-विप्रकृष्टपदार्थानां सम्यक् प्रेक्षणं सम्भवति। चित्रण-

यन्त्रेण (कैमरा) एकस्य बहूनां समवेतानां वा यथावस्थचित्रणं गृह्यते। उपनेत्रद्वारा दुर्बलचक्षुषाऽपि सूक्ष्माणि, अन्यथा अनधिगम्यानि च अक्षराणि साक्षात्कर्तुं शक्यन्ते।

(ङ) **अन्यानि विविधयन्त्राणि**—टंकण (टाइपराइटर-टेलिप्रिण्टर-टिलेक्स)-मुद्रण (प्रिंटिंग-मशीन)—गणन (कंप्यूटर)-कृषि (ट्रैक्टर, हारवेस्टर, ट्यूब्वेल)-प्रभृतीनि उद्योग-वाणिज्य (मिल, फैक्टरी, मशीन)-प्रभृतीनां विविधानि यन्त्राणि विवरणीयानि सन्ति। एतेषां तत्तत्क्षेत्रे अभूतपूर्वः आश्चर्यजनकः प्रभावः सर्वेषां चेतस्सु कौतुकमावहति। साम्प्रतं बहुजन-चिरकालसाध्यमपि कार्यं यन्त्रद्वारा अतिपरिमितपुरुषैः स्वल्पेनैव कालेन चारुतरं सम्पाद्यते।

(२) **आधिव्याधिहराः**—अधुना प्रचलतां बहूनां भयंकररोगाणां प्रशमाय विज्ञानेन नूतनानि एक्सरे-रेडियम-सर्जरी-प्लास्टिकसर्जरीप्रभृतीनि चिकित्सासाधनानि आविष्कृतानि, तदर्थं पेनासिलिन-स्ट्रेप्टोमाइसिन-एक्रोमाइसिन-क्लोरोमाइसटिन-प्रभृतयः नवीनौषधयश्च निर्मिताः। मानसिकरोगाणां कृते मनोवैज्ञानिकोपायाः अपि प्रादुर्भाविताः। किं बहुना, विज्ञानस्य प्रभावेण नवीनहृदयादिरोपणादिकम् अपि प्रयत्यते; बधिराः शृण्वन्ति, मूकाः वदन्ति, पङ्गवः चलन्ति च।

(३) **मनोरञ्जकाः**—ग्रामोफोन-रेडियो-रेडियोग्राम-रिकार्डप्लेयर-टेपरिकार्डरप्रभृतीनि ध्वनियन्त्राणि, हारमोनियम-आर्केष्ट्रा-वेला-सरोदप्रभृतीनि नवीनवाद्ययन्त्राणि; टेलीविजन-चलचित्र-(सिनेमास्कोप)प्रभृतीनि चित्रमययंत्राणि मनोरञ्जनसाधनानि। एतेषामाविष्काराणां प्रभावेण मनोरञ्जनं सुलभं सर्वजनसाधारणं च सञ्जातम्। तेषु चलचित्राणाम् आविष्काराः विशेषतः उल्लेख्याः। तद्रङ्गशालासु (Cinema Hall) प्रदर्शिता अवर्णनीयप्रभावोत्पादकाभिनयाः जनानां श्रान्तिम् अपहरन्ति, प्रमोदं च जनयन्ति।

(४) **संहारकाः**—एटमबम-हाइड्रोजनबम (उद्जनबम)-प्रभृतीनि विष्फोटकक्षेप्यास्त्राणि; मोर्टारादिसंज्ञकनूतनशतघ्नी-भुशुण्डीप्रभृतीनि विविधायुधानि; टैंक-टारपीडो-मिग-मिराज-प्रभृतीनि आधुनिकायुधयन्त्राणि च दारुणानि आग्नेयास्त्राणि आविष्कृतानि। एतैः विश्वविनाशोऽपि क्षणमात्रलीला। एतेषामाविष्कारे रुस-अमेरिकादेशौ अग्रगण्यौ। द्वितीय-महायुद्धे अमेरिकैः जापानदेशस्य हीरोशिमा-नगर्याः [नागासाक्याश्च] उपरि परमाण्वस्त्रं (Atom-Bomb) प्रक्षिप्तं येन क्षणेनैव सा स्वर्गकल्पा महानगरी दग्धोत्खाता मरुभूमिरिव संजाता।

इत्थम् आधुनिकाः वैज्ञानिकाः आविष्काराः एकत्र मानवानां श्रेयसः सम्पादनं कुर्वन्ति अन्यत्र तेषां विनाशम्। एवं विज्ञानं वरदानरूपम् अभिशापरूपं चेति पक्षद्वयम्।

यद्यपि विज्ञानेन प्रथमत्रिविधैराविष्कारैः विश्वस्य महानुपकारः कृतः तथापि चरमकोटिकैराविष्कारैः विनाशस्यापि सामग्री भृशं सुलभीकृता; यथा—इदानीं सर्वेऽपि मानवाः संत्रस्ताः भीताश्च विज्ञानमभिशापं मन्यन्ते। वस्तुतस्तु, न किमपि वस्तु स्वतः एकान्ततः उपकारकम् अपकारकं वा। प्रयोगाधीनैव तस्य उपकारकता अपकारकता वा। तस्मात् नायं विज्ञानदोषः। यदि कोऽपि विषं भुञ्जानम् आत्मानं विनाशयेत् नायं विषस्यापराधः, किन्तु तत्प्रयोक्तुरेव। यदि विज्ञानस्य प्रयोगः सुखाय कल्याणाय शान्तये च भवेत् तर्हि अभिशापवार्ताऽपि नोदीयात्। तस्मात् विज्ञानं तथैव प्रयोक्तव्यं यथा समस्तं जगतीतलं स्वर्गतुल्यं मानवजीवनं सुखशान्तिमयं च सम्पद्येत।

(१६) विद्या (किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या = विद्ययाऽमृतमश्नुते)

विद्याधनं सर्वश्रेष्ठं धनमस्ति। अस्य वैशिष्ट्यमिदं यत् व्यये कृते अपि विद्या संवर्द्धते, अव्यये तु क्षीयते। किञ्च, इदं धनं न भ्रातृभाज्यं न च चौरादिभिः अपहरणयोग्यम्। विद्यया इहलोकस्य परलोकस्य च सर्वाः अपि सम्पदः प्राप्तुं शक्यते, नान्येन साधनेन। अतएवोक्तं विचारकैः—

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात्॥
न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्॥

विद्याशब्दस्य निष्पत्तिः 'ज्ञानार्थकस्य' विद्धातोः भवति। अतः वस्तुनः सम्यक्तया ज्ञानं विद्येति। लौकिकी विद्या (भौतिकज्ञानम्) अलौकिकी विद्या (आध्यात्मिकज्ञानम्) चेति द्विविधा विद्या। धर्माधर्मयोः, कर्तव्याकर्तव्ययोः विवेकः विद्ययैव भवति। अनया एव मनुष्यो मनुष्य इति। विद्याविहीनस्तु मूर्खः, असभ्यः, पशुरिति च व्यपदिश्यते। विद्यावैभवसम्पन्नः देशे विदेशे सर्वत्र पूज्यते। विदेशे यत्र सर्वे अपरिचिताः सन्ति तत्र विद्यैव बन्धुः, गुरूणां गुरुरपि विद्यैव। किमधिकं विद्यैव परमा देवता। कविना समीचीनमुक्तम्—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीनः पशुः॥

तथा च—'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।'

विद्याबलेनैव मानवाः अमृताः भवन्ति परमपदवीञ्च प्राप्नुवन्ति **'विद्ययाऽमृतमश्नुते'**। राजानः विद्यावतां पुरस्तात् नतमस्तकाः जायन्ते। विद्या प्रदीप इव सन्मार्गं दर्शयति—**'घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्'**। महाकविना दण्डिनाऽपि उद्घोषितं

यद् यदि अस्मिन् जगति विद्याज्योतिः न भवेत् तर्हि इदं सकलं जगत् अन्धकारावृतं सम्पतस्येत—

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

अपि च—'सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्यनास्त्यन्ध एव सः।'

शब्दाह्वयं ज्योतिरत्र विद्यैव अस्ति। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति', 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इत्यादयः श्रुतयः अपि मोक्षप्राप्तिकारणभूतायाः विद्यायाः माहात्म्यं प्रकटयन्ति। विद्या एकमुत्तमं भूषणमपि अस्ति—'विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्'।

सर्वविधवैशिष्ट्ये सत्यपि एतदपि सुनिश्चितं यद् विनयेनैव विद्या शोभते। विनयाभावे विद्या 'विद्या' नास्ति। अतएवोक्तम्—

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनाद् धर्मस्ततः सुखम्॥

यद्यपि संसारे लक्ष्मीसरस्वत्योः विरोधोऽपि दृश्यते। कुत्रचित् मतिमतां या दरिद्रता अवलोक्यते तत् सर्वं दुर्भाग्यविजृम्भितम् सम्यग्ज्ञानाभावो वा। सः एव विद्वान् यस्तु क्रियावान्। अतएवोक्तम्—'विद्यामधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।' विद्याकृते महान् श्रमः अपेक्ष्यते। अतः विद्यार्जनकाले विद्यार्थिभिः आलस्यं परित्यज्य सुखचिन्ता न करणीया, यतो हि सुखार्थिनो कुतो विद्या, विद्यार्थिनश्च कुतः सुखम्।

किं बहुना, आविष्काराणां जननी, कर्तव्याकर्तव्यज्ञापका, मुक्तिप्रदा, सुखावहा' कीर्तिविस्तारिका, कामदुहा, बन्धुसमा, प्रदीपतुल्या, दिव्यनेत्रसदृशा, कल्पलतेव विद्या किं किं न साधयति। समुचितमेव भणितम्—

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥

(१७) सत्यम् (सत्यमेव जयते नानृतम्)

सर्वेषु गुणेषु सत्यं सर्वोत्कृष्टं वर्तते। सर्वे ग्रन्थाः एकमुखेन सत्यस्य महिमानमुद्घोषयन्ति। यथा—**'नास्ति सत्यात् परो धर्मो, नानृतात् पातकं महत्।'** ये नराः सततं सत्यमेव भाषन्ते न खलु कदाचिदपि अनृतां गिरं निःसारयन्ति ते सर्वेषामपि कृते विश्वासस्य श्रद्धायाश्च भाजनानि भवन्ति। ऐहिकं पारलौकिकञ्च सर्वविधं मङ्गलं भवति अनेन गुणेन। अश्वमेधसहस्रादपि सत्यमेव विशिष्यते। अतएवोक्तम्—

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद् हि सत्यमेव विशिष्यते॥

तथा चोपनिषदि लिखितम्—'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा'। किञ्च, 'सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्'।

सते कल्याणाय हितं सत्यम्। वस्तुनः यद् स्वरूपं विद्यते तस्य तेनैव रूपेण प्रकाशनं सत्यमिति। सत्यधर्मस्य परिपालनमतीवकठिनम्। सत्यभाषणविषये एतदपि चिन्तनीयम् यत् तत् प्रियमपि भवेत् नाप्रियम्। अतएवोक्तम्—**'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्'**। एवं सत्यवादिनः सर्वत्र साफल्यम्, सम्मानम्, कल्याणञ्च लभन्ते। यः खलु असत्यं वदति सः पथभ्रष्टः चरित्रभ्रष्टश्च भवन् सर्वत्र निन्दापात्रं भवति। इत्थम् असत्यभाषणेन स्वस्य हानिः नाशश्च भवतः।

इतिहासाद् ज्ञायते यत् महाराजो दशरथः स्वप्रियपुत्रं रामं चतुर्दशवर्षेभ्यो वनं प्रैषयत्। राजा हरिश्चन्द्रः सत्यपरिपालनार्थमेव विविधानि दुःखानि सेहे, पदे पदे अपमानितश्च अभवत्, परं सत्यभाषणात् न विरक्तः। अजातशत्रुः धर्मराजो युधिष्ठिरः सत्यभाषणस्य प्रभावादेव विजयश्रियमलभत। राजा मयूरध्वजो निजपुत्रस्य शिरो अरया द्विधा विभक्तवान्। महात्मा गान्धिमहोदयोऽपि सत्यादेव भारतवर्षं स्वतन्त्रमकरोत्। अतएव **'सत्यमेव जयते'** इति राजचिह्नं भारतस्य स्वीकृतम्।

इत्थं यदि वयं जीवनपथि उन्नतिमभिलषामः तर्हि अस्माभिः सत्यव्रतस्य परिपालनमवश्यं करणीयम्। देशस्य, समाजस्य संसारस्य च कल्याणम् अभ्युदयश्च सत्यादेव भविष्यतः। अतः सत्यमेवोक्तम्—**'सत्यमेव जयते नानृतम्'**।

(१८) उद्योगः (उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः)

लघोः महतो वा कस्यापि कार्यस्य सिद्धये उद्योगस्य महती आवश्यकता भवति। केवलम् इच्छामात्रेण कार्यं न सिद्धचति। ये जनाः सततमेव उद्योगपरायणाः सन्ति तेषां कृते जगति किमपि असाध्यं दुर्लभञ्च नास्ति। उद्योगिनः पुरुषस्य पुरतः सिद्धयः बद्धाञ्जलयः उपस्थिताः भवन्ति, भाग्यमपि उद्योगिनः एव साहाय्यं कुरुते। उक्तञ्च—

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात् पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धचति॥

तथा च—उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र साहाय्यकृद् विभुः॥

अभिलषितार्थप्राप्त्यर्थं सुदृढेन संकल्पेन बाधामविगणय्य या प्रवृत्तिः, सा उद्योगः। उद्योगो हि पुरुषकारः, कर्म, उद्यमः इति च कथ्यते। सर्वाणि दुःखानि सर्वे चाभावाः अकर्मण्यतया भवन्ति। आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुरस्ति। उद्यमसमो नान्यः बन्धुरस्ति। उद्योगी पुरुषः यदि इच्छेत्तर्हि समस्तं लोकमपि परावर्तयेत्। उद्योगाभावे सति प्राप्तमपि विनश्यति। अतएवोक्तम्—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्धचति कोऽत्र दोषः॥

किञ्च—उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

तथा च—आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति॥
योजनानां सहस्रं तु शनैर्गच्छेत् पिपीलिका।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥

सर्वत्र वयम् उद्योगस्य महत्त्वम् अवलोकयामः। येषां कृते पूर्वम् एकवारमपि भोजनं दुर्लभमासीत्, ये च शतशो विदीर्णानि वस्त्राणि धारयन्तः महता कष्टेन अङ्गगोपनं कर्तुं शक्नुवन्ति स्म ते एव उद्योगेन महान्तो धनवन्तः सन्तः बहुमूल्यैः कौशेयवसनैः शरीराणि विभूषयन्ति। किमधिकम्, उद्योगेन अलभ्यमपि सुलभं भवति, असम्भवमपि सम्भवं भवति, दुर्बलोऽपि बलवान् भवति, मूर्खोऽपि विद्वान् भवति। प्रकृतिः स्वकीयं सर्वमपि वैभवं तस्मै उपायनीकरोति। वैज्ञानिकाः उद्योगप्रभावेणैव जले, स्थले आकाशे च सर्वत्र अप्रतिहतगतिवन्तः सन्ति।

लोके विषमतां विलोक्य केचन कार्यसिद्धयर्थं दैवं (भाग्यम्) प्रमाणयन्ति। दैवे अनुकूले सर्वं सुसाध्यं भवति, प्रतिकूले सति सर्वं विपर्यस्यति। दैवप्रभावादेव पुरुषोत्तमः रामोऽपि असम्भवमपि हेममृगं विलोक्य अलुभत। अतएवोक्तम्—'नैवान्यथा भवति यल्लिखितं विधात्रा'। परन्तु यथा क्षेत्रेषु उप्तमपि बीजं सेचनादिकर्म अपेक्षते तथैव दैवसाधनेऽपि उद्योगस्यावश्यकता नियता। अतएवोक्तं भगवद्गीतायाम्—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः॥

प्रकृतिरपि उद्योगपरतायाः एव शिक्षां वितरति। सूर्यचन्द्रादयः पक्षिकीटादयश्च सर्वे स्व-स्वकार्यसंलग्नाः अवलोक्यन्ते। अतः अस्माभिरपि आलस्यं विहाय उद्योगपरायणैः भवितव्यम्, यतः पौरुषं विना भाग्यमपि फलदं न भवति—

यथाह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धचति॥

(१९) अहिंसा (अहिंसा परमो धर्मः)

सर्वेषामपि सत्य-ब्रह्मचर्यादीनां धर्माणां मूलम् अहिंसा वर्तते। अहिंसैव धर्ममार्गः। परमात्मनोऽपरं रूपमहिंसैव। अधुना जगति हिंसायाः साम्राज्यमस्ति। प्राणिवधः मनोरञ्जनस्य साधनम् वर्तते। युद्धबिभीषिका सर्वत्र जृम्भायते। विश्वशान्तिः चिन्तनीयां दशां प्राप्ता। अतः वर्तमानसमये अहिंसायारुपयोगिता प्राचीनकालादपि अधिका जाता।

हिंसा त्रिविधा भवति—मानसिकी वाचिकी कायिकी च। कस्मिंश्चित् जीवस्य अशुभादिचिन्तनं 'मानसिकी' हिंसा। असत्यभाषणेन कठोरभाषणेन वा [illegible]

प्रदानं 'वाचिकी' हिंसा। शस्त्रादिना जीवस्य हननं प्रताडनं वा 'कायिकी' हिंसा। एतासां तिसृणां हिंसानां परित्यागोऽहिंसेति कथ्यते। इत्थमहिंसाया इदमेव मौलिकं रूपं यत् मानवैः मनसा वचसा कर्मणा च तत्र करणीयं यदन्येषां प्रतिकूलं भवेत्। उक्तञ्च—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

तथा च—'आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः'। एवम् 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' इति सिद्धान्तानुसरणमहिंसा।

यदि जगति हिंसायाः ताण्डवनृत्यं स्यात्तर्हि न कोऽपि नरः देशो वा शान्त्या सुखेन वा स्थातुं शक्नोति। अहिंसाबलेनैव स्वस्य लोकस्य च कल्याणं भविष्यति। अहिंसा-शस्त्रेणैव भारतदेशः पराधीनतां विहाय स्वतन्त्रतामलभत। भगवता महावीरेण, भगवता बुद्धेन, महात्मना गान्धिमहोदयेन च अहिंसाया एवोपदेशः प्रदत्तः। कलिङ्गाधिपतिना सम्राजा अशोकेनाऽपि अहिंसायाः प्रचारः कृतः। जैनधर्मस्य तु मूलोद्देश्यमेव-ऽहिंसा एव।

अहिंसायाः महिमा अचिन्त्यः। शत्रवोऽपि अहिंसया मित्राणि भवन्ति, क्रूराः अपि सरलाः जायन्ते। अहिंसापरायणः सर्वत्र निर्भयं विचरन्ति, सुखं प्रतिष्ठां च प्राप्नुवन्ति। सत्य-तप-त्याग-क्षमा-प्रेम-पवित्रता-प्रभृतयः गुणाः समायन्ति। किं बहुना, असम्भवानि अपि कार्याणि अहिंसया सिध्यन्ति। अहिंसायाः माहात्म्यं विचिन्त्य एव अधुना सर्वे राष्ट्राणि विश्वशान्त्यर्थं प्रयतन्ते। इत्थम् अहिंसाव्यवहारः प्रशस्तः सर्वोत्कृष्टधर्म-श्चेति निर्विवादमेव। सत्यमेवोक्तम्—'अहिंसा परमो धर्मः'।

(२०) गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न लिङ्गं न च वयः
(गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते)

'पूजायाः आधारभूताः गुणा एव सन्ति न तु लिङ्गं न च वयः' इति प्रतिपादकेन महाकविना भवभूतिना अरुन्धत्या मुखेन सीतां प्रति स्वकीयः श्रद्धाभावः प्रदर्शितः अस्यां सूक्तौ। श्लोकश्चायम्—

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं दृढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न लिङ्गं न च वयः॥

वस्तुतः गुणीपुरुषः सर्वस्यापि जगतः सम्मानपात्रतां लभते। लघुरपि सः महतां पूज्यः श्रद्धेयश्च भवति। महानपि गुणरहितः जनः सदाचारिभिः न केवलम् अनाद्रियते एव अपितु त्यज्यतेऽपि। धर्मप्रियेण गुणवता विभीषणेन विद्वान् स्वभ्राता रावणोऽपि परित्यक्तः, रामश्च आद्रितः।

यद्यपि जगति 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' इत्यपि सूक्तिः सुप्रसिद्धा। दृश्यते च निर्गुणोऽपि गुणवान्, निरक्षरोऽपि विद्वान् भवति धनप्रभावात्। परन्तु अर्थेनैव सर्वत्र जीवननिर्वाहः न भवति। अर्थराशिं प्राप्य जनाः सम्मानावाप्तये समाजे समुत्सुकाः दृश्यन्ते। वास्तविकी सम्मानप्राप्तिस्तु गुणद्वारा एव भवति। गुणिनं विना धनिकानां कार्यसिद्धिर्न भवति। 'गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते' इत्थं गुणैरप्राप्यं किञ्चिदपि नास्ति। 'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' इत्यपि चोक्तम्। शास्त्राध्ययनमात्रेण कोऽपि विद्वान् गुणी वा न भवति। वस्तुतः स एव विद्वान् गुणवान् च यः क्रियावान्।

गुणाः कुत्र भवन्ति ? कस्मिन् समये कस्य वयसि वा समुद्भूताः भवन्ति ? इति वक्तुं न शक्यते। तत्र स्त्रीत्वं-पुरुषत्वं, बाल्यत्वं-वृद्धत्वं, शूद्रत्वं-ब्राह्मणत्वं च कारणं नास्ति। अतएवोक्तम्—

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः।
वासुदेवं नमस्यन्ति वसुदेवं न मानवाः॥
न हि जन्मनि ज्येष्ठत्वं ज्येष्ठत्वं गुण उच्यते।
गुणात् गुरुत्वमायाति दधि-दुग्ध-घृतं तथा॥

वस्तुतस्तु मानवजीवने गुणानां महन्मूल्यं वर्तते। गुणानामभावे तु मानवजीवनं पशुवदेव निष्फलं भवति। सम्यगुक्तम्—

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

एतेषां गुणानामेव वैशिष्ट्यात् पिकः सत्क्रियते, काकः तिरस्क्रियते च। गुणैः यादृशं सम्मानं प्रतिष्ठा स्नेहश्च प्राप्यते तत् सर्वं नान्यैः साधनैः। धनादिभिः या प्रतिष्ठा लभ्यते सा न चिरस्थायिनी, न लोकव्यापिनी न च सज्जनैरनुमोदिता। अतः 'गुणं पृच्छस्व मा रूपम्, शीलं पृच्छस्व मा कुलम्' इत्युक्तम्। किञ्च, 'गुणाः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।' इत्यादिभिः यथा गुणमाहात्म्यं निर्विवादम् तथैव तत्र 'आयुर्लिङ्गादीनां वैशिष्ट्यं नास्ति' इत्यपि समीचीनम्। अतः सर्वत्र गुणान् विचार्य एव आदरः कर्तव्यः न तु केवलम् आयुर्लिङ्गादीन् विलोक्य।

परिशिष्ट (Appendix)

परिशिष्ट : १ : धातुकोष[1]

प्रथम गण (भ्वादि)—

अट् (प, घूमना) अटति, अटतु, आटत्, अटेत्, अटिष्यति । आटयति, अटच्यते
अर्च् (प, पूजना) अर्चति, अर्चतु, आर्चत्, अर्चेत्, अर्चिष्यति । अर्चयति, अर्च्यते
अर्ज् (प, कमाना) अर्जति, अर्जतु, आर्जत्, अर्जेत्, अर्जिष्यति । अर्जयति, अर्ज्यते
अर्ह् (प, योग्य०) अर्हति, अर्हतु, आर्हत्, अर्हेत्, अर्हिष्यति । अर्हयति, अर्ह्यते
ईक्ष् (आ, देखना) ईक्षते, ईक्षताम्, ऐक्षत, ईक्षेत, ईक्षिष्यते । ईक्षयति, ईक्ष्यते
ईर्ष्य् (प, ईर्ष्या०) ईर्ष्यति, ईर्ष्यतु, ऐर्ष्यत्, ईर्ष्येत्, ईर्ष्यिष्यति । ईर्ष्ययति, ईर्ष्यते
ईह् (आ, चाहना) ईहते, ईहताम्, ऐहत, ईहेत, ईहिष्यते । ईहयति, ईह्यते
ऋज् (आ, कमाना) अर्जते, अर्जताम्, आर्जत, अर्जेत, अर्जिष्यते । अर्जयते, अर्ज्यते
एध् (आ, बढ़ना) एधते, एधताम्, ऐधत, एधेत, एधिष्यते । एधयति, एध्यते
कम् (आ, चाहना) कामयते, कामयताम् अकामयत, कामयेत, कामयिष्यते । कामयति
कम्प् (आ, काँपना) कम्पते, कम्पताम्, अकम्पत,कम्पेत, कम्पिष्यते । कम्पयति,कम्प्यते
कास्[2] (आ, खाँसना) कासते,कासताम्,अकासत,कासेत, कासिष्यते । कासयति,कास्यते
कील् (प, गाड़ना) कीलति, कीलतु, अकीलत्, कीलेत्, कीलिष्यति । कीलयति, कील्यते
कुर्द् (आ, कूदना) कूर्दते, कूर्दताम्, अकूर्दत, कूर्देत, कूर्दिष्यते । कूर्दयति, कूर्द्यते
कूज् (प, चूँ चूँ०) कूजति, कूजतु, अकूजत्, कूजेत्, कूजिष्यति । कूजयति, कूज्यते
कृप् (आ, समर्थ०) कल्पते, कल्पताम्, अकल्पत, कल्पेत, कल्पिष्यते । कल्पयति, कल्प्यते
कृष् (प, जोतना) कर्षति, कर्षतु, अकर्षत्, कर्षेत्, कर्क्ष्यति । कर्षयति, कृष्यते

१. (क) गण के क्रम से तथा अकारादि क्रम से प्रसिद्ध धातुओं के क्रमशः लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, लृट् और णिच्-प्रत्ययान्त व कर्मवाच्य के प्र० पु० एकवचन के रूप दिए गए हैं। (ख) उभयपदी धातुओं के परस्मैपद में ही अधिक प्रचलित होने के कारण उनके प्रायः परस्मैपद के ही रूप दिए गए हैं। (ग) अनेक अर्थ वाली धातुओं का कोष्ठक में एक ही अर्थ दिया गया है। (घ) जो धातुएँ एकाधिक गण में हैं उनका प्रसिद्धि को ध्यान में रखकर कहीं-कहीं उल्लेख कर दिया है। (ङ) प, आ, उ ये वर्ण क्रमशः परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी के बोधक हैं।
२. काश् (आ,चमकना) इसके रूपों में 'स' के स्थान पर 'श्' होगा। जैसे—काशते।

क्रन्द् (प, रोना) क्रन्दति, क्रन्दतु, अक्रन्दत्, क्रन्देत्, क्रन्दिष्यति । क्रन्दयति, क्रन्द्यते
क्रम् (प, चलना) क्रामति, क्रामतु, अक्रामत्, क्रामेत्, क्रमिष्यति । क्रमयति, क्रम्यते
क्रीड् (प, खेलना) क्रीडति, क्रीडतु, अक्रीडत्, क्रीडेत्, क्रीडिष्यति, । क्रीडयति, क्रीड्यते
क्षम्[1] (आ, क्षमा०) क्षमते, क्षमताम्, अक्षमत, क्षमेत, क्षमिष्यते । क्षमयति, क्षम्यते
क्षि (प, नष्ट०) क्षयति, क्षयतु, अक्षयत्, क्षयेत्, क्षेष्यति । क्षाययति, क्षीयते
क्षुभ् (आ, क्षुब्ध०) क्षोभते, क्षोभताम्,अक्षोभत,क्षोभेत,क्षोभिष्यते । क्षोभयति, क्षुभ्यते
खन् (उ, खोदना) खनति, खनतु, अखनत्, खनेत्, खनिष्यति । खानयति, खन्यते
खाद् (प, खाना) खादति, खादतु, अखादत्, खादेत्, खादिष्यति । खादयति, खाद्यते
खेल् (प, खेलना) खेलति, खेलतु, अखेलत्, खेलेत्, खेलिष्यति । खेलयति, खेल्यते
गद् (प, कहना) नि + गदति, गदतु, अगदत्, गदेत्, गदिष्यति । गादयति, गद्यते
गम् (प, जाना) गच्छति, गच्छतु, अगच्छत्, गच्छेत्, गमिष्यति । गमयति, गम्यते
गर्ज् (प, गरजना) गर्जति, गर्जतु, अगर्जत्, गर्जेत्, गर्जिष्यति । गर्जयति, गर्ज्यते
गर्ह्[2] (आ, निन्दा०) गर्हते, गर्हताम्, अगर्हत, गर्हेत, गर्हिष्यते । गर्हयति, गर्ह्यते
गाह् (आ, घुसना) गाहते, गाहताम्, अगाहत,गाहेत, गाहिष्यते । गाहयति, गाह्यते
गुञ्ज्, (प, गूँजना) गुञ्जति, गुञ्जतु, अगुञ्जत्,गुञ्जेत्, गुञ्जिष्यति । गुञ्जयति, गुञ्ज्यते
गुप् (प,रक्षा०) गोपायति,गोपायतु,अगोपायत्,गोपायेत्,गोपिष्यति । गोपयति,गोप्यते
गुप् (आ, निन्दा०) जुगुप्सते, जुगुप्सताम्,अजुगुप्सत, जुगुप्सेत,जुगुप्सिष्यते । जुगुप्सयति
गुह् (उ, छिपाना) गूहति-ते, गूहतु, अगूहत्, गूहेत्, गूहिष्यति । गूहयति, गुह्यते
गै (प, गाना) गायति, गायतु, अगायत्, गायेत्, गास्यति । गाययति, गीयते
ग्रस् (आ, खाना) ग्रसते, ग्रसताम्, अग्रसत, ग्रसेत, ग्रसिष्यते । ग्रासयति, ग्रस्यते
ग्लै (प, दुखी०) ग्लायति, ग्लायतु, अग्लायत्, ग्लायेत्, ग्लास्यति । ग्लापयति, ग्लायते
घट् (आ, यत्न०) घटते, घटताम्, अघटत, घटेत, घटिष्यते । घटयति, घटच्यते
घ्रा (प, सूँघना) जिघ्रति, जिघ्रतु, अजिघ्रत्, जिघ्रेत्, घ्राष्यति । घ्रापयति, घ्रायते
चम् (प, पीना) आ + चामति,चामतु, अचामत्, चामेत्, चामिष्यति । चामयति, चम्यते
चर् (प, चलना) चरति, चरतु, अचरत्, चरेत्, चरिष्यति । चारयति, चर्यते
चर्व् (प, चबाना) चर्वति, चर्वतु, अचर्वत्, चर्वेत्, चर्विष्यति । चर्वयति, चर्व्यते
चल् (प, कम्पन०) चलति, चलतु, अचलत्, चलेत्, चलिष्यति । चलयति, चल्यते
चित्[3] (प, समझना) चेतति, चेततु, अचेतत्, चेतेत्, चेतिष्यति । चेतयति, चित्यते
चुम्ब् (प, चूमना) चुम्बति, चुम्बतु, अचुम्बत्, चुम्बेत्, चुम्बिष्यति । चुम्ब्यति, चुम्ब्यते

१. यह धातु चतुर्थ गण में परस्मैपदी होती है। जैसे—क्षाम्यति, क्षाम्यतु।
२. यह धातु चुरादिगण में उभयपदी होती है। जैसे—गर्हयति-ते।
३. यह धातु चुरादिगण में (सोचना अर्थ में) आ० होती है। जैसे—चेतयते।

चूष् (प, चूसना) चूषति, चूषतु, अचूषत्, चूषेत्, चूषिष्यति । चूषयति, चूष्यते
चेष्ट् (आ, चेष्टा०) चेष्टते, चेष्टताम्, अचेष्टत, चेष्टेत, चेष्टिष्यते । चेष्टयति, चेष्टयते
जप् (प, जपना) जपति, जपतु, अजपत्, जपेत्, जपिष्यति । जापयति, जप्यते
जल्प् (प, बात०) जल्पति, जल्पतु, अजल्पत्, जल्पेत्, जल्पिष्यति । जल्पयति, जल्प्यते
जि (प, जीतना) जयति, जयतु, अजयत्, जयेत्, जेष्यति । जाययति, जीयते
जीव् (प, जीना) जीवति, जीवतु, अजीवत्, जीवेत्, जीविष्यति । जीवयति, जीव्यते
जृम्भ् (आ, जँभाई) जृम्भते, जृम्भताम्, अजृम्भत, जृम्भेत, जृम्भिष्यते । जृम्भयति,
ज्वल् (प, जलना) ज्वलति, ज्वलतु, अज्वलत्, ज्वलेत्, ज्वलिष्यति । ज्वालयति, ज्वल्यते
तक्ष् (प, छीलना) तक्षति, तक्षतु, अतक्षत्, तक्षेत्, तक्षिष्यति । तक्षयति, तक्ष्यते
तप् (प, तपना) तपति, तपतु, अतपत्, तपेत्, तप्स्यति । तापयति, तप्यते
तर्ज्[1] (प, भर्त्सना०) तर्जति, तर्जतु, अतर्जत्, तर्जेत्, तर्जिष्यति । तर्जयति, तर्ज्यते
तॄ (प, तैरना) तरति, तरतु, अतरत्, तरेत्, तरिष्यति । तारयति, तीर्यते
त्यज् (प, छोड़ना) त्यजति, त्यजतु, अत्यजत्, त्यजेत्, त्यक्ष्यति । त्याजयति, त्यज्यते
त्रप् (आ, लजाना) त्रपते, त्रपताम्, अत्रपत, त्रपेत, त्रपिष्यते । त्रपयति, त्रप्यते
त्रै (आ, बचाना) त्रायते, त्रायताम्, अत्रायत, त्रायेत, त्रास्यते । त्रापयति, त्रायते
त्वर् (आ, जल्दी०) त्वरते, त्वरताम्, अत्वरत, त्वरेत, त्वरिष्यते । त्वरयति, त्वर्यते
दय् (आ, दया०) दयते, दयताम्, अदयत, दयेत, दयिष्यते । दाययति, दय्यते
दंश् (प, डँसना) दशति, दशतु, अदशत्, दशेत्, दंक्ष्यति । दशयति, दश्यते
दह् (प, जलाना) दहति, दहतु, अदहत्, दहेत्, धक्ष्यति । दाहयति, दह्यते
दीक्ष् (आ, दीक्षा०)दीक्षते, दीक्षताम्, अदीक्षत, दीक्षेत, दीक्षिष्यते । दीक्षयति, दीक्ष्यते
दृश् (प, देखना) पश्यति, पश्यतु, अपश्यत्, पश्येत्, द्रक्ष्यति । दर्शयति, दृश्यते
द्युत्(आ, चमकना)द्योतते, द्योतताम्, अद्योतत, द्योतेत, द्योतिष्यते । द्योतयति, द्युत्यते
द्रु (प, पिघलना) द्रवति, द्रवतु, अद्रवत्, द्रवेत्, द्रोष्यति । द्रावयति, द्रूयते
धाव् (उ, दौड़ना) धावति, धावतु, अधावत्, धावेत्, धाविष्यति । धावयति, धाव्यते
धूप् (प, सुखाना) धूपायति, धूपायतु, अधूपायत्, धूपायेत्, धूपायिष्यति । धूपाययति
ध्मा (प, फूँकना) धमति, धमतु, अधमत्, धमेत्, ध्मास्यति । ध्मापयति, ध्मायते
ध्यै (प, ध्यान०) ध्यायति, ध्यायतु,अध्यायत्, ध्यायेत्, ध्यास्यति । ध्यापयति, ध्यायते
ध्वन् (प, शब्द०) ध्वनति, ध्वनतु, अध्वनत्, ध्वनेत्, ध्वनिष्यति । ध्वनयति, ध्वन्यते
ध्वंस् (आ, नष्ट०) ध्वंसते,ध्वंसताम्,अध्वंसत,ध्वंसेत,ध्वंसिष्यते । ध्वंसयति, ध्वस्यते
नद् (प, नाद०) नदति, नदतु, अनदत्, नदेत्, नदिष्यति । नादयति, नद्यते
नन्द् (प, प्रसन्न०) नन्दति, नन्दतु, अनन्दत्, नन्देत्, नन्दिष्यति । नन्दयति, नन्द्यते

१. यह धातु चुरादिगण में (डाँटना अर्थ में) आ० होती है । जैसे—तर्जयते ।

नम् (प, झुकना) नमति, नमतु, अनमत्, नमेत्, नंस्यति । नमयति, नम्यते
निन्द् (प, निंन्दा) निन्दति,निन्दतु, अनिन्दत्,निन्देत्, निन्दिष्यति । निन्दयति, निंद्यते
नी (प, लेजाना) नयति, नयतु, अनयत्, नयेत्, नेष्यति । नाययति, नीयते
(आ, लेजाना) नयते, नयताम्, अनयत, नयेत, नेष्यते । नाययति, नीयते
पच् (उ, पकाना) पचति, पचतु, अपचत्, पचेत्, पक्ष्यति । पाचयति, पच्यते
पठ् (प, पढ़ना) पठति, पठतु, अपठत्, पठेत्, पठिष्यति । पाठयति, पठ्यते
पण् (आ, खरीदना) पणते, पणताम्/अपणत, पणेत, पणिष्यते । पाणयति, पण्यते
पत् (प, गिरना) पतति, पततु, अपतत्, पतेत्, पतिष्यति । पातयति, पत्यते
पा (प, पीना) पिबति, पिबतु अपिबत्, पिबेत्, पास्यति । पाययति, पीयते
पू (आ, पवित्र०) पवते, पवताम्, अपवत, पवेत, पविष्यते । पावयति, पूयते
प्लु (आ, कूदना) प्लवते, प्लवताम्, अप्लवत, प्लवेत, प्लोष्यते । प्लावयति, प्लूयते
फल् (प, फलना) फलति, फलतु, अफलत्, फलेत्, फलिष्यति । फालयति, फल्यते
बाध्(आ, पीड़ा०) बाधते, बाधताम्, अबाधत, बाधेत, बाधिष्यते । बाधयति, बाध्यते
बुध्[1] (उ, जानना) बोधति, बोधतु, अबोधत्, बोधेत्, बोधिष्यति । बोधयति, बुध्यते
भज् (उ, सेवा०) भजति, भजतु, अभजत्, भजेत्, भक्ष्यति । भाजयति, भज्यते
भण् (प, कहना) भणति, भणतु, अभणत्, भणेत्, भणिष्यति । भाणयति, भण्यते
भाष्(आ, कहना)भाषते, भाषताम्, अभाषत, भाषेत, भाषिष्यते । भाषयति, भाष्यते
भास् (आ, चमकना) भासते, भासताम्, अभासत, भासेत, भासिष्यते । भासयति,
भिक्ष् (आ, माँगना) भिक्षते, भिक्षताम्, अभिक्षत, भिक्षेत, भिक्षिष्यते । भिक्षयति
भिदि[2] (प, टुकड़े०) भिदति, भिदतु, अभिदत्, भिदेत्, भिदिष्यति । भिन्दयति, भिद्यते
भू (प, होना) भवति, भवतु, अभवत्, भवेत्, भविष्यति । भावयति, भूयते
भूष् (प, सजाना) भूषति, भूषतु, अभूषत्, भूषेत्, भूषिष्यति । भूषयति, भूष्यते
भृ[3] (उ, भरना) भरति-ते, भरतु, अभरत्, भरेत्, भरिष्यति । भारयति, भ्रियते
भ्रम्[4] (प, घूमना) भ्रमति, भ्रमतु, अभ्रमत्, भ्रमेत्, भ्रमिष्यति । भ्रमयति, भ्रम्यते
भ्रंश् (आ, गिरना) भ्रंशते, भ्रंशताम्, अभ्रंशत, भ्रंशेत, भ्रंशिष्यते । भ्रंशयति, भ्रंश्यते
मथ् (प, मथना) मथति, मथतु, अमथत्, मथेत्, मथिष्यति । माथयति, मथ्यते
मान्[5] (आ, जिज्ञासा०) मीमांसते, मीमांसताम्, अमीमांसत, मीमांसेत, मीमांसिष्यते ।

१. बुध् (४, आ, जानना) बुध्यते, बुध्यताम्, अबुध्यत, बुध्येत, भोत्स्यते। बोधयति, बुध्यते
२. भिद् (७,उ,तोड़ना) भिनत्ति (भिन्ते), भिनत्तु, अभिनत्, भिन्द्यात्, भेत्स्यति । भेदयति
३. भृ (३,उ,धारण०) बिभर्ति(बिभृते), बिभर्तु, अबिभः, बिभृयात्, भरिष्यति । भारयति
४. भ्रम् (४,प, घूमना) भ्राम्यति, भ्राम्यतु, अभ्राम्यत्, भ्राम्येत्, भ्रमिष्यति । भ्रमयति
५. मान् (१०, उ, आदर) मानयति,मानयतु,अमानयत्, मानयेत,मानयिष्यति । मान्यते

मील् (प, आँख मीचना) मीलति, मीलतु, अमीलत्, मीलेत्, मीलिष्यति। मीलयति
मुद् (आ, प्रसन्न०) मोदते, मोदताम्, अमोदत, मोदेत, मोदिष्यते। मोदयति, मुद्यते
मूर्च्छ् (प,मूर्छित०) मूर्च्छति,मूर्च्छतु,अमूर्च्छत्,मूर्च्छेत्,मूर्च्छिष्यति। मूर्च्छयति,मूर्च्छ्यते
म्लै (प, मुरझाना) म्लायति, म्लायतु, अम्लायत्, म्लायेत्, म्लास्यति। म्लापयति
यज् (उ, यज्ञ०) यजति-ते, यजतु, अयजत्, यजेत्, यक्ष्यति। याजयति, इज्यते
यत् (आ, प्रयत्न०) यतते, यतताम्, अयतत, यतेत, यतिष्यते। यातयति, यत्यते
याच् (उ, माँगना) याचति, याचतु, अयाचत्, याचेत्, याचिष्यति। याचयति, याच्यते
रक्ष् (प, पालन०) रक्षति, रक्षतु, अरक्षत्, रक्षेत्, रक्षिष्यति। रक्षयति, रक्ष्यते
रट् (प, रटना) रटति, रटतु, अरटत्, रटेत्, रटिष्यति। राटयति, रट्यते
रम्[1] (आ, रमना) रमते, रमताम्, अरमत, रमेत, रंस्यते। रमयति, रम्यते
राज् (उ, चमकना) राजति, राजतु, अराजत्, राजेत्, राजिष्यति। राजयति, राज्यते
रुच् (आ, अच्छा०) रोचते, रोचताम्, अरोचत, रोचेत,रोचिष्यते। रोचयति, रुच्यते
रुह् (प, उगना) रोहति, रोहतु, अरोहत्, रोहेत्, रोक्ष्यति। रोहयति, रुह्यते
लग् (प, लगना) लगति, लगतु, अलगत्, लगेत्, लगिष्यति। लगयति, लग्यते
लङ्घ्[2] (आ, लाँघना) उत् + लङ्घते, लंघताम्, अलंघत, लंघेत, लंघिष्यते। लंघयति
लभ् (आ, पाना) लभते, लभताम्, अलभत, लभेत, लप्स्यते। लम्भयति, लभ्यते
लम्ब् (आ, लटकना) लम्बते, लम्बताम्, अलम्बत, लम्बेत, लम्बिष्यते। लम्बयति
लस् (प, शोभित०)वि + लसति, लसतु, अलसत् लसेत्, लसिष्यति। लासयति, लस्यते
लिङ्ग् (प, आलिंगन०) आ + लिंगति,लिंगतु,अलिंगत्, लिंगेत्, लिंगिष्यति। लिंगयति
लुट् (प, लोटना) लोटति, लोटत्, अलोटत्, लोटेत्, लोटिष्यति। लोटयति, लुट्यते
लुड् (प, बिलोना) आ + लोडति, लोडतु, अलोडत्, लोडेत्, लोडिष्यति। लोडयति
वद् (प, बोलना) वदति, वदतु, अवदत्, वदेत्, वदिष्यति। वादयति, उद्यते
वन्द् (आ, प्रणाम०) वन्दते, वन्दताम्, अवन्दत, वन्देत, वन्दिष्यते। वन्दयति वन्द्यते
वप् (उ, बोना) वपति-ते, वपतु, अवपत्, वपेत्, वप्स्यति। वापयति, उप्यते
वम् (प, उगलना) वमति, वमतु, अवमत्, वमेत्, वमिष्यति। वमयति, वम्यते
वस् (प, रहना) वसति, वसतु, अवसत्, वसेत्, वत्स्यति। वासयति, उष्यते
वह् (उ, ढोना) वहति-ते, वहतु, अवहत्, वहेत्, वक्ष्यति। वाहयति, उह्यते
वाञ्छ् (प,चाहना) वाञ्छति,वाञ्छतु, अवाञ्छत्, वाञ्छेत्,वाञ्छिष्यति। वाञ्छयति
वृत् (आ, होना) वर्तते, वर्तताम्, अवर्तत, वर्तेत, वर्तिष्यते। वर्तयति, वृत्यते
वृध् (आ, बढ़ना) वर्धते, वर्धताम्, अवर्धत, वर्धेत, वर्धिष्यते। वर्धयति, वृध्यते

१. वि + रम् (१, प, रमना) विरमति, विरमतु, व्यरमत्,विरमेत्,विरंस्यति।
२. लङ्घ् धातु चुरादिगण में उ० है। जैसे—लंघयति-ते।

वृष् (प, बरसना) वर्षति, वर्षतु, अवर्षत्, वर्षेत्, वर्षिष्यति। वर्षयति, वृष्यते
वे (उ, बुनना) वयति-ते, वयतु, अवयत्, वयेत्, वास्यति। वाययति, ऊयते
वेप् (आ, काँपना) वेपते, वेपताम्, अवेपत, वेपेत, वेपिष्यते। वेपयति, वेप्यते
वेष्ट् (आ, घेरना) वेष्टते, वेष्टताम्, अवेष्टत, वेष्टेत, वेष्टिष्यते। वेष्टयति, वेष्ट्यते
व्यथ् (आ, दुःखित०) व्यथते, व्यथताम्, अव्यथत, व्यथेत, व्यथिष्यते। व्यथयति
व्रज् (प, जाना) व्रजति, व्रजतु, अव्रजत्, व्रजेत्, व्रजिष्यति। व्राजयति, व्रज्यते
शङ्क् (आ, शङ्का०) शङ्कते, शङ्कताम्,अशङ्कत, शङ्केत,शङ्किष्यते। शङ्कयति,शङ्क्यते
शप् (उ, शाप०) शपति-ते, शपतु, अशपत्, शपेत्, शप्स्यति। शापयति, शप्यते
शंस् (प, प्रशंसा०) प्र + शंसति, शंसतु, अशंसत्, शंसेत्, शंसिष्यति। शंसयति, शंस्यते
शिक्ष् (आ,सीखना) शिक्षते,शिक्षताम्,अशिक्षत,शिक्षेत,शिक्षिष्यते। शिक्षयति,शिक्ष्यते
शुच् (प, शोक०) शोचति, शोचतु, अशोचत्, शोचेत्, शोचिष्यति। शोचयति, शुच्यते
शुभ् (आ, चमकना) शोभते, शोभताम्, अशोभत, शोभेत, शोभिष्यते। शोभयति
श्चुत् (प, चूना) श्चोतति, श्चोतत्, अश्चोतत्, श्चोतेत्, श्चोतिष्यति। श्चोतयति,श्चुत्यते
श्रि (उ, आश्रय०) श्रयति-ते, श्रयतु, अश्रयत्, श्रयेत्, श्रयिष्यति। श्राययति, श्रीयते
श्रु (प, सुनना) शृणोति, शृणोतु, अशृणोत्, शृणुयात्, श्रोष्यति। श्रावयति, श्रूयते
श्लाघ् (आ, प्रशंसा) श्लाघते,श्लाघताम्, अश्लाघत,श्लाघेत, श्लाघिष्यते। श्लाघयति
ष्ठिव् (प, थूकना) नि + ष्ठीवति, ष्ठीवतु, अष्ठीवत् ष्ठीवेत्, ष्ठेविष्यति। ष्ठेवयति
सद् (प, बैठना) नि + सीदति, सीदतु, असीदत्, सीदेत्, सत्स्यति। सादयति, सद्यते
सह् (आ, सहना) सहते, सहताम्, असहत, सहेत, सहिष्यते। साहयति, सह्यते
सृ (प, सरकना) सरति, सरतु, असरत्, सरेत्, सरिष्यति। सारयति, स्रियते
सेव् (आ, सेवा करना) सेवते, सेवताम्, असेवत, सेवेत, सेविष्यते। सेवयति, सेव्यते
स्खल् (प, गिरना)स्खलति,स्खलतु,अस्खलत्,स्खलेत्,स्खलिष्यति। स्खलयति,स्खल्यते
स्था (प, ठहरना) तिष्ठति, तिष्ठतु, अतिष्ठत्, तिष्ठेत्, स्थास्यति। स्थापयति, स्थीयते
स्पन्द् (आ, फड़कना) स्पन्दते, स्पन्दताम्, अस्पन्दत, स्पन्देत, स्पन्दिष्यते। स्पन्दयति
स्पर्ध् (आ, स्पर्धा०) स्पर्धते, स्पर्धताम्, अस्पर्धत, स्पर्धेत, स्पर्धिष्यते। स्पर्धयति, स्पर्ध्यते
स्मि (आ, मुस्कराना) स्मयते, स्मयताम्, अस्मयत, स्मयेत,स्मेष्यते। स्माययति, स्मीयते
स्मृ (प, स्मरण०) स्मरति, स्मरतु, अस्मरत्, स्मरेत्, स्मरिष्यति। स्मारयति, स्मर्यते
स्यन्द् (आ, बहना) स्यन्दते, स्यन्दताम्, अस्यन्दत, स्यन्देत, स्यन्दिष्यते। स्यन्दयति
स्रंस् (आ, सरकना) स्रंसते, स्रंसताम्, अस्रंसत, स्रंसेत, स्रंसिष्यते। स्रंसयति, स्रंस्यते
स्रु (प, चूना) स्रवति, स्रवतु, अस्रवत्, स्रवेत्, स्रोष्यति। स्रावयति, स्रूयते
हस् (प, हरना) हसति, हसतु, अहसत्, हसेत्, हसिष्यति। हासयति, हस्यते
हृ (उ,चुराना) हरति-ते, हरतु, अहरत्, हरेत्, हरिष्यति। हारयति, ह्रियते
ह्वे (उ,बुलाना) आ + ह्वयति, ह्वयतु, अह्वयत्, ह्वयेत्, ह्वास्यति। ह्वाययति, ह्वूयते

द्वितीय गण (अदादि)—

अद् (प, खाना) अत्ति, अत्तु, आदत्, अद्यात्, अत्स्यति । आदयति, अद्यते
अस् (प, होना[1]) अस्ति, अस्तु, आसीत्, स्यात्, भविष्यति । भावयति, भूयते
आस् (आ, बैठना) आस्ते, आस्ताम्, आस्त, आसीत, आसिष्यते । आसयति आस्यते
इ (प, जाना) एति, एतु, ऐत्, इयात्, एष्यति । गमयति, ईयते
इ (आ, पढ़ना) अधि + ईते, ईताम्, ऐत, ईयीत, एष्यते । अध्यापयति, अधीयते
चकास्(प,चमकना)चकास्ति,चकास्तु,अचकास्त,चकास्यात्,चकासिष्यति । चकासयति
जागृ (प, जागना) जागर्ति, जागर्तु, अजागर्त, जागृयात्, जागरिष्यति । जागरयति
दुह् (प, दुहना) दोग्धि, दोग्धु, अधोक्, दुह्यात्, धोक्ष्यति । दोहयति, दुह्यते
(आ, दुहना) दुग्धे, दुग्धाम्, अदुग्ध, दुहीत, धोक्ष्यते । दोहयति, दुह्यते
द्रा (प, सोना) नि + द्राति, निद्रातु, न्यद्रात्, निद्रायात्, निद्रास्यति । निद्रापयति, निद्रायते
द्विष् (उ, द्वेष०) द्वेष्टि, द्वेष्टु, अद्वेट्, द्विष्यात्, द्वेक्ष्यति । द्वेषयति, द्विष्यते
पा (प, रक्षा०) पाति, पातु, अपात्, पायात्, पास्यति । पाययति, पायते
ब्रू (प, बोलना) ब्रवीति, ब्रवीतु, अब्रवीत्, ब्रूयात्, वक्ष्यति । वाचयति, उच्यते
(आ, बोलना) ब्रूते, ब्रूताम्, अब्रूत, ब्रुवीत, वक्ष्यते । वाचयति, उच्यते
भा (प, चमकना) भाति, भातु, अभात्, भायात्, भास्यति । भासयति, भास्यते
मा (प, नापना) माति, मातु, अमात्, मायात्, मास्यति । मापयति, मीयते
या (प, जाना) याति, यातु, अयात्, यायात्, यास्यति । यापयति, यायते
रु (प, शब्द करना) रौति, रौतु, अरौत्, रूयात्, रविष्यति । रावयति, रूयते
रुद् (प, रोना) रोदिति, रोदितु, अरोदीत्, रुद्यात्, रोदिष्यति । रोदयति, रुद्यते
लिह् (उ, चाटना) लेढि, लेढु, अलेट्, लिह्यात्, लेक्ष्यति । लेहयति, लिह्यते
वा (प, हवा बहना) वाति, वातु, अवात्, वायात्, वास्यति । वापयति, वायते
विद्[1] (प, जानना) वेत्ति, वेत्तु, अवेत्, विद्यात्, वेदिष्यति । वेदयति, वेद्यते
शास् (प, शिक्षा०) शास्ति, शास्तु, अशात्, शिष्यात्, शासिष्यति । शासयति, शिष्यते
शी (आ, सोना) शेते, शेताम्, अशेत, शयीत, शयिष्यते । शाययति, शय्यते
श्वस् (प, सांस०) श्वसिति, श्वसितु, अश्वसीत्, श्वस्यात्, श्वसिष्यति । श्वासयति, श्वस्यते
सू (आ, जन्म देना) सूते, सूताम्, असूत, सुवीत, सविष्यते । सावयति, सूयते
स्तु (उ, स्तुति०) स्तौति, स्तौतु, अस्तौत्, स्तुयात्, स्तोष्यति । स्तावयति, स्तूयते
स्ना (प, नहाना) स्नाति, स्नातु, अस्नात्, स्नायात्, स्नास्यति । स्नापयति, स्नायते
स्वप् (प, सोना) स्वपिति, स्वपितु, अस्वपीत्, स्वप्यात्, स्वप्स्यति । स्वापयति, सुप्यते
हन् (प, मारना) हन्ति, हन्तु, अहन्, हन्यात्, हनिष्यति । घातयति, हन्यते

१. विद् (४,आ, होना) विद्यते । (६,उ,पाना) विन्दति । (१० आ, कहना) निवेदयते

तृतीय गण (जुहोत्यादि)—

दा[1] (प, देना) ददाति, ददातु, अददात्, दद्यात्, दास्यति । दापयति, दीयते
(आ, देना) दत्ते, दत्ताम्, अदत्त, ददीत, दास्यते । दापयति, दीयते
धा (प, धारण०) दधाति, दधातु, अदधात्, दध्यात्, धास्यति । धापयति, धीयते
(आ, धारण०) धत्ते, धत्ताम्, अधत्त, दधीत, धास्यते । धापयति, धीयते
भी (प, डरना) बिभेति, बिभेतु, अबिभेत्, बिभीयात्, भेष्यति । भाययति, भीयते
भृ (उ, पालना) बिभर्ति, बिभर्तु, अबिभः, बिभृयात्, भरिष्यति । भारयति, भ्रियते
हा (प, छोड़ना) जहाति, जहातु, अजहात्, जह्यात्, हास्यति । हापयति, हीयते
हु (प, यज्ञ करना) जुहोति, जुहोतु, अजुहोत्, जुहुयात्, होष्यति । हावयति, हूयते

चतुर्थ गण (दिवादि)—

कुप् (प, क्रोध०) कुप्यति, कुप्यतु, अकुप्यत्, कुप्येत् कोपिष्यति । कोपयति, कुप्यते
क्रुध् (प, क्रुद्ध०) क्रुध्यति, क्रुध्यतु, अक्रुध्यत्, क्रुध्येत्, क्रोत्स्यति । क्रोधयति, क्रुध्यते
क्लम् (प, थकना) क्लाम्यति, क्लाम्यतु, अक्लाम्यत्, क्लाम्येत्, क्लमिष्यति । क्लामयति
क्षम् (प, क्षमा०) क्षाम्यति, क्षाम्यतु, अक्षाम्यत्, क्षाम्येत्, क्षमिष्यति । क्षमयति,
क्षुध् (प, भूख०) क्षुध्यति, क्षुध्यतु, अक्षुध्यत्, क्षुध्येत्, क्षोत्स्यति । क्षोधयति, क्षुध्यते
खिद् (आ,खिन्न०) खिद्यते, खिद्यताम्, अखिद्यत, खिद्येत, खेत्स्यति । खेदयति, खिद्यते
जन् (आ, पैदा०) जायते, जायताम्, अजायत, जायेत, जनिष्यते । जनयति, जन्यते
जॄ (प, वृद्ध०) जीर्यति, जीर्यतु, अजीर्यत्, जीर्येत्, जरिष्यति । जरयति, जीर्यते
डी (आ, उड़ना) उत् + डीयते,डीयताम्, अडीयत, डीयेत, डयिष्यते । डाययति, डीयते
तुष् (प, तुष्ट०) तुष्यति, तुष्यतु, अतुष्यत्, तुष्येत्, तोक्ष्यति ! तोषयति, तुष्यते
तृप् (प, तृप्त०) तृप्यति, तृप्यतु, अतृप्यत्, तृप्येत्, तर्पिष्यति । तर्पयति, तृप्यते
तृष् (प, प्यासा०) तृष्यति, तृष्यतु, अतृष्यत्, तृष्येत्, तर्षिष्यति । तर्षयति, तृष्यते
त्रस् (प, डरना) त्रस्यति, त्रस्यतु, अत्रस्यत्, त्रस्येत्, त्रसिष्यति । त्रासयति, त्रस्यते
दम् (प, दमन०) दाम्यति, दाम्यतु, अदाम्यत्, दाम्येत्, दमिष्यति । दमयति, दम्यते
दिव् (प, जुआ०) दीव्यति, दीव्यतु, अदीव्यत्, दीव्येत्, देविष्यति । देवयति, दीव्यते
दीप् (आ, चमकना) दीप्यते, दीप्यताम्,अदीप्यत,दीप्येत,दीपिष्यते । दीपयति, दीप्यते
दुष् (प, बिगड़ना) दुष्यति, दुष्यतु, अदुष्यत्, दुष्येत्, दोक्ष्यति । दूषयति. दुष्यते
दू (आ, दुःखित०) दूयते, दूयताम्, अदूयत, दूयेत, दविष्यते । दावयति, दूयते
दृप् (प, गर्व०) दृप्यति, दृप्यतु, अदृप्यत्, दृप्येत्, दर्पिष्यति । दर्पयति, दृप्यते
द्रुह् (प, द्रोह०) द्रुह्यति, द्रुह्यतु, अद्रुह्यत्, द्रुह्येत्, द्रोहिष्यति । द्रोहयति, द्रुह्यते

१. दा (१, प, देना) यच्छति । (२, प, काटना) वाति ।

नश् (प, नष्ट०) नश्यति, नश्यतु, अनश्यत्, नश्येत्, नशिष्यति । नाशयति, नश्यते
नृत् (प, नाचना) नृत्यति, नृत्यतु, अनृत्यत्, नृत्येत्, नर्तिष्यति । नर्तयति, नृत्यते
पुष्[1] (प, पुष्ट०) पुष्यति, पुष्यतु, अपुष्यत्, पुष्येत, पोक्ष्यति । पोषयति, पुष्यते
प्री[2] (आ, प्रसन्न०) प्रीयते, प्रीयताम्, अप्रीयत, प्रीयेत, प्रेष्यते । प्रायति, प्रीयते
बुध् (आ, जानना) बुध्यते, बुध्यताम्, अबुध्यत, बुध्येत, भोत्स्यते । बोधयति, बुध्यते
भ्रम् (प, घूमना) भ्राम्यति, भ्राम्यतु, अभ्राम्यत्, भ्राम्येत्, भ्रमिष्यति । भ्रमयति,
मुह् (प, मोह०) मुह्यति, मुह्यतु, अमुह्यत्, मुह्येत्, मोहिष्यति । मोहयति, मुह्यते
युज्[3] (आ, ध्यान०) युज्यते, युज्यताम्, अयुज्यत, युज्येत, योक्ष्यते । योजयति, युज्यते
युध् (आ, लड़ना) युध्यते, युध्यताम्, अयुध्यत, युध्येत, योत्स्यते । योधयति, युध्यते
रञ्ज् (उ, प्रसन्न०) रज्यति, रज्यतु, अरज्यत्, रज्येत्, रङ्क्ष्यति । रञ्जयति, रज्यते
रुष् (प, रुष्ट०) रुष्यति, रुष्यतु, अरुष्यत्, रुष्येत्, रोषिष्यति । रोषयति, रुष्यते
ली (आ, लीन०) लीयते, लीयताम्, अलीयत, लीयेत, लेष्यते । लाययति, लीयते
लुप् (प, लुप्त०) लुप्यति, लुप्यतु, अलुप्यत्, लुप्येत, लोपिष्यति । लोपयति, लुप्यते
लुभ् (प, लोभ०) लुभ्यति, लुभ्यतु, अलुभ्यत्, लुभ्येत्, लोभिष्यति । लोभयति, लुभ्यते
विद् (आ, होना) विद्यते, विद्यताम्, अविद्यत, विद्येत, वेत्स्यते । वेदयति, विद्यते
व्यध् (प,बींधना) विध्यति, विध्यतु, अविध्यत्, विध्येत्, व्यत्स्यति । व्याधयति, विध्यते
शम् (प, शान्त०) शाम्यति, शाम्यतु, अशाम्यत्, शाम्येत्, शमिष्यति । शमयति,शम्यते
शुध् (प, शुद्ध०) शुध्यति, शुध्यतु, अशुध्यत्, शुध्येत्, शोत्स्यति । शोधयति, शुध्यते
शुष् (प, सूखना) शुष्यति, शुष्यतु, अशुष्यत्, शुष्येत्, शोक्ष्यति । शोषयति, शुष्यते
श्रम्, (प, श्रम०) श्राम्यति, श्राम्यतु, अश्राम्यत्, श्राम्येत्, श्रमिष्यति । श्रम्यति, श्रम्यते
श्लिष् (प, आलिंगन०) श्लिष्यति, श्लिष्यतु, अश्लिष्यत्, श्लिष्येत्, श्लेक्ष्यति ।
सिध् (प, पूरा०) सिध्यति, सिध्यतु, असिध्यत्, सिध्येत्, सेत्स्यति । साधयति, सिध्यते
सिव् (प, सीना) सीव्यति, सीव्यतु, असीव्यत्, सीव्येत्, सेविष्यति । सेवयति, सीव्यते
स्निह् (प,स्नेह०) स्निह्यति, स्निह्यतु, अस्निह्यत्, स्निह्येत्, स्नेहिष्यति । स्नेहयति,
हृष् (प, खुश होना) हृष्यति, हृष्यतु, अहृष्यत्, हृष्येत्, हर्षिष्यति । हर्षयति, हृष्यते

पञ्चम गण (स्वादि)—

आप् (प, जाना) आप्नोति,आप्नोतु,आप्नोत्,आप्नुयात्,आप्स्यति । आपयति, आप्यते
चि (प, चुनना) चिनोति, चिनोतु, अचिनोत्, चिनुयात्, चेष्यति । चाययति चीयते
(आ, चुनना) चिनुते, चिनुताम्, अचिनुत, चिन्वीत, चेष्यते । चाययति, चीयते

१. पुष् (९, प, पुष्ट करना) पुष्णाति । (१०, उ, पालना) पोषयति-ते ।
२. प्री (९, उ, प्रसन्न करना) प्रीणाति । (१०, उ, प्रसन्न करना) प्रीणयति-ते
३. युज् (७, उ, मिलाना) युनक्ति । (१०, उ, लगाना) योजयति-ते ।

दु (प, दुःखित होना) दुनोति, दुनोतु, अदुनोत् दुनुयात्, दोष्यति । दावयति, दूयते
धु (उ, हिलाना) धुनोति, धुनोतु, अधुनोत्, धुनुयात्, धोष्यति । धावयति, धूयते
वृ[1] (उ, चुनना) वृणोति, वृणोतु, अवृणोत्, वृणुयात्, वरिष्यति । वारयति, व्रियते
शक् (प, सकना) शक्नोति, शक्नोतु, अशक्नोत्, शक्नुयात्, शक्ष्यति । शाकयति, शक्यते
साध् (प, पूरा०) साध्नोति, साध्नोतु, असाध्नोत्, साध्नुयात्, सात्स्यति । साधयति

षष्ठ गण (तुदादि)—

इष् (प, चाहना) इच्छति, इच्छतु, ऐच्छत्, इच्छेत्, एषिष्यति । एषयति, इष्यते
उज्झ् (प, छोड़ना)उज्झति,उज्झतु, औज्झत्, उज्झेत्,उज्झिष्यति । उज्झयति, उज्झ्यते
कृत् (प, काटना) कृन्तति, कृन्ततु, अकृन्तत्, कृन्तेत्, कर्तिष्यति । कर्तयति, कृत्यते
कॄ (प, बिखेरना) किरति, किरतु, अकिरत्, किरेत्, करिष्यति । कारयति, कीर्यते
क्षिप् (उ, फेंकना) क्षिपति, क्षिपतु, अक्षिपत्, क्षिपेत्, क्षेप्स्यति । क्षेपयति, क्षिप्यते
गुम्फ् (प, गूँथना) गुम्फति, गुम्फतु, अगुम्फत्, गुम्फेत्, गुम्फिष्यति । गुम्फयति, गुम्फ्यते
तुद् (उ, दुःख०) तुदति, तुदतु, अतुदत्, तुदेत्, तोत्स्यति । तोदयति, तुद्यते
त्रुट् (प, टूटना) त्रुटति, त्रुटतु, अत्रुटत्, त्रुटेत्, त्रुटिष्यति । त्रोटयति, त्रुट्यते
दिश् (उ, कहना) दिशति, दिशतु, अदिशत्, दिशेत्, देक्ष्यति । देशयति, दिश्यते
दॄ (आ, आदर०) आ + द्रियते, द्रियताम्, अद्रियत, द्रियेत, दरिष्यते । दरयति, द्रियते
नुद् (उ, प्रेरणा०) नुदति-ते, नुदतु, अनुदत्, नुदेत्, नोत्स्यति । नोदयति, नुद्यते
प्रच्छ् (प, पूछना) पृच्छति, पृच्छतु, अपृच्छत्, पृच्छेत्, प्रक्ष्यति । प्रच्छयति, पृच्छ्यते
भ्रस्ज् (उ,भूनना) भृज्जति, भृज्जतु, अभृज्जत्, भृज्जेत्, भ्रक्ष्यति । भ्रज्जयति, भ्रज्यते
मस्ज् (प, डूबना) मज्जति, मज्जतु, अमज्जत्, मज्जेत्, मङ्क्ष्यति । मज्जयति,'मज्ज्यते
मिल् (उ, मिलना) मिलति, मिलतु, अमिलत्,मिलेत्, मेलिष्यति । मेलयति, मिल्यते
मुच् (उ, छोड़ना) मुञ्चति, मुञ्चतु, अमुञ्चत्, मुञ्चेत्, मोक्ष्यति । मोचयति, मुच्यते
मृ (आ, मरना) म्रियते, म्रियताम्, अम्रियत, म्रियेत, मरिष्यति । मारयति, म्रियते
लस्ज् (आ, लज्जित०) लज्जते, लज्जताम्, अलज्जत, लज्जेत, लज्जिष्यते । लज्जयति
लिख् (प, लिखना) लिखति, लिखतु, अलिखत्, लिखेत्, लेखिष्यति । लेखयति, लिख्यते
लिप् (उ, लीपना) लिम्पति, लिम्पतु, अलिम्पत्, लिम्पेत्, लेप्स्यति । लेपयति, लिप्यते
विद् (उ, पाना) विन्दति, विन्दतु अविन्दत्, विन्देत्, वेदिष्यति । वेदयति, विद्यते
विश् (प, घुसना) प्र + विशति, विशतु, अविशत्, विशेत्, वेक्ष्यति । वेशयति, विश्यते
सिच् (उ, सींचना) सिंचति, सिंचतु, असिंचत्, सिंचेत्, सेक्ष्यति । सेचयति, सिच्यते
सृज् (प, बनाना) सृजति, सृजतु, असृजत्, सृजेत् स्रक्ष्यति । सर्जयति, सृज्यते

१. वृ (९, आ, छाँटना) वृणीते । (१०. उ, हटाना) वारयति-ते ।

स्पृश् (प, छूना) स्पृशति, स्पृशतु, अस्पृशत्, स्पृशेत्, स्पृक्ष्यति । स्पर्शयति, स्पृश्यते
स्फुट् (प,खिलना) स्फुटति, स्फुटतु, अस्फुटत्, स्फुटेत्, स्फुटिष्यति । स्फोटयति स्फुट्यते
स्फुर् (प, फड़कना) स्फुरति, स्फुरतु, अस्फुरत्, स्फुरेत्, स्फुरिष्यति । स्फारयति स्फुर्यते

सप्तम गण (रुधादि)—

इन्धी (आ, जलना) इन्धे, इन्धाम्, ऐन्ध, इन्धीत, इन्धिष्यते । इन्धयति, इध्यते
क्षुद् (उ, पीसना) क्षुणत्ति, क्षुणत्तु, अक्षुणत्, क्षुन्द्यात्, क्षोत्स्यति । क्षोदयति, क्षुद्यते
छिद् (उ, काटना) छिनत्ति, छिनत्तु, अच्छिनत्, छिन्द्यात्, छेत्स्यति । छेदयति, छिद्यते
पिष् (प, पीसना) पिनष्टि, पिनष्टु, अपिनष्ट, पिष्यात्, पेक्ष्यति । पेषयति, पिष्यते
भञ्ज् (प, तोड़ना) भनक्ति, भनक्तु, अभनक्, भञ्ज्यात्, भंक्ष्यति । भञ्जयति, भज्यते
भिद् (उ, तोड़ना) भिनत्ति, भिनत्तु, अभिनत्, भिन्द्यात्, भेत्स्यति । भेदयति, भिद्यते
भुज् (प, पालना) भुनक्ति, भुनक्तु, अभुनक्, भुञ्ज्यात्, भोक्ष्यति । भोजयति, भुज्यते
(आ, खाना) भुङ्क्ते, भुङ्क्ताम्, अभुङ्क्त, भुञ्जीत, भोक्ष्यते, । भोजयति,
युज् (उ, मिलाना) युनक्ति, युनक्तु, अयुनक्, युञ्ज्यात्, योक्ष्यति । योजयति, युज्यते
रुध् (प, रोकना) रुणद्धि, रुणद्धु, अरुणत्, रुन्ध्यात्, रोत्स्यति । रोधयति, रुध्यते
(आ, रोकना) रुन्धे, रुन्धाम्, अरुन्ध, रुन्धीत, रोत्स्यते । रोधयति, रुध्यते
हिंस् (प, हिंसा०) हिनस्ति, हिनस्तु, अहिनत्, हिंस्यात्, हिंसिष्यति । हिंसयति, हिंस्यते

अष्टम गण (तनादि)—

कृ (प, करना) करोति, करोतु, अकरोत् कुर्यात्, करिष्यति । कारयति, क्रियते
(आ, करना) कुरुते, कुरुताम्, अकुरुत, कुर्वीत, करिष्यते । कारयति, क्रियते
तन् (प, फैलाना) तनोति, तनोतु, अतनोत्, तनुयात्, तनिष्यति । तानयति, तन्यते
(आ, फैलाना) तनुते, तनुताम्, अतनुत, तन्वीत, तनिष्यते । तानयति, तन्यते ।

नवम गण (क्रयादि)—

अश् (प, खाना) अश्नाति, अश्नातु, आश्नात्, अश्नीयात्, अशिष्यति, । आशयति,
क्री (प, खरीदना) क्रीणाति, क्रीणातु,अक्रीणात्, क्रीणीयात्,क्रेष्यति । क्रापयति क्रीयते
(आ) क्रीणीते, क्रीणीताम्, अक्रीणीत, क्रीणीत, क्रेष्यते । क्रापयति, क्रीयते
ग्रन्थ् (प, संग्रह०) ग्रथ्नाति,ग्रथ्नातु,अग्रथ्नात्, ग्रथ्नीयात्,ग्रन्थिष्यति । ग्रन्थयति, ग्रथ्यते
ग्रह् (उ, लेना) गृह्णाति, गृह्णातु, अगृह्णात् गृह्णीयात्, ग्रहीष्यति । ग्राहयति, गृह्यते
ज्ञा (प, जानना) जानाति, जानातु, अजानात्, जानीयात्, ज्ञास्यति । ज्ञापयति,
(आ) जानीते, जानीताम्, अजानीत, जानीत, ज्ञास्यते । ज्ञापयति, ज्ञायते
पुष् (प,पुष्ट०) पुष्णाति, पुष्णातु, अपुष्णात् पुष्णीयात्, पोषिष्यति । पोषयति, पोष्यते

पू (प, पवित्र०) पुनाति, पुनातु, अपुनात्, पुनीयात्, पविष्यति । पावयति, पूयते
प्री (उ,प्रसन्न०) प्रीणाति, प्रीणातु, अप्रीणात्, प्रीणीयात्, प्रेष्यति । प्रीणयति, प्रीयते
बन्ध् (प, बाँधना) बध्नाति,बध्नातु,अबध्नात्,बध्नीयात्, भन्त्स्यति । बन्धयति, बध्यते
मन्थ् (प, मथना) मथ्नाति, मथ्नातु, अमथ्नात्, मथ्नीयात्, मन्थिष्यति । मन्थयति,
मुष् (प, चुराना) मुष्णाति, मुष्णातु, अमुष्णात्, मुष्णीयात्, मोषिष्यति । मोषयति
लू (उ, काटना) लुनाति, लुनातु, अलुनात्, लुनीयात्, लविस्यति । लावयति, लूयते
वृ (आ, छाँटना) वृणीते, वृणीताम्, अवृणीत,वृणीत, वरिष्यते । वारयति, व्रियते

दशम गण (चुरादि)[1]—

आन्दोल्(उ,हिलाना)आन्दोलयति,०दोलयतु,०दोलयत्,०दोलयेत्,०दोलयिष्यति।दोल्यते
आप् (उ, पहुँचाना) आपयति, आपयतु, आपयत्, आपयेत्, आपयिष्यति । आप्यते
ईर् (उ, प्रेरणा०) प्र+ईरयति-ते, ईरयतु, ऐरयत्, ईरयेत्, ईरयिष्यति । ईर्यते
कथ् (प, कहना) कथयति, कथयतु, अकथयत्, कथयेत्, कथयिष्यति । कथ्यते
(आ, कहना) कथयते, कथयताम्, अकथयत, कथयेत, कथयिष्यते । कथ्यते
कृत् (उ, नाम लेना) कीर्तयति, कीर्तयतु, अकीर्तयत्,कीर्तयेत्, कीर्तयिष्यति । कीर्त्यते
क्षल् (उ, धोना) प्र+क्षालयति,क्षालयतु,अक्षालयत्,क्षालयेत्,क्षालयिष्यति । क्षाल्यते
खण्ड् (उ, तोड़ना) खण्डयति,खण्डयतु, अखण्डयत्, खण्डयेत्, खण्डयिष्यति । खण्ड्यते
गण् (उ, गिनना) गणयति-ते, गणयतु, अगणयत्, गणयेत्, गणयिष्यति । गण्यते
गवेष् (उ, खोजना) गवेषयति, गवेषयतु, अगवेषयत्, गवेषयेत्, गवेषयिष्यति । गवेष्यते
गुण्ठ् (उ, घूँघट०) अव+गुण्ठयति, गुण्ठयतु, अगुण्ठयत्, गुण्ठयेत्, गुण्ठयिष्यति, गुंठ्यते
घुष् (उ, घोषणा०) घोषयति, घोषयतु, अघोषयत्, घोषयेत्, घोषयिष्यति । घोष्यते
चित्र् (उ, चित्र०) चित्रयति, चित्रयतु, अचित्रयत्, चित्रयेत्, चित्रयिष्यति । चित्र्यते
चिन्त् (उ,चिन्ता०) चिन्तयति,चिन्तयतु,अचिन्तयत्,चिन्तयेत्, चिन्तयिष्यति । चिन्त्यते
चिह्न् (उ,चिह्न०) चिह्नयति,चिह्नयतु,अचिह्नयत्,चिह्नयेत्,चिह्नयिष्यति, । चिह्नयते
चुद् (उ, प्रेरणा०) चोदयति, चोदयतु, अचोदयत्, चोदयेत्, चोदयिष्यति । चोद्यते
चुर् (उ, चुराना) चोरयति-ते,चोरयतु, अचोरयत्, चोरयेत्, चोरयिष्यति । चोर्यते
चूर्ण् (उ, चूर्ण०) चूर्णयति, चूर्णयतु, अचूर्णयत्, चूर्णयेत्, चूर्णयिष्यति । चूर्ण्यते
छद् (उ, ढकना) आ+छादयति,छादयतु, अच्छादयत्,छादयेत्, छादयिष्यति । छाद्यते
ज्ञा (उ, आज्ञा०) आ+ज्ञापयति, ज्ञापयतु, अज्ञापयत्, ज्ञापयेत्, ज्ञापयिष्यति । ज्ञाप्यते
टङ्क् (उ, चिह्न०) टङ्कयति, टङ्कयतु, अटङ्कयत्, टङ्कयेत्, टङ्कयिष्यति । टङ्क्यते
ताड् (उ, पीटना) ताडयति, ताडयतु, अताडयत्, ताडयेत्, ताडयिष्यति । ताड्यते

---

१. चुरादिगण के प्रेरणार्थक रूपों में अन्तर नहीं होता है । अतः उन्हें छोड़ दिया है ।

तर्क् (उ, सोचना) तर्कयति, तर्कयतु, अतर्कयत्, तर्केयेत्, तर्कयिष्यति । तर्क्यते
तंस् (उ, सजाना) अव + तंसयति, तंसयतु, अतंसयत्, तंसयेत्, तंसयिष्यति । तंस्यते
तुल् (उ, तोलना) तोलयति, तोलयतु, अतोलयत्, तोलयेत्, तोलयिष्यति । तोल्यते
दण्ड् (उ, दण्ड०) दण्डयति, दण्डयतु, अदण्डयत्, दण्डयेत्, दण्डयिष्यति । दण्ड्यते
धृ (उ, रखना) धारयति-ते, धारयतु, अधारयत्, धारयेत्, धारयिष्यति । धार्यते
धृष् (उ, दबाना) धर्षयति, धर्षयतु, अधर्षयत्, धर्षयेत्, धर्षयिष्यति । धर्ष्यते
पाल् (उ, पालना) पालयति, पालयतु, अपालयत्, पालयेत्, पालयिष्यति । पाल्यते
पीड् (उ, दुःख०) पीडयति, पीडयतु, अपीडयत्, पीडयेत्, पीडयिष्यति । पीड्यते
पुष् (उ, पालना) पोषयति-ते, पोषयतु, अपोषयत्, पोषयेत्, पोषयिष्यति । पोष्यते
पूज् (उ, पूजना) पूजयति-ते, पूजयतु, अपूजयत्, पूजयेत्, पूजयिष्यति । पूज्यते
पूर् (उ, भरना) पूरयति-ते, पूरयतु, अपूरयत्, पूरयेत्, पूरयिष्यति । पूर्यते
प्री (उ, प्रसन्न०) प्रीणयति-ते, प्रीणयतु, अप्रीणयत्, प्रीणयेत्, प्रीणयिष्यति । प्रीण्यते
भक्ष् (उ, खाना) भक्षयति-ते, भक्षयतु, अभक्षयत्, भक्षयेत्, भक्षयिष्यति । भक्ष्यते
भर्त्स् (उ, डाँटना) भर्त्सयति, भर्त्सयतु, अभर्त्सयत्, भर्त्सयेत्, भर्त्सयिष्यति । भर्त्स्यते
मण्ड् (उ, सजाना) मण्डयति, मण्डयतु, अमण्डयत्, मण्डयेत्, मण्डयिष्यति । मन्ड्यते
मन्त्र् (उ, मन्त्रणा०) मन्त्रयति, मन्त्रयतु, अमन्त्रयत्, मन्त्रयेत्, मन्त्रयिष्यति । मन्त्र्यते
मान् (उ, आदर०) मानयति-ते, मानयतु, अमानयत्, मानयेत्, मानयिष्यति । मान्यते
मार्ग् (उ, ढूँढना) मार्गयति-ते, मार्गयतु, अमार्गयत्, मार्गयेत्, मार्गयिष्यति। मार्ग्यते
मार्ज् (उ,साफ०) मार्जयति, मार्जयतु, अमार्जयत्, मार्जयेत्, मार्जयिष्यति । मार्ज्यते
मिश्र्(उ,मिलाना) मिश्रयति-ते, मिश्रयतु, अमिश्रयत्, मिश्रयेत्, मिश्रयिष्यति । मिश्र्यते
मुच् (उ, मुक्त०) मोचयति-ते, मोचयतु, अमोचयत्, मोचयेत्, मोचयिष्यति। मोच्यते
मृग् (उ, ढूंढ़ना) मृगयति, मृगयतु, अमृगयत्, मृगयेत्, मृगयिष्यति । मृग्यते
मृज् (उ, साफ०) मार्जयति-ते, मार्जयतु, अमार्जयत्, मार्जयेत्, मार्जयिष्यति। मार्ज्यते
मृष् (उ, क्षमा०) मर्षयति, मर्षयतु, अमर्षयत्, मर्षयेत्, मर्षयिष्यति । मर्ष्यते
यन्त्र् (उ,नियमित०) नि + यन्त्रयति, यन्त्रयतु, अयन्त्रयत्, यन्त्रयेत्, यन्त्रयिष्यति। यन्त्र्यते
युज् (उ, लगाना) योजयति-ते, योजयतु, अयोजयत्, योजयेत्, योजयिष्यति । योज्यते
रच् (उ, बनाना) रचयति-ते, रचयतु, अरचयत्, रचयेत्, रचयिष्यति । रच्यते
रस् (उ, स्वाद०) रसयति-ते, रसयतु, अरसयत्, रसयेत्, रसयिष्यति । रस्यते
रूप् (उ, रूप बनाना) रूपयति-ते, रूपयतु, अरूपयत्, रूपयेत्, रूपयिष्यति । रूप्यते
लक्ष् (उ, देखना) लक्षयति-ते, लक्षयतु, अलक्षयत्, लक्षयेत्, लक्षयिष्यति । लक्ष्यते
लङ्घ् (उ, लाँघना) लङ्घयति-ते, लङ्घयतु, अलङ्घयत्, लङ्घयेत्, लङ्घयिष्यति। लंघ्यते
लड् (उ, प्यार०) लाडयति-ते, लाडयतु, अलाडयत्, लाडयेत्, लाडयिष्यति । लाड्यते

लोक् (उ,देखना) आ + लोकयति,लोकयतु,अलोकयत्,लोकयेत्, लोकयिष्यति । लोक्यते
लोच्(उ,देखना) आ + लोचयति,लोचयतु,अलोचयत्,लोचयेत्, लोचयिष्यति। लोच्यते
वच् (उ, बाँचना) वाचयति-ते, वाचयतु, अवाचयत्, वाचयेत्, वाचयिष्यति। वाच्यते
वञ्च् (उ, ठगना) वञ्चयति,वञ्चयतु, अवञ्चयत्, वञ्चयेत्, वञ्चयिष्यति । वञ्च्यते
विद् (उ, कहना) नि + वेदयति, वेदयतु, अवेदयत्, वेदयेत्, वेदयिष्यति । वेद्यते
वीज् (उ, पंखा०) वीजयति, वीजयतु, अवीजयत्, वीजयेत्, वीजयिष्यति । वीज्यते
वृ (उ,हटाना, ढकना) वारयति-ते, वारयतु, अवारयत्, वारयेत्, वारयिष्यति । वार्यते
वृज् (उ, छोड़ना) वर्जयति, वर्जयतु, अवर्जयत्, वर्जयेत्, वर्जयिष्यति । वर्ज्यते
सान्त्व् (उ,सान्त्वना०)सान्त्वयति, सान्त्वयतु, असान्त्वयत्, सान्त्वयेत्,सान्त्वयिष्यति ।
सूच् (उ, सूचना०) सूचयति, सूचयतु, असूचयत्, सूचयेत्, सूचयिष्यति । सूच्यते
सूत्र् (उ, संक्षिप्त०) सूत्रयति, सूत्रयतु, असूत्रयत्, सूत्रयेत्, सूत्रयिष्यति । सूत्र्यते
स्पृह् (उ, चाहना) स्पृहयति, स्पृहयतु, अस्पृहयत्, स्पृह्येत्, स्पृहयिष्यति । स्पृह्यते
स्वद् (उ, स्वाद०)स्वादयति, स्वादयतु, अस्वादयत्, स्वादयेत्, स्वादयिष्यति । स्वाद्यते

परिशिष्ट : २ : (वाग्-व्यवहार) शब्दकोष

(१) सम्बन्धी वर्ग (Relations)

अतिथि—अतिथिः
अध्यापक—अध्यापकः
औरत—नारी, स्त्री, योषित्
कुल—कुटुम्बम्, परिवारः
गाभिन—गर्भिणी
ग्राहक—ग्राहकः, क्रेता
चाचा (काका)—पितृव्यः
चेला—शिष्यः
छिनार—कुलटा, पुंश्चली
जमींदार—भूमिपतिः, भूस्वामी
जंवाई (दामाद)—जामाता
जीजा(बहनोई)—भगिनीपतिः, आवुत्तः
जेठ—पत्यग्रजः
दादा—पितामहः
दादी—पितामही
दासी—चेटी
दुश्मन—अरिः, शत्रुः, रिपुः
दूत—संदेशहरः, दूतः
देवर—देवृ (देवी)
देवरानी—यातृ (याता)
ननद—ननान्दृ (ननान्दा)
नाती—नप्तृ (नप्ता)
नाना—मातामहः
नौकर—भृत्यः, दासः, सेवकः, अनुचरः
पति—पतिः, भर्त्ता, धवः
पतिव्रता—पतिव्रता, सती
पतोहू—पुत्रवधूः
पत्नी—पत्नी, भार्या, दाराः (पुं०)
परदादा—प्रपितामहः
परनाना—प्रमातामहः
परपोता—प्रपौत्रः

परीक्षक—परीक्षकः
परीक्षार्थी—परीक्षार्थी
पिता—जनकः, पितृ (पिता)
पुत्र—आत्मजः, पुत्रः, तनयः, सुतः, सूनुः
पुत्री—आत्मजा, सुता, पुत्री, दुहिता
पोता—पौत्रः
पोती—पौत्री
फूआ (बुआ)—पितृस्वसा
फूफा—पितृस्वसृपतिः
बहिन—भगिनी, स्वसा
बहू—वधूः, वधूटिका
भतीजा—भ्रातुष्पुत्रः, भ्रातृजः
भतीजी—भ्रातृसुता
भाई—भ्राता
" सगा—सहोदरः, सोदरः
" सौतेला—विमातृजः, वैमात्रेयः
" छोटा—अनुजः
" बड़ा—अग्रजः
" चचेरा—पितृव्यपुत्रः
" फूफेरा—पैतृष्वस्रेयः
" ममेरा—मातुलेयः
" मौसेरा—मातृष्वस्रेयः
भानजा—भागिनेयः, भगिनीपुत्रः
भाभी (भौजाई)—भ्रातृजाया
माता—माता, जननी
मामा—मातुलः
मामी—मातुलानी, मातुली
मालिक—स्वामी, प्रभुः
मित्र—मित्रम्, सुहृद्, सखा, वयस्यः
मौसा—मातृष्वसृपतिः
मौसी—मातृष्वसृ (मातृष्वसा)
यजमान—यजमानः
यार (Paramour)—उपपतिः, जारः
रांड़—विधवा, रण्डा,
रानी—राज्ञी
" (पटरानी)—महिषी
रिश्तेदार (सम्बन्धी)—बन्धुः, ज्ञातिः
वेश्या—वेश्या, गणिका, रूपाजीवा
सखी—आलिः, सखी
ससुर—श्वशुरः
साला—श्यालः
साली—श्यालिका
सास—श्वश्रूः
सोहागिन—सौभाग्यवती, पतिवती

(२) शरीर वर्ग (Parts of the Body)

अंगूठा—अङ्गुष्ठः
अङ्गुली[1]—अङ्गुलिः
अंडकोष—वृषणः, मुष्कः
आँख—नेत्रम्, नयनम्, अक्षि, लोचनम्, चक्षुः
आँख की पुतली—कनीनिका, तारका
आँत—अन्त्रम्
आँसू—अश्रु
इन्द्रिय—इन्द्रियम्
एड़ी—पार्ष्णिः
ओठ—ओष्ठः
" (नीचे का)—अधरः
कंकाल—कङ्कालः, अस्थिपञ्जरः
कनपटी—गण्डस्थलम्
कन्धा—स्कन्धः, अंसः
कमर—कटिः
कलाई—मणिबन्धः, प्रकोष्ठः

१. अंगूठा के बाद की चारों अंगुलियों के क्रमशः नाम—तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा (कनिष्ठिका)।

कलेजा—वृक्कम्
कान—कर्णः, श्रोत्रम्
खून—रुधिरम्, रक्तम्
कूबड़—कुब्जः
कोहनी—कफोणिः, कूर्परः
गर्दन—ग्रीवा
गर्भाशय—गर्भाशयः, जरायुः
गला—कण्ठः
गाल—कपोलः
गुदा—गुदा, मलद्वारम्
गोद—क्रोडः, अङ्कः, उत्सङ्गः
घुटना—जानुः
चमड़ा—त्वक्, चर्म (नपुं०)
चुल्लू—चुलुकः
चूबुक—चूचुकम्, कुचाग्रम्
चूतड़—नितम्बः
चोटी—शिखा, चूडा
" (स्त्रियों की)—वेणी
छाती—वक्षः, उरः
जाँघ—जंघा, ऊरुः
जीभ—जिह्वा, रसना
ठुड्डी—चिबुकम्, हनुः
तलुवा—पादतलम्
तालु—तालु, काकुदम्
तोंद—तुन्दम्
थूक—निष्ठीवनम्
दाँत—दन्तः, दशनः, रदनः
दाढ़ी—कूर्चम्,
दिमाग—मस्तिष्कम्
नस—शिरा
नाक—नासिका, घ्राणम्
नाखून—नखः, कररुहः
नाड़ी—नाडिः, स्नायुः, धमनी
पलक—पक्ष्म (नपुं०)
पसीना—प्रस्वेदः
पाँव—पादः, चरणः, अङ्घ्रिः
पीठ—पृष्ठम्
पेट—उदरम्, कुक्षिः
फेफड़ा—फुप्फुसम्
बाँह—बाहुः, भुजः
बाल—केशः, शिरोरुहः, कचः
बलगम—कफः, श्लेष्मा
भौंह—भ्रूः, भृकुटी
मन—मनः (नपुं०), चित्तम्, अन्तःकरणम्
मल—मलम्, पुरीषम्, विष्ठा
मसूड़ा—दन्तमांसम्
मांस—मांसम्, आमिषम्, पिशितम्
माथा—ललाटम्, भालः
मुँह—आननम्, वक्त्रं, मुखम्
मुट्ठी—मुष्टिः, मुष्टिका
मूँछ—श्मश्रु
मूत्र—मूत्रम्
योनि—योनिः, भगः
रीढ़—पृष्ठास्थि (नपुं०)
लार—लाला, स्यन्दिनी
लिङ्ग—लिङ्गम्, शिश्नः
वीर्य—शुक्रम्
शरीर—शरीरम्, गात्रम्, देहः, कायः, तनुः
सिर—शिरः, शीर्षम्
स्तन—स्तनः, कुचः, पयोधरः, उरोजः
हड्डी—अस्थि (नपुं०)
हथेली—करतलः, करतलम्
हाथ—करः, पाणिः, हस्तः

(३) आभूषण वर्ग (Ornaments)

अँगूठी–अङ्गुलीयकम्, ऊर्मिका
" (नामांकित)—मुद्रिका
कँगना–कंकणः, कंकणम्
कड़ा—कटकः, वलयः
कण्ठा—कण्ठाभरणम्, कण्ठिका
कनफूल—कर्णपूरः, कर्णावतंसः
करधनी—मेखला, काञ्चिः
कुण्डल—कुण्डलम्
गहना—आभूषणम्, अलङ्कारः, आभरणम्
घुंघरू—किंकिणी
चूड़ामणि—चूडामणिः, शिरोरत्नम्
चूड़ी (कांच की)—काचवलयः
छागल—पदचारुकः
पायजेब—नूपुरः, नूपुरम्, मञ्जीरः
बाजूबन्द—केयूरम्, अंगदम्
बिछिया (पैर का)—पदरञ्जकः
माला—स्रक्
(मोती की)—मुक्तावली
मुकुट—किरीटम्, मुकुटम्
हार—हारः
हंसुली—ग्रैवेयकम्

(४) वस्त्र वर्ग (Clothes)

अंगरखा—अङ्गरक्षिका, अङ्गरक्षकः
अंगोछा—गात्रमार्जनी, उपवस्त्रम्
ओढ़नी—प्रच्छदपटः
कंबल—कम्बलः
कपड़ा–वस्त्रम्, वसनम्, चीरम्, चैलम्
" (ऊनी)—और्णम्, ऊर्णामयम्
" (सूती)—कार्पासम्
" (रेशमी)—कौशेयम्
कुरता–कञ्चुकः, निचोलः
खड़ाऊँ—पादुका
गद्दा—तूलसंस्तरः
गलेबन्द—गलबन्धः, कण्ठांशुकम्
चादर—प्रच्छदः
चिथड़ा—कन्था
चोली—कञ्चुकी
जाँघिया–अर्धोरुकम्
जूता–उपानह्
तकिया–उपधानम्, शिरोधानी
तौलिया—उपवस्त्रम्
दरी—आस्तरणम्
दुपट्टा—उत्तरीयम्, द्विपटी
धोती—अधोवस्त्रम्, परिधानीयम्
पगड़ी—उष्णीषम्
परदा—यवनिका, अवगुण्ठनम्
पेटीकोट (साया)—अन्तरीयम्, अन्तर्वस्त्रम्
बिछौना—शय्या, आस्तरणम्
बुर्का—निचोलः, प्रच्छदपटः
ब्लाउस—कंचुलिका
मफलर—कण्ठांशुकम्, गलबन्धः
मशहरी—मशकहरी
मोजा (पैर का)—पादत्राणवस्त्रम्
" (हाथ का)—हस्तत्राणवस्त्रम्
रजाई—तूलिका, तूलपटी
रुई—कार्पासः, तूलः
रूमाल—करवस्त्रम्
रेशम—कौशेयम्
सलवार—स्यूतवरः
साड़ी—शाटिका
स्वेटर—ऊर्णावरणम्

(५) गृहस्थी की सामग्री (Domestic Articles)

अंगीठी—हसन्ती

आइना—दर्पणः, आदर्शः, मुकुरः
इमामदस्ता–अश्ममालम्
उबटन–उद्वर्तनम्
ओखली–उलूखलम्
कंघी—प्रसाधनी, कंकतिका
कटोरा–कटोरम्
कड़ाही—कटाहः
करछुल—दर्वी
कागज–कागदः
काजल–कज्जलम्, अञ्जनम्
कापी—कप्पिका
कील—कीलकम्
कुर्सी—आसन्दिका, विष्टरम्, आसनम्
कूची—कूर्चिका
कैंची—कर्तरी, कर्तनी
खरल–खल्लः
खाट–खट्वा
खूंटी–नागदन्तः
गलीचा–कुथः
गिलास (कांच का)–कांचकंसः
गेंद–कन्दुकः
घड़ा–घटः, कुम्भः, कलशः
घड़ी—घटिका
चक्की—पेषणी, घरट्टः
चटाई—कटः
चम्मच—चमसः
चलनी—चालनी
चाकू—क्षुरिका
चूल्हा—चुल्ली
चौकी—चतुष्पादिका
झाड़—सम्मार्जनी, शोधनी
डेस्क—लेखनपीठम्
ड्रेसिंग टेबिल—शृङ्गारफलकम्
तख्ता—काष्ठपट्टम्
तराजू—तुला
" (डंडी)—तुलादण्डः
" (पलड़ा)—तुलाफलकम्
तवा—ऋजीषम्
ताला—तालकम्
ताली—कुञ्जिका
तिपाई—त्रिपादिका
दवात—मसीपात्रम्
दाँत-कुरेदनी—दन्तशोधनी
दातौन—दन्तधावनम्, दन्तपवनम्
दिया—दीपः, दीपकम्
दियासलाई—दीपशलाका
धागा (डोरा)—सूत्रम्, तन्तुः
नाखूनपालिश—नखरञ्जनम्
पतीली—स्थाली
पलङ्ग—पर्यङ्कः
पाउडर—चूर्णकम्
पीतल—पित्तलम्
पेटी—मञ्जूषा
पेंसिल—तूलिका
प्याला—चषकः
प्लेट—शरावः
फर्नीचर—उपस्करः
फाउंटनपेन—धारालेखनी
बटखरा (तराजू का)—यौतवम्
बत्ती—वर्तिका
बल्ब (बिजली का)—विद्युद्दीपकम्
बस्ता—वेष्टनम्
बाल्टी—उदञ्चनम्
बैंच—फलकः

बोरा—शणपुटः
ब्रश—रोममार्जनी, तूलिका
" (दाँतों का)—दन्तमार्जनी
ब्लेड—क्षुरकम्
भट्ठी—भ्राष्ट्रिका
मंजन (दाँत का)—दन्तचूर्णम्
महावर—अलक्तकः
मूसल—मुसलः
मेंहदी—मञ्जिष्ठा
मेज—फलकम्
रबड़—घर्षकः
रस्सी (डोरी)—रज्जुः
लकड़ी—दारु
लालटेन—कांचदीपः
लिपस्टिक—ओष्ठरञ्जनम्
लोटा (कमण्डलु)—करकः
लोढ़ा—शिलापुत्रः
संड़सी—सन्दंशः
संदूक—मञ्जूषा, पेटिका
सरौता—शंकुला
साबुन—फेनिलम्
सिंदूर—सिन्दूरम्
सिल—शिलापट्टम्, शिला
सुई—सूचिः
सूप—सूर्पः
सोफा—आसन्दिका
स्टूल—संवेशः
स्टेनलेस स्टील—निष्कलङ्कायसम्
स्टोव—मृत्तैलचुल्ली
स्नो—हैमम्
स्विच (बिजली का)—विद्युत्कुञ्जिका

(६) पशु-पक्षि आदि (Animals, Birds etc.)

अण्डा—अण्डम्
अजगर—अजगरः
उल्लू—उल्लूकः, कौशिकः
ऊँट—उष्ट्रः, क्रमेलकः
कछुआ—कूर्मः, कच्छपः
कछुवी—कच्छपी
कठफोड़ा—शतच्छदः, काष्ठकुट्टः
कबूतर—कपोतः
कीड़ा-मकोड़ा—कीटः
कुतिया—शुनी
कुत्ता—श्वा, कुक्कुरः
केंकड़ा—कर्कटकः, कुलीरः
केंचुआ—शिली, किञ्चुकः
कोयल—कोकिलः, परभृत्, पिकः
कोयल की बोली—कुहुः
कौआ—काकः, वायसः, ध्वांक्षः
कौड़ी—कपर्दिका
खंजन—खंजनः
खटमल—मत्कुणः
खरगोश—शशकः, शशः
गधा—गर्दभः, खरः
गाय—गौः, धेनुः
गिरगिट—सरटः, कृकलासः
गीदड़—गोमायुः, शृगालः
गीध—गृध्रः
गैंडा—गण्डकः
गोजर—शतपदी
गोह—गोधा
गौरैया—चटकी, चटका
घोंसला—नीडः, कुलायः
घोड़ा—अश्वः, घोटकः
चकवा—चक्रवाकः
चकवी—चक्रवाकी

चकोर—चकोरः, चन्द्रिकापायी
चमगादड़—अजिनपत्रा, जतुका
चिड़िया—पक्षी, खगः, विहगः, द्विजः, शकुन्तः
चींटी—पिपीलिका
चीता—चित्रकायः
चील—चिल्लः, चिल्ला
चीलर—स्वेदजः
चुहिया—मूषिका
चूहा—मूषकः, आखुः
चोंच—चञ्चुः
छछून्दर—छछुन्दरी
छिपकली—प्रल्ली
जुगनू—खद्योतः, ज्योतिरिङ्गणः
जूँ—यूका
जोंक—जलौका
झींगुर—झिल्ली
टिटहरी—टिट्टिभः, टिट्टिभी
डाँस—दंशः
तीतर—तित्तिरः
तेंदुआ—तरक्षुः
तोता—शुकः, कीरः
दादुर (मेंढक)—दर्दुरः
दीमक—वाल्मीकः
नाक—कुम्भीरः, नक्रः
नीलकण्ठ—नीलकण्ठः
नील गौ—गवयः
नेवला—नकुलः
पंख—पक्षः, पत्रम्
पतंगा (टिड्डी)—शलभः
पपीहा—चातकः
बकरा—अजः, छागः
बकरी—अजा, छागी
बगुला—बकः
बटेर—लावः, वर्तिकः
बतख—वर्तकः, कादम्बः
बन्दर—वानरः, कपिः, मर्कटः, लाङ्गूलः
बर्र—गन्धोली
बाघ—व्याघ्रः, द्वीपिन्, शार्दूलः
बाज—श्येनः
बिच्छू—वृश्चिकः
बिडाल—मार्जारः, विडालः
बिल्ली—मार्जारी
बैल—वृषभः, बलीवर्दः
भालू—भल्लूकः, ऋक्षः
भेड़—मेषः, एडका
भेड़िया—वृकः
भैंस—महिषी
भैंसा—महिषः
भौंरा—भ्रमरः
मकड़ी—ऊर्णनाभः, लूता
मक्खी—मक्षिका
मगर—मकरः
मच्छड़—मशकः
मछली—मीनः, मत्स्यः, झषः
मधुमक्खी—मधुमक्षिका
मुर्गा—कुक्कुटः
मुर्गी—कुक्कुटी
मेंढक—मण्डूकः, भेकः, दर्दुरः
मैना—सारिका (शारिका)
मोर—मयूरः, शिखी
" का पंख—पिच्छम्, बर्हिः
" की बोली—केका

रोहू—रोहितः
लंगूर—गोलाङ्गूलः
लीख—लिक्षा
लोमड़ी—लोमशा
शेर—सिंहः, मृगेन्द्रः
शेषनाग—शेषः, अनन्तः
सांड़—गोपतिः
सांप—अहिः, सर्पः, भुजगः, भुजङ्गः
" फणा—फणा
" कैंचुली—निर्मोकः
सारस—सारसः
सियार—शृगालः
सीप—शुक्तिका, शुक्तिः
सुअर—शूकरः, वराहः
सेही—शल्यः
सोंस—शिशुमारः
हंस—हंसः, मरालः
हाथी—गजः, करी
हारीत—हारीतः
हिरण—मृगः, हरिणः, कुरङ्गः

(७) खाद्य-पदार्थ—(Eatables)

अंगूर—द्राक्षा
अंजीर—अंजीरम्
अखरोट—अक्षोटम्, अक्षोटकः
अचार—सन्धितम्
अजवाइन—अजमोदिका
अदरख—आर्द्रकम्
अनार—दाडिमम्
अन्न—अन्नम्
अफीम—अहिफेनः
अमचूर—आम्रचूर्णम्
अमरूद—पेरुकम्, अमृतफलम्
अमावट—आम्रातकम्
अरवी—आलुकी
अरहर—आढकी
आँवला—आमलकी
आटा—पिष्टम्, पिष्टान्नम्
आम—आम्रः, रसालः, सहकारः
आलू—गोलालुः
इमली—तिन्तडीकः
इलायची—एला
उड़द—माषः
ककड़ी—कर्कटी
कचौड़ी—माषगर्भा, कर्करिका
कटहल—पनसः, पनसम्
कड़ुवा—कटुः
कढ़ी—तेमनम्, वेसनी
कत्था—खदिरम्
कद्दू—कुष्माण्डः
करेला—कारवेल्लम्, कटिल्लम्
कर्षैला—कषायः
काजू—काजवम्, काजुका
काफी—कफघ्नी
कालीमिर्च—मरिचम्
किसमिश (दाख)—शुष्कद्राक्षा
" (छोटी)—क्षुद्रद्राक्षा, निर्बीजा
कुंदरु—कुन्दरुः
केला—कदली, रम्भाफलम्
कैथ—कपित्थः
कोदों—कोद्रवः
खजूर—खर्जूरम्
खट्टा—अम्लः
खरबूजा—खर्बुजम्
खांड—खण्डः
खाजा—मधुशीर्षः

खिचड़ी—कृशरः
खीर—पायसम्
खीरा—चर्भटिः, त्रपुषम्
गल्ला—अन्नराशिः
गाजर—गृञ्जनम्
गुड़—गुडः
गुलाबजामुन—दुग्धपूपिका
गूलर—उदुम्बरम्
गेहूँ = गोधूमः
" का आटा—गोधूमचूर्णम्
घी—घृतम्, आज्यम्, सर्पिः
चटनी—अवलेहः, अवदंशः
चटपटा—मधुरतिक्तः
चना—चणकः
चपाती—चर्पटी
चायपानी—चायपानम्
चावल—तण्डुलः, अक्षताः (पुं०)
" (पका)—ओदनम्, भक्तम्
" (भूसीसहित)—व्रीहिः
चिरौंजी—प्रियालम्
चीनी—शर्करा
छीमी (मटर)—शिम्बा, शमि
छोहाड़ा—क्षुधाहरम्
जलपान—जलपानम्
जलेबी—कुण्डली, कुण्डलिनी
जामुन—जम्बूफलम्,
जीरा—जीरकः, जीरकम्
जूस—यूषः
जौ (जव)—यवः
ज्वार—यवनालः
टिंडा—टिंडिशः
टोस्ट—भृष्टापूपः
डबलरोटी—अभ्यूषः
तम्बाकू—तमाखुः
तरबूज—तरबूजम्, कालिन्दम्
ताड़ी—तारिकम्
तिल—तिलः
तीता—तिक्तः
तेल—तैलम्
" (सरसों)—सर्षपतैलम्
" (मिट्टी)—खनिजतैलम्
तोरई—जालिनी
दही—दधि
दहीबड़ा—दधिवटकः
दाल—द्विदलम्
" (पकी)—सूपः
दालचीनी—दारुत्वचम्
दालमोठ—दालमुद्गः
दूध—दुग्धम्, पयः, क्षीरम्
धनिया—धान्यकम्
धान—धान्यम्, शालिः
नमक—लवणम्
नमक (सेंधा)—सैंधवम्
नमकीन—लवणान्नम्
नारंगी (सतरा)—नारङ्गम्, नारङ्गः, नारङ्गकः
नारियल—नारिकेलम्
नीबू—निम्बूकम्
पकवान—पक्वान्नम्
पकौड़ी—पक्ववटिका
पपड़ी—पर्पटी
पपीता—एरण्डं, चिर्भिटम्
परवल—पटोलम्, पाण्डुकः
पापड़—पर्पटा
पान—ताम्बूलम्
पालक—पालङ्गा

पिस्ता—अंकोलम्
पीपर—पिप्पली
पुलाव (तहरी)—पुलाकः
पूआ—अपूपः
पूड़ी—शष्कुली
पेठा—कौष्माण्डम्
पोदीना—अजगन्धः, पुदीनः
पोस्ता—पौष्टिकम्
प्याज—पलाण्डु
फल—फलम्
फालसा—पुंनागफलम्
फैनी—फेनिका
बताशा—वाताशः
बथुआ—वास्तुकम्
बहेड़ा—बिभीतकः
बाजरा—प्रियङ्गुः
बादाम—वातादम्
बिस्कुट—पिष्टकः
बेर—बदरी, कर्कन्धुः
बेल—बिल्वम्, श्रीफलम्
बेसन—चणकचूर्णम्
भण्टा—भण्टाकी, वृन्ताकम्
भाँग—विजया
भिण्डी—भिण्डकः
मक्खन—नवनीतम्
मट्ठा (छाछ)—तक्रम्
मसाला—उपस्करः
मसूर—मसूरः, मङ्गल्यकः
महुआ—मधूकः
माड़—मण्डम्
मांस—मांसम्, पिशितम्
मालपूआ—अपूपः
मिठाई—मिष्टान्नम्
मीठा—मधुरः
मिर्च—मरीचः
मिस्री—सितोपला
मुनक्का—मधुरिका
मुरब्बा—मिष्टपाकः
मुसम्मी—मातुलुंगः
मूँग—मुद्गः
मूँगफली—मण्डपी
मूली—मूलकम्, मूलिका
मेवा—शुष्कफलम्
मैथी—मेथिका
रसगुल्ला—रसगोलः
रसोई—रसवती
राई—राजिका
रायता—दाधेयम्
रोटी—रोटिका, करपट्टिका
लड्डू—मोदकः, मोदकम्
लप्सी—यवागूः
लस्सी—दाधिकम्
लहसुन—लशुनम्
लाजा—लाजाः
लौंग—लवङ्गम्, लवङ्गः
लौकी—अलाबुः
शक्कर (चीनी)—शर्करा
शराब—मदिरा, सुरा, मद्यम्
शरीफा (छीताफल)—सीताफलम्
शलगम—श्वेतकन्दः
शाक (तरकारी)—शाकः
सतपुतिया—सप्तपुत्रिका
सत्तू—सक्तुः
सरसों—सर्षपः

सुपारी—पूगः, पूगीफलम्
सेम—सिम्बा, शिम्बिः
सेवई (बिया)—सूत्रिका
सोंठ—शुण्ठी
हर्र—हरीतकी
हलुआ—संयावः
हल्दी—हरिद्रा, काञ्ची
हींग—हिंगुः, रामठम्

परिशिष्ट : ३ : प्रत्ययान्त (सनाद्यन्त) धातुयें (Derivative Roots)

जब किसी विशेष अर्थ, प्रेरणा, इच्छा आदि का बोध कराना अभीष्ट होता है तो 'सन्' आदि १२ प्रत्यय[1] धातु अथवा प्रातिपदिकों में जोड़े जाते हैं। इनके जुड़ने पर उनकी 'धातु' संज्ञा होती है और तब 'तिङ्' प्रत्यय जुड़ने पर उनके रूप समस्त लकारों में चलते हैं। ये धातुयें **'प्रत्ययान्त धातुयें'** या **'सनाद्यन्त धातुयें'** कहलाती हैं। 'सन्' आदि प्रत्यय धातु (या प्रातिपदिक) और 'तिङ्' प्रत्ययों के बीच में जुड़ते हैं। ये धातुयें ५ प्रकार की होती हैं—(१) णिजन्त ('णिच्' प्रत्ययान्त = 'प्रेरणार्थक'), (२) सन्नन्त ('सन्' प्रत्ययान्त = 'इच्छार्थक'), (३) यङन्त ('यङ्' प्रत्ययान्त = 'समभिहारार्थक'), (४) यङ्लुगन्त (यह 'यङन्त' के समान ही है) और (५) नामधातु (क्यचाद्यन्त = 'विभिन्नार्थक')।

(१) **णिजन्त धातु** (प्रेरणार्थक = Causative) जब कोई कार्य किसी दूसरे से कराया जाता है तो उस अर्थ वाली धातु में 'णिच्' प्रत्यय जोड़कर प्रेरणार्थक धातुयें बनाई जाती हैं। जैसे—सः पचति (वह पकाता है)—सः तेन पाचयति (वह उससे पकवाता है)। णिजन्त-क्रियाओं के बनाने के निम्न नियम हैं—

(क) मूलधातु और प्रत्यय के मध्य 'णिच्' (इ = अय् + अ = अय) जुड़ेगा। जैसे—गम् + अय + ति = गमयति। (ख) धातु के अंतिम इ, उ, ऋ स्वर को वृद्धि तथा अयादि सन्धि भी होगी। जैसे—कृ = कारयति। नी=नाययति। भू = भावयति। दृश्=दर्शयति। (ग) उपधा के अ को वृद्धि और इ, उ, ऋ को गुण होगा। जैसे—पठ्=पाठयति। लिख् = लेखयति। भुज् = भोजयति। वृतु=वर्तयति। (घ) परन्तु गम्, रम्, क्रम्, नम्, शम्, दम्, जन्, त्वर्, घट् और व्यथ् इन धातुओं के उपधा के 'अ' को वृद्धि नहीं होगी। जैसे—गमयति, रमयति, क्रमयति, नमयति, शमयति, दमयते,

१. सन्-क्यच्-काम्यच्-क्यङ्-क्यषोऽथाचारक्विब्णिज्-यङस्तथा।
यगायेयङ् णिङ्चेति द्वादशामी सनादयः॥

जनयति, त्वरयति, घटयति, व्यथयति । (ङ) आकारान्त धातुओं के अन्त में 'अय' से पूर्व 'प्' और जुड़ जाता है । जैसे—दा = दापयति, धापयति, स्थापयति, यापयति, स्नापयति । परन्तु 'पा' (पीना) से पाययति और 'पा' या 'पाल्' (रक्षा करना) से पालयति । (च) चुरादिगणीय सभी धातुयें णिजन्त ही हैं । अतः उनमें कोई परिवर्तन नहीं होगा । (छ) सभी णिजन्त धातुयें उभयपदी, सकर्मक और सेट् होती हैं । इनके रूप चुरादिगण की धातुओं के समान होते हैं । जैसे, **बुध्** कर्तृवाच्य में—(लट्) बोधयति, बोधयते । (लङ्) अबोधयत्, अबोधयत । (लृट्) बोधयिष्यति, बोधयिष्यते । (लोट्) बोधयतु, बोधयताम् । (विधिलिङ्) बोधयेत्, बोधयेत । कर्मवाच्य में, क्रमशः—बोध्यते । अबोध्यत । बोधिष्यते । बोध्यताम् । बोध्येत । (ज) कुछ विशिष्ट णिजन्त रूप—ब्रू = वाचयति । अधि + इ = अध्यापयति । हन् = घातयति । दुष् = दूषयति । लभ् = लम्भयति । अस् = भावयति । मृज् = मार्जयति । विशेष के लिए देखें–परिशिष्ट : १ : 'धातुकोष' ।

(२) **सन्नन्त धातु (इच्छार्थक = Desiderative)**—किसी कार्य को करने की इच्छा का अर्थ बतलाने के लिए उस कार्य का अर्थ बतलाने वाली धातु से 'सन्' (स्) प्रत्यय लगाया जाता है, यदि दोनों क्रियाओं का कर्त्ता एक ही व्यक्ति हो । जैसे—इसकी पढ़ने की इच्छा है = सः पिपठिषति (पठितुमिच्छति) । कर्त्ता के भिन्न-भिन्न होने पर 'सन्' प्रत्यय नहीं होगा । जैसे—शिष्याः पठन्तु इति इच्छति अभिलषति वा गुरुः (गुरु की इच्छा है कि छात्र पढ़ें; यहाँ प्रत्यय 'सन्' न होकर इच्छार्थक धातु का प्रयोग हुआ है, क्योंकि 'पठन' क्रिया और 'इच्छा' क्रमशः छात्र और गुरु में पृथक्-पृथक् है, एक कर्त्ता में नहीं) ।

सन्नन्त धातुओं के विषय में ज्ञातव्य बातें—(१) धातु को (हलादि धातु के प्रथम एकाच् को और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् को) द्वित्व होगा । जैसे–पठ् + सन्=प + पठ् + स् = पपठ्स् = पपठ् + इ + स्>ष् + अ + ति = पिपठिषति (पठितुमिच्छति = पढ़ने की इच्छा करता है) । अद्>घस्लृ + सन् = जिघस्स् = जिघत्स् + अ + ति = जिघत्सति (अत्तुमिच्छति = खाना चाहता है) । कृ + सन् = चिकीर्षति (कर्तुमिच्छति) । (२) अभ्यास के अकार को इकार होगा । (३) 'सेट्' धातुओं (ग्रह्, गुह् और उगन्त धातुयें छोड़कर) में 'इट्' होगा; अनिट् में नहीं । (४) सन्नन्त धातुयें अनेकाच् होने से सेट् होती हैं । (५) 'शप्' विकरण होगा और 'सन्' के आर्धधातुक होने से गुणादि कार्य होंगे । (६) भ्वादि गण की तरह (परस्मैपद में 'पठ्' और आत्मनेपद में 'ज्ञा' के समान) रूप चलेंगे । जैसे—'पठ्' [कर्तृवाच्य में]—(लट्) पिपठिषति, पिपठिषते; (लङ्) अपिपठिषत्, अपिपठिषत; (लृट्) पिपठिषिष्यति, पिपठिषिष्यते; (लोट्) पिपठिषतु, पिपठिषताम्; (विधिलिङ्) पिपठिषेत्, पिपठिषेत ।

[कर्मवाच्य में] क्रमशः—पिपठिष्यते, अपिपठिष्यत, पिपठिषिष्यते, पिपठिष्यताम्, पिपठिष्येत । (७) सन्नन्त धातुओं में 'आ' जोड़ने पर इच्छार्थक संज्ञा शब्द बन जाते हैं । जैसे—पा>पिपास् + आ = पिपासा (पीने की इच्छा), जिज्ञासा, शुश्रूषा, विवक्षा, मुमूर्षा, चिकीर्षा आदि । (८) सन्नन्त धातु में 'उ' जोड़ने पर इच्छार्थक विशेषण शब्द बन जाते हैं । जैसे—पा>पिपास् + उ = पिपासुः (पीने का इच्छुक), जिज्ञासुः, चिकीर्षुः । (९) **कुछ सन्नन्त रूप**—भू>बुभूषति (होने की इच्छा करता है), लभ्>लिप्सते (पाने की इच्छा०), हन्>जिघांसति, अद्>जिघत्सति, स्था>तिष्ठासति, भुज्>बुभुक्षते, चुर्>चुचोरयिषति, जीव्>जिजीविषति, शी>शिशयिषते, बुध्>बुभुत्सते, लिख्>लिलेखिषति, अधि + इ>अधिजिगांसते (अध्ययन की इच्छा०), वि + जि>विजिगीषते, दृश्>दिदृक्षते, आप्>इप्सति, श्रु>शुश्रूषते, वच्>विवक्षति ।

(३) **यङन्त धातु (समभिहारार्थक = Frequentative or Intensive)**—क्रिया का समभिहार (बार बार होना या अधिक होना) प्रकट करने के लिए (केवल हलादि एकाच् धातु) में 'यङ्' (य) प्रत्यय जोड़ा जाता है । जैसे—पुनः पुनः पिबति अतिशयेन भृशं वा पिबति = पेपीयते (बार बार या अधिक बार पीता है) । पुनः पुनः अतिशयेन भृशं वा भवति = बोभूयते (बार बार या अधिक होता है) । यह 'यङ्' प्रत्यय अजादि और अनेकाच् धातुओं से नहीं होता है । जैसे—भृशं जागर्ति, भृशमीक्षते आदि ।

यङन्त धातुओं के विषय में ज्ञातव्य बातें—(१) धातु को द्वित्व होगा ।[१] जैसे—भू + भू + यङ् = भूभूयङ् = बोभूय् + अ + ते = बोभूयते । (२) यङन्त धातुयें अनेकाच् होने से 'सेट्' होती हैं । (३) भ्वादि की तरह 'शप्' विकरण और गुणादि कार्य होते हैं । (४) यङन्त धातुओं के 'ङित्' होने से इनके रूप केवल आत्मनेपद के ही होंगे । (५) गत्यर्थक धातुओं से 'कौटिल्य' (वक्र गमन) अर्थ में 'यङ्' होता है । जैसे—गम्>जङ्गम्यते (कुटिलं गच्छति), व्रज्>वाव्रज्यते (कुटिलं व्रजति) । (६) इनके रूप सभी लकारों में चलते हैं (वैदिक संस्कृत में परस्मैपद में तथा लौकिक संस्कृत में आत्मनेपद में) । जैसे—बुध् (दोनों वाच्यों में एक समान)—(लट्) बोबुध्यते, (लङ्) अबोबुध्यत, (लृट्) बोबुधिष्यते, (लोट्) बोबुध्यताम्, (विधिलिङ्) बोबुध्येत । (७) **कुछ यङन्त रूप**—नी> नेनीयते (बार-बार ले जाता है), घ्रा>जेघ्रीयते, दृश्>दरीदृश्यते, दह्>दन्दह्यते, हन्>जङ्घन्यते, दा>देदीयते, नृत्>नरीनृत्यते, शी>शाशय्यते, जि>जेजीयते, वृत्>वरीवृत्यते, रुद्>रोरुद्यते, सिच्>सेसिच्यते, पा>पेपीयते, पच्>पापच्यते ।

१. अभ्यास के इ उ ऋ लृ को गुण भी होता है ।

(४) **यङ्लुगन्त धातु** (समभिहारार्थक)—क्रिया समभिहार में विहित 'यङ्' का लोप हो जाने पर यङ्लुगन्त धातु कहलाती है। इसका प्रयोग वैदिक संस्कृत में मिलता है और इसके रूप परस्मैपद में चलते हैं। यङ्लुगन्त धातुओं का अदादिगण में परिगणन होने से 'शप्' विकरण का लोप हो जाता है। 'यङ्' का लोप हो जाने पर भी [प्रत्यय-लक्षण नियम से] द्वित्वादि कार्य होते हैं। जैसे—भू>बोभोति। तिप्, सिप् और मिप् में वैकल्पिक 'ईट्' का आगम होने से 'बोभवीति' रूप भी बनता है।

(५) **नामधातु** (Denominative)—संज्ञादि सुबन्त (नाम) में जब क्यचादि प्रत्यय (क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, क्विप्, णिच् और णिङ्) जोड़कर उसे धातु बनाते हैं तो उसे 'नामधातु' कहते हैं। इनमें 'शप्' विकरण जुड़ता है तथा इनके रूप भ्वादिगण की तरह चलते हैं। इनका प्रयोग प्रायः वर्तमानकाल में होता है। नामधातुओं का प्रयोग कई प्रकार के अर्थों को प्रकट करने के लिए होता है। जैसे—

(१) **इच्छार्थ**—आत्मनः पुत्रमिच्छति = पुत्रीयति (पुत्र + क्यच्>य) पुत्रकाम्यति (पुत्र + काम्यच्) वा (अपना पुत्र चाहता है)। आत्मनः गङ्गाम् इच्छति गङ्गीयति (गङ्गा + क्यच्; अपने लिए गङ्गा की इच्छा करता है)। नदीयति (नदी + क्यच्)। वधूयति (वधू + क्यच्)। राजीयति (राजन् + क्यच्)। विष्णूयति (विष्णु + क्यच्)। गव्यति (गो + क्यच्)। नाव्यति (नौ + क्यच्)।

(२) **आचारार्थ**—(क) **उपमानकर्म** (जिसके समान समझा जाये) छात्रं पुत्रमिवाचरति = पुत्रीयति छात्रं गुरुः (पुत्र + क्यच्; गुरु छात्र के साथ पुत्र के समान आचरण करता है)। विष्णुमिवाचरति द्विजम् = विष्णूयति द्विजम् (ब्राह्मण के साथ विष्णु के समान आचरण करता है)। कृष्ण इव आचरति = कृष्णति (कृष्ण + क्विप्, सर्वापहार लोप; कृष्ण के समान आचरण करता है)। इदमिवाचरति = इदमति (इदम् + क्विप्)। राजेव आचरति = राजानति (राजन् + क्विप्)। पन्था इव आचरति = पथीनति (पथिन् + क्विप्, मार्ग के समान आचरण करता है)। स्व इवाचरति = स्वति (स्व + क्विप्; आत्मीय के समान आचरण करता है)। वधूयति (वधू + क्यच्)। कर्तृयति (कर्तृ + क्यच्)[1]। कृष्ण इवाचरति कृष्णायते (कृष्ण + क्यङ्; कृष्ण का सा आचरण करता है)। अप्सरा इवाचरति = अप्सरायते (अप्सरा + क्यङ्)। विद्वान् इवाचरति = विद्वायते या विद्वस्यते (विद्वस् + क्यङ्)। कुमारीव आचरति कुमारायते (कुमारी + क्यङ्; यहाँ स्त्री प्रत्यय 'ई' का लोप हो गया है)। पाचिकेव आचरति = पाचिकायते (पाचिका + क्यङ्; यहाँ स्त्री प्रत्यय का लोप नहीं हुआ

1. कर्तृवाचक उपमान से क्यङ् प्रत्यय हो। सकारान्त के 'स्' का लोप हो। कर्तृ क्यङ् सलोपश्च। अ० ३.१.११

क्योंकि इसमें 'क' प्रत्यय जुड़ा है)। युवतीवाचरति = युवायते (युवती + क्यङ्)। सपत्नीव आचरति=सपत्नायते (सपत्नी + क्यङ्)। (ख) **उपमान अधिकरण**—प्रासादीयति कुट्यां भिक्षुः (प्रासाद + क्यच्; भिखारी कुटी को महल समझता है)। कुटीयति प्रासादे राजा (कुटी + क्यच्; राजा महल को कुटी समझता है)।

(३) **करोत्यर्थ**—शब्दं करोति = शब्दायते (शब्द + क्यङ्; शब्द करता है)। वैरं करोति = वैरायते (वैर + क्यङ्; वैर करता है)। कलहं करोति = कलहायते (कलह + क्यङ्)। अभ्रं करोति अभ्रायते (अभ्र + क्यङ्) मेघं करोति = मेघायते (मेघ + क्यङ्)। घटं करोति = घटयति (घट् + णिच्; घड़ा बनाता है)।

(४) **उत्साहार्थ**—कष्टाय (पापाय) क्रमते = कष्टायते (कष्ट + क्यङ् ; पाप करने को तैयार होता है)।

(५) **उद्वमनार्थ**—फेनम् उद्वमति = फेनायते (फेन + क्यङ्; फेन उगलता है)। वाष्पमुद्वमति = वाष्पायते (वाष्प + क्यङ्)। ऊष्माणमुद्वमति = ऊष्मायते (ऊष्मा + क्यङ्)।

(६) **वेदनार्थ** (अनुभवार्थ)—सुखं वेदयते = सुखायते (सुख + क्यङ्; स्वयं सुख का अनुभव करता है। 'परस्य सुखं वेदयते' ऐसा प्रयोग नहीं होगा)।

(७) **भवत्यर्थ**—लोहितं भवतीति = लोहितायते (लोहित + क्यष्; लाल हो जाता है)। पटपटायते (पटपट + क्यच्)।

(८) **वर्तन एवं चरणार्थ**—रोमन्थं वर्तयति = रोमन्थायते (रोमन्थ + क्यङ्; रोमन्थ = जुगाली करता है)। तपश्चरतीति = तपस्यति (तप् + क्यङ्; तपस्या करता है)।

(९) **अन्य प्रत्ययों के प्रयोग**—मुण्डं करोतीति = मुण्डयति (मुण्ड + णिच्; मूँड़ता है)। कृष्णति (कृष्ण + क्विप्; कृष्ण के समान आचरण करता है)। पुत्रमात्मनमिच्छति = पुत्रकाम्यति (पुत्र + काम्यच्)। यशस्काम्यति। सर्पिष्काम्यति। परिपुच्छयते (परि + पुच्छ + णिङ्)।

(१०) **'क्यच्' प्रत्यय के विषय में ज्ञातव्य बातें**—(१) यह इच्छा और आचार अर्थ में होता है। (२) रूप परस्मैपद में चलते हैं। (३) क्यच् (य) जुड़ने पर—(क) उससे पूर्ववर्ती संज्ञा का अंतिम स्वर परिवर्तित हो जाता है (अ, आ, इ> ई। उ, ऊ>ऊ। ऋ>री। ओ>अव्। औ>आव्)। (ख) अन्तिम ,ङ् ञ्, ण् तथा न् का लोप हो जाता है।

(११) 'क्यङ्' प्रत्यय के विषय में ज्ञातव्य बातें—(१) यह आचार, करोति, उत्साह, उद्गमन, वेदना आदि अर्थों में होता है। (२) रूप आत्मनेपद में चलते हैं। (३) 'क्यङ्' (य) जुड़ने पर—(क) पूर्ववर्ती अन्तिम स्वर (सुबन्त का 'अ') दीर्घ हो जाता है। (ख) शब्द के अन्तिम 'स्' का विकल्प से लोप (ओजस् और अप्सरस् में नित्य) होता है। (ग) स्त्री प्रत्यय हटा दिया जाता है (स्त्री प्रत्ययान्त शब्द यदि 'क' में अन्त हो तो नहीं)।

परिशिष्ट : ४ : कर्मवाच्य और भाववाच्य की क्रियायें

कर्मवाच्य और भाववाच्य की क्रियायें बनाने के नियम—(१) ये केवल आत्मनेपदी होती हैं तथा इनमें गणचिह्न नहीं जुड़ते हैं। (२) सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्) में धातु और प्रत्यय के बीच में 'यक्' (य) जोड़ा जाता है। शेष लकारों के रूप कर्तृवाच्य के समान होते हैं, परन्तु वे आत्मनेपद के प्रत्ययों वाले होते हैं, चाहे धातु किसी भी पद की क्यों न हो। (३) धातु प्रायः अपने मूल रूप में रहती है। धात्वादेश (जैसे—गम् को गच्छ्) भी नहीं होते हैं। जैसे—गम्+य+ते=गम्यते (जाया जाता है); भू+य+ते=भूयते (हुआ जाता है)। (४) इकारान्त और उकारान्त धातुओं के स्वर को दीर्घ हो जाता है। जैसे—चि>चीयते; स्तु>स्तूयते; श्रु>श्रूयते; जि>जीयते। (५) ऋकारान्त धातुओं के 'ऋ' को 'रि' हो जाता है। जैसे—कृ>क्रियते; हृ>ह्रियते (अपवाद—स्मृ>स्मर्यते)। (६) ऋकारान्त धातुओं के 'ऋ' को 'ईर्' (पवर्ग प्रारम्भ में हो तो 'ऊर्') हो जाता है। जैसे—तॄ>तीर्यते; जॄ>जीर्यते; पॄ>पूर्यते। (७) धातु के मध्य में आने वाले 'न्' का प्रायः लोप हो जाता है। जैसे—मन्थ्<मथ्यते; बन्ध्>बध्यते; इन्ध्>इध्यते; शंस्>शस्यते; (अपवाद—चिन्त्>चिन्त्यते; निन्द्>निन्द्यते; वन्द्>वन्द्यते)। (८) 'वच्' आदि धातुओं को सम्प्रसारण हो जाता है। जैसे—वद्>उद्यते; वच्>उच्यते; यज्>इज्यते)। (९) ऐकारान्त गै तथा आकारान्त (दा, धा, मा, स्था, गा, पा, हा) धातुओं के अन्तिम स्वर को 'ई' हो जाता है। जैसे—गै>गीयते; दा> दीयते; मा>मीयते; धा>धीयते; गा>गीयते; हा>हीयते; स्था>स्थीयते (अन्यत्र— ज्ञा>ज्ञायते; त्रै>त्रायते; स्ना>स्नायते; ध्यै>ध्यायते। (१०) कुछ धातुओं के कर्मवाच्य और भाववाच्य के रूप (विशेष के लिए देखें, परिशिष्ट : १ : धातुकोष)—

(१) पठ् (कर्मवाच्य) प्र० पु० के रूप:—

	लट्	लोट्	लङ्	विधिलिङ्	लृट्
एकवचन	पठ्यते	पठ्यताम्	अपठ्यत	पठ्येत	पठिष्यते
द्विवचन	पठ्येते	पठ्येताम्	अपठ्येताम्	पठ्येयाताम्	पठिष्येते
बहुवचन	पठ्यन्ते	पठ्यन्ताम्	अपठ्यन्त	पठ्येरन्	पठिष्यन्ते

	आ० लिङ्	लिट्	लुङ्	लुट्	लृङ्
ए० व०	पठिषीष्ट	पेठे	अपाठि	पठिता	अपठिष्यत
द्वि० व०	पठिषीयास्ताम्	पेठाते	अपाठिषाताम्	पठितारौ	अपठिष्येताम्
ब० व०	पठिषीरन्	पेठिरे	अपाठिषत	पठितारः	अपठिष्यन्त

(२) स्था (भाववाच्य) प्र० पु० के रूप—

	लट्	लोट्	लङ्	विधिलिङ्	लृट्
ए० व०	स्थीयते	स्थीयताम्	अस्थीयात	स्थीयेत	स्थास्यते
द्वि० व०	स्थीयेते	स्थीयेताम्	अस्थीयेताम्	स्थीयेयाताम्	स्थास्येते
ब० व०	स्थीयन्ते	स्थीयन्ताम्	अस्थीयन्त	स्थीयेरन्	स्थास्यन्ते

नोट—शेष लकारों में क्रमशः—स्थासीष्ट, तस्थे, अस्थायि, स्थाता, अस्थास्यत।

परिशिष्ट : ५ : आत्मनेपद और परस्मैपद विधान

(क) आत्मनेपद :

निम्न परिस्थितियों में धातु आत्मनेपदी हो जाती है—

(१) भाववाच्य और कर्मवाच्य में—भूयते, गम्यते। (२) नि+विश् धातु से—निविशते। (३) परि, वि, अव+क्री धातु से—परिक्रीणीते। (४) वि, परा+जि धातु से—विजयते, पराजयते। (५) सम्, अव, प्र, वि+स्था धातु से—सन्तिष्ठते, प्रतिष्ठते। (६) उद्+स्था (यदि उठना अर्थ न हो) धातु से—ज्ञानाय उत्तिष्ठते। (७) उद्+चर् (सकर्मक) धातु से—धर्ममुच्चरते। (८) तृतीयान्त से युक्त सम्+चर् धातु से—रथेन सञ्चरते। (९) भोजन या भोगना अर्थ में भुज् धातु से—ओदनं भुङ्क्ते, दुःखशतानि भुङ्क्ते (अन्यत्र—महीं भुनक्ति)। (१०) ङित् धातुओं से—शेते। (११) अनु, परि, आ+क्रीड् धातु से—अनुक्रीडते। (१२) ज्ञा (छिपाने या अकर्मक अर्थ में) धातु से—शतमपजानीते, सर्पिषो जानीते। (१३) उद्, वि+तप् (अकर्मक या स्वाङ्गकर्मक) धातु से—सूर्यः

उत्तपते, अग्नौ पाणिमुत्तपते। (१४) आङ् + ह्वे (स्पर्धा हो तो) धातु से—मल्लः मल्लमाह्वयते (अन्यत्र—पिता पुत्रमाह्वयति)।

(ख) परस्मैपद :

निम्न परिस्थितियों में धातु परस्मैपदी होती है—

(१) अनु, परा + कृ धातु से—अनुकरोति। (२) अभि, प्रति, अति + क्षिप् धातु से—प्रतिक्षिपति (अन्यत्र—आक्षिपते)। (३) प्र + वह् धातु से—प्रवहति। (४) परि + मृष् धातु से—परिमृष्यति। (५) वि, आङ्, परि, उप + रम् धातु से— विरमति, उपरमति (उप + रम् धातु से अकर्मक होने पर—उपरमति उपरमते वा)।

परिशिष्ट : ६ : मूर्द्धन्यीकरण (Cerebralization)

(१) णत्व-विधान[1] (न् > ण्)—

(क) र्, ष्, ऋ, ॠ से परे न् को ण् होता है। जैसे—चतुर्णाम्, पितॄणाम्, पुष्णाति, नृणाम्। (ख) यदि अट् (स्वर, ह, य्, व्, र्), कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् (न्, अनुस्वार) का बीच में (एक या अधिक का) व्यवधान हो तो भी न् को ण् हो जाता है। जैसे—रामेण, हरीणाम्, मृगेण, दर्पेण, मूर्खेण, कराणाम्। (ग) णत्वविधान के कुछ अन्य उदाहरण[2]—शूर्पणखा, वृत्रहणौ, प्रणदति, प्रमीणाति, प्रभवाणि, प्रणिगदति।

नोट—निम्न स्थलों में णत्व नहीं होगा—

(१) पदान्त न् में। जैसे—रामान्, हरीन्, गुरून्। (२) अट् आदि से भिन्न वर्णों का व्यवधान होने पर। जैसे—अर्थेन, रसेन, अर्चना, दृढानाम्, कृष्णानाम्। (३) भिन्न-भिन्न पदों के होने पर। जैसे—रामनरेशः। (४) क्षुभ्नादि गण के शब्दों में। जैसे—नरीनृत्यते।

(२) षत्व-विधान[3] (स् > ष्)—

(क) आदेश अथवा प्रत्यय-सम्बन्धी अपदान्त 'स्' को 'ष्' होता है यदि उसके पहले 'इण्' (अ, आ से भिन्न स्वर, ह य् व् र् ल्) या कवर्ग हो। जैसे—हरिषु,

१. रषाभ्यां नो णः समानपदे। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। पदान्तस्य। ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्।

२. इण्कोः। आदेशप्रत्यययोः। नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।

चतुर्षु, देवेषु, भ्रातृषु, दिक्षु, वाक्षु। (ख) इण् और कवर्ग के बाद नुम् (न्, अनुस्वार), विसर्ग और शर् (श् ष् स्) का व्यवधान होने पर भी षत्व हो जायेगा। जैसे—धनूंषि, आशीःषु, चक्षुःषु, पिपठीष्षु। (ग) इण् और कवर्ग के बाद में 'शास्' (शासन करना), 'वस्' (रहना) और 'घस्' (खाना) धातुओं के अवयवरूप 'स्' को 'ष्' हो जाता है। जैसे—शिष्यः, उषितः, जक्षतुः। (घ) 'सह्' धातु के 'साह्' के 'स्' को 'ष्' होगा। जैसे तुराषाट्। अन्यत्र—तुरासाहौ, तुरासाहः।

नोट—(१) पदान्त 'स्' को ष् नहीं होगा। जैसे—हरिस्तत्र।

(२) 'सात्' प्रत्यय के 'स्' को षत्व नहीं होगा। जैसे—नदीसात्। वायुसात्।

परिशिष्ट : ७ : प्रकृति-प्रत्यय, संज्ञायें और अनुबन्ध

(क) प्रकृति-प्रत्यय :

व्याकरण की दृष्टि से शब्द के प्रकृति और प्रत्यय का विचार अत्यावश्यक होता है। अतः परीक्षाओं में प्रकृति-प्रत्यय पूछा जाता है। दोनों शब्दों का अर्थ निम्न है—

(१) प्रकृति—मूल धातु या शब्द (प्रातिपदिक) जिसमें प्रत्यय लगाए जाते हैं। जैसे—भवति > भू (प्रकृति) + ति (प्रत्यय)

(२) प्रत्यय—प्रकृति (धातु और प्रातिपदिक) में जोड़े जाने वाले शब्दांश विशेष को प्रत्यय कहते हैं। 'बहुच्'[1] और 'अकच्'[2] को छोड़कर शेष सभी प्रत्यय प्रकृति के बाद जोड़े जाते हैं। प्रत्यय पाँच प्रकार के हैं—(१) विभक्ति-प्रत्यय (सुप् और तिङ् प्रत्यय), (२) कृत्-प्रत्यय, (३) तद्धित-प्रत्यय, (४) स्त्री-प्रत्यय और (५) सनादि - प्रत्यय।

(१) विभक्ति-प्रत्यय—प्रातिपदिक के बाद में जुड़ने वाले 'सुप्' प्रत्ययों को तथा धातु के बाद में जुड़ने वाले 'तिङ्' प्रत्ययों को विभक्ति-प्रत्यय कहते हैं।[3]

१. विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु। अ० ५।३।६८।
यथा—ईषद् ऊनः पटुः बहुपटुः। यहाँ 'पटु' में 'बहुच्' प्रत्यय पूर्व में हुआ है।

२. अव्यय सर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः। अ० ५।३।७१।
यथा—अज्ञातयोः 'युष्मयोः' युवकयोः। यहाँ युष्मद् > युव + अकच् + ओस् ।

३. विभक्तिश्च। अ० १।४।९८।

जैसे—नर+सु=नरः, अस्+तिप्=अस्ति। (२) कृत् प्रत्यय[1]—धात्वर्थ से कुछ विशेष अर्थ प्रकट करने के लिए धातु के बाद में जुड़ने वाले विभक्ति (तिङ्) से इतर तव्यत्, अनीयर्, ण्वुल्, तृच् आदि प्रत्यय विशेषों को कृत्-प्रत्यय कहते हैं। जैसे—कृ+तव्यत्=कर्तव्यम्। (३) तद्धित-प्रत्यय[2]—प्रातिपदिकार्थ से कुछ विशेष अर्थ प्रकट करने के लिए प्रातिपदिक के बाद में जुड़ने वाले विभक्ति (सुप्) प्रत्ययों से इतर अण्, मतुप् आदि प्रत्यय विशेषों को तद्धित-प्रत्यय कहते हैं। जैसे—वसुदेव+अण्=वासुदेवः। (४) स्त्री-प्रत्यय[3]—पुँल्लिङ्ग शब्दों से स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाने के लिए पुँल्लिङ्ग शब्दों के बाद में जुड़ने वाले टाप्, ङीप् आदि प्रत्यय विशेषों को स्त्री-प्रत्यय कहते हैं। जैसे—अज+टाप्=अजा। (५) सनादि-प्रत्यय[4]—धातु के बाद में जुड़ने वाले 'सन्' आदि तथा प्रातिपदिक के बाद में जुड़ने वाले 'क्यच्' आदि प्रत्ययविशेषों को सनादि प्रत्यय या धात्ववयव (धातु+अवयव) कहते हैं। ये प्रत्यय संख्या में १२ हैं। ये जिसमें जुड़े होते हैं उनकी धातु संज्ञा होती है और तब उनके रूप सभी लकारों में चलते हैं। ऐसी धातुओं को सनाद्यन्त धातु या प्रत्ययान्त धातु कहते हैं। जैसे—गम्+सन्+ति=जिगमिषति; पुत्र+क्यच्+ति=पुत्रीयति।

(ख) संज्ञायें :

आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में व्याकरण सम्बन्धी नियमों को समझाने के लिए तथा किसी विशेष अर्थ को प्रकट करने के लिए कुछ पारिभाषिक शब्दों (Technical terms) का प्रयोग किया है जिन्हें उन्होंने 'संज्ञा' शब्द से कहा है। कुछ प्रमुख संज्ञाओं का सामान्य परिचय निम्न है—

(१) धातु—क्रिया वाचक भू, गम्, इत्यादि को धातु कहते हैं।[5] धातु संज्ञा होने पर 'तिङ्' और 'कृत्' प्रत्यय होते हैं।

(२) प्रातिपदिक—धातु (भू, पठ् आदि) प्रत्यय (क्त्वा आदि), तथा प्रत्ययान्त (हरिषु, करोषि आदि) को छोड़कर सार्थक शब्द समुदाय (संज्ञा, सर्वनाम्, विशेषण आदि) को प्रातिपदिक कहते हैं।[6] कृत् प्रत्ययान्त (कृ+ण्वुल्=

१. देखें पृ० ३२। २. देखें पृ० ४७।
३. देखें पृ० ५८। ४. देखें पृ० २४९।
५. भूवादयो धातवः। अ० १।३।१।
६. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपादिकम्। अ० १।२।४५। देखें पृ० ६५।

कारक), तद्धितप्रत्ययान्त (दशरथ+इञ्=दाशरथि) तथा समास (राजपुरुष) की भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है।[1] प्रातिपदिक संज्ञा होने पर 'सुप्' विभक्तियाँ जुड़ती हैं। स्त्री-प्रत्यय और तद्धित-प्रत्यय भी प्रातिपदिक में ही जुड़ते हैं।

(३) पद—जिन शब्दों के अन्त में 'सुप्' प्रत्यय (सु से सुप् तक २१ प्रत्यय) अथवा 'तिङ्' प्रत्यय (तिप् से महिङ् तक १८ प्रत्यय) जुड़े हों उन्हें पद कहते हैं।[2] प्रातिपदिकों में सुप् तथा धातुओं में तिङ् प्रत्यय जुड़ते हैं। पद बनने पर ही उनका वाक्यों में प्रयोग होता है।[3]

(४) अव्यय—जिनके रूपों में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् जो सदा सभी प्रकार के प्रयोगों में एक समान रहते हैं वे अव्यय कहलाते हैं।[4] जैसे—यथा, कृत्वा आदि।

(५) उपसर्ग—क्रिया के योग में प्र, परा आदि उपसर्ग कहलाते हैं।[5] ये क्रियापद के प्रारम्भ में जोड़े जाते हैं। जब ये क्रियापद के साथ संयुक्त होते हैं तभी उपसर्ग कहलाते हैं। इसके क्रिया पद के साथ जुड़ने पर धात्वर्थ या तो बदल जाता है या उसमें कुछ वैशिष्ट्य आ जाता है। जैसे—प्र+हृ=प्रहारः। आ+हृ=आहारः।

(६) सवर्ण—जिन वर्णों का उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न समान होता है वे परस्पर सवर्ण कहलाते हैं।[6] जैसे—क् ख् ग् घ् ङ् परस्पर सवर्ण हैं क्योंकि इनका उच्चारण स्थान कण्ठ तथा आभ्यन्तर प्रयत्न स्पर्श है। वर्गीय वर्ण आपस में सवर्ण होते हैं। ऋ और ऌ की भी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है।[7]

(७) उपधा—अन्तिम वर्ण से ठीक पूर्ववर्ती वर्ण को उपधा कहते हैं[8] जैसे—'गम्' (ग्+अ+म्) के अन्तिम वर्ण म् से ठीक पूर्ववर्ती वर्ण 'अ' वर्ण।

१. कृत्तद्धितसमासाश्च। अ० १।२।४६।
२. सुप्तिङन्तं पदम्। अ० १।४।१४। ३. अपदं न प्रयुञ्जीत।
४. अव्ययीभावश्च। अ० १।१।४०, देखें पृ० ६२। ५. देखें, पृ० ६२।
६. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्। अ० १।१।९, देखें पृ० १४।
७. ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्। वा० (अ० १।१।९)।
८. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा। अ० १।१।६४।

(८) **गुण**—अ (अत्) और ए ओ (एङ्) की गुण संज्ञा होती है।[1] गुण इक् (इ उ ऋ ऌ) के स्थान में ही होते हैं अर्थात् इ▷ए, उ>ओ, ऋ>अ, ऌ>अ।

(९) **वृद्धि**—आ (आत्) और ऐ औ (ऐच्) की वृद्धि संज्ञा होती है।[2] वृद्धि इक् (इ उ ऋ ऌ) के स्थान में ही होती है। अर्थात् इ▷ऐ, उ>औ, ऋ>आ, ऌ>आ।

(१०) **सम्प्रसारण**—यण् (य् व् र् ल्) के स्थान में क्रमशः इक् (इ उ ऋ ऌ) होना सम्प्रसारण कहलाता है।[3] यह 'इको यणचि' सूत्र के विपरीत कार्य करता है। जैसे—वच् + क्त्वा=उक्त्वा।

(११) **टि**—अचों (स्वरों) के मध्य में जो अन्त्य अच् वह है आद्य अवयव जिस समुदाय का उसे टि संज्ञा होती है[4] अर्थात् किसी शब्द के अन्तिम अच् को परवर्ती व्यञ्जन के साथ (यदि हो तो) टि कहते हैं। जैसे—'मनस्' में अन्तिम अच् है 'अ' जो आदि अवयव है 'अस्' इस समुदाय का। अतः 'अस्' की टि संज्ञा होगी।

(ग) अनुबन्ध ('इत्' संज्ञक वर्ण) :

पाणिनि व्याकरण में कई इत् संज्ञक वर्णों का प्रयोग मिलता है। इन 'इत्' संज्ञक वर्णों को अनुबन्ध कहते हैं। संस्कृत व्याकरण के नियमों से अनभिज्ञ पाठक सोचते हैं कि जब किसी वर्ण का लोप (इत् संज्ञा) करना ही है तो उसका आदेश या आगम क्यों किया जाता है ? वास्तव में उनका अपना प्रयोजन है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो गुण, वृद्धि आदि की व्यवस्था नहीं बन सकेगी। उदाहरणार्थ प्रत्ययों के संदर्भ में कुछ अनुबन्धों का प्रभाव निम्न है—

(अ) तिङन्त और कृदन्त में—

(१) **अचो ञ्णिति** (अ० ७-२-११५)—अजन्त शब्द के अन्तिम अच् को वृद्धि होती है यदि बाद में ञित् या णित् प्रत्यय हो। जैसे—भू + घञ्=भावः, कृ + ण्वुल्=कारकः। कुम्भ + कृ + अण्=कुम्भकारः।

(२) **अत उपधायाः** (अ० ७-२-११६)—उपधा के अकार को वृद्धि (आ) होती है यदि बाद में ञित् या णित् प्रत्यय हो। जैसे—यज् + घञ्=यागः, सत्य + वद् + णिनि=सत्यवादी।

१. अदेङ् गुणः। अ० १।१।२। २. वृद्धिरादैच्। अ० १।१।१।
३. इग्यणः सम्प्रसारणम्। अ० १।१।४४।
४. अचोऽन्त्यादि टि। अ० १।१।६३।

(३) **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** (अ० ७-३-८४)—सार्वधातुक[1] तथा आर्धधातुक[2] प्रत्यय परे रहते अन्त्य इक् को गुण होता है। जैसे—जि + शप् + ति=जयति (सार्वधातुक); कृ + तव्यत्=कर्त्तव्यम्। (आर्धधातुक)।

(४) **पुगन्तलघूपधस्य च** (अ०७-३-८६)—पुगन्त (पुक् आगम जिसके अन्त में हो) और लघूपध (जिसकी उपधा लघु हो) के अङ्ग के इक् को गुण होता है सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते। जैसे—लि + पुक् + णिच् + ति=लेपयति, लिख् + घञ्=लेखः। ये गुण और वृद्धि इक् के स्थान में ही होते हैं (इको गुणवृद्धी। अ० १-१-३)।

नोट—क्ङिति च (अ० १-१-५) ङित्, कित् और ङित् प्रत्ययों के परे रहते (सार्वधातुक और आर्धधातुक परे रहने पर भी) इक् को गुण और वृद्धि कार्य नहीं होते। जि + क्नु=जिष्णु, जि + क्त्वा=जित्वा, जागृ + तस् (अपित् होने से तस् को ङित्वत् माना जाता है—सार्वधातुकमपित्। अ० १-२-४)=जागृतः।

(आ) तद्धित में :—

(१) **तद्धितेष्वचामादेः** (अ० ७-२-११७)—ञित् या णित् तद्धित-प्रत्यय परे रहते शब्द के प्रथम स्वर (अच्) को वृद्धि होती है। जैसे—दशरथ + इञ्=दाशरथिः, अश्वपति + अण्=आश्वपतम्।

(२) **कति च** (अ० ७-२-११८)—'कित्' तद्धित प्रत्यय परे रहते शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि हो। जैसे—कुन्ति + ढक् कौन्तेयः, गङ्गा + ढक्=गाङ्गेयः।

१. **सार्वधातुक तथा आर्धधातुक**—तिङ् शित् सार्वधातुकम्। आर्धधातुकं शेषः। (अ० ३।४।११३-११४) धातु से विहित तिङ् (तिपादि १८ प्रत्यय) तथा शित् (शकार इत् संज्ञक हो) प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है। तिङ् और शित् को छोड़कर शेष धातु से विहित तृच्, तुमुन् आदि प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा होती है। लिट् तथा आशिषि लिङ् में तिपादि की भी आर्धधातुक संज्ञा होती है। (लिट् च। लिङाशिषि। अ०३।४।११५-११६)। लुट्, लट्, लुङ् और लङ् लकार में धातु और प्रत्यय के बीच क्रमशः तास्, स्य, सिच् और स्य विकरण आने से इन्हें भी आर्धधातुक माना जाता है। शेष ४ लकारें (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) शुद्ध सार्वधातुक हैं। सार्वधातुक लकारों में ही गणसम्बन्धी शपादि विकरण जुड़ते हैं, आर्धधातुक में नहीं।
२. वही।

परिशिष्ट : ८ : अनुवादार्थ अभ्यास-संग्रह

(क) हिन्दी में अनुवाद कीजिये—

(१) उत्तमः छात्रः सर्वेषु छात्रेषु प्रथमः भवति । प्रकृत्या साधु-स्वभावः सः नेत्राभ्यां हीनान्, श्रोत्रेण बधिरान्, पादेन खञ्जान् वा बालकान् दृष्ट्वा न हसति नाक्षिपति च । सः गर्वेण युक्तो न भवति । सदा तस्य शास्त्रेषु व्यसनम्, यशसि च अभिरुचिः भवति । धनेन हीनोऽपि सः परेषां धनाय वस्तुभ्यो वा न स्पृहयति । ऋणग्रहणं तस्मै न रोचते । अतएव सः कस्मैचित् किमपि न धारयति । मित्रेभ्यः सः कदापि न क्रुध्यति, नैव द्रुह्यति, नापि ईर्ष्यति, असूयति वा । सः कञ्चन बालकं तृणाय न मन्यते । सः आतुरेभ्यः दानं ददाति । 'द्रोहः कष्टाय कल्पते, परोपकारः पुण्याय' इति सः सम्यग् विजानाति । एषां गुणानां हेतोः गुरवः तस्मिन् स्निह्यन्ति ।

(२) सखे कृष्णवल्लभ ! पश्यसि इदम् आश्रमस्थानम् । इयं रमणीया तरुपङ्क्तिरुल्लसति । मनोरमा लता तरुभिरावेष्टिता विलसन्ति । एतानि कुसुमानि प्रस्फुटितानि, येषु मधुलोलुपा मधुकरा गुञ्जन्ति । अग्रतस्तावद् अवलोकयावः । एते परिभ्रमन्ति ब्रह्मचारिणः, आहरन्ति चैते कुशान् पुष्पाणि समिधाश्च । एते हि परिचरन्ति आचार्यान् । आचरन्ति सदाचारान्, न तु स्वेच्छाचारान् । त्यजन्ति अविनयं, न तु विनयम् । परिहरन्ति हिंसां, न तु दयाम् । वदन्ति सत्यं न तु अनृतम् । एते केचिद् ब्रह्मचारिणो वेदान् पठन्ति, केचिच्च अन्यानि शास्त्राणि ।

(३) कश्चित् शृगालः स्वेच्छया नगरस्य समीपे भ्राम्यन् कस्यचिद् रजकस्य गृहं प्राविशत् । तत्र स नीलीभाण्डे अपतत्, येन तस्य वर्णो नीलोऽभवत् । ततो वनं गत्वा शृगालान् आहूय तेनोक्तम्—अहं भगवत्या वनदेवतया स्वहस्तेन अरण्यस्य राज्ये अभिषिक्तः । अस्मिन् अरण्ये मम आज्ञया व्यवहारः कार्यः । शृगालाः तं विशिष्टवर्णम् अवलोक्य प्रणम्य अवदत्—यथा आज्ञापयति देव ! एवं क्रमेण सर्वेषु पशुषु तस्य स्वामित्वम् अभवत् । ततः व्याघ्रसिंहादीन् उत्तमान् सेवकान् प्राप्य नीलवर्णः स्वज्ञातीन् अनादृतवान् । अथ एकदा सन्ध्या-समये सर्वे शृगालाः सहैव शब्दम् अकुर्वन् । ततस्तं शब्दं श्रुत्वा जातेः स्वभावात् नीलवर्णोऽपि शब्दम् अकरोत् । इत्थं तं शृगालं परिज्ञाय व्याघ्रस्तं हतवान् । सत्यमेवोक्तम्—

यः स्वभावो हि यस्यास्ति स नित्यं दुरतिक्रमः ।
श्वा यदि क्रियते राजा स किं नाश्नात्युपानहम् ॥

(४) आश्रमेऽस्मिन् विद्यार्थिनां चित्तवृत्तिः सांसारिकचिन्ताभ्यः पराङ्मुखी सती केवलं ब्रह्मपरा वर्तते । ब्रह्मचारिणः न केवलं शरीरेण मनसापि स्वस्थाः दृश्यन्ते । तेषाम् अध्ययननिष्ठा अनुपमा । स्वल्पेन कालेन वेदविद्यादिभिः सह

शिल्पादीनां शिक्षाग्रहणं सुकरं भवति तेषाम् । सर्वे ज्येष्ठविद्यार्थिनोऽवराणां साहाय्यं कुर्वन्ति । कुलपतिः नित्यमेव विद्यार्थिनां दशसहस्रेषु प्रत्येकम् अनुचिन्तयति । 'कीदृशेन समयेन कस्यचिद् विद्यार्थिनः समुदयो भविष्यति, कस्य वा विद्यार्थिनोऽपायमुखी प्रवृत्तिः कथं निरोद्धव्या' इति स सर्वेषां चरित्रस्य विकासार्थम् उपायं करोति ।

(५) तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी अवदत्—"विक्रमराज्येऽपि कथमेव दुराचाराणाम् उपद्रवः ?" ततः सोऽवदत्—"महात्मन् ! क्व अधुना विक्रमराज्यम् ? वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदशशतकानि व्यतीतानि । क्व अधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजयध्वनिः ? क्व सम्प्रति तीर्थे तीर्थे घण्टानादः ? क्व अद्यापि मठे मठे वेदघोषः ? अद्य हि वेदाः विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते । पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते । क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते । क्वचिद् दाराः अपह्रियन्ते । क्वचिद् धनानि लुण्ठ्यन्ते । क्वचिद् आर्तनादाः । क्वचिद् रुधिरधाराः । क्वचिद् अग्निदाहः । इत्येव श्रूयते अवलोक्यते च परितः ।"

(६) भो मुने ! न युक्तम् अनुष्ठितं भवता यदहं पाषाणेन ताडितः । किं त्वम् अधर्मात् न बिभेषि । 'तत्समर्पय माम् एनां मूषिकाम्, नो चेत् प्रभूतं पापम् अवाप्स्यसि' इति ब्रुवाणं श्येनं प्रोवाच सः शालंकायनो नाम तपोधनः । भो विहंगाधम ! रक्षणीयाः प्राणिनां प्राणाः । दण्डनीयाः दुष्टाः । सम्माननीयाः गुरवः । तत् किम् असंबद्धं प्रजल्पसि । श्येन आह—मुने ! न त्वं सूक्ष्मधर्मं वेत्सि । यथा भवताम् अन्नं तथा अस्माकं मूषिकादयो विहिताः विधिना । तत् स्वाहारकांक्षिणं मां किं दूषयसि । एतत् श्रुत्वा मुनिः विहस्य आह—भो मूर्ख विहंगम ! कृतयुगे धर्मः सः आसीत् । एषः पुनः कलियुगः । अत्र सर्वोऽपि पापात्मा । तत्कर्मकृतं विना पापं न लगति । तत् किं वृथा प्रलपितेन । गच्छ त्वम् ।

(७) परमधुनाऽपि—"देहं वा पातयेयं कार्यं वा साधयेयम् ।" इति कृतप्रतिज्ञोऽसौ शिववीरचरः न निजकार्यान्निवर्त्तते । यस्याध्यक्षः स्वयं परिश्रमी, कथं सः न स्यात् स्वयं परिश्रमी ? यस्य प्रभुः स्वयं साहसी, कथं स न भवेत् स्वयं साहसी ? यस्य स्वामी स्वयम् आपदो न गणयति, कथं स गणयेद् आपदः ? यस्य च महाराजः स्वसङ्कल्पितं निश्चयेन साधयति, कथं स न साधयेत् स्वसङ्कल्पितम् ? अस्त्येष महाराज-शिववीरस्य दयापात्रं चरः, तत् कथम् एष झञ्झाबिभीषिकाभिः बिभीषितः प्रभुकार्यं विगणयेत् ? इतश्च चरस्य एतस्य दृढप्रतिज्ञतां निर्भीकतां सोत्साहतां स्वामिकार्यसाधन-सत्यसङ्कल्पतां च परीक्ष्येव प्रशान्ता वृष्टिः ।

(८) एकदा दक्षिणारण्ये एको वृद्धव्याघ्रः स्नातः सरस्तीरे ब्रूते । भो भो ! पान्थाः ! इदं सुवर्णकङ्कणं गृह्यताम् । ततो लोभाकृष्टेन केनचित्पान्थेन मा[illegible]

चितम् । भाग्येनैतत्सम्भवति किन्त्वस्मिन्नात्मसन्देहे प्रवृत्तिर्न विधेया अथवा सर्वत्रार्थार्जने प्रवृत्तिः ससन्देहैव । प्रकाशं ब्रूते । कुत्र तव कंकणम् ? व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति । ततो यावदसौ तद्वचः प्रतीतो लोभात्सरस्तीरे स्नातुं प्रविशति तावन्महापङ्के निमग्नः पलायितुमक्षमः । तं पङ्कपतितं दृष्ट्वा तेन व्याघ्रेण शनैः शनैरुपगम्य स व्यापादितः ।

(९) चिराय दिल्लीवल्लभस्य छायाम् अध्युषितोऽस्मि । परं वयं कवयः कस्यापि राजत्वं वा वीरत्वं वा आढ्यत्वं वा न अपेक्षामहे । न वा कस्यापि साभिमानभ्रूभङ्गं सहामहे । न तस्य तादृशं भूवलये राज्यं यादृशम् अस्माकं सारस्वतसृष्टौ । तस्य क्रीतदासा अपि न तदीहासमकालमेव बद्धकरसम्पुटाः यथोचितावस्थानाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते यथा अस्माकं पदानि, वाक्यानि, छन्दांसि, अलंकाररीतयः, गुणाः रसाश्च । अस्मद्वीररसकविताम् आकलय्य म्रियमाणोऽपि युद्धे उत्तिष्ठेत् । अस्मत्-शृङ्गाररस-रसायनम् आस्वाद्य जितरागद्वेषो मुनिरप्याकुलीभवेत् । वयं विद्याशून्यान् स्वप्नेऽपि न समुपास्महे ।

(१०) अथ एकदा रजन्यां श्रीशिववीरो गुप्तवेषेण परितः पर्यटन् भुवि विलुण्ठन्तं कञ्चन अश्वम् अद्राक्षीत् । कस्यायं कुतोऽयमिति मनसि विचिन्वन् समीपमागत्य कमपि शूद्रयुवकम् अवालोकयत् । 'कुत आगता यूयम्' इति शिववीरः शनैरप्राक्षीत् । स तु स्वकार्यसंलग्नो अन्यमनस्क एव उदतरत् 'समायातः कोऽपि, आलपितुमिच्छसि चेद् घटिकायुगलम् अतिवाह्य समायास्यसि तदा त्वया सह वार्ताभिरश्वपरिश्रमम् अल्पयिष्यामि !' तदाकर्ण्य अन्तःविहसन्निव शिववीरः पुनरपृच्छत्—'तथा करिष्यावः किन्तु कथय तावत् कुत आगता यूयम् ।' स तु घोटके दत्तदृष्टिरेव सकोपम् अवदत्—कुत आगता यूयम्, कुत आगता यूयम् इति कुतःकारैः स्फोटितौ मे कर्णौ । वयं दिल्लीत आगता दिल्लीतो दिल्लीतः । कथय गजं ददासि घोटकं वा इति ।

(११) कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः मित्रभावमुपगता वसन्ति स्म । तेषां त्रयः शास्त्रपारङ्गताः परन्तु बुद्धिरहिताः । एकस्तु बुद्धिमान् केवलं शास्त्रपराङ्मुखः । अथ तैः एकदा मृतसिंहस्यास्थीनि दृष्टानि । ततश्चैकेन अभिहितम्—'वयं विद्याप्रभावेण अस्थिचयं जीवसहितं कुर्मः । यावत् ते मृतसिंहे जीवत्वं सञ्चारयन्ति तावत् सुबुद्धिना निषिद्धाः । यद्येनं सजीवं करिष्यसि तदा सर्वान् अपि व्यापादयिष्यति । इति तेन अभिहिताः ते अवदन्—धिङ् मूर्ख ! न वयं विद्याया विफलतां कुर्मः । ततस्तेन अभिहितम्—तर्हि प्रतीक्षस्व क्षणं यावदहं वृक्षमारोहामि । तथानुष्ठिते तेन, यावत्तेऽस्थिचयः सजीवः कृतस्तावत्ते त्रयोऽपि सिंहेन व्यापादिताः । सः च वृक्षादवतीर्य गृहं गतः ।

(१२) आलोकयतु तावत् लक्ष्मीमेव प्रथमम् । इह जगति यथा इयम् अनार्या लक्ष्मीः नहि एवं विधम् अपरम् अपरिचितं किञ्चिदस्ति । इयं हि दृढनिष्पन्दीकृतापि नश्यति । परिपालितापि प्रपलायते । न परिचयं रक्षति । नाभिजनम् ईक्षते । न रूपम् आलोकयते । न कुलक्रमम् अनुवर्तते । न शीलं पश्यति । न वैदग्ध्यं गणयति । न सत्यम् अवबुध्यते । गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति । सरस्वतीपरिगृहीतं जनम् ईर्ष्ययेव नालिङ्गति । गुणवन्तम् अपवित्रमिव न स्पृशति । शूरं कण्टकमिव परिहरति । दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति । मनस्विनम् उन्मत्तमिव उपहसति । यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म उद्वमति ।

(१३) द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, स्वदारा-परित्यागः अभ्यसनिता इति, देवा पानं महासत्त्वतेति दोषान् अपि गुणपक्षम् अध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैः धूर्तैः प्रतार्यमाणा राजानः सर्वजनस्योपहास्यताम् उपयान्ति । ते दृष्टिपातमपि उपकारपक्षे स्थापयन्ति । आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते । स्पर्शमपि पावनम् आकलयन्ति । न देवताभ्यः प्रणमन्ति । नाभिवादयन्ति अभिवादनार्हान् । उपहसन्ति विद्वज्जनम् । जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम् । सर्वदा तम् अभिनन्दन्ति, योऽहर्निशम् अनवरतम् अधिदैवतमिव गिरतान्यकर्तव्यः स्तौति ।

(१४) कस्मिंश्चित्कूपे गङ्गदत्तो नाम मण्डूकराजः प्रतिवसति स्म । तेन चिन्तितम्—यत्कथं दायादानां मया प्रत्यपकारः कर्तव्यः । एकदा स कृष्णसर्पम् अपश्यत् । तं आह सः—भो ! सत्यमेतत्, यत् स्वभाववैरी त्वमस्माकम्, परं परपरिभवात्प्राप्तोऽहं ते सकाशम् । तच्छ्रुत्वा सर्पो व्यचिन्तयत् । अहं कदाचित्कथंचिन्मूषकमेकं प्राप्नोमि तत्सुखावहो जीवनोपायोऽयमनेन कुलाङ्गारेण मे दर्शितः । तद् गत्वा तान् मण्डूकान् भक्षयामीति विचिन्त्य तमालिङ्ग्य च तेनैव सह प्रस्थितः । अथ क्रमेण निःशेषितास्ते रिपवः । पश्चात् तेन मित्रभावं विस्मृत्य तस्य सुतोऽपि भक्षितः ।

(१५) श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः, युक्ता अयुक्ताः, अलूक्षा, धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवं चैतदुपास्यम् । भोः स्नातकाः । युष्माभिः सदा सच्छीले समुदाचारे च वर्तितव्यम् ।

(१६) मनुष्याणां हिंसावृत्तिस्तु निरवधिः । पशुहत्या तु तेषामाक्रीडनम् । केवलं विक्लान्तचित्तविनोदाय महारण्यमुपगत्य ते यथेच्छं निर्दयं च पशूनां घ्नन्ति ।

मनुष्या यथा मृगयामादिश्य हिंसावृत्तेश्चरितार्थतां संपादयन्ति हिंस्रस्वभावा अपि श्वापदाः किं कदाचित् मनुष्यालयमाविश्य तादृशमतिदारुणं कर्म समनुतिष्ठन्ति ? ते स्वामीष्टदेवताप्रीतः सर्वथा निरपराधान् रोरुद्यमानानासन्नमृत्युशङ्कावेपमानकलेवरान् पशून् बलादुपहृत्य स्वहृदयस्यातिकर्कशनृशंसतायाः परिचयं ददति । वस्तुतः तेषां पशूपहारव्यापारमवलोक्य जडानामप्यस्माकं विदीर्यते खलु हृदयम् ।

(१७) मानवा नाम सर्वासु सृष्टिधारासु निकृष्टतरा सृष्टिः । समन्ताद् अभिनवोत्तरविलक्षणसृष्टिम् उत्पादयता भगवता जवत्सवित्रा यादृग् बुद्धिप्रकर्षः सृष्टिनैपुण्यं च प्रदर्शितम्, मानवसर्गं विदधता पुनरनेन तत्सर्वमेकपद एव अपहारितम् । मानवा इव कपटव्यवहारकुशलाः हिंसानिरता जीवा न विद्यन्ते । प्रशान्ते च जठारानले स्वोदरपूर्तै नहि हिंस्रस्वभावाः सिंहादयः पशवः करतलगतानपि हरिणशशकादीन् उपघ्नन्ति । प्रत्युत मुनिव्रता इव शान्तभावमापन्ना विश्राम्यन्ति । न केवलमेते पशुभ्यो निकृष्टास्तृणेभ्योऽपि निस्सारा एव । तृणानि खलु वात्यया सह स्वशक्तितः सुचिरम् अभियुध्य वीरपुरुषा इव शक्तिक्षये क्षितितले निपतन्ति, न तु कदाचित् कापुरुषा इव स्वस्थानमपहाय द्रुतं प्रपलायन्ते ।

(१८) यौवनं सौन्दर्यम् ऐश्वर्यं महासत्वता च प्रत्येकमपि प्रभवति जनानाम् अनर्थाय । चतुर्णां पुनरेतेषामेकत्र सन्निपातः सर्वानर्थानां सद्म इत्यर्थेऽस्मिन् कः संशयः ? मानवानां विमलमपि मनः यौवनलक्ष्मीपादपल्लवन्यासेनैव समुद्बहति रागम् । वित्तमदेन नष्टविवेको जनः अपथदर्शिनं विटलोकमेव विदग्धमतिस्निग्धं च विभाव्य स्वकलत्रं स्ववित्तं च तदधीनं विदधाति, विदधाति च सुजनसमागमद्वारम् । ते मनःप्रसादाय मधुपानमिति, शौर्यस्फूर्तये चौर्यमिति नानाविधमुपदिश्य स्ववश्यान् कल्पयन्ति । एवंविधदुःशिक्षाबलेन स्वचापलेन च राजसूनवः प्रायेण प्रागेवाविनयं पश्चात्तारुण्यम्, पुरस्तादेव जाड्यं तदनन्तरमभिषेकम् पूर्वमेव अहंकारं तदनु सिंहासनाध्यासनं च भजन्ते ।

(१९) तथा प्रारभमाणे च राजनि राजनीतिकुशलाः कतिचन सचिवाः समेत्य सप्रणयं व्यजिज्ञपन्-देव ! दैवेन अविदितं किञ्चिदस्तीति न प्रस्तुमहे कथयितुम् । तथापि देवपादयोः असाधारणी भक्तिरस्मान्मुखरयति । तदुचितमनुचितं वा प्रणयपरवशैरस्माभिरभिधीयमानम् आकर्णयितुम् अर्हति स्वामी । देव ! स्वहृदयमपि राज्ञा न विस्रम्भणीयम्, किमुतापरे । विस्रम्भेण मन्त्रिषु निवेशित-राज्यभारा राजानस्तैरेव व्यापादिता भवन्तीति । अपि च परिहृतनिखिलेतरव्यापारोऽयं स्त्रियाम् अत्यासंगः सर्वथा अनर्थानुबन्धी । यतो रावणः प्रणयभरेण जनकदुहितरि दशरथतनयेन यशःशेषतामनीयत ।

(२०) भवादृशा एव भवन्ति भाजनानि उपदेशानाम् । अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव विशन्ति सुखेन उपदेशगुणाः । गुरुवचनम् अमलमपि अभव्यस्य शूलमुद्भावयति । इतरस्य तु सकलं दोषजातं हरति । अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य हे काल उपदेशस्य । कुसुमशर-शरप्रहारजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टम् । सुदुपदेशश्च नाम पुरुषाणाम् अखिलमलप्रक्षालनक्षमम् अजलं स्नानम् । विशेषेण राज्ञाम् । विरला हि तेषामुपदेष्टारः । प्रतिशब्दक इव राजवचनम् अनुगच्छति जनो भयात् । उद्दामदर्पात् ते उपदिश्यमानमपि न शृण्वन्ति । शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेन अवधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून् ।

(ख) संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

(१) गङ्गा भारतवासियों की पूज्य एवं पवित्र नदी है । इसमें लोग प्रतिदिन श्रद्धा और भक्ति के साथ स्नान करते हैं । यह 'सुरसरित्' भी कहलाती है । इसका उद्गम-स्थान गंगोत्तरी है । वहाँ से निकलकर यह हरिद्वार की समतल भूमि पर बहती हुई पूर्व दिशा की ओर बहती है । इसका जल अत्यन्त पवित्र, निर्मल और स्वास्थ्यवर्धक है । बहुत समय तक इसका जल सुरक्षित रखने पर भी विकृत नहीं होता है । हरिद्वार, प्रयाग और वाराणसी उसके प्रमुख तीर्थस्थल हैं ।

(२) भारतवर्ष में नगरों की अपेक्षा ग्रामों की संख्या अधिक है । जो गाँवों में रहते हैं वे स्वस्थ, परिश्रमी और सेवाभावी होते हैं । गाँवों में जिस प्रकार की शुद्ध वायु और सूर्य का प्रकाश उपलब्ध होता है वैसा नगरों में कदापि संभव नहीं है । प्राचीन काल में ग्राम्य जीवन आदर्श था परन्तु आज का ग्राम्य जीवन अशिक्षा, कलह और अन्धविश्वास का घर हो गया है । अतः भारतदेश के अधिकारियों से निवेदन है कि ग्राम्य सुधार की ओर ध्यान देवें ।

(३) हमारा देश स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है । स्वर्ग भोगभूमि है और भारत है 'कर्मभूमि' । संसार के इतिहास में आध्यात्मिकता की धारा प्रवाहित करने का श्रेय भारतीय ऋषियों को ही है । उन्होंने स्वार्थ और परमार्थ का सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत कर विश्व के समक्ष एक सुन्दर आदर्श उपस्थित किया है । हम भारतवासियों का कर्तव्य है कि इस आदर्श को चिरस्थायी बनाये रखें ।

(४) व्याकरण-शास्त्र का जितना विस्तृत और सूक्ष्म अध्ययन संस्कृत भाषा में हुआ है, उतना अन्य किसी भी भाषा में नहीं । व्याकरण को वेद का मुख बतलाया गया है । प्रातिशाख्यों की रचना के बाद यास्क ने ही सर्वप्रथम शब्दों के चतुर्विध विभाजन (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) को प्रतिपादित किया है तथा यह सिद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया कि समस्त शब्दों का आधार 'धातु-समूह' ही है । इन्हीं सिद्धान्तों पर पाणिनि की अष्टाध्यायी आधृत है ।

(५) रामायण संस्कृत-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि हैं। इसमें मर्यादापुरुषोत्तम राम के जीवन चरित्र का उज्ज्वल वर्णन है। संस्कृत का सर्वप्रथम काव्य-ग्रन्थ होने से इसे आदिकाव्य कहा जाता है। इसमें भारतीय संस्कृति का सुन्दरतम रूप वर्णित है। काव्य की दृष्टि से यह बहुत सुन्दर काव्य है। इसकी भाषा प्रारम्भ से अन्त तक परिष्कृत और प्रसाद-गुण से युक्त है। कविता सरल, सरस और मनोहर है। अलंकारों का सुन्दर सम्मिश्रण है। करुणरस का प्राधान्य है। परकालीन कवियों ने इसका आश्रय लेकर काव्य और नाटक लिखे हैं।

(६) एक नगर में तपोदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने बाल्यावस्था में पिता के बहुत समझाने पर भी विद्या नहीं सीखी। कालान्तर में लोगों से अपनी निन्दा सुनकर पश्चात्ताप करने लगा और विद्या की प्राप्ति के लिए गङ्गातट पर तपस्या करने लगा। एक दिन ब्राह्मण भेषधारी इन्द्र को गङ्गा में पुल बनाने हेतु पानी में बालू डालते देखकर तपोदत्त ने कहा—'अरे मूर्ख ! बालू से गङ्गा जी में पुल नहीं बन सकता है, तेरा यह प्रयत्न सर्वथा निष्फल है।' तब इन्द्र ने हँसकर कहा—'जो तुम यह जानते हो तो फिर बिना पढ़े केवल व्रत-उपवासादि करके विद्योपार्जन करने का उद्योग क्यों कर रहे हो ? अध्ययन के बिना तुम्हारा भी यह यत्न बिना भित्ति के चित्र के समान निष्फल है'।

(७) निषध देश का राजा नल एक बार वन-विहार को निकला। नगर से कुछ दूर निकल जाने पर एक उपवन में उसने एक मनोहर तालाब देखा। उसमें खूब कमल खिले हुए थे। वहाँ उसने एक बहुत ही मनोहर हंस देखा। उस पर मुग्ध होकर राजा ने अपने तरकस से एक सम्मोहन बाण उस पर चलाने के लिए निकाला। धनुष पर बाण रखते ही उसने एक अलक्षित वाणी सुनी। उसका भाव यह था कि—हे राजन् ! इस पर बाण मत छोड़ो। यह तेरा अभीष्ट सिद्ध करेगा।

(८) वेद भारतीय साहित्य के सर्व-प्राचीन ग्रन्थ हैं। इनका निर्माण कब हुआ ? इसका सही-सही निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर है। कुछ भारतीय मनीषियों की मान्यता के अनुसार वेद अनादि और अपौरुषेय हैं। इनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि ये विश्व-साहित्य के आदि ग्रन्थ हैं और संसार में ज्ञान का अभ्युदय वेदों के अभ्युदय के साथ ही हुआ है। भाषा, इतिहास, संस्कृति, साहित्य सभी दृष्टियों से वेद महत्त्वपूर्ण और अवर्णनीय हैं।

(९) महाकवि बाण भट्ट संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गद्य काव्यकार हैं। सम्राट् हर्षवर्धन के सभापण्डित होने के कारण इनका समय सप्तम शताब्दी का

पूर्वार्द्ध माना जाता है। इन्होंने दो गद्य ग्रन्थ लिखे हैं :—'हर्षचरित' और 'कादम्बरी'। ये दोनों ही ग्रन्थ अनुपम हैं। हर्षचरित एक ऐतिहासिक गद्य-काव्य है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से इसकी कई विशेषताएँ हैं। कादम्बरी संस्कृत गद्य-काव्य की अनुपम कृति है। कवि की प्रतिभा का चरम उत्कर्ष इसमें दिखलाई देता है। बाण की वर्णन शैली, भाषा-सौष्ठव, अलंकार-योजना, प्रकृति-चित्रण, रस-परिपाक आदि सभी अद्भुत हैं जो सहृदयों को मोह लेते हैं।

(१०) परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रकृति के इस नियम को जड़ हो या चेतन सभी स्वीकार करते हैं। जो प्रदेश पहले निर्जन थे वे आज सुन्दर महलों से सुशोभित हैं। जो कल राजा थे वे आज भिखारी हैं और जो कल भिखारी थे वे आज धनवान् हैं। परिवर्तन की इस महिमा से ही क्षणमात्र में सुख दुःख का और दुःख सुख का स्थान ग्रहण कर लेता है। सुख और दुःख दोनों चक्र के समान बदलते रहते हैं। एकान्ततः सुख अथवा दुःख कभी नहीं रहते। अतः सुख के उपस्थित होने पर न तो अत्यन्त हर्षित होना चाहिये और न दुःख के उपस्थित होने पर दुःखी। सदा सुख और दुःख में समता धारण करना चाहिए।

(११) सृष्टि के प्रारम्भ से ही स्त्रियों का महत्त्व स्वीकार किया गया है। वैदिक युग में गार्गी आदि स्त्रियों के सम्मान का विधान मिलता है। पौराणिक युग में भी उनको उचित सम्मान प्रदान किया गया है। मध्यकाल में नारियों को केवल भोग का साधन मानकर उनके साथ उचित न्याय नहीं किया गया। वर्तमान काल में स्त्रियाँ पुनः अपने गौरव को प्राप्त करके पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं। स्त्रियाँ राष्ट्र के भावी नागरिकों की जननी हैं। बालकों के चरित्र-निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण योग होता है। अतः उनकी उचित शिक्षा एवं सुरक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

(१२) मनुष्य समाज का एक अङ्ग है। समाज की उन्नति से ही उसकी उन्नति होती है और समाज की अवनति से उसकी भी अवनति होती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सदा समाज की उन्नति के लिए प्रयत्न करे। समाजसेवा का भाव बाल्यकाल से ही जागृत करना चाहिए। सच्चा समाज सेवक विनम्र होता है। वह दूसरों की सहायता और सेवा करके प्रसन्न होता है। उसका लक्ष्य सदा यह रहता है कि समाज के सभी व्यक्ति सदा सुखी, स्वस्थ और प्रसन्न रहें। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन सबने समाजसेवा का व्रत मुख्यरूप से लिया था, अतएव वे समाज को तथा स्वयं को उन्नत कर सके।

(१३) संसार में अनेक भाषायें प्रचलित हैं। उनमें संस्कृत भाषा अति प्राचीन तथा भारतीय भाषाओं की जननी है। इसका व्याकरण सुव्यवस्थित, पूर्ण एवं

वैज्ञानिक है। विदेशी विद्वान् भी इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। हमारा प्राचीन इतिहास, धर्म, साहित्य और संस्कृति इसी भाषा में सुरक्षित हैं। भास, कालिदास, भवभूति, बाण आदि महाकवियों ने इसी भाषा में अपना अमूल्य साहित्य लिखा है। यद्यपि यह भाषा देखने में कठिन है परन्तु अभ्यास से सरल हो सकती है। यह ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो समस्त देश को एकता के सूत्र में बाँध सकती है। यह देश की एक अनुपम और दुर्लभ निधि है। अतः इसकी रक्षा के लिए तथा इसके प्रचार के लिए सतत प्रयत्न आवश्यक है।

(१४) गोखले सच्चे देश भक्त थे। वे भारतवर्ष से बहुत प्रेम करते थे। उनका जीवन अतिसरल और स्वार्थ से रहित था। वे न तो धन की परवाह करते थे और न ख्याति की। अपने समय में उन्होंने वक्ता के रूप में भी ख्याति प्राप्त की थी। वे केवल शब्दों में विश्वास नहीं करते थे अपितु जो कहते थे वही करते भी थे। उनकी निःस्वार्थ देशसेवा अनुकरणीय है।

(१५) धर्मसाधना के लिए तथा प्रसन्नता के लिए स्वस्थ रहना आवश्यक है। अच्छा स्वास्थ्य तभी संभव है जब हम शारीरिक रूप से तथा मानसिक रूप से स्वस्थ हों। शारीरिक स्वस्थता के लिए पौष्टिक और संतुलित भोजन के साथ स्वच्छता और व्यायाम भी आवश्यक है। हवा और पानी की शुद्धता के साथ निवास स्थान भी साफ सुथरा होना चाहिए। मानसिक स्वस्थता के लिए सद्विचार और सदाचार के साथ तनावमुक्त रहना आवश्यक है। जहाँ स्वास्थ्य है वहीं सुख और शान्ति है।

(१६) झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का जन्म वाराणसी में हुआ था। इसका बाल्यकाल का नाम था 'मनू'। इसके पति थे झाँसी के राजा गंगाधर राव। पुत्र और पति की मृत्यु के बाद उसने झाँसी का शासन संभाल लिया। धार्मिक क्रियाओं के साथ उसने युद्धाभ्यास भी किया। पश्चात् समय आने पर देशभक्ति से आकृष्ट होकर उसने अंग्रेजों के साथ युद्ध किया। स्वतन्त्रता-संग्राम में उसकी वीरता की शत्रुओं ने भी प्रशंसा की। भारतीय नारी की इस वीरता से देश का मस्तक सदा ऊँचा रहेगा।

(१७) 'अहिंसा' सब धर्मों का सार है। अहिंसा के बिना जीवन की स्थिरता संभव नहीं है। यदि हम चाहते हैं कि दूसरे लोग हमें कष्ट न दें, हमारा अपकार न करें तो हमें भी ऐसा ही आचरण दूसरों के साथ करना चाहिए। अहिंसा के अभाव में सर्वत्र अराजकता का प्रसार हो जायेगा। विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व तभी संभव है जब सर्वत्र अहिंसा का साम्राज्य हो। हिंसा का अर्थ केवल प्राणों का विनाश करना नहीं है अपितु दूसरों के दिल को किसी भी प्रकार कष्ट पहुँचाना भी हिंसा है। अहिंसा का अर्थ है सबसे प्रेमभाव रखना।

(१८) मर्यादा पुरुषोत्तम राम राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनकी पत्नी का नाम था सीता। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उनके छोटे भाई थे। उनमें परस्पर प्रगाढ प्रेमभाव था। पिता के वचन की रक्षा के निमित्त उन्होंने चौदह वर्ष का वनवास सहर्ष स्वीकार किया। सीता और लक्ष्मण ने राम का अनुगमन किया। पश्चात् सीता का अपहरण करने वाले लंका के राजा रावण का वध करके तथा विभीषण को वहाँ का राजा बना के राम अयोध्या के राजा बने। उनके राज्य में सभी लोग प्रसन्न थे। अतः आज रामराज्य को याद किया जाता है।

(१९) विद्यार्थी ही देश के भावी कर्णधार हैं। यदि वे अपने कर्तव्य का सही ढङ्ग से पालन नहीं करेंगे तो न देश की, न समाज की और न स्वयं की उन्नति होगी। वे ही आगे चलकर अध्यापक, न्यायाधीश, शासक आदि विविध पदों को संभालेंगे। विद्यार्थियों के निम्न सात कर्त्तव्य ग्रन्थों में बतलाये गए हैं—विद्या का उपार्जन, समय का सदुपयोग, अनुशासन, गुरुभक्ति, शारीरिक शक्ति-संचय, नियमितता और सदाचार। अतः विद्यार्थियों को अपना ध्यान इन कर्तव्यों की ओर ही लगाना चाहिए, अन्यत्र नहीं।

(२०) याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा—'मैं संन्यास लेना चाहता हूँ और तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ'। मैत्रेयी ने कहा—'यदि यह समस्त पृथ्वी धन से भर जाये तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी'? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—'नहीं, धन से अमरत्व की कोई आशा नहीं'। तब मैत्रेयी ने कहा—'जिसको लेकर मैं अमर नहीं हो सकती उसका मैं क्या करूँगी? जिससे अमरत्व प्राप्त हो ऐसा ज्ञान मुझे दीजिए'। याज्ञवल्क्य ने कहा—'पुत्र, धन, पशु आदि प्राणियों के हित के लिए नहीं होते हैं। इसलिए आत्मा को देखो, सुनो और उसीका चिन्तन करो। आत्मा के देखने, सुनने और चिन्तन मनन करने से सब कुछ ज्ञात हो जाता है'।

●

परिशिष्ट : ९ : निबन्ध-संग्रह

(२१) पुस्तकालयः

यत्र विविधानां पुस्तकानां संग्रहो (आलयः) भवति सः 'पुस्तकालयः' ग्रन्थालयो वा कथ्यते। वर्तमानयुगे पुस्तकालयः शिक्षायाः अभिन्नमङ्गमस्ति। शिक्षकाः यत् कार्यं कुर्वन्ति पुस्तकालयोऽपि तदेव प्रकारान्तरेण करोति। उभयतोऽपि ज्ञानसंवर्धनं भवति। अतएव प्रत्येकशिक्षासंस्थायां पुस्तकालयः लघुः महान् वा अवश्यमेव दृश्यते। वस्तुतः अद्य पुस्तकालयः शिक्षितसमाजस्य जीवनाधारः।

पुस्तकालयमहत्त्वादेव एकस्मिन्नपि नगरे बहवः पुस्तकालयाः संस्थाप्यन्ते यत्र जनाः पुस्तकानि अध्येतुं समाचारपत्राणि च वाचयितुं यथावकाशं प्रतिदिनं गच्छन्ति ।

अस्मिन् युगे अनुसन्धानादिकार्यं महत्त्वपूर्णमस्ति । तच्च सुव्यवस्थितं, समृद्धं पुस्तकालयं विना न सम्भवति । प्रत्येकं जनः विविधपुस्तकानि संग्रहीतुं न शक्नोति तस्मात् पुस्तकालयं विहाय किमप्यन्यत्साधनं नास्ति येन जानानां ज्ञानपिपासा शाम्येत । किञ्च, येषां पार्श्वे पर्याप्तं धनं नास्ति ते पुस्तकालयं गत्वैव पाठ्य-पुस्तकानि पुस्तकान्तराणि च यथारुचि पठन्ति । पुस्तकालयेषु समाचारपत्रद्वारा देशविदेशयोः दैनिकवृत्तान्ताः ज्ञायन्ते ।

पुस्तकालयाः बहुविधाः भवन्ति । यथा–केचन पुस्तकालयाः विश्वजनीनाः भवन्ति; अपरे तु संस्था-संबद्धाः निर्धारितसदस्यानां कृते । केषुचित् केवलमेकभाषा-पुस्तकानि; केषुचिद् अनेकभाषाग्रन्थाः भवन्ति । केषुचित् तत्तद्विषयस्य । यथा—विज्ञानस्य, वाणिज्यस्य, कलासाहित्यस्य, दर्शनस्य, मनोरञ्जकोपन्यासादीनां वा । केषुचित् प्रायः सर्वविषयाणां । यथा–विश्वविद्यालयीयेषु पुस्तकालयेषु ।

पुस्तकालयस्य सञ्चालनाय एकः पुस्तकालयाध्यक्षो भवति यः प्रतिदिनं यथा-समयमागत्य पुस्तकानाम् आदानप्रदानयोः व्यवस्थां करोति । तस्य सहायतार्थम् अन्येऽपि कर्मचारिणः आवश्यकतानुसारं भवन्ति । विभिन्नपञ्जिकासु तत्तत् विषयाणां पुस्तकानि उल्लिख्यन्ते । पञ्जिकान्तरेषु पुस्तकवितरणस्य प्रत्यावर्तनस्य च विवरणं लिख्यते । नियमानुसारेण पञ्जिकानां संख्या हीनाधिका भवति । ये जनाः पुस्तकालयस्य सदस्याः भवन्ति ते कानिचित् पुस्तकानि अध्यक्षाज्ञया स्वगृहमपि नयन्ति । यदि ते यथासमयं न प्रत्यावर्तयन्ति तदा ते नियमानुसारं दण्डभाजः भवन्ति । क्वचित्-क्वचित् पुस्तकालये दुर्व्यवस्थाऽपि दृश्यते येन पुस्तकालयस्य समुचितः सदुपयोगः लाभो वा न सञ्जायते । यदि इयं दुर्व्यवस्था दूरीकृता स्यात्तर्हि महान् जनलाभो भवेत् । अद्य विश्वविद्यालयेषु पुस्तकालयविज्ञानस्य अध्यापनं भवति ।

अन्ततश्च निर्विवादमेतत् यत् पुस्तकालयस्य स्थापना सर्वत्र करणीया येन जनानाम् अज्ञानान्धकारः अपसारितः स्यात् देशविकासोऽपि संभवेत् ।

(२२) दीपावली (दीपमाला)

भारतवर्षे रक्षाबन्धनम् (श्रावणी), विजयदशमी (दशहरा), दीपावली, होलिका चैते चत्वारः हिन्दूधर्मावलम्बिनां प्रमुखाः महोत्सवाः सन्ति । यद्यपि एते सर्वेऽपि सर्वैः वर्णैः समानमेव प्रतिवर्षं समाद्रियन्ते तथापि एषां चतुर्णां वर्णानां

कृते यथाक्रमं पृथक्-पृथक् महत्त्वमस्ति । तद्यथा श्रावणी ब्राह्मणानाम्, विजयदशमी क्षत्रियाणाम्, दीपावली वैश्यानाम्, होलिका शूद्राणाम् प्रधानपर्वतया मन्यते । तेषु दीपावलीसमारोहः कार्त्तिकमासस्य कृष्णपक्षे अमावस्यायां सम्पाद्यते ।

अस्मिन् पर्वणि निशामुखे सर्वत्र पंक्तिबद्धाः दीपाः प्रज्वाल्यन्ते । अतः अस्यो-त्सवस्य नाम 'दीपावली' 'दीपमाला' वा वर्तते । साम्प्रतं पंक्तिबद्धेन विद्युत्प्रकाशे-नापि प्रकाशः क्रियते । उत्सवादस्माद् बहुदिनानि पूर्वमेव जनाः स्वस्वगृहान् सम्मार्ज्य सुधादिना परिष्कुर्वन्ति तथा नानाविधैः रङ्गैः भूषयन्ति । केचन तोरण-द्वाराणि पुष्पमालादिभिः अलङ्कुर्वन्ति च । तस्माद् गृहाः नवा इव प्रतीयन्ते । नगरेषु, ग्रामेषु, गृहेषु, मन्दिरेषु, आपणेषु सर्वत्र दीपा एव दृष्टिपथमायान्ति । अपि च चन्द्रिकारहितायामपि अमावस्यायां गगनमण्डलं पूर्णिमावत् प्रतिभाति । नगरेषु विविधवर्णविद्युन्मालामण्डिताः गृहाः कस्य नाम नाकर्षन्ति चेतः । दृश्यमिदं विलोकयितुं जनाः परितः भ्रमन्ति येन मार्गेषु महान् जनसम्मर्दो जायते । अस्मिन् महोत्सवे निशीथे लक्ष्मीपूजनमपि क्रियते । व्यापारिणः लक्ष्मीं विशेषरूपेण आराध्य आयव्ययपञ्जिकां पूजयन्ति वार्षिकमायव्ययादिकमपि संकलयन्ति च । अनेके जनाः द्यूतक्रीडां मद्यपानं चापि कुर्वन्ति । सर्वे नराः परस्परं मिष्टान्नादिकस्यादानप्रदानं कुर्वन्तः प्रमुदिताः दृश्यन्ते । विप्रेभ्यः याचकेभ्यश्च मिष्टान्नमिश्रितं लाजादिकं प्रदीयते ।

प्रायः सर्वोऽपि उत्सवः नूनं यया कयाचित् पूर्वघटनया संबद्धो भवति । जनैः अस्योत्सवस्यापि अनेकानि कारणानि कल्प्यन्ते । केचित् कथयन्ति यदस्मिन्नेव दिने श्रीरामचन्द्रः लंकां विजित्य अयोध्यां प्रत्यावर्तत । अपरे वदन्ति यदस्मिन्नेव दिने जैनमतप्रवर्तकस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणमभवत् । अन्ये मन्यन्ते यद-स्मिन्नेव दिने भगवान् विष्णुः वामनरूपं धृत्वा बलिना बन्दीकृतां लक्ष्मीम् अमुञ्चत् । एतेषु यदपि भवेत् कारणमस्य महोत्सवस्य निर्विवादमेतद् यदयं परमरमणीयः वैज्ञानिकदृष्ट्या महत्त्वपूर्णश्च । यदस्माद् दरिद्रतायाः निस्सारणम्, रोगकीटाणूनां विनाशः, स्वच्छतायाः सम्पादनम्, समाजे नवीनतायाः आविर्भावः, अन्येऽपि बहवो लाभाः भवन्ति । इदानीं केचन दोषाः अपि दृष्टिपथमायान्ति । यथा—द्यूतक्रीडा, मद्यपानम्, विस्फोटकपदार्थप्रयोगः अपव्ययश्च । यदि एतेषां दोषाणां परित्यागः भवेत्तर्हि अस्योत्सवस्य मानवजीवने अवर्णनीयं महत्त्वं जायेत ।

(२३-२८) षड्-ऋतवः

भारतदेशोऽयं नानारङ्गोपरञ्जितानां षण्णाम् ऋतूनां रंगभूमिः । [illegible] अयमेव देशः यत्र षड्ऋतवः चक्रनेमिक्रमेण यथासमयं प्रतिवर्षं [illegible] च । यद्यपि ऋतूनां प्रवेशः नक्षत्रानुविधायी तथापि साधारणतया [illegible]

मासद्वयं मन्यते। तत्र संवत्सरानुसारेण प्रथमं वसन्तः ऋतुः समागच्छति। ततः परं क्रमेण ग्रीष्मः, वर्षाः, शरद्, हेमन्तः, शिशिरश्च आयान्ति। अत्र संक्षेपेण तेषां दिग्दर्शनं क्रियते—

१. वसन्तः—अयम् ऋतुः साधारणतया चैत्र-वैशाखमासयोः मन्यते। शिशिर-ग्रीष्मर्तोर्मध्ये स्थितत्वाद् अस्मिन् ऋतौ नाधिकं शैत्यं न वा अधिकोष्णता बाधते। मन्दशीतलसुरभिः दक्षिणपवनः प्रवहति। यथोक्तम्—

इह मधुपबधूनां पीतमल्लीमधूनां, विलसति कमनीयः काकलीसम्प्रदायः।
इह नटति सलीलं मञ्जरीवञ्जुलस्य, प्रतिपदमुपदिष्टा दक्षिणेनानिलेन॥

सर्वे शुष्कवृक्षाः सर्वाः पत्रहीनाः लताश्च नूतनपत्र-पुष्पफलादिभिः समलंकृताः भवन्ति। आम्रेषु नवकिसलयाः मञ्जर्यश्च समुद्भवन्ति। सरोवरेषु कमलानि, स्थलेषु च वकुलाशोकप्रभृतितरूणां लतानां च नानावर्णानि पुष्पाणि विकसन्ति। प्रतिवनं सहकारविटपेषु कोकिलाः मधुरं कूजन्ति, भ्रमराश्च सामोदं पुष्पाणां रसमास्वाद्य मञ्जु गुञ्जन्ति। यथोक्तम् कालिदासेन—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्॥

अपि च—

नवपलाश-पलाशवनं पुरः स्फुटपराग-परागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्त-लतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥

जडेषु चेतनेषु च सर्वत्र नवनवोल्लासाः, अपूर्वो मधुरिमा मादकता च अनुभूयन्ते। कुसुमायुधप्रियदूतकः वसन्तकालोऽयं मधुमयः मधुमासोऽपि कथ्यते, यतः पुष्पावचूलोऽयं समयः। यथोक्तं हरविजयकाव्ये—

अलिव्रजस्यानशनव्रतान्तः मानोग्रशापावधिरङ्गनानाम्।
अथैकदानाङ्गमदानुकूलः पुष्पावचूलः समयो जजृम्भे॥

किं बहुना, प्रकृतौ सर्वत्र अनुपमं सौन्दर्यं समुल्लसति। प्रकृतिः वसन्तर्तोः राज्ञी, पृथिवी च इन्द्रपुरसदृशी राजधानी। प्रतीयते यत् प्रकृतिराज्ञी चित्रविचित्रैः विविधैः पत्रपुष्पादिमयैः अलंकरणैः विभूषिता वसन्तराजम् आवर्जयितुं यतते। एभिरेव हेतुभिः वसन्तः 'ऋतुराजः' व्यपदिश्यते।

अस्य सर्वातिशायि सौन्दर्यं नवीनैः प्राचीनैः सर्वैरपि कविभिः सविस्तरं वर्णितम्। वैज्ञानिकदृष्ट्या अपि अयम् ऋतुः महत्त्वपूर्णः, शरीराङ्गपोषकः, आमोदकरः, स्फूर्तिदायकः, उत्साहवर्धकश्च।

२. ग्रीष्मः—ग्रीष्मप्रधानदेशोऽयम्। यथा इंग्लैण्डदेशे प्रतिवर्षम् अष्ट-नवमास-पर्यन्तं शैत्यस्योद्रेकः तथैव भारतदेशस्य अधिकांशप्रदेशेषु सप्ताष्टमासपर्यन्तम्

उष्णतायाः उत्कर्षः। अस्य ऋतोः द्विमासपरिमितता उष्णताधिक्यतन्त्रा। यतो अनयोः मासयोः (ज्येष्ठाषाढयोः) सूर्यः प्रचण्डांशुभिः अत्यधिकं तपति, येन कोपाकुलस्य नृपस्य मुखमिव उच्चैर्गगनं दुष्प्रेक्ष्यम्, गृहाद् बहिर्निर्गमनं पञ्चाग्नितप इव महत्कष्टकरं भवति। उष्णः तीव्रश्च विरहिणां निःश्वास इव दुःसहः वायुः प्रवहति। वृक्ष-लता-सरित्-प्रभृतयः प्रोषितानां विरहातुराः प्रमदाः इव प्रतिदिनं शुष्यन्ति। जलस्थाने प्रायः मृगमरीचिकाः प्रतिभान्ति किन्तु इदानीमपि समुद्रः प्रभूतजलपूर्ण एव गर्जति। यथोक्तम्—"शोषितसरसि निदाघे नितरामेवोद्धतः सिन्धुः।" कृपणस्य धनतृष्णेव पिपासा अत्यधिकं वर्धते। स्नानं प्रीतिजनकं भवति। आतपबहुलापि छाया तरुपादमूलं न त्यजति। तरुछायासु विश्रामः सुखकरः भवति। यथोक्तं कालिदासेन—

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्ग-सुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥

अपि च—

तप्ता मही विरहिणामिव चित्तवृत्तिस्तृष्णाध्वगेषु कृपणेष्विव वृद्धिमेति।
सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलो नु छाया सतीव न विमुञ्चति पादमूलम्॥

स्वेदः अजस्रं प्रवहति, शरीरे शिथिलता च आयाति। कार्येषु मनः स्थिरं न भवति। विद्युद्व्यजनानि अन्यानि वा व्यजनानि जनाः अहर्निशं सेवन्ते। शीतलचन्द्रकिरणोज्ज्वला रात्रिः रम्या आमोदकरी च भवति। तस्मात् जनाः बहिः शेरते। केचन जीवाः तापाधिक्यात् म्रियन्ते। नागरिकाः ग्रामीणाः वा जलाय राजमार्गस्थितेषु जलकूपेषु कलहायन्ते। धर्मानुरागिणः प्रपामण्डपादेः व्यवस्थां कुर्वन्ति। निशा कृशतां, दिनानि च दीर्घतामुपयान्ति।

कष्टबहुलोऽपि अयं ग्रीष्मर्तुः अनेकदृष्टिभिः कल्याणकरी मन्यते। यतः प्रभूत-तापात् शरीरस्थाः विकाराः रोमकूपमार्गेण स्वेदेन सह बहिः निस्सरन्ति। हानि-कारकाः कीटाणवो विनश्यन्ति। पृथिव्याः उर्वरताशक्तिश्च वर्धते।

३. वर्षाः—ग्रीष्माभितप्तानां सर्वेषां सुखप्रदोऽयम् ऋतुः सामान्यतः ग्रीष्मानन्तरं श्रावण-भाद्रपदमासयोः मन्यते। इदानीं जलेन परिपूर्णा पृथिवीमधिलम्बमानाः श्याममेघाः नभसि परिदृश्यन्ते। कदाचिद् एते केवलं गर्जन्ति, कदाचिच्च वर्षन्ति। कदाचित् मुसलधारावृष्टिः, कदाचित् जलसीकरसिञ्चनं, कदाचित् करका-पातः। सर्वे जलाशयाः, कुल्याः, कूपाः, नद्यः जलाप्लाविताः भवन्ति। यत्र कुत्रापि दृष्टिः निपतति तत्र सर्वत्र जलं नयनाभिरामो हरीतिमा वा दृष्टिगोचरतां याति।

कृषिप्रधाने भारतदेशे कृषकाः विशेषरूपेण हृष्यन्ति। ते क्षेत्राणि कर्षन्ति, बीजानि वपन्ति च। स्वल्पेनैव कालेन पृथिवी शस्यवस्त्रावृता [illegible]

रिङ्गलाभाः इन्द्रगोपकाः संचरन्ति। जलाशयेषु मण्डूकाः टरटरायन्ते। विद्युत् युवतिचित्तमिव क्षणं स्फुरति। उन्मदाः मयूराः मेघगर्जनं श्रुत्वा इतस्ततः नृत्यन्ति। मेघाच्छन्ने नभसि बलाकाः उड्डीयन्ते। सुरेन्द्रचापोऽपि यदा कदा उदेति। यत्र तत्र दोलाविलासः संदृश्यते। वृक्षेषु चातकाः 'पीकहां' (क्वास्ति प्रियः; प्रियो मेघः) इति मेघजलार्थं रटन्ति। इत्थं सर्वत्र संगीतोत्सवः इव प्रचलति। किं बहुना, सर्वत्र रम्याणि दृश्यानि चेतांसि हरन्ति।

वृष्ट्या अनेकहानयः अपि भवन्ति। यथा—प्रभूतवर्षणेन गंगादयः नद्यः आप्लवेन भीषणं दृश्यम् उपस्थापयन्ति। प्रायः सर्वे मार्गाः पङ्किलाः अवरुद्धाश्च भवन्ति। महती धन-धान्यहानिः भवति। जनाः पशवश्च म्रियन्ते। मृण्मयाः गृहाः धराशायिनः जायन्ते। अनेके हानिकारकाः कीटादयः उत्पद्यन्ते। जठराग्निः पाचनक्रियायां निष्क्रिया इव भवति।

इत्थं वृष्ट्या यद्यपि अनेकहानयः भवन्ति तथापि अयम् ऋतुः प्राणिनां जीवनाय अमृतोपमो यतः नानाविधानि शस्यानि उद्भवन्ति। प्राचीनसाहित्ये वैदिकैः ऋषिभिरपि अस्याः महत्त्वम् उद्घोषितम्।

४. शरद्—अयम् ऋतुः वर्षानन्तरं घनकालमुग्रं गाढतमसं उत्खाय आश्विन-कार्तिकमासयोः आगच्छति। शरद् गुप्तपयोधरश्रीः शुद्धाम्बरा नवोढेव शोभते। शुद्धाम्बरे नवनीतनिभः चन्द्रः, तक्रसमा ज्योत्स्ना, क्षीरनीकाशा आशाः (दिशः) विलसन्ति। पृथिवी अपङ्कताम्, नद्यः स्वच्छताम्, शस्यानि परिणामरम्यतां चोपयान्ति। हंसाः मानसरोवराद् आगत्य मयूरध्वनिं परुषीकृत्य च मधुरं निस्वनन्ति। परिमलवाहिनः सप्तच्छद-कल्हारवाताः मन्थरं वान्ति। विमल-कुमुदावदाताः तारकादयः विद्योतन्ते। ऊष्मा अधिकतरं बाधते। किं बहुना, शारदीयाः वासराः केषां चेतांसि न समाकर्षन्ति। घननिर्मुक्ततया अतिशुभ्रैः चन्द्रिकिरण-नक्षत्र-ग्रहैः क्रौञ्च-हंस-सप्तच्छद-कुमुदपुण्डरीक-काशकुसुमपरागैश्च दिङ्मण्डलं धवलितं भवति। जलाशयानां जलं निर्मलं मधुरं च भवति।

५. हेमन्तः—अयम् ऋतुः शरदनन्तरं मार्गशीर्ष (आग्रहायण)-पौषमासयोः मन्यते। अस्मिन् ऋतौ रजनी क्रमशः वर्धते। दिवसश्च कृशतां याति। सर्वत्र शीतः वायुः प्रसरति येन सर्वे प्राणिनः शीतज्वरातुराः इव वेपन्ते तथा शीतेन कम्पमानाः जनाः सद्यः कूर्मवत् स्वानि अङ्गानि निजे शरीरे एव उपसंहर्तुं काङ्क्षन्ति। अस्मिन् ऋतौ पाचनक्रिया समीचीना भवति येन स्वास्थ्यलाभोऽपि जायते।

६. शिशिरः—अयम् ऋतुः हेमन्तानन्तरं सामान्येन माघ-फाल्गुनमासयोः मन्यते। इदानीं शैत्यं तत्सहचरीव रात्रिरपि पूर्णं वर्धते। शीतात् भीताः

इव दिवसाः संकुचन्ति, रविश्च मन्दकरो भवति। वह्निः प्रियः भवति जलं चानिष्टम्। बलवन्तोऽपि जनाः शिशिरात् कम्पन्ते। तुषारः निपतति। जनाः नितराम् अङ्गारं सेवन्ते उष्णवस्त्रं च धारयन्ति। गृहस्य द्वाराणि प्रायः पिहितानि भवन्ति। सूर्ये अस्तंगते, निःस्वकुटुम्बः पङ्कजलीलां समुद्वहति। जठराग्निः अतिप्रदीप्तो भवति। जनाः द्रुतं कार्याणि समाप्य अचिरं स्वगृहाय शशाः इव धावन्ति। अतएव अयम् ऋतुः 'शिशिर' इति कथ्यते। निर्धनाः, दुर्बलाः, पशवश्च शीतार्दिताः म्रियन्ते तथापि अयमपि ऋतुः स्वास्थ्यदृष्ट्या बहुलाभप्रदः।

किं बहुना, प्राणिनां कृते ऋतवः प्रकृतिप्रदत्तमेकम् अपूर्वं वरदानम् इति बोध्यम्।

(२९-३१) त्रीणि राष्ट्रियपर्वाणि

राष्ट्रस्यैतिहासिकघटनासूचकानि कानिचन राष्ट्रियपर्वाणि भवन्ति। भारत-वर्षेऽपि एवंविधानि त्रीणि पर्वाणि प्रचलन्ति—१. स्वतन्त्रतादिवसः, २. गणतन्त्र-दिवसः, ३. गान्धिजयन्तिश्च। एतानि इतिहासस्य प्रोज्ज्वलरत्नानि। एतानि प्रतिवर्षं महता उत्साहेन, हर्षेण समारोहेण च समस्तदेशे समायोज्यन्ते। एतानि अस्माकं राजनीतौ जीवनधारायां च नवीनप्रेरणाः नवोल्लासान् च वितन्वन्ति। साम्प्रतं सर्वे भारतीयाः देशनेतॄणां महापुरुषाणां तुमुलजयध्वनिमुच्चारयन्तः तत्प्रदर्शितमार्गं परिशीलयन्तः ध्वजोत्तोलनं देशरक्षार्थं प्रतिज्ञादिकं च कुर्वन्ति। अत्र तेषां त्रयाणां क्रमेण दिग्दर्शनं क्रियते—

१. स्वतन्त्रतादिवसोत्सवः—१९४७ ईसवीयस्य अगस्तमासस्य पञ्चदश-तारिकायां (निशीथे चतुर्दशतारिकाविगमे पञ्चदशतारिकाप्रारम्भे) चिरकालात् पराधीनाः भारतवासिनः आङ्गलशासकानां शासनपाशात् मुक्ताः। चतुर्दशतारिकायां रात्रौ स्वतन्त्रतालाभाय समुत्सुकैः नागरिकैः प्रातरुत्थाय अग्रिमदिवसायोजनस्य विपुलानि साधनानि एकत्रीकृतानि। स्वतन्त्रताप्राप्तिकाले (द्वादशवादने) तुमुल-शंखध्वनिभिः विविधवाद्यैश्च मांगलिकसमारोहः समपद्यत। 'जय भारतमाता', 'वन्दे मातरम्,' 'जय महात्मागान्धिः' प्रभृतिभिः घोषैः गगनमण्डलं व्याप्तमभवत्। प्रातः यत्र तत्र सर्वत्र प्रभातप्रदर्शनानि (प्रभातफेरी), राष्ट्रियध्वजोत्तोलनानि, देशार्पितजीवनेभ्यः पुण्यश्लोकेभ्यः (शहीद) श्रद्धाञ्जलिप्रदानानि, 'जनगणमन' इति राष्ट्रियगीतप्रसारणानि, मिष्टान्नवितरणानि, देशभक्तानां भाषणानि च आयोजितानि। सज्जीकृतद्वाराणां गान्धिद्वार-राजेन्द्रद्वार-आजादद्वार-सुभाषद्वार-भारतमातादारप्रभृतीनि नामानि लिखितानि अभवन्। [illegible] जनिकसभासु प्रमुखनायकैः भाषणानि विहितानि। यत्र तत्र [illegible] आम्रपल्लवानां मालावत् तोरणद्वाराणि [illegible]

एव दृष्टिगोचराः अभवन्। तदानीं देशव्यापिनि दर्शनीये महति उत्सवे सर्वेषाम् युगपत् हर्षोल्लासमिश्रितः अदृष्टपूर्वः स्वाभाविकः अन्तःप्रेरितः अदम्योत्साहः सहयोगश्च आसीत्। किं बहुना पवित्रतमस्य पर्वणः अनुरूपं सर्वं सम्पादितमभवत्।

भारतवर्षस्येतिहासे इदं स्वतन्त्रताभिधानं प्रधानपर्व भारतीयानां कृते गर्वस्य गौरवस्य चास्पदमिति। परतन्त्रतायां स्वर्गोपममपि सुखं नगण्यम्, स्वातन्त्र्ये तु अल्पमपि सुखं अमृतोपममिति निर्विवादम्। एतदर्थस्य देशभक्तैः प्रारब्धस्य अहिंसान्दोलनस्य प्रयोगः अद्य चरितार्थः अभवत्। तदा प्रभृति इदं पर्व प्रतिवर्षं तस्यामेव तारिकायां देशे सर्वत्र तथैव समायोज्यते। अत्रावसरे देशसंरक्षणाय सर्वैरपि यथाकथमपि संरक्षणाय सकल्पाः क्रियन्ते। पुण्यश्लोकानां गाथाः गीयन्ते। वर्षाभ्यन्तरम् अतीते इतिहासे भाषणेषु विहंगमदृष्टिरपि दीयते।

२. गणतन्त्रदिवसोत्सवः—जनवरीमासस्य षड्विंशतितारिकायां गणतन्त्र-दिवसोत्सवः समारुह्यते। यद्यपि १९४७ ईसवीये अगस्तमासस्य पञ्चदशतारिकायामेव स्वतन्त्रताप्राप्तिरभवत् तथापि जनताप्रतिनिधिनिर्मित-संविधानानुसारं गणतन्त्रशासनपद्धतेः स्थापना १९५० ईसवीये जनवरीमासस्य-षड्विंशतितारिकायां समपद्यत। एवं च देशशासनस्य समग्रो भारः अस्माकं शिरसि न्यपतत्, देशश्चायं प्रभुतासम्पन्नगणतन्त्रः उद्घोषितः। ततः प्रभृति अयमपि स्वतन्त्रतादिवस-समकक्ष एव द्वितीयं पर्व प्राचलत्। अस्यास्तिथेरपरमपि माहात्म्यं यत् अस्यामेव तारिकायां १९३० ईसवीये लाहोरनगरस्य रावीतटे कांग्रेससभायाः अधिवेशनम् अभवत् यस्मिन् श्रीजवाहरलालनेहरुमहोदयस्य नेतृत्वे अनेकैः देशभक्तैः स्वदेशं वैदेशिक-शासनात् मोचयितुं शपथः गृहीतः, प्रतिज्ञातं च यत् आस्वतन्त्र्यलाभात् वयं क्षणमपि न विश्रमिष्यामः। ततश्च महात्मागान्धि-सुभाषचन्द्रबोसप्रभृतिभिः प्रारब्धं स्वतन्त्रतान्दोलनं तेषाम् अविरतप्रयासैः अस्मिन्नेव दिवसे सफलमभवत्। ततः प्रभृति प्रतिवर्षम् उत्सवोऽयं पूर्णेन उत्साहेन च भारतवासिभिः विधीयते।

अस्मिन्नपि उत्सवे राष्ट्रीयध्वजोत्तोलनादिकं तत्सर्वमपि संपाद्यते यत् पूर्वोक्ते पर्वणि विस्तरेण वर्णितमस्ति। राजधान्यां (दिल्लीनगरे) एतद्देशघटकप्रदेशानां (States) सर्वेषामपि विशेषदृश्यानि (झांकियाँ) प्रदर्श्यन्ते। शतघ्नीध्वनिभिः (तोप दागकर) देशप्रतीकभूतस्य राष्ट्रपतेः समादरोऽपि (सलामी) अनुष्ठीयते।

३. गान्धिजयन्त्युत्सवः—भारतीयेतिहासे स्वतन्त्रताप्राप्त्यर्थं बहुभिः देश-भक्तैः विविधरूपेण प्रयतितम्। तेषु गान्धिमहोदयस्य मूर्धन्यं स्थानम्। सः 'बापू, 'राष्ट्रपिता' इत्यादिभिरनेकैः आदरसूचकैः शब्दैः सदा देशवासिभिः व्यपदिश्यते। अस्य महाभागस्य जन्म १८६९ ईशवीयस्य अक्टूबरमासस्य द्वि-तारिकायाम् अभवत्। अस्य वैशिष्ट्यं यत् सत्याहिंसारूपाभ्याम् एव अस्त्राभ्यां स्वतन्त्रतासंग्रामः प्रारब्धः।

ताभ्यामेव च विविधान्यान्दोलनानन्तरम् अभूतपूर्वां सफलतामपि अवाप्नोत्। एतदीयं सत्याहिंसादर्शनमध्येतुं वैदेशिकाः अत्र आगच्छन्ति। अस्य ईश्वरे महती निष्ठा आसीत् किन्तु सत्यमेव ईश्वरम् अमन्यत सः। एतेन अहिंसा महाशक्तिरूपेण समुपासिता, यदग्रे प्रचुरशस्त्रास्त्रादिभिः सुसम्पन्नाः अपि वैदेशिकाः स्वशासनं सञ्चालयितुम् असमर्थाः, चिरं स्थातुं नाशक्नुवन्। विश्वेतिहासे नवीनोऽयम् अनुभवः यद् बलवन्तोऽपि निर्बलैः सत्याहिंसाबलेनैव पराभूताः। अद्यापि देशोऽस्माकं तामेव नीतिं तटस्थतानाम्ना अनुसरति। तस्मात् तत्सम्मानाय तज्जयन्त्युत्सवः राष्ट्रिय-पर्वरूपेण महता समारोहेण समस्ते देशे संपाद्यते। अस्मिन् दिने गान्धिसाहित्यस्य, तज्जीवनसंदेशस्य, तदादर्शपरम्पराणां च मननं, प्रचारः, तदनुपदं समाचरितुं संकल्पाश्च क्रियन्ते।

एतेषु त्रिष्वपि पर्वसु सार्वजनिक-राष्ट्रियावकाशो भवति समस्ते भारते। अपराधिनां कारावासदण्डावधौ न्यूनता उद्घोष्यते। तस्मिंस्तस्मिन् क्षेत्रे उत्कर्षा-श्रायक-कार्यकर्तृभ्यो विशिष्टपुरुषेभ्यः 'पद्मश्री' प्रभृतयः सम्मानोपाधयो वितीर्यन्ते।

●

(३२) भगवान् श्रीकृष्णः

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

इति वचनमनुसृत्य पञ्चसहस्रवर्षपूर्वं (द्वापरान्ते-कलेरादौ) देशेऽस्मिन् भगवान् श्रीकृष्णः अवातरत्। तदनुसारं भाद्रपदमासि कृष्णपक्षे अष्टम्यां तिथौ लीला-पुरुषोत्तमस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य प्रादुर्भावः अभवत्। तदा प्रभृत्येव अद्यापि जनाः तस्य जन्मोत्सवं 'कृष्णजन्माष्टमी' पर्वरूपेण सोत्साहं विदधति। कंसस्य स्वसा देवकी तस्य माता, वसुदेवश्च पिता आस्ताम्। अनेनैव महाभारतयुद्धकाले रणभूमौ अर्जुनाय सकलशास्त्रसाररूपा भगवद्गीता उपदिष्टा। दशावतारेषु भगवान् श्रीकृष्णः पूर्णकलावतारः मन्यते।

कंसस्य स्वसुः वसुदेवेन सह विवाहावसरे एका आकाशवाणी अभवत् यत् तस्याः अष्टमगर्भादुत्पन्नो बालकः कंसस्य घातको भविष्यति। तदा अस्याः भविष्यवाण्याः भीतः कंसः सप्त नवजातशिशून् निर्दयं हतवान्। अष्टमः शिशुः श्रीकृष्णः कठोरकारागारे प्रादुरभवत्। तदानीं कंसभीतौ स्वौ पितरौ विलोक्य सोऽवदत्—'हे तात! गोकुले नन्दगृहे यशोदागर्भात् अधुनैव सम्भूता कन्यका समानय मां च तत्र स्थापय।' दैवप्रभावात् पित्रा वसुदेवेन तथैव कृतम्। दैवघटनायाः एतस्याः घटनां न कोऽपि अजानात्। तथाभूते कारागारजगेषः गूनोत्पत्तिं श्रुत्वा कंस

अविलम्बं तत्र प्राप्य तामेव कन्यकां योगमायां मारयितुं प्रवृत्तः किन्तु सा गगनमण्डले उत्सर्प्य व्याहरत्—'रे मूढ ! किमर्थं मां मारयितुं प्रयत्नं करोषि, क्वचिज्जातः तवान्तकृत् ।'

श्रीकृष्णः नन्दवेश्मनि यशोदापार्श्वे शुक्लपक्षे चन्द्र इव प्रतिदिनम् अवर्धत । यथा-यथा सः अवर्धत तथा-तथा राजा कंसोऽपि व्याकुलः अभवत् । सः विविधाः बाल्यलीलाः कुर्वन् सर्वेषां विशेषतः पित्रोः परमहर्षम् अजनयत् । अस्य नाम 'कृष्णः' 'श्याम'श्च अभवत् कृष्णवर्णत्वात् । बाल्यकाले एव सर्वासु विद्यासु अस्त्र-शस्त्रादिकलासु च निपुणतां प्राप्नोत् । मुरलीवादने तु विशेषतः सिद्धहस्त आसीत् । तस्य मुरलीध्वनिं श्रुत्वा सर्वे मन्त्रमुग्धाः अभवन् । बाल्यकाले सः प्रत्यहं गोपैः सह यमुनामूले धेनूः अचारयत् । गोपीनां मनस्तु मदनमोहने श्रीकृष्णे आसक्तम् आसीत् । 'राधा' तस्य प्रिया 'सुदामा' च सहपाठिमित्रमासीत् । श्रीकृष्णः गोपीनां भाण्डेभ्यः नवनीतं चोरयित्वा प्रचुरम् अस्वादयत् । सः बाल्यावस्थायामेव स्वविनाशाय कंसेन प्रेषितानां पूतना-बकासुरप्रभृतीनां राक्षसानां बधमकरोत् । अन्ततश्च सः कंसमपि हतवान् । सः महानीतिज्ञः अपि आसीत् । महाभारते सारथि-रूपेण अर्जुनस्य साहाय्यमकरोत् । फलतः सर्वेऽपि कौरवाः विनाशिताः पाण्डवाश्च विजयिनोऽभवन् । अन्ततश्च स्वराजधानीं द्वारकापुरीम् असौ अलङ्कृतवान् ।

एवं धर्मसंस्थापनाय मानवरूपेण लीलां समाप्य सः लीलापुरुषोत्तमः श्रीकृष्णः शताधिकविंशतितमे वर्षे मानवशरीरम् अत्यजत् । ततः प्रभृत्येव देशेऽस्मिन् कृष्णभक्तेः प्रचारः समभवत् ।

●

(३३) भगवान् महावीरः

जैनधर्मस्य सुप्रतिष्ठापकः भगवान् महावीर आसीत् । अयं वीर-अतिवीर-सन्मति-वर्धमान-प्रभृतिसार्थकनामभिरपि प्रसिद्धः । इतः पूर्वं त्रयोविंशतिः जैनतीर्थङ्कराः समभवन् । जैनधर्मस्य प्रथमप्रवर्तकः आदिनाथः, अयं तु अन्तिमः संस्थापकः । एतस्य महानुभावस्य प्रादुर्भावः विहारप्रान्ते कुण्डलपुरनगरे ई० पू० ६०० तमे वर्षे चैत्रशुक्ले त्रयोदश्यामभवत् । किञ्चित्कालानन्तरं बौद्धधर्मसंस्थापको भगवान् बुद्धः समजायत । भगवतो महावीरस्य माता 'त्रिशला' पिता च राजा 'सिद्धार्थः' आस्ताम् । इदमत्रावधेयं यदयं सिद्धार्थः तन्नामकात् भगवतो बुद्धादन्यः । भगवतो जन्मकाले महान्ति आश्चर्याणि दृष्टानि । जन्मकालादेव अयं दिव्यज्ञानवान् महा वांश्चासीत् । एकदा बाल्यकाले अन्यबालकैः सह क्रीडन्तं महावीरं कोऽपि सर्पः आक्राम्यत् किन्तु निर्भयः सः तदाक्रमणं विफलमकरोत् ।

पुरा आदिनाथमुखारविन्दात् स्वविषयकं भावितीर्थङ्करत्वं श्रुत्वा दृढः सः नरकादियातनामुपभुज्य सिंहयोनिमापन्नोऽपि अहिंसादिव्रतमपालयत् । अनन्तरं च

तत्प्रभावादेव मनुष्ययोनिं प्राप्य निर्वाणमलभत । अतएव सिंहः अस्य तीर्थङ्करस्य लक्ष्म मन्यते ।

श्वेताम्बरपरम्परानुसारं तस्य परिणयः यथाकालं समपद्यत । एकस्तनयोऽपि अजायत । किन्तु दिगम्बरमते न तथा स्वीक्रियते । यज्ञादिषु निर्मूकपशूनां हिंसां विलोक्य तस्य हृदयं दयार्द्रमभवत् । अतः सः एकदा त्रिंशत्वर्षावस्थायां पितरौ गृहं च परित्यज्य वनमगच्छत् । तत्र ऋजुकूलायाः नद्यास्तीरे तपश्चरन् केवल-ज्ञानं (सकलपदार्थसाक्षात्कारि ज्ञानम्) अलभत । केवलज्ञानलाभानन्तरं भगवान् महावीरः षट्षष्टिदिनं यावत् योग्यशिष्यमलभमानः अनुपदिशन् केवलं व्यहरत् । पश्चात् मगधदेशे राजगृहे विपुलाचलपर्वते गौतमनामकम् (भगवान् गौतमबुद्धादन्यः, ब्राह्मणोऽयं शिष्यः) एकं योग्यशिष्यमुपलभ्य तमुपदिशन् धर्मचक्र-प्रवर्तनमकरोत् । ततः परं त्रिंशत्वर्षं देश-देशान्तरेषु परिभ्रमन् अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहरूपं जैनधर्ममुपादिशत् । श्रूयते यदेतेषामुपदेशेन सिंह व्याघ्रादयः हिंसाः अपि जन्तवः हिंसावृत्तिमत्यजन् । अन्ततश्च विहारप्रान्ते 'पावापुर' नाम्नि स्थाने कार्तिककृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ निर्वाणम् (मुक्तिम्) आप्नोत् । एतदुपलक्ष्यीकृत्यैव वीरनिर्वाणनामकः संवत्सरः जैनसमाजे प्राचलत् । जैनधर्मावलम्बिनः ततः प्रभृति अस्यां तिथौ 'दीपावली'-समरोहं प्रतिवर्षं सोत्साहं सम्पादयति । तदनुगामिनि दिवसे अमावस्यायां प्रातः अर्चनादिमहोत्सवं कुर्वन्ति ।

इत्थं जैनानामन्तिमस्तीर्थङ्करः महावीरः कर्मजित्, सर्वज्ञः, सर्वदर्शी च मन्यते । बहुविधमुपसर्गं हसन् असहत । इत्ययमुपसर्गविजेतृ-जितेन्द्रिय-जिन- प्रभृतिपदैः व्यपदिश्यते । यद्यपि नायं भगवतोऽवतारः तथापि मानवः सन्नपि स्वगुणैः भगवत् पदम् अन्ते प्राप्नोत् । अद्याप्येतत्प्रवर्तितः धार्मिकसम्प्रदायः देशेऽस्मिन् अतिमहति समाजे प्रचलति । सत्यम् अहिंसावीतरागता चास्यमुख्योपादेशाः ।

●

(३४) नौका-विहारः

व्यस्तेऽस्मिन् मानवजीवने मनोरञ्जनं परमावश्यकम् । तस्य बहूनि साधनानि भवितुं शक्नुवन्ति । तेषु नौकाविहारोऽपि एकम् । एकदा अहं शरत्पूर्णिमायां सप्तभिः मित्रैः सह नौकाविहाराय गंगातटम् अगच्छम् । इदानीं गङ्गायाः दृश्य-मतिरमणीयमासीत् । यथानिश्चयं नौकाविहारकामाः वयं नौकामेकाम् आरूढवन्तः ।

नौका अधिजलं प्रवहन्ती शनैःशनैः प्राचलत् । शीतल-मन्द-सुगन्धसमीरः नः चेतांसि आनन्दयत् । उत्तिष्ठत्सु पतत्सु चञ्चलजलतरङ्गेषु विलुठत् चन्द्रबिम्बं क्षणेन विलीनं क्षणेन प्रकटितं भवति स्म । ईदृशं मनोहारि दृश्यं कस्य मनोमनः चेतः नाह्लादयति । अस्मास्वन्यतमः संगीतकलाभिज्ञः [illegible]

तद्गीतं श्रुत्वा अन्यैरपि सहयोगिभिः यथारुचि गीतानि अगीयन्त । मया अप्येकं गीतं श्रावितम् । अन्ते नाविकेनापि एकं गीतं लोकभाषायां गीतं येन सर्वेऽपि मुग्धाः समजायन्त । एवं परस्परं विनोदयन्तः, उपहसन्तः, सहानीतानि भोज्यवस्तूनि आस्वादयन्तः वयं गंगायाः मध्यभागं प्राप्ताः । ततश्च एवमेव घट्टाद्घट्टम् संचरन्तः विविधानि मनोहराणि तीरदृश्यानि अपश्याम् । यथा—गंगाजले प्रतिबिम्बितानि विशालभवनानि, भव्यदेवमंदिरशिखराणि, तटसोपानप्रभृतीनि । अपि च मध्ये मध्ये वयमपि नावं चालयन्तः स्नान्तीनां नगररमणीनां, बालकानां, यूनामितरेषां च जले निमज्जनोन्मज्जनसंतरणशोभाम् अवलोकयन्तः परमप्रमोदमनुभवन्तश्च अतिदूरमागताः । तदानीं वेगेन वायुः प्रावहत् । वायोः वेगात् नौका इतस्ततः दोलायमाना जाता। सर्वेऽपि चिन्ताकुलाः संजाताः । परमेश्वरकृपया नाविकस्य नैपुण्येन च नौका सकुशलं तीरमागता ।

तदनु नौकायाः अवतीर्य विनोदस्वभावं नाविकं निश्चिताद् किञ्चिदधिकं द्रव्यं अदद्म । पश्चात् नौकाविहारस्य अभूतपूर्वमानन्दमनुभूय परस्परं संलपन्तः वयं स्वं स्वं गृहं प्रत्यागताः ।

●

(३५) वाष्पयान-यात्रा (रेल-यात्रा)

सा मधुरा स्मृतिः अद्यापि नूतना एव । जूनमासस्य प्रथमतारिका आसीत् यदा अहं कस्यचित् मित्रस्य एकं पत्रं नैनीतालमागन्तुं प्राप्तवान् । परीक्षां समाप्य यात्रायाः विचारः मया निर्धारितः । यात्रासमुत्सुकोऽहं सर्वाणि आवश्यकवस्तूनि संचित्य भारवाहकेन सह सायं पञ्चवादनवेलायां रेलप्रचत्वरे (प्लेटफार्म) प्राप्तः । तत्र वाष्पयानं प्रतीक्षमाणानां जनानां महान् संमर्दः आसीत् ।

तदानीं विश्वविद्यालयावकाशे मम कानिचित् मित्राणि अपि सम्मिलितानि अभवन् । तेषामेकतमेन मित्रेण चिटिकाविक्रयालयम् (टिकिटघर) उपगम्य द्वितीयश्रेण्याः चिटिकाः (टिकिटें) आनीताः । निश्चितसमयात् पञ्चदशक्षणानन्तरं धूममुद्वमत् महान्तं निनादं च कुर्वत् वाष्पयानं समागतम्, प्रचत्वरपार्श्वे च संलग्नम् । जनाकीर्णस्यापि वाष्पयानस्य अवतरतां जनानां प्रचुरतया अचिरेणैव केचन प्रकोष्ठाः रिक्ताः अभवन् । अहं स्वमित्रैः सह एकप्रकोष्ठाभ्यन्तरं गवाक्षोपकण्ठं समुचितं स्थानं लब्धवान् । तत्र आसनपट्टे (बर्थ) बिष्टरं (बिस्तर) विस्तारितवान् । किञ्चित्क्षणानन्तरं गच्छति वाष्पयाने बहिः वर्षारम्भोऽपि संजातः येन समयः ग्रीष्मेऽपि नितरां रमणीयः संवृत्तः । यदा वाष्पयानं द्रुततमं प्राचलत् तदा बहिः स्थिताः पार्श्ववर्तिनः पादपाः अपि विपरीतदिशायां धावन्तः

इव पर्यवेक्षिताः । मार्गे मित्रैः सह वार्तालापसुखमनुभवन् तानि तानि च प्राकृतिकदृश्यानि पश्यन्, अश्यन् पिबंश्च सुखेन यात्रामकरवम् । इत्थं वाष्पयानमपि मध्ये अनेकानि विरामस्थानानि परित्यजत् यत्र कुत्र किञ्चित्क्षणानां कृते विरमत् च दिल्लीनगरं प्राप्नोत् । दिल्लीं प्राप्य वाष्पयानान्तरे संप्रविष्टाः वयम् । तस्मिन्नपि प्रचलति दिष्ट्या यात्रिषु एको गायकः आसीत् यः मनोहारीणि गीतानि श्रावितवान् । अनन्तरं च प्रचलितं कमपि राजनीतिविषयमधिकृत्य रोचकः वार्तालापः प्रारब्धः येन समयः अविदित इव सुखेन यापितः । तदैव चिटिकानिरीक्षकोऽपि प्रकोष्ठाभ्यन्तरमागत्य चिटिकाः निरीक्षितुमारब्धवान् । केचन यात्रिणः चिटिका-विहीनाः यथाविधि दण्डिताः । एवं क्रमेण वयं यथासमयं नैनीतालं प्राप्ताः । प्रकोष्ठाद् यावद् निस्सरामि तावद् पत्रप्रेषकं मित्रमासाद्य तेनैव सह तस्य स्थानमगच्छम् । स्थानीयानि मनोहराणि प्राकृतिकदृश्यानि पश्यतो मम मनः न तृप्तिमवाप्नोत्, तथापि कांश्चित् दिवसान् तत्र अतिवाह्य अवकाशावसाने अनिच्छन्नपि पुनः वाराणसीं प्रत्यागतः ।

(३६) सैनिकशिक्षा

कस्यापि स्वतन्त्रराष्ट्रस्य स्वतन्त्रतारक्षणाय सैनिकशिक्षायाः आवश्यकता न केनापि अपह्नोतुं शक्यते । सेना राष्ट्रम्, शासकम्, प्रजाश्च आपद्भ्यः रक्षति । प्राचीनभारतीयशास्त्रेषु त्रिविधाः शक्तयः मन्यन्ते—'प्रभावोत्साहमंत्रजाः' । तत्र प्रथमायाः द्वे अङ्गे—कोशो बलं (सैन्यम्) च । प्राचीनकालादेव राज्यस्य सप्ताङ्गेषु (स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च'—अमरकोषः) सेनायाः प्रमुखं स्थानम् । तस्याः आवश्यकता न केवलं युद्धाय अपितु बलबुद्धयोः विकासाय, उद्योगाध्यवसाययोः संरक्षणाय, उत्साहवर्धनाय, हीनताभावनोत्सारणाय सुखशान्तिमयजीवनयापनाय च भवति ।

वर्तमानकाले यदा सर्वेऽपि दुःखदैन्यभयाक्रान्ताः, समराशंकाकुलिताः अवलोक्यन्ते सैन्यशक्तिवर्धनमेव समाधानम् । सैन्यशक्तिवर्धनाय सैनिकशिक्षायाः विपुलराजकोशस्य च आवश्यकता भवति । संसारे सर्वत्र मत्स्यन्यायस्य साम्राज्यं परिदृश्यते । सत्त्वेष्वधिकः ऊनं शास्ति । समृद्ध-राष्ट्रम् अर्थकृशं प्रभवति । अतः अद्य संरक्षणकामाः सर्वे देशाः अस्त्रशस्त्रनिर्माणे सैनिकशिक्षाप्रदाने कोशवर्धने च अनवरतं प्रयतन्ते । भारतस्योपरि तु चीन-पाकिस्तानप्रभृतयो देशाः सततं बुभुक्षितवृकवत् क्रूरदृष्टिं निक्षिपन्ति । तस्मात् स्वतन्त्रतारक्षणाय शक्तामां सर्वेषां कृते सैनिकशिक्षा अनिवार्या आपतिता । दिष्ट्या भारतदेशनायकाः अस्य गुरुतरोद्या-

स्सन्ति। पञ्चवर्षीययोजनासु सैनिकशिक्षापरिवर्धनाय अस्त्रशस्त्रनिर्माणाय च विशेषस्थानं प्रदत्तम्।

अद्य भगवन्महावीर-बुद्ध-गान्धिप्रभृतिभिरुपदिष्टा अहिंसानीतिः तदा एव चरितार्था भविष्यति यदा वयं शक्तिसम्पन्नः भवेम। अन्यथा दुर्बलानां कृते सा हास्याय एव। अहिंसा सिद्धान्ततः रम्या भवेन्नाम किन्तु व्यवहारे दौर्बल्यप्रकाशिकैव। युद्धं विना न शक्तिनिर्णयः, शक्तिं विना न रक्षा संभवति, रक्षां विना सुख-शान्तिसमृद्धिविकासासम्भवः। तस्मात् अनिच्छतोऽपि युद्धम् अपरिहार्यम्। ज्ञान-विज्ञान-सभ्यतानां चरमोत्कर्षेऽपि शक्तिप्राधान्यम् अक्षुण्णम्। साम्प्रतं तस्यैव देशस्य डिण्डिमघोषः (बोलवाला) यः सैनिकदृष्ट्या सुसम्पन्नः समृद्धाश्चास्ति। शक्त्यभावे अहिंसावादः शक्तिहीनतातिरोधानाय कवचमात्रम्। निःशस्त्रीकरणस्य विश्वशान्तिस्थापनायाश्च प्रस्तावौ तस्यैव देशस्य शोभेते यः सैन्यसमृद्धिसम्पन्नः, न च दुर्बलस्य। यथोक्तम्—

शक्तिः सबलता यत्र, क्षमा तत्रैव शोभते।
सा निर्बले तु हास्याय, विषहीनभुजङ्गवत्॥

सैनिकशिक्षा केवलं पुस्तकीयशिक्षा नास्ति अपितु सैनिकशिक्षायाम् अनुशासनम् शारीरिकसंघटनम्, देशभक्तिः, शत्रुषु प्रतिशोधभावना, देशार्थं प्राणपरित्यागसंकल्पः, बुद्धिमत्ता, जागरूकता इत्यादयः सर्वेऽपि अपेक्ष्यते। राष्ट्रं तावच्छरीरम्, सुसैनिकास्तु करचरणकल्पावयवाः इति।

●

(३७) समाचारपत्रम्

अद्य समाचारपत्रं मानवाय तथैवावश्यकं यथा तस्य जीवनयापनाय अन्नं वस्त्रं च। 'मनुष्यः सामाजिकः प्राणी' इति सः समाजस्य देशविदेशयोश्च सर्वविधं वृत्तम् अवगन्तुं सदैव स्वभावतः समुत्सुको भवति। मानवस्य इमां प्रवृत्तिं पूरयितुमेव समाचारपत्रस्य जन्म अभवत्। सर्वत्र प्रतिक्षणं घटमानानां वृत्तानां विस्तृतरूपेण ज्ञानं समाचारपत्रादेव द्राग् भवितुमर्हति। अधुना यः संसारस्योदन्तान् न जानाति सः मूर्खः कूपमण्डूको वा मन्यते। संसारः सर्वक्षेत्रेषु क्षिप्रं परिवर्तते। अतः यो नवीनतमघटना (Latest developments)—अनभिज्ञातः सः जीवनयात्रायां समीहितां सफलतां नाधिगच्छति। एवम् अद्य मानवजीवने सत्यपि दूरदर्शनयन्त्रे समाचारपत्राणां महती उपयोगिता अस्ति।

समाचारपत्राणामितिहासः नातिप्राचीनः। सर्वप्रथमं यूरोपमहादेशे इटलीदेशस्य 'वेनिस'-नगरे षोडशशताब्द्यां समाचारपत्रं प्रादुरभवत्। ततः परं जर्मनी-इंग्लैण्ड-प्रभृतिदेशेषु अस्य प्रसारोऽभवत्। श्रूयते यत् चीनदेशे एकादश शताब्द्यामेव

समाचारपत्रं प्रचलितमासीत्। भारतवर्षे तु मुगलसाम्राज्यकाले हस्तलिखितं 'संवादपत्रं' केवलं शासनाधिकारिषु प्रयुक्तमासीत्। पश्चाद् आगतेषु गौराङ्गेषु अत्र १७४० खिष्टाब्दे 'इण्डिया-गजट' नामनम् आङ्ग्लभाषापत्रं सर्वप्रथमं प्रारभत। हिन्दीभाषायाः प्रथमं पत्रं 'समाचारदर्पण' नाम्ना प्रकाशितमभवत्। शनैः शनैः शिक्षाप्रसारेण सहैव पत्र-पत्रिकायां तत्पाठकानां च संख्या द्रुतमवर्धत। इदानीं समस्तभूमण्डलं समाचारपत्रैः परिव्याप्तम्। न कापि भाषा यस्यां समाचारपत्राभावः।

समाचारपत्राणि बहुविधानि। यथा—प्रकाशनकालभेदेन—दैनिक-अर्धदैनिक-साप्ताहिक-अर्धसाप्ताहिक-पाक्षिक-मासिक-त्रैमासिक-षाण्मासिक-वार्षिकाणिः विषयभेदेन—राजनीति-धर्म-दर्शन-वाणिज्यादिगोचराणि; भाषाभेदेन—हिन्दी-अंग्रेजी-बंगला-प्रभृतिसंबन्धीनि अपि समाचारपत्राणि भिद्यन्ते। पाक्षिक-मासिक-त्रैमासिकादिपत्राणां केचन साप्ताहिकपत्राणां च परिगणना न समाचारपत्रेषु किन्तु पत्रिकासु (Magazines) क्रियते, तेषु समाचारापेक्षया लेखबाहुल्यात्। समाचारपत्रेषु समाचारस्य प्राधान्यं भवति। यद्यपि तत्रापि विविधविषयकाः विचाराः, निबन्धाः, विज्ञापनादयश्च प्रकाश्यन्ते तथापि तेषां प्रणाप्रदः समाचार एव।

समाचारपत्राणामनेके लाभास्सन्ति। यथा—१. यत्र कुत्रापि स्थितो मानवः संसारस्य सर्वविधान् नवीनतमसमाचारान् विजानाति। २. सेवावृत्ति-विवाह-व्यवसायादिविषयकैः विज्ञापनैः पाठकाः लाभान्विताः भवन्ति। ३. समाचारपत्राणि जनता-समाज-शासकादीनां परस्परविचारविनिमयसाधनानि भवन्ति। समाचारपत्रद्वारा समस्यानां समाधानम्, मनोगतभावानां प्रकाशनम्, अधिकारिध्यानाकर्षणं च संपद्यते। ४. राष्ट्रियभावनायाः उद्बोधनम्, सभ्यतायाः संस्कृततेश्च प्रचारः, साहित्यिक-समीक्षा, परीक्षाफलादिघोषणा, लोकमताकलनम्, जनमत निर्माणम्, जनमनोरञ्जनम्, सूचनाप्रसारः एवंविधानि बहूनि कार्याणि समाचारपत्रैः सम्यक् प्रसाध्यन्ते।

समाचारपत्राणां यथोपरिवर्णिताः लाभाः तथा हानयोऽपि बहुविधाः। तद्यथा—१. मिथ्यासमाचाराणां प्रसारणम्, २. सत्यसंगोपनम्, ३. जघन्यस्वार्थसाधनम्, ४. अश्लीलविज्ञापनादिभिः समाजस्य अधःपातनम्, ५. देशहितप्रतिकूलसमाचारप्रकाशनम्, ६. पक्षपातपूर्णसमालोचनादिभिः पारस्परिकविद्वेषवर्द्धनम्, ७. कुत्सितवातावरणनिर्माणम् इत्यादयः।

वस्तुतस्तु नैमे समाचारपत्राणां दोषाः किन्तु तदधिकारि-शासनादिजनिताः। दोषपरिमार्जनाय सम्पादकैः संवाददातृभिः अधिकारिभिश्च निर्दोषैः निर्भीकैः सत्यप्रणयिभिश्च भाव्यम्, येन समाचारपत्रं तथ्यमेव प्रकाशयेत्, न तु विपरीतम्।

कथमपि कस्यापि हानिकरं तथ्यं न प्रकाशयेत् । शासकैः समाचारपत्रेभ्यः पूर्ण-स्वतन्त्रता प्रदेया, तन्मार्गे बाधाश्च न कथमपि उपस्थापनीयाः । तदैव समाजस्य, देशस्य, संसारस्य च कल्याणं सम्पत्स्यते ।

(३८) पुस्तकस्य आत्मकथा

एकदा पुस्तकाध्ययनानन्तरं यदाहं चिन्तामग्नः आसम् तदा तत् जीर्णपुस्तकं माम् अवदत्—सौम्य ! किं मे जीर्णाङ्गानि ध्यायति भवान् । नेदं मे प्राक्तनं रूपम् यतो अहमपि पुरा पुरोवर्तिसजातीय-नूतनपुस्तकतुल्यमेव आसम् किन्तु दैवदुर्विपाकाद् इदानीम् एतादृशीम् अवस्थां नीतः । अतः चिन्तयामि 'ते हि मे दिवसाः गताः' इति । तथापि ममैवायं महिमा येन जडाः अपि उद्बुद्धाः भवन्ति, निर्धनाः अपि धनिनो भवन्ति, दीनाः अपि सुखिनः संजायन्ते । यतः मदध्ययनात् विद्यालाभो भवति । विद्यया च विनयादिप्राप्तिः यथोक्तम्—

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥
विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मः ततः सुखम् ॥

सहृदयोऽसि चेत् शृणु ममेतिहासम्—

सर्वप्रथमं मम पूर्वजस्वरूपं गुरूच्चारणानुच्चारणात्मकम् आसीत् । न कोऽपि भौतिकः आधारः आसीत्, स्मृतिरेव केवलं साधनम् । इयम् अव्यक्ता अवस्था । किञ्चित्कालानन्तरं मम पूर्वजानाम् आधिभौतिकगात्राणि शिलामृत्तिका-तरुत्वक्-पत्रादिरूपेण अभिव्यक्तिमापन्नानि । पश्चात् तेषां कलेवराणि तालदल-भूर्जत्वङ्मयानि च संवृत्तानि । अद्यापि तानि रूपाणि क्वचित् क्वचिदपि उपलभ्यन्ते यानि दृष्ट्वा मनः नितान्तमानन्दमनुभवति । पत्रात्मकम् इदानीन्तनं ममरूपं मनोहरतरम् । आधिदैविकं शरीरं तु सदैव सरस्वतीरूपेण अपूज्यत । तत्र भारते सर्वप्रथमं मभोपरि ब्राह्मीलिपिरूपेण वर्णानां प्रयोगः प्रारभत । पश्चात् क्रमेण देवनागरीलिपिः विकसिता अभवद् यस्याः इदानीं बाहुल्येन प्रचारः अवलोक्यते ।

यथा मानवशरीरम् अवस्थाभेदेन परिवर्तते तथैव ममेदं शरीरमपि काल-क्रमेण परिवर्तितम्, इदानीं जीर्णं च सञ्जातम् । इदानीं मम आत्मकथां विशेषतः शृणु—इतः शतं वर्षाणि प्राक् एकदा मुम्बईमुद्रणालये कागदपत्राणामुपरि देवनागरीलिपौ सुपरिष्कृतं वर्तमानं पुस्तकाकारं मे शरीरं विनिर्मितम् । ततो निर्गत्य अहं पुस्तकविक्रेतुः आपणिकस्य हस्तं प्रापितम् । सः माम् अन्यैः भ्रातृभिः सह काष्ठमञ्जूषायामास्थापयत् । गते बहुतिथे काले कश्चन, भद्रपुरुषः मां सहर्षम् अवलोकयन् स्वगृहम् अनयत् । कालपरिणामस्य दुष्परिहार्यत्वाद् इदानीं मम ईदृशी दशा सम्पन्ना । मन्ये अत्रैव आयुःशेषं यापयामि ।